

वीर सेवा मन्दिर
दिल्ली

★

क्रम संख्या

7223

काल नं०

220854

खण्ड

कोणा

The History of Rajputana-Vol. IV, Part I.

**THE
HISTORY OF THE JODHPUR STATE
PART I.**

**जोधपुर राज्य का इतिहास
प्रथम खंड**

**ग्रन्थकर्ता
गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा**

THE
HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME IV,
PART I.

राजपूताने का इतिहास

चौथी जिल्द,
पहला भाग

THE
HISTORY OF RAJPUTANA

VOLUME IV, PART I.

HISTORY OF THE JODHPUR STATE

PART I.

BY

MAHĀMAHOPĀDHYĀYA RĀI BAHĀDUR
SĀHITYA-VĀCHASPATI

Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt. (Hony.)

PRINTED AT THE VEDIC YANTRALAYA,
AJMER.

(All Rights Reserved)

व्यास एण्ड सन्स,

अजमेर.

First Edition

}

1938 A. D.

}

Price Rs. 8.

PUBLISHED BY

Mahamahopadhyaya Rai Bahadur Sahitya-Vachaspati

Dr. Gaurishankar Hirachand Ojha, D. Litt.,

Ajmer.



This book is obtainable from :—

- (i) The author, Ajmer.
- (ii) Vyas & Sons, Booksellers,
Naya Bazar, Ajmer.

राजपूताने का इतिहास

चौथी जिल्द, पहला भाग

जोधपुर राज्य का इतिहास

प्रथम खंड

ग्रन्थकर्ता

महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉक्टर गौरीशंकर हिराचंद ओझा, डी० लिट० (ऑनरेरी)

बाबू चांदमल चंडक के प्रबन्ध से
वैदिक-ग्रन्थालय, अजमेर में छपा

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण }

विक्रम संवत् १९६५

{ मूल्य ५० प

प्रकाशक—

महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति
डॉ० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, डी० लिट्०, अजमेर.

यह ग्रन्थ निम्नांकित स्थानों से प्राप्य है:—

(१) ग्रन्थकर्ता, अजमेर.

(२) व्यास एण्ड सन्स, बुकसेलर्स
नयाबाजार, अजमेर.

राजपूताने का इतिहास



महाराजा जसवन्तसिंह

हिन्दू-संस्कृति के उपासक

परम विद्यानुरागी

अदम्य साहसी

वीरवर महाराजा जसवंतसिंह

की

पवित्र स्मृति को

सादर समर्पित

भूमिका

साहित्य में इतिहास का स्थान बहुत ऊंचा है। सभी सभ्य और उन्नतिशील जातियों का अपना-अपना इतिहास है, जो उनके पूर्वजों का अमर स्मारक होने के साथ ही उनकी शिक्षा एवं उन्नति का अपूर्व साधन है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व भारतवासी अपने देश के इतिहास से प्रायः अनभिज्ञ-से ही थे। इस विषय का उनका जो भी ज्ञान था वह बहुत कम तथा केवल सुनी-सुनाई बातों पर ही अवलम्बित था।

अंग्रेजों का भारतवर्ष में अधिकार स्थापित होने पर जिन अंग्रेज विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ उनमें कर्नल टॉड का नाम बड़े गौरव के साथ लिया जायगा। सर्वप्रथम उसने ही भारत की वीरभूमि राजपूताने का विस्तृत इतिहास लिखकर यूरोप एवं भारत के विद्वानों का ध्यान इस महत्त्वपूर्ण देश के अतीत गौरव की ओर आकर्षित किया। उसकी अमर कृति “राजस्थान” भारतवर्ष के इतिहास की अमूल्य निधि है। फिर तो उसकी देखा-देखी कितने ही भारतीय विद्वानों ने अपने साहित्य के इस अभाव की पूर्ति का उद्योग करना आरम्भ किया। उन्होंने परिश्रम के साथ खोजकर ऐतिहासिक वृत्तों का पता लगाया और उनके सहारे इतिहास-ग्रन्थों का लिखना शुरू किया। फलतः जहाँ एक भी ऐतिहासिक ग्रन्थ विद्यमान न था वहाँ अब इस विषय के कई छोटे-बड़े ग्रन्थ देख पड़ते हैं।

सब मिलाकर राजपूताने में इस समय छोटी-बड़ी इक्कीस रियासतें हैं। उनमें से केवल सात का इतिहास ही कर्नल टॉड के ग्रन्थ में आया है, पर बड़वे, भाटों आदि की ख्यातों एवं दन्तकथाओं को ही मुख्य स्थान देने के कारण उसके वर्णन किसी अंश में आधुनिक शोध की कसौटी पर सच्चे नहीं ठहरते। इसी वीरभूमि में जन्म लेने के कारण अब तक के शोध के आधार पर यहाँ का सर्वांगपूर्ण इतिहास लिखने की ओर मेरा ध्यान भी

आकृष्ट हुआ । ई० स० १६२५ में मेरे लिखे हुए “राजपूताने का इतिहास” की पहली जिल्द का पहला खंड प्रकाशित हुआ था, जिसकी यूरोप तथा भारत के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की । तब से अब तक इसकी तीन जिल्दें प्रकाशित हो चुकी हैं, जिनके कई भागों में क्रमशः राजपूताने का प्राचीन इतिहास, उदयपुर राज्य का इतिहास, डूंगरपुर राज्य का इतिहास तथा बांसवाड़ा राज्य का इतिहास निकल चुके हैं । वर्तमान पुस्तक राजपूताने के इतिहास की चौथी जिल्द का पहला भाग है, जिसमें जोधपुर राज्य का इतिहास है ।

राजपूताने के राज्यों में जोधपुर का राज्य अपना अलग महत्त्व रखता है । विस्तार में राजपूताने के राज्यों में यह सबसे बड़ा है । प्राचीनता की दृष्टि से भी इसका महत्त्व कम नहीं है । सीसोदियों, चौहानों एवं भाटियों के बाद “रणबंका राठोड़ों” की ही गणना होती है । जैसे तो भारतवर्ष में राठोड़ों का अस्तित्व वि० सं० से पूर्व की तीसरी शताब्दी के आस-पास था, परन्तु वर्तमान राठोड़ वंश का राजपूताने में आगमन वि० सं० की १४वीं शताब्दी में हुआ । वि० सं० १३०० के आस-पास जोधपुर के राठोड़ों का मूल पुरुष राव सीहा कन्नौज की तरफ से सर्वप्रथम राजपूताने में आया और उसने तथा उसके वंशजों ने यहां राठोड़-राज्य की नींव डाली, जो क्रमशः बढ़ता गया । वि० सं० १५१६ में उसके वंशधर राव जोधा ने जोधपुर नगर की स्थापना कर एक सुदृढ़ गढ़ निर्माण किया । उसी समय से इस राज्य का नाम जोधपुर पड़ा ।

राजपूताने के लगभग मध्य भाग में स्थित होने के कारण ऐतिहासिक दृष्टि से जोधपुर राज्य का बड़ा महत्त्व रहा है । यही कारण है कि विदेशी विजेताओं का ध्यान इसकी ओर सदा विशेष रूप से आकृष्ट हुआ । इसकी स्थिति, विस्तार एवं शक्ति को देखते हुए कुछ मुगल शासकों को यहां के नरेशों की तरफ से सदैव आशंका ही बनी रही । ऊपरी मन से मेल रखते हुए भी वे सदा इसी प्रयत्न में रहा करते थे कि यह प्रदेश उनके क़ाबू में आ जाय । इतिहास-प्रसिद्ध कूटनीतिज्ञ औरंगज़ेब के असबन्तसिंह तथा

अजीतसिंह के साथ के व्यवहार से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। मरहटों के साथ भी जोधपुरवालों का विरोध ही बना रहा। इन घटनाओं का एक परिणाम यह हुआ कि यहाँ के इतिहास की बहुतसी सामग्री, जोधपुर के शासकों के निरन्तर झगड़ों में फँसे रहने के कारण, नष्ट हो गई। फिर भी जो कुछ मिलती है वह उनकी सभ्यता एवं संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

भारत के किसी भी प्रान्त अथवा राज्य का शोधपूर्ण इतिहास लिखने के लिए नीचे लिखे साधनों की आवश्यकता होती है—

१. शिलालेख, दानपत्र, सिक्के आदि।
२. बड़वे, भाटों आदि की लिखी हुई ख्यातें, प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें, संस्कृत और भाषा के काव्य, भाषा के गीत तथा कविताएं आदि।
३. राज-कर्मचारियों आदि के संग्रह के हस्तलिखित वृत्तान्त तथा वंशावलियाँ आदि।
४. मुसलमानों के समय के लिखे हुए फ़ारसी भाषा के इतिहास ग्रंथ।
५. अन्य विदेशी विद्वानों की लिखी हुई यात्रा आदि की पुस्तकें।

शोधपूर्ण इतिहास लिखने में शिलालेखों, दानपत्रों तथा सिक्कों आदि से बड़ी सहायता मिलती है, पर खेद का विषय है कि जोधपुर राज्य से मिलनेवाले वहाँ के राठोड़ों के शिलालेखों एवं दानपत्रों की संख्या नगण्य-सी है। जो दो-चार मिले हैं उनमें से अधिकांश वहाँ के शासकों के न होकर उनके समय में लिखे हुए अन्य व्यक्तियों के हैं, जिनसे किसी विशेष ऐतिहासिक वृत्त का ज्ञान नहीं होता। राव सीढ़ा एवं धूहड़ के स्मारक लेखों का मिलना यह सिद्ध करता है कि वहाँ स्मारक बनाने की प्रथा प्रारम्भ से ही चली आती थी। अतएव यह कहा जा सकता है कि वहाँ के अन्य नरेशों के स्मारक तथा उनके समय के शिलालेख आदि राज्य में कहीं-न-कहीं अवश्य विद्यमान होंगे, परन्तु वे अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कोई लगनशील, इतिहास से अनुराग

रखनेवाला व्यक्ति जोधपुर राज्य के गांवों में घूम-घूमकर उनकी तलाश करे। ऐसा होने से जोधा से पूर्व के अधिकांश नरेशों के स्मारकों का मिल जाना संभव है। स्मारकों के लेखों से राजाओं का समय निर्धारित करने में बड़ी सहायता मिलती है। जब तक ऐसा नहीं हो जाता तब तक राव जोधा से पूर्व के जोधपुर के राजाओं के निश्चित समय अंधकार में ही रहेंगे। उचित तो यह होगा कि राज्य इस ओर ध्यान दे, क्योंकि राजकीय सहायता प्राप्त हुए बिना इस महान् कार्य की पूर्ति असम्भव नहीं तो कठिन और कष्टसाध्य अवश्य है। जोधपुर राज्य से मिलनेवाले पुराने सिक्कों की संख्या भी कम ही है।

जोधपुर राज्य के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली महत्त्वपूर्ण ख्यातें आदि निम्नलिखित हैं—

१. मुंहणोत नैणसी की ख्यात।
२. जोधपुर राज्य की ख्यात।
३. दयालदास की ख्यात।
४. वीरविनोद।

इनमें से प्रथम जोधपुर के प्रसिद्ध महाराजा जसवंतसिंह के वीर एवं सुयोग्य मंत्री मुंहणोत नैणसी की लिखी हुई है। यह बड़ा इतिहास-प्रेमी व्यक्ति था। उसने बड़े परिश्रम से इतिहास-सम्बन्धी वृत्तान्तों का संग्रह किया। जितनी भी बातें उसे मिल सकीं उनका उसने अपनी पुस्तक में संग्रह किया है। अब तक की प्राप्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण राजपूताने के इतिहास की दृष्टि से उसका ग्रंथ बड़े महत्त्व का है और इतिहास-क्षेत्र में किसी अंश में प्रामाणिक भी माना जाता है।

दूसरा ग्रन्थ जोधपुर का राजकीय इतिहास है, जो “जोधपुर राज्य की ख्यात” नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ महाराजा मानसिंह के समय में लिखा गया था और इसमें आरम्भ से लगाकर महाराजा मानसिंह की मृत्यु तक का हाल है। यह ग्रन्थ बड़ा विशाल है और बड़ी-बड़ी चार जिल्दों में समाप्त हुआ है। इसके लिखने में लेखक ने विशेष छान-बीन न

कर जनश्रुति के आधार पर बहुतसी बातें लिख डाली हैं, जो निराधार होने के कारण काल्पनिक ही ठहरती हैं। साथ ही राज्य के आश्रय में लिखी जाने के कारण इसमें दिये हुए बहुतसे वर्णन पक्षपातपूर्ण एवं एकांगी हैं। फलस्वरूप उनसे कई घटनाओं पर वास्तविक प्रकाश नहीं पड़ता। पहले विस्तृत इतिहास लिखने की परिपाटी न थी। केवल राजाओं, उनकी राणियों, कुंवरो एवं कुंवरीयों के नाम ही बहुधा संग्रहों में लिखे जाते थे। इन नामों के संग्रह अब भी बहियों के रूप में मिलते हैं, पर उनमें दिये हुए सभी नाम ठीक हों ऐसा देखने में नहीं आया। भिन्न-भिन्न संग्रहों में एक ही राजा के कुंवरो के नामों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। पीछे से विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों का मुकाब होने पर उन्होंने पहले के नामों के साथ कई काल्पनिक वृत्तान्त बढ़ा दिये। यही कारण है कि अन्य ख्यातों आदि के समान इस ख्यात का प्रारम्भिक वर्णन भी कल्पित बातों से ही भरा पड़ा है। ख्यात-लेखक का ज्ञान कितना कम था, यह इसी से स्पष्ट है कि राव सीहा की एक राणी पार्वती और उससे बहुत पीछे होनेवाले राव रणमल की राणी कोड़मदे तथा जोधा की पुत्री शृंगारदेवी के नाम तक उसे ज्ञात न थे। यही हाल ख्यात में दिए हुए बहुतसे संवत्ों का है। जब वास्तविक इतिहास से ही ख्यात-लेखक अनभिज्ञ थे, तो भला सही संवत् वे कहां से लाते? यही कारण है कि पूर्व के राजाओं के कल्पित वृत्तान्तों के समान ही ख्यात में दिये हुए उनके जन्म, गद्दीनशीनी, मृत्यु आदि के संवत् भी कल्पित ही हैं। राव सीहा और राव धूहड़ के मृत्यु-स्मारकों के मिल जाने से अब इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता कि राव जोधा से पूर्व के ख्यात में दिये हुए संवत् पूर्णतया अशुद्ध हैं। आगे के राजाओं के संवत् भी कहीं-कहीं दूसरी ख्यातों आदि से मेल नहीं खाते। फिर भी जहां तक जोधपुर राज्य के इतिहास का सम्बन्ध है इस ख्यात की अवहेलना नहीं की जा सकती, क्योंकि यह बहुत विस्तार के साथ लिखी हुई है।

तीसरी पुस्तक अर्थात् दयालदास की ख्यात की पहली जिल्द ही

जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए उपयोगी है। इसमें आरम्भ से लगाकर राव जोधा तक का विस्तृत इतिहास है, जो लगभग मुंहणोत नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात जैसा ही है। इसकी दूसरी जिल्द में राव जोधा के पुत्र बीका के वंशधरों का, जो बीकानेर राज्य के स्वामी हैं, सुविस्तृत इतिहास है। इसमें भी यथाप्रसंग जोधपुर राज्य का कुछ-कुछ इतिहास आया है। कहीं-कहीं तो इसमें ऐसी बातें मिल जाती हैं, जिनका अन्यत्र पता नहीं चलता। इस दृष्टि से यह सारा ग्रन्थ जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए कुछ अंशों में उपयोगी है।

चौथी पुस्तक उदयपुर-निवासी सुप्रसिद्ध इतिहास-प्रेमी महामहोपाध्याय कविगजा श्यामलदास की लिखी हुई है। यह विशाल ग्रन्थ केवल जोधपुर राज्य ही नहीं बल्कि सारे राजपूताने के इतिहास के लिए समान रूप से उपयोगी है। सुयोग्य लेखक ने इसके लिखने में ख्यातों आदि के अतिरिक्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों, प्रशस्तियों, फारमानों, फारसी तबारीखों आदि का भी पूरा-पूरा उपयोग किया है, जिससे अन्य ख्यातों आदि से इसका महत्व अधिक है।

इनके अतिरिक्त और भी कई छोटी-बड़ी ख्यातें मिली हैं, पर वे अधिक विस्तार से लिखी हुई न होने के कारण विशेष उपयोगी नहीं हैं। स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने जोधपुर के कुछ राजाओं का जीवन-चरित्र लिखने के साथ ही वहां के राजाओं तथा उनके कुंवरो, राणियों, तथा कुंव-रियों के नामों का अलग संग्रह किया था। वह भी इस इतिहास के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ है।

जोधपुर राज्य के नरेशों एवं अन्य वीर व्यक्तियों की प्रशंसा में ख्यातों आदि में बहुतसी कविताएं तथा गीत मिलते हैं। ये बहुधा अतिशयोक्तिपूर्ण बातों से भरे हैं। साथ ही इनमें से अधिकांश के रचयिताओं के नामों तथा समय का भी पता नहीं चलता। ऐसी दशा में इनकी सत्यता के विषय में सन्देह ही है। अधिक संभव तो यही है कि ये पीछे से बनाकर जोड़ दिये गये हों। ऐतिहासिक दृष्टि से ये बहुत उपयोगी भी नहीं हैं। जोधपुर राज्य

के इतिहास से संबद्ध कई संस्कृत तथा भाषा के काव्य आदि भी मिले हैं, जो एक हद तक उपयोगी हैं।

अन्य सामग्री आदि में चंडू के यहां से प्राप्त जन्मपत्रियों का संग्रह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें कई राजाओं, उनकी राणियों, कुंवरों, कुंवरियों आदि की जन्म-तिथि के साथ ही कुंडलियां भी दी हुई हैं। इसके सहारे कई स्थलों पर ख्यातों में प्राप्त जोधपुर के कतिपय राजाओं की जन्म-तिथि शुद्ध करने में पर्याप्त सहायता मिली है।

फ़ारसी तवारीखों में भी जोधपुर राज्य का इतिहास यथाप्रसंग आया है, पर उनमें कहीं-कहीं जातीय एवं धार्मिक पक्षपात की मात्रा अधिक पाई जाती है। फिर भी वे समकालीन लेखकों की रचनाएं होने के कारण मुसलमानों के काल के हिन्दू राजाओं के इतिहास के लिए विशेष उपयोगी हैं। तारीख़ फ़रिश्ता, अकबरनामा, मुंतख़बुत्तवारीख़, जहांगीरनामा, आलमगीरनामा, मुंतख़बुलुबाब, मिरात-इ-अहमदी आदि फ़ारसी ग्रन्थों में यथाप्रसंग जोधपुर के राजाओं का हाल दर्ज है। इस स्थल पर स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद-लिखित हुमायूनामा, अकबरनामा, जहांगीरनामा, औरंगज़ेबनामा आदि ग्रन्थों का उल्लेख करना आवश्यक है। सैयद गुलाब मियां के उर्दू ग्रंथ “तारीख़ पालनपुर” में भी जोधपुर के कुछ राजाओं का प्रसंगवशात् हाल आया है, जिसका अन्यत्र उल्लेख नहीं मिलता। इस अमूल्य ग्रन्थ का अनुवाद पालनपुर के विद्याप्रेमी शासक नवाब सर ताले मुहम्मदखां ने गुजराती भाषा में “पालनपुर राज्य नो इतिहास” नाम से किया है।

मुग़लकाल में बादशाहों की तरफ़ से हिन्दू राजाओं को मिले हुए फ़रमान भी इतिहास की दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। कभी-कभी तो उनके द्वारा ऐसी घटनाओं का पता चलता है, जिनका ख्यातों में तो क्या फ़ारसी तवारीखों तक में उल्लेख नहीं पाया जाता, पर खेद का विषय है कि जोधपुर राज्य के राजाओं से सम्बन्ध रखनेवाले फ़रमान अब तक प्रकाश में नहीं आये हैं। मुग़ल बादशाहों के साथ उनका घनिष्ठ संबंध रहा था।

इससे यह निश्चित है कि उनके पास समय-समय पर शाही फ़रमान अवश्य आये होंगे। संभव है, महाराजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद राज्य के खालसा हो जाने पर एक लम्बे समय तक कोई व्यवस्था न रहने के कारण अन्य इतिहास-सामग्री के साथ वे भी नष्ट हो गये हों।

विदेशी यात्रियों के ग्रन्थों से भी जोधपुर राज्य के इतिहास पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। मनुकी, बर्नियर तथा टैवर्नियर बादशाह औरंग-ज़ेब के समय में भारतवर्ष में आये थे। उन्होंने अपनी-अपनी पुस्तकों में उस समय का विस्तृत इतिहास दिया है। कहीं-कहीं उनमें भी केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर बहुतसी बातें लिख दी गई हैं, लेकिन फिर भी उनसे कितनी ही महत्वपूर्ण बातों का पता चलता है।

वर्तमान लेखकों में श्रीकालिकारंजन कानूंगो, सर जदुनाथ सरकार, डा० बनारसीप्रसाद, डा० बेनीप्रसाद एवं श्रीवजरत्नदास का उल्लेख करना आवश्यक है। इन्होंने अपने ग्रन्थों में यथाप्रसंग जोधपुर के राजाओं का कुछ-कुछ हाल दिया है, जो इतिहास की दृष्टि से उपयोगी है।

प्रस्तुत पुस्तक के प्रणयन में उपर्युक्त सभी साधनों का उपयोग किया गया है, परन्तु प्रधानता आधुनिक शोध को ही दी गई है। जहां शोध के अभाव में सत्य वृत्त ज्ञात न हो सका, वहां इमें बाध्य होकर ख्यातों के कथन को ही प्रमुख स्थान देना पड़ा है। मुसलमानों के समय का इतिहास बहुधा फ़ारसी तवारीखों पर अवलम्बित है, पर जहां कहीं सन्देह का स्थान उपस्थित हुआ अथवा कई तवारीखों के वर्णनों में विभिन्नता पाई गई वहां टिप्पणियों-द्वारा यथासंभव प्रकाश डाला गया है।

यह पुस्तक दो भागों में समाप्त होगी। प्रस्तुत पुस्तक पहला भाग है। इसके आरम्भ में राज्य का संक्षिप्त भौगोलिक परिचय देने के अतिरिक्त उसके अन्तर्गत यहां के प्राचीन तथा प्रसिद्ध स्थानों का वर्णन किया गया है, जहां से प्राप्त शिलालेखों से राठोड़ों के पूर्व वहां अधिकार करनेवाले राजाओं के इतिहास पर बहुत प्रकाश पड़ता है।

इसके आगे राव सीढ़ा से लेकर महाराजा जसवन्तसिंह (प्रथम) तक का विस्तृत इतिहास है। राठोड़ों से पूर्व यहाँ जिन-जिन जातियों का प्राधान्य रहा उनका संक्षिप्त परिचय तथा राव सीढ़ा से पूर्व के भारतवर्ष के विभिन्न विभागों के राठोड़ों का जो कुछ इतिहास शोध से ज्ञात हो सका वह संक्षेप में प्रारम्भ में दिया गया है। कन्नौज के गाहड़वालों और जोधपुर के राठोड़ों के विषय में कुछ लोगों का मत है कि ये दोनों भिन्न वंश न होकर एक ही हैं। इस भ्रान्तिमूलक धारणा का कारण यही प्रतीत होता है कि पेसा माननेवालों ने कन्नौज के चन्द्रदेव तथा बदायूँ के चन्द्र को एक ही मान लिया है। वस्तुतः ये दोनों भिन्न व्यक्ति थे और अलग-अलग समय में हुए थे। इस प्रश्न का सविस्तर विवेचन हमने “राठोड़ और गाहड़वाल” शीर्षक अध्याय में किया है, जिससे आशा है कि इस विषय पर समुचित प्रकाश पड़ेगा।

यह इतिहास सर्वांगपूर्ण है, यह कहने का मैं साहस नहीं कर सकता, पर इसमें आधुनिक शोध को पूरा-पूरा स्थान देने का भरसक प्रयत्न किया गया है। जिन व्यक्तियों आदि के नाम प्रसंगवशात् इतिहास में आये, उनका—जहाँ तक पता लगा—आवश्यकतानुसार कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार से परिचय (टिप्पण में) दे दिया गया है। मेरा विश्वास है कि इसके द्वारा जोधपुर राज्य का प्राचीन गौरव प्रकाश में आयागा और यहाँ का वास्तविक इतिहास पाठकों को ज्ञात होगा।

भूल मनुष्य-मात्र से होती है और मैं भी इस नियम का अपवाद नहीं हूँ। फिर इस समय मेरी वृद्धावस्था है और नेत्रों की शक्ति भी पहले जैसी नहीं रही है, जिससे, संभव है, कुछ स्थलों पर त्रुटियाँ रह गई हों। आशा है, उदार पाठक उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और जो त्रुटियाँ उनकी दृष्टि में आवें उन्हें मुझे सूचित करेंगे, जिससे दूसरे संस्करण में उचित सुधार किया जा सके।

मैं उन ग्रन्थकर्ताओं का, जिनके ग्रन्थों से इस पुस्तक के लिखने में मुझे सहायता मिली है, अत्यन्त अनुगृहीत हूँ। उनके नाम यथाप्रसंग

टिप्पणियों में दे दिये गये हैं। विस्तृत पुस्तक-सूची दूसरे भाग के अन्त में दी जायगी। इस पुस्तक के प्रणयन में मुझे अपने आयुष्मान् पुत्र प्रो० रामेश्वर ओझा, एम० ए० तथा निजी इतिहास-विभाग के कार्यकर्ता पं० चिरंजीलाल व्यास एवं पं० नाथूलाल व्यास से पर्याप्त सहायता मिली है, अतएव इनका नामोल्लेख करना भी मैं आवश्यक समझता हूँ।

अजमेर,
रत्नाबन्धन,
वि० सं० १९६५. }

गौरीशंकर हीराचंद ओझा.

विषय-सूची

पहला अध्याय

भूगोल-सम्बन्धी वर्णन

| विषय | पृष्ठांक |
|-------------------------|----------|
| राज्य का नाम | १ |
| स्थान और क्षेत्रफल | ३ |
| सीमा | ४ |
| पर्वत-श्रेणियां | ४ |
| नदियां | ४ |
| भीलें | ५ |
| जलवायु | ६ |
| वर्षा | ६ |
| ज़मीन और पैदावार | ६ |
| फल | ७ |
| जंगल | ७ |
| जंगली जानवर और पशुपक्षी | ८ |
| खानें | ८ |
| क्रिले | ९ |
| रेल्वे | ९ |
| जन-संख्या | १० |
| धर्म | १० |
| जातियां | ११ |

| विषय | पृष्ठांक |
|---------------------------|----------|
| पेशा | ११ |
| पोशाक | ११ |
| भाषा | १२ |
| लिपि | १२ |
| दस्तकारी | १२ |
| कारखाने | १३ |
| व्यापार | १३ |
| त्योहार | १३ |
| मेले | १४ |
| ढाकखाने | १४ |
| तारघर | १४ |
| शिक्षा | १४ |
| अस्पताल | १४ |
| इफूमते (ज़िले) | १५ |
| म्याय | १७ |
| जागीर, भोम आदि | १७ |
| सेना | १८ |
| आमद-खर्च | १८ |
| सिके | १८ |
| वर्ष और तोपों की सलामी | २१ |
| प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान | २१ |
| जोधपुर | २१ |
| मंडोर | २४ |
| घटियाला | २७ |
| अरणा | २८ |
| तिवरी | २८ |

| विषय | ... | ... | ... | पृष्ठांक |
|----------|-----|-----|-----|----------|
| ओसियां | ... | ... | ... | २८ |
| उंस्तरा | ... | ... | ... | ३० |
| बुचकला | ... | ... | ... | ३० |
| पीपाइ | ... | ... | ... | ३१ |
| भुंडाना | ... | ... | ... | ३१ |
| बड़लू | ... | ... | ... | ३१ |
| भेड़ता | ... | ... | ... | ३२ |
| पंडुखा | ... | ... | ... | ३३ |
| केकिंद | ... | ... | ... | ३४ |
| भवाल | ... | ... | ... | ३५ |
| बीठन | ... | ... | ... | ३६ |
| खवासपुरा | ... | ... | ... | ३६ |
| फलोदी | ... | ... | ... | ३७ |
| किसरिया | ... | ... | ... | ३८ |
| सांभर | ... | ... | ... | ३८ |
| डीडवाना | ... | ... | ... | ४० |
| सिधा | ... | ... | ... | ४० |
| नागोर | ... | ... | ... | ४० |
| गोठ | ... | ... | ... | ४२ |
| फलोदी | ... | ... | ... | ४३ |
| किराइ | ... | ... | ... | ४५ |
| जूना | ... | ... | ... | ४६ |
| चोटण | ... | ... | ... | ४६ |
| जसोल | ... | ... | ... | ४७ |
| नगर | ... | ... | ... | ४८ |
| खेड़ | ... | ... | ... | ४९ |

| विषय | | | | पृष्ठांक |
|----------|-----|-----|-----|----------|
| सांखोर | ... | ... | ... | ४६ |
| सिवाणा | ... | ... | ... | ४९ |
| भीनमाल | ... | ... | ... | ४९ |
| जालोर | ... | ... | ... | ४४ |
| पाली | ... | ... | ... | ४६ |
| बीठू | ... | ... | ... | ४७ |
| बाली | ... | ... | ... | ४८ |
| नाणा | ... | ... | ... | ४८ |
| बेलार | ... | ... | ... | ४६ |
| भट्टंद | ... | ... | ... | ६० |
| बेड़ा | ... | ... | ... | ६० |
| भाट्टंद | ... | ... | ... | ६१ |
| हथुंडी | ... | ... | ... | ६२ |
| सेवाड़ी | ... | ... | ... | ६२ |
| सांडेराव | ... | ... | ... | ६३ |
| कोरटा | ... | ... | ... | ६४ |
| सादड़ी | ... | ... | ... | ६४ |
| राणपुर | ... | ... | ... | ६६ |
| घाणेराव | ... | ... | ... | ६६ |
| नारलाई | ... | ... | ... | ६६ |
| नाडोल | ... | ... | ... | ६६ |
| वरकाणा | ... | ... | ... | ७० |
| आऊआ | ... | ... | ... | ७० |

दूसरा अध्याय

वर्तमान राठोड़ों से पूर्व के मारवाड़ के राजवंश

| विषय | | | | पृष्ठांक |
|------------------|-----|-----|-----|----------|
| मौर्य वंश | ... | ... | ... | ७१ |
| कुशन वंश | ... | ... | ... | ७२ |
| क्षत्रप वंश | ... | ... | ... | ७२ |
| गुप्त वंश | ... | ... | ... | ७३ |
| हूण वंश | ... | ... | ... | ७३ |
| गुर्जर वंश | ... | ... | ... | ७३ |
| चावड़ा वंश | ... | ... | ... | ७४ |
| बैस वंश | ... | ... | ... | ७५ |
| रघुवंशी प्रतिहार | ... | ... | ... | ७६ |
| गुहिल वंश | ... | ... | ... | ७७ |
| परमार | ... | ... | ... | ७७ |
| सोलंकी | ... | ... | ... | ७८ |
| चौहान | ... | ... | ... | ७६ |

तीसरा अध्याय

राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का प्राचीन इतिहास

| | | | |
|---|-----|-----|----|
| राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की उत्पत्ति | ... | ... | ८१ |
| राठोड़ नाम की उत्पत्ति | ... | ... | ८६ |
| राठोड़ वंश की प्राचीनता | ... | ... | ८७ |
| दक्षिण के राठोड़ों का प्राचीन इतिहास | ... | ... | ८८ |
| दंतिवर्मा, इन्द्रराज, गोविन्दराज और कर्कराज | ... | ... | ८६ |
| इन्द्रराज (द्वितीय) और दन्तिदुर्ग | ... | ... | ८६ |
| कृष्णराज | ... | ... | ८१ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| गोविन्दराज (द्वितीय) | १२ |
| धुवराज | १३ |
| गोविन्दराज (तृतीय) | १४ |
| अमोघवर्ष | १७ |
| कृष्णराज (द्वितीय) | १०० |
| इन्द्रराज (तृतीय) | १०२ |
| अमोघवर्ष (द्वितीय) | १०३ |
| गोविन्दराज (चतुर्थ) | १०३ |
| अमोघवर्ष (तृतीय) | १०४ |
| कृष्णराज (तृतीय) | १०५ |
| खोट्टिगदेव | १०७ |
| कर्कराज (द्वितीय) और इन्द्रराज (चतुर्थ) | १०८ |
| दक्षिण के राठोड़ों की राजधानी | १०६ |
| दक्षिण के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली— | |
| निश्चित ज्ञात समय सहित | ११० |
| गुजरात (लाट) के राठोड़ों की पहली शाखा | ११२ |
| गोविन्दराज और कर्कराज | ११२ |
| गुजरात (लाट) के राष्ट्रकूटों की पहली शाखा की वंशावली | ११३ |
| गुजरात के राठोड़ों की दूसरी शाखा | ११३ |
| इन्द्रराज और कर्कराज | ११३ |
| धुवराज, अकालवर्ष, धुवराज (द्वितीय) और कृष्णराज | ११५ |
| गुजरात (लाट) के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की | |
| दूसरी शाखा की वंशावली | ११७ |
| सौन्दत्ति के रट्ट (राठोड़) | ११७ |
| सौन्दत्ति के रट्टों की पहली शाखा | ११८ |
| सौन्दत्ति के रट्टों की पहली शाखा का वंशवृक्ष | ११८ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| सौन्दर्य के रट्टों की दूसरी शाखा | ११६ |
| नन्न और कार्तवीर्य | ११६ |
| दायिम, कन्न, परग और अङ्क | ११६ |
| सेन, कन्न (द्वितीय), कार्तवीर्य (द्वितीय), सेन (द्वितीय) तथा कार्तवीर्य (तृतीय) ... | ११६ |
| लक्ष्मीदेव, कार्तवीर्य (चतुर्थ) और लक्ष्मीदेव (द्वितीय) | १२० |
| सौन्दर्य के रट्टों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा की वंशावली | १२१ |
| मध्य भारत और मध्य प्रांत के राष्ट्रकूट (राठोड़) ... | १२३ |
| मानपुर के राठोड़ | १२३ |
| मानपुर के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली ... | १२४ |
| बेतुल के राठोड़ | १२४ |
| बेतुल के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली ... | १२५ |
| पथारी के राष्ट्रकूट (राठोड़) | १२५ |
| पथारी के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली ... | १२६ |
| बिहार के राष्ट्रकूट (राठोड़) | १२६ |
| बुद्धगया के राष्ट्रकूट | १२६ |
| नन्न, कीर्तिराज और तुंग | १२६ |
| संयुक्त प्रान्त के राष्ट्रकूट (राठोड़) | १२७ |
| बदायूं के राष्ट्रकूट | १२७ |
| बदायूं के राष्ट्रकूटों की वंशावली | १२८ |
| काठियावाड़ के राष्ट्रकूट | १२६ |
| राजपूताने के पहले के राष्ट्रकूट (राठोड़) ... | १३१ |
| हस्तिकुंडी (हथुंडी) के राठोड़ | १३१ |
| हथुंडी के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली ... | १३२ |
| धनोप के राठोड़ | १३३ |
| वागड़ के राठोड़ | १३३ |

चौथा अध्याय

राठोड़ और गाहड़वाल (गहरवार)

| विषय | पृष्ठांक |
|---------------------------|----------|
| राठोड़ और गाहड़वाल | १३५ |

पांचवां अध्याय

राव सीहा से राव रणमल तक

| | |
|---|-----|
| राव सीहा | १४६ |
| नैणसी की ख्यात और सीहा | १४६ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात और सीहा | १४७ |
| दयालदास की ख्यात और सीहा | १४८ |
| टॉड-राजस्थान और सीहा | १४९ |
| नैणसी के कथन की जांच | १५० |
| जोधपुर राज्य की ख्यात के कथन की जांच | १५२ |
| दयालदास के कथन की जांच | १५४ |
| कर्नल टॉड के कथन की जांच | १५४ |
| सीहा के सम्बन्ध का निश्चित हाल और उसकी मृत्यु | १५६ |
| राव आस्थान (अश्वत्थामा) | १५८ |
| मुंहणोत नैणसी का कथन | १५८ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १६१ |
| राणियां और सन्तति | १६३ |
| आस्थान के सम्बन्ध का निश्चित हाल | १६४ |
| राव धूहड़ | १६५ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १६५ |
| दयालदास की ख्यात का कथन | १६५ |
| टॉड का कथन | १६६ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--------------------------------------|----------|
| संतति | १६६ |
| निश्चित हाल और मृत्यु | १६७ |
| राव रायपाल | १६७ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १६७ |
| दयालदास का कथन | १६८ |
| टोंड का कथन | १६८ |
| संतति | १६६ |
| ख्यातों के कथन की समीक्षा | १६६ |
| राव कन्हपाल | १७० |
| संतति | १७१ |
| राव जालणसी | १७१ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १७१ |
| दयालदास का कथन | १७२ |
| संतति | १७२ |
| ख्यातों के कथन की जांच | १७३ |
| राव छाड़ा | १७३ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १७३ |
| दयालदास की ख्यात का कथन | १७४ |
| सन्तति | १७४ |
| ख्यातों के कथन की जांच | १७५ |
| राव टीडा | १७६ |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन | १७६ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन | १७७ |
| दयालदास की ख्यात का कथन | १७७ |
| टोंड का कथन | १७७ |
| सन्तति | १७८ |

| विषय | पृष्ठांक |
|-----------------------------------|----------|
| ख्यातों के कथन की जांच ... | १७८ |
| (कान्दड़देव तथा त्रिभुवनसी) ... | १७९ |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन ... | १७९ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | १८२ |
| राव सलखा ... | १८२ |
| मुंहणोत नैणसी का कथन ... | १८२ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | १८३ |
| सन्तति ... | १८४ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | १८५ |
| रावल मल्लीनाथ ... | १८५ |
| मल्लीनाथ की सन्तति ... | १९१ |
| ख्यातों के कथन की जांच ... | १९२ |
| राव वीरम ... | १९३ |
| मुंहणोत नैणसी का कथन ... | १९३ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | १९५ |
| राणियां तथा सन्तति ... | १९७ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | १९९ |
| राव चूडा (चामुंडराय) ... | २०० |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन ... | २०० |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन ... | २०५ |
| दयालदास की ख्यात का कथन ... | २०७ |
| टॉड का कथन ... | २०८ |
| सन्तति ... | २०९ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | २१० |
| राव कान्हा ... | २१३ |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन ... | २१३ |

| विषय | पृष्ठांक |
|-----------------------------------|----------|
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन ... | २१४ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | २१४ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | २१५ |
| राव सत्ता ... | २१६ |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन ... | २१६ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन ... | २१७ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | २१८ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | २१८ |
| राव रणमल ... | २१९ |
| मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन ... | २१९ |
| जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन ... | २२३ |
| अन्य ख्यातों आदि के कथन ... | २२४ |
| संतति ... | २२५ |
| ख्यातों आदि के कथन की जांच ... | २२७ |
| पांचवें अध्याय का सिंहावलोकन ... | २२६ |

छठा अध्याय

राव जोधा से राव गांगा तक

| | |
|--|-----|
| राव जोधा ... | २३५ |
| जोधा का मेवाड़ से भागना तथा चूंडा का | |
| मंडोवर पर अधिकार करना ... | २३५ |
| मंडोवर-प्राप्ति का प्रयत्न ... | २३६ |
| जोधा के पास हंसवाई का सन्देश भिजवाना ... | २३७ |
| जोधा का सेनावा के रावत लूणा के घोड़े लेना ... | २३८ |
| जोधा का चौकड़ी, कोसाणा तथा सोजत पर अधिकार होना | २३६ |

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| जोध्या पर राणा कुंभा की चढ़ाई ... | २३६ |
| जोधपुर का गढ़ तथा नगर बसाना ... | २४१ |
| जोध्या की प्रयाग, काशी तथा गया-यात्रा ... | २४१ |
| कुंवर बीका का नवीन राज्य स्थापित करना ... | २४३ |
| ऊदा का जोध्या को अजमेर तथा सांभर देना ... | २४३ |
| जोध्या का छापरा द्रोणपुर पर अधिकार ... | २४४ |
| कांधल का मारा जाना ... | २४८ |
| कांधल को मारने के वर में जोध्या की बीका के साथ सारंगख्रां पर चढ़ाई ... | २४६ |
| जोध्या का बीका को पूजनीक चीजें देने का वचन देना | २५० |
| राव जोध्या की मृत्यु ... | २५० |
| राव जोध्या की सन्तति ... | २५१ |
| राव जोध्या का व्यक्तित्व ... | २५८ |
| राव सातल ... | २५६ |
| गद्दीनशीनी ... | २५६ |
| सातलमेर का निर्माण ... | २६० |
| बीकानेर पर चढ़ाई ... | २६० |
| मुसलमानों से युद्ध और उसमें सातल का मारा जाना | २६१ |
| राणियां तथा सन्तति ... | २६३ |
| राव सूजा ... | २६४ |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी ... | २६४ |
| राव बीका की जोधपुर पर चढ़ाई ... | २६४ |
| धरसिंह को अजमेर की कैद से छुड़ाने के लिए सूजा का जाना | २६६ |
| नरा का मारा जाना तथा सूजा का खांवा आदि का दमन करना | २६७ |
| सींधलों को दबाना ... | २६८ |
| राव सूजा की मृत्यु ... | २६८ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| राणियां तथा संतति | २६६ |
| राव गांगा | २७० |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी | २७० |
| ईडर की लड़ाई और राव गांगा | २७२ |
| बाबर के साथ की लड़ाई में महाराणा सांगा की सहायतार्थ सेना भेजना | २७३ |
| मुंहता रायमल का मारा जाना और गांगा का सोजत पर अधिकार होना | २७४ |
| राव गांगा और शेखा की लड़ाई | २७७ |
| मेड़तियों से विरोध उत्पन्न होना | २७६ |
| राव गांगा की मृत्यु | २८० |
| विवाह तथा सन्तति | २८२ |

सातवां अध्याय

राव मालदेव और राव चन्द्रसेन

| | |
|---|-----|
| राव मालदेव | २८४ |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी | २८४ |
| भाद्राजूण पर अधिकार करना | २८५ |
| मालदेव का वीरमदेव को मेड़ते से निकालना और अजमेर पर भी अधिकार करना | २८५ |
| मुसलमानों से नागौर लेना | २८७ |
| सिवाणा को अधीन करना | २८७ |
| जालोर के सिकंदरखां को कैद करना | २८८ |
| महाराणा उदयसिंह और सोनगरों, राठोड़ों आदि की सहायता | २८८ |
| मालदेव का कुंभलमेर पर सेना भेजना | २९० |

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| बीकानेर पर चढ़ाई | २६२ |
| शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर बैठना ... | २६३ |
| हुमायूँ का मालदेव की तरफ़ से निराश होकर जाना | २६४ |
| मालदेव का हुमायूँ को अपनी सीमा से बाहर करना | २६७ |
| शेरशाह की मालदेव पर चढ़ाई | ३०० |
| शेरशाह का जोधपुर पर अधिकार करना ... | ३०८ |
| शेरशाह का देहान्त | ३०९ |
| मालदेव का जोधपुर पर पीछा अधिकार करना ... | ३१० |
| मालदेव का अपने पुत्र राम को राज्य से निर्वासित करना | ३१० |
| पोकरण और फलोथी पर सेना भेजना ... | ३११ |
| बाड़मेर और कोटड़ा पर अधिकार करना ... | ३१२ |
| जैसलमेर पर सेना भेजना | ३१२ |
| जालोर के पठानों और राठोड़ों की लड़ाइयाँ ... | ३१३ |
| जयमल के साथ की लड़ाई में मालदेव की पराजय | ३१४ |
| मालदेव की हाजीख़ां पर चढ़ाई | ३१७ |
| मालदेव का हाजीख़ां की सहायतार्थ जाना ... | ३१९ |
| जयमल का मेड़ता छोड़ना | ३२० |
| बादशाही सेना का जैतारण पर अधिकार करना ... | ३२१ |
| शाही सेना का मेड़ता पर अधिकार करना ... | ३२२ |
| मालदेव के बनवाये हुए स्थान | ३२५ |
| मालदेव की मृत्यु | ३२५ |
| राणियाँ तथा सन्तति | ३२६ |
| राव मालदेव का व्यक्तित्व | ३२६ |
| राव चन्द्रसेन | ३३२ |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी | ३३२ |
| सरदारों की चन्द्रसेन से अप्रसन्नता ... | ३३३ |

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| राम आदि का राज्य में बिगाड़ करना ... | ३३३ |
| चन्द्रसेन की उदयसिंह पर चढ़ाई ... | ३३४ |
| शाही सेना का जोधपुर पर कब्ज़ा करना ... | ३३४ |
| चन्द्रसेन का अकबर की सेवा में जाना ... | ३३७ |
| बादशाह की आज्ञानुसार उदयसिंह का समावली पर अधिकार करना ... | ३३८ |
| चन्द्रसेन का भाद्राजून छोड़ना ... | ३३८ |
| धीकानेर के रायसिंह की जोधपुर में नियुक्ति ... | ३३९ |
| मिर्ज़ा बन्धुओं के उपद्रव के दमन में राम का साथ रहना | ३४० |
| राव चन्द्रसेन और मादलिया भील ... | ३४१ |
| राव चन्द्रसेन पर शाही सेना की चढ़ाई ... | ३४२ |
| पोकरण पर भाटियों का अधिकार ... | ३४७ |
| चन्द्रसेन का डूंगरपुर, बांसवाड़ा तथा कोटड़ा में जाकर रहना | ३४७ |
| सरदारों का चन्द्रसेन को बुलाना ... | ३४८ |
| चन्द्रसेन का अजमेर के आस-पास उपद्रव करना | ३४९ |
| चन्द्रसेन की मृत्यु ... | ३४९ |
| राणियां तथा सन्तति ... | ३५० |
| राव चन्द्रसेन के पुत्रों का हाल ... | ३५१ |

आठवां अध्याय

राजा उदयसिंह से महाराजा गजसिंह तक

| | |
|--|-----|
| राजा उदयसिंह ... | ३५४ |
| उदयसिंह का जन्म तथा गद्दीनशीनी ... | ३५४ |
| उदयसिंह का पहले का वृत्तान्त ... | ३५४ |
| उदयसिंह का शाही सेना के साथ मुज़फ्फर पर जाना | ३५५ |

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| मीना हरराजिया को मारना | ३५७ |
| सैयद दौलत का दमन करने में उदयसिंह का शाही सेना के साथ रहना | ३५७ |
| उदयसिंह के पुत्रों का सिंधलों पर जाना तथा चारणों आदि का आत्महत्या करना | ३५८ |
| उदयसिंह की पुत्री का शाहजादे सलीम के साथ विवाह होना | ३५८ |
| उदयसिंह का सिरोंही पर भेजा जाना | ३५९ |
| कल्ला का मारा जाना | ३६० |
| लाहोर के प्रबन्ध के लिए उदयसिंह की नियुक्ति | ३६१ |
| उदयसिंह का फिर सिरोंही पर भेजा जाना | ३६१ |
| उदयसिंह का स्वर्गवास | ३६१ |
| राणियां तथा सन्तति | ३६२ |
| महाराजा सूरसिंह | ३६४ |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी | ३६४ |
| अहमदाबाद में नियुक्ति | ३६४ |
| विद्रोही बहादुर को भगाना | ३६५ |
| बीकानेरवालों-द्वारा राजकीय ऊंट लिये जाने पर लड़ाई होना | ३६५ |
| जैसलमेर की सेना का मारवाड़ में आना | ३६६ |
| बादशाह की नाराज़गी | ३६६ |
| नासिक फ़तह करना | ३६७ |
| खुदाबन्दख़ां हथशी का दमन करना | ३६७ |
| अमर चंपू पर शाही सेना के साथ जाना | ३६८ |
| सूरसिंह का जोधपुर जाना | ३६९ |
| अकबर की मृत्यु और जहांगीर की गद्दीनशीनी | ३७० |
| सूरसिंह की गुजरात में नियुक्ति | ३७० |
| सूरसिंह का बादशाह के पास जाना | ३७१ |

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| सूरसिंह के मनसब में वृद्धि और दक्षिण में नियुक्ति | ३७१ |
| महाबतख़ां का सोजत लेना तथा उसका पीछा मिलना | ३७२ |
| गोविन्ददास की कुंवर कर्णसिंह से लड़ाई ... | ३७२ |
| सूरसिंह का शाहज़ादे खुर्रम को हाथी देना ... | ३७३ |
| सिरोही के सूरसिंह से लिखा-पढ़ी ... | ३७३ |
| भाटी सुरताण के बैर में गोपालदास का मारा जाना | ३७४ |
| सूरसिंह का खुर्रम के साथ माहाराणा पर जाना ... | ३७५ |
| सूरसिंह को फलोधी मिलना ... | ३७६ |
| महाराणा के साथ सन्धि होना ... | ३७६ |
| सूरसिंह के मनसब में वृद्धि ... | ३७६ |
| सूरसिंह के भाई किशनसिंह का मारा जाना ... | ३७६ |
| सूरसिंह का दक्षिण भेजा जाना ... | ३८२ |
| सूरसिंह का छुट्टी लेकर स्वदेश जाना ... | ३८२ |
| सूरसिंह के मनसब में वृद्धि और उसका दक्षिण जाना | ३८२ |
| मनोहरदास को पीसांगण देना ... | ३८२ |
| कुंवर गजसिंह को जालोर मिलना ... | ३८२ |
| दक्षिणियों के साथ लड़ाई ... | ३८५ |
| सूरसिंह की मृत्यु ... | ३८६ |
| राणियां तथा संतति ... | ३८६ |
| सूरसिंह की दानशीलता तथा उसके बनवाये हुए महल आदि | ३८७ |
| सूरसिंह का व्यक्तित्व ... | ३८७ |
| महाराजा गजसिंह ... | ३८८ |
| जन्म तथा गद्दीनशीनी ... | ३८८ |
| बादशाह की तरफ़ से मिले हुए परगने ... | ३८९ |
| दक्षिणियों के साथ लड़ाइयां ... | ३८९ |
| गजसिंह का जोधपुर जाना ... | ३९० |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| गजसिंह का बारी खुर्रम पर भेजा जाना ... | ३६१ |
| गजसिंह का दक्षिण में रहना ... | ३६४ |
| गजसिंह के कुंवर अमरसिंह को मनसब और जागीर मिलना | ३६५ |
| जहांगीर की मृत्यु और शाहजहां की गद्दीनशीनी | ३६६ |
| गजसिंह का शाहजहां की सेवा में उपस्थित होना | ३६७ |
| आगरे के पास के लुटेरे भोमियों पर सेना भेजना | ३६८ |
| सामोद के रामसिंह की सहायता करना ... | ३६९ |
| गजसिंह का खानजहां पर भेजा जाना ... | ४०० |
| सिक्खों आदि की दिल्ली पर चढ़ाई ... | ४०१ |
| शाही सेना के साथ बीजापुर पर जाना ... | ४०२ |
| छोटे पुत्र जसवंतसिंह को उत्तराधिकारी नियत करना | ४०३ |
| बलोचों की फलोधी पर चढ़ाई ... | ४०५ |
| जसवन्तसिंह का विवाह ... | ४०५ |
| गजसिंह का जसवन्तसिंह के साथ बादशाह के पास जाना | ४०५ |
| कन्धार की लड़ाई में गजसिंह का अपने पुत्र अमरसिंह के साथ शामिल रहना ... | ४०६ |
| गजसिंह की बीमारी और मृत्यु ... | ४०७ |
| राणियां तथा सन्तति ... | ४०७ |
| महाराजा तथा उसकी राणियों के बनवाये हुए स्थान आदि | ४०८ |
| महाराजा के समय के शिलालेख ... | ४०८ |
| महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह तथा उसके वंशज | ४०९ |
| महाराजा गजसिंह का व्यक्तित्व ... | ४११ |

नवां अध्याय

महाराजा जसवन्तसिंह

| विषय | पृष्ठांक |
|---|----------|
| महाराजा जसवन्तसिंह | ४१३ |
| जन्म तथा जोधपुर का राज्य मिलना ... | ४१३ |
| राजसिंह का मंत्री बनाया जाना ... | ४१४ |
| जसवन्तसिंह का बादशाह के साथ दिल्ली जाना ... | ४१४ |
| महेशदास को मनसब मिलना ... | ४१५ |
| जसवन्तसिंह के मनसब में वृद्धि ... | ४१५ |
| जसवन्तसिंह का बादशाह के साथ जमुर्द की तरफ जाना | ४१५ |
| जोधपुर में सिंहासनारूढ़ होना ... | ४१६ |
| राजसिंह की मृत्यु पर महेशदास का मंत्री बनाया जाना | ४१६ |
| जसवन्तसिंह के मनसब में पुनः वृद्धि ... | ४१६ |
| ईरान के शाह पर बादशाही सेना के साथ जाना | ४१६ |
| जसवन्तसिंह को स्वदेश जाने की छुट्टी मिलना ... | ४१७ |
| राड़दड़ा पर मुंहणोत नैणसी का भेजा जाना ... | ४१८ |
| जसवन्तसिंह का अजमेर में बादशाह के पास जाना | ४१८ |
| जसवन्तसिंह को आगरे की सूबेदारी मिलना ... | ४१८ |
| जसवन्तसिंह का लाहोर जाना ... | ४१९ |
| मुंहणोत नैणसी का रावत नारायण पर भेजा जाना | ४२० |
| जसवन्तसिंह का शाही सेना के साथ कंधार जाना | ४२० |
| जसवन्तसिंह का पोकरण पर अधिकार करना | ४२१ |
| सबलसिंह को जैसलमेर की गद्दी दिलाना ... | ४२४ |
| जसवन्तसिंह के मनसब में वृद्धि ... | ४२४ |
| सिंधलों पर सेना भेजना ... | ४२४ |
| बादशाह की बीमारी ... | ४२४ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| शाह शुजा की बयावत | ४२६ |
| औरंगज़ेब और मुरादबख्श की बयावत | ४२७ |
| जसवन्तसिंह की पराजय | ४२८ |
| जसवन्तसिंह का जोधपुर जाना | ४३४ |
| औरंगज़ेब का दारा को हाराना | ४३६ |
| पिता को नज़र-क़ैद कर औरंगज़ेब का गद्दी बैठना | ४३८ |
| जसवन्तसिंह का औरंगज़ेब की सेवा में जाना ... | ४३९ |
| शाह शुजा के साथ की लड़ाई से जसवन्तसिंह का स्वदेश लौटना | ४४१ |
| जसवन्तसिंह पर शाही सेना की चढ़ाई | ४४४ |
| महाराजा का जोधपुर लौटना | ४४५ |
| जसवन्तसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना ... | ४४८ |
| जैसलमेर के रावल पर सेना भेजना | ४४९ |
| दाराशिकोह और उसके पुत्र का पकड़ा जाना ... | ४४९ |
| जसवंतसिंह की भूमियों पर चढ़ाई | ४५० |
| जसवंतसिंह का गुजरात से हटाया जाना | ४५० |
| शाहस्ताख़ां के साथ की शिवाजी की लड़ाई और जसवंतसिंह | ४५१ |
| जसवन्तसिंह की मरहटों के साथ लड़ाई | ४५४ |
| जसवन्तसिंह का दक्षिण से हटाया जाना | ४५५ |
| शिवाजी का बादशाह की क़ैद से निकलना | ४५६ |
| कुंवर पृथ्वीसिंह का बादशाह की सेवा में जाना ... | ४५७ |
| शाहजहां की मृत्यु | ४५७ |
| कुंवर पृथ्वीसिंह का विवाह | ४५८ |
| जसवंतसिंह का ईरान पर भेजा जाना | ४५८ |
| जसवंतसिंह आदि के पास लाहौर में ठहरने का बादशाह का आदेश पहुंचना | ४५८ |

| विषय | पृष्ठांक |
|--|----------|
| जसवन्तसिंह की दक्षिण में नियुक्ति ... | ४५६ |
| कुंवर पृथ्वीसिंह की मृत्यु ... | ४५६ |
| जसवन्तसिंह के उद्योग से मरहटों और मुरालों में संधि होना ... | ४६० |
| गुजरात के परगने मिलना ... | ४६१ |
| मुंहणोत नैणसी का कैद किया जाना ... | ४६२ |
| मुंहणोत नैणसी का कैद से छोड़ा जाना ... | ४६२ |
| श्रीनाथजी की मूर्ति लेकर गुसाईजी का जोधपुर और फिर मेवाड़ में जाना ... | ४६३ |
| मुंहणोत नैणसी तथा उसके भाई का आत्मघात कर मरना | ४६३ |
| जसवन्तसिंह को दूसरी बार गुजरात की सूबेदारी मिलना | ४६४ |
| महाराजा का जाम तमाची को जामनगर का राज्य दिलाना | ४६४ |
| काबुल जाने का फ़रमान पहुंचना ... | ४६६ |
| महाराजा का काबुल जाना ... | ४६७ |
| महाराजा की मृत्यु ... | ४६७ |
| राणियां तथा सन्तति ... | ४६८ |
| महाराजा के समय के शिलालेख ... | ४६६ |
| महाराजा के समय के बने हुए स्थान ! ... | ४७० |
| महाराजा की दानशीलता और विद्यानुराग ... | ४७० |
| महाराजा का व्यक्तित्व ... | ४७२ |

चित्र-सूची

| | |
|--|----------------------|
| (१) महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) | समर्पण पत्र के सामने |
| (२) कायलाणा भील | ... पृष्ठसंख्या ५ |
| (३) जोधपुर का दुर्ग | ... २१ |
| (४) महामंदिर | ... २४ |
| (५) महाराजा जसवंतसिंह (दूसरे) का थड़ा (स्मारक) | ” |
| (६) महाराजा अजीतसिंह का स्मारक, मंडोवर | ... २५ |
| (७) राव मालदेव | ... २८४ |
| (८) महाराजा गजसिंह | ... ३८८ |

महामहोपाध्याय रायबहादुर डा० गौरीशंकर हीराचंद

ओझा, डी० लिट्०-रचित तथा संपादित ग्रन्थ

| स्वतन्त्र रचनाएं— | | मूल्य |
|--|-----|----------|
| (१) प्राचीन लिपिमाला (प्रथम संस्करण) | ... | अप्राप्य |
| (२) भारतीय प्राचीन लिपिमाला (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण) | ... | अप्राप्य |
| (३) सोलंकियों का प्राचीन इतिहास—प्रथम भाग | ... | अप्राप्य |
| (४) सिरौही राज्य का इतिहास | ... | अप्राप्य |
| (५) बापा रावल का सोने का सिक्का | ... | ॥) |
| (६) वीरशिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह | ... | ॥=) |
| (७) * मध्यकालीन भारतीय संस्कृति | ... | रु० ३) |
| (८) राजपूताने का इतिहास—पहली जिल्द (द्वितीय संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण) | ... | रु० ७) |
| (९) राजपूताने का इतिहास—दूसरी जिल्द, उदयपुर राज्य का इतिहास—पहला खंड | ... | अप्राप्य |
| उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरा खंड | ... | रु० ११) |
| (१०) राजपूताने का इतिहास—तीसरी जिल्द, पहला भाग—डूंगरपुर राज्य का इतिहास | ... | रु० ४) |
| दूसरा भाग—बांसवाड़ा राज्य का इतिहास | ... | रु० ४॥) |
| तीसरा भाग—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास | ... | यंत्रस्थ |
| (११) राजपूताने का इतिहास—चौथी जिल्द, जोधपुर राज्य का इतिहास—प्रथम खण्ड | ... | रु० ८) |
| जोधपुर राज्य का इतिहास—द्वितीय खण्ड | ... | यंत्रस्थ |
| (१२) राजपूताने का इतिहास—पांचवीं जिल्द, बीकानेर राज्य का इतिहास—प्रथम खंड | ... | यंत्रस्थ |
| बीकानेर राज्य का इतिहास—द्वितीय खंड | ... | यंत्रस्थ |

* प्रयाग की “हिन्दुस्तानी एकेडेमी”—द्वारा प्रकाशित । इसका उर्दू अनुवाद भी उक्त संस्था ने प्रकाशित किया है । “गुजरात वर्माक्यूलर सोसाइटी” (अहमदाबाद) ने भी इस पुस्तक का गुजराती अनुवाद प्रकाशित किया है, जो वहां से १) रु० में मिलता है ।

| | मूल्य |
|--|----------|
| (१३) राजपूताने का इतिहास—दूसरा खंड ... | अप्राप्य |
| (१४) राजपूताने का इतिहास—तीसरा खंड ... | रु० ६) |
| (१५) राजपूताने का इतिहास—चौथा खंड ... | रु० ६) |
| (१६) भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की सामग्री ... | ॥) |
| (१७) ‡ कर्नल जेम्स टॉड का जीवनचरित्र ... | १) |
| (१८) ‡ राजस्थान-ऐतिहासिक-दन्तकथा—प्रथम भाग (‘एक राजस्थान निवासी’ नाम से प्रकाशित) ... | अप्राप्य |
| (१९) × नागरी अंक और अक्षर ... | अप्राप्य |

सम्पादित

| | |
|--|----------|
| (२०) * अशोक की धर्मलिपियां—पहला खंड (प्रधान शिलाभिलेख) ... | रु० ३) |
| (२१) * सुलेमान सौदागर ... | ” १।) |
| (२२) * प्राचीन मुद्रा ... | ” ३) |
| (२३) * नागरीप्रचारिणी पत्रिका (त्रैमासिक) नवीन संस्करण, भाग १ से १२ तक—प्रत्येक भाग ... | ” १०) |
| (२४) * कोशोत्सव स्मारक संग्रह ... | ” ३) |
| (२५-२६) ‡ हिन्दी टॉड राजस्थान—पहला और दूसरा खंड (इनमें विस्तृत सम्पादकीय टिप्पणियों-द्वारा टॉड-कृत ‘राजस्थान’ की अनेक ऐतिहासिक त्रुटियां शुद्ध की गई हैं) ... | रु० ४) |
| (२७) जयानक-प्रणीत ‘पृथ्वीराज-विजय-महाकाव्य’ सटीक ... | यंत्रस्थ |
| (२८) जयसोम-रचित ‘कर्मचंद्रवंशोत्कीर्ननकं काव्यम्’ ... | यंत्रस्थ |
| (२९) मुंदरगोत नैणसी की ख्यात—दूसरा भाग ... | रु० ४) |
| (३०) गद्य-रत्न-माला—संकलन ... | रु० १।) |
| (३१) पद्य-रत्न-माला—संकलन ... | रु० ॥।) |

‡ खड्गविलास प्रेस, बांकीपुर-द्वारा प्रकाशित ।

× हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग-द्वारा प्रकाशित ।

* काशी नागरीप्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित ।



ग्रन्थकर्ता-द्वारा रचित पुस्तकें ‘व्यास पण्डित सन्स’, बुकसेलर्स, अजमेर के यहां भी मिलती हैं ।

राजपूताने का इतिहास

चौथी जिल्द, पहला भाग

जोधपुर राज्य का इतिहास

प्रथम खण्ड

पहला अध्याय

भूगोल सम्बन्धी वर्णन

संस्कृत शिलालेखों, पुस्तकों आदि में जोधपुर राज्य का नाम 'मरु'

(१) समानौ मरुधन्वानौ

अमरकोश; काण्ड २, भूमिवर्ग, श्लोक ५ ।

'मरु' का अर्थ मरना और रेगिस्तान है अर्थात् जहां यात्री जल बिना मर जाते हैं, उसे मरुदेश कहते हैं ।

भागवत में 'मरुधन्व' नाम दिया है, जिसका अर्थ मरु नाम का रेगिस्तान है—

ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥

मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ।.....॥ ३५ ॥

प्रथम स्कन्ध, अध्याय १० ।

मरुस्थल^१, मरुस्थली^२, मरुमेदिनी^३, मरुमंडल^४, मारव^५, मरुदेश^६ और
 नाम मरुकांतार^७ मिलते हैं, जिनका अर्थ रेगिस्तान या निर्जल
 देश होता है और भाषा में उसको मारवाड़ और मुरधर^८

(१) तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततोनाधिकम्

भर्तृहरि; नीतिशतक, श्लोक ४६ ।

आयाते दयिते मरुस्थलभुवामुद्रीदय दुर्लघ्यताम् । ... ॥ २०७५ ॥

वल्लभदेवः सुभाषितावलि, पृ० ३५६ ।

(२) मरुस्थल्यां यथावृष्टिः

हितोपदेश; मित्रलाभ श्लो० ११ ।

राष्ट्रवर्धननाथमंडलीमौलिमंडनमणिर्मरुस्थली (म्) । ... ॥ ४ ॥

घोसुंडी का शिलालेख;

जर्नेल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जिल्द १६, भाग १,
 संख्या २, पृ० ८० ।

(३) वितीर्य कन्या विधिवन्तुतोष यो यात्प्रयागे मरुमेदिनी पतिः ॥६॥

वही; पृ० ८० ।

(४) अथ मरुमण्डले पत्नीग्रामे काकूपाताकौ आतरौ निवसतः ।

मेरुतुंग; प्रबंधचिंतामणि; पृ० २७५ ।

(५) ... उच्चायां चैव भस्मेर्या मारवे मालवे तथा ।

वही; पृ० २४३ ।

(६) श्रीसोमसिंहोदयसिंहधारावर्षैरमीभिर्मरुदेशनाथैः ।

जयसिंहसूरि; हम्मीरमदमर्दन, पृ० ११ ।

(७) तेन तन्मरुकांतारं पृथिव्यां किल विश्रुतम् । ... ॥

वाल्मीकीय रामायण; युद्धकाण्ड, सर्ग २२ ।

‘मरु’ और ‘मरुकांतार’ शब्द राजपूताना के सारे रेगिस्तान के लिए भी प्रयुक्त होते हैं ।

(८) माणस मुरधरिया माणक सम मूंगा..... ॥

कवि उमरदान; उमरकाव्य, पृ० ३२२ ।

मुरधरिया=मुरधर (मरुधरा, मारवाड़) के रहनेवाले । मूंगा=बहुमूल्य, महंगा ।

(मरुधरा) कहते हैं । जब से जोधपुर नगर बसा तब से वह जोधपुर राज्य के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ ।

मारवाड़ नाम वैसा ही है, जैसा कि काठियावाड़, गोहिलवाड़, भालावाड़ आदि । इन शब्दों में 'वाड़' का अर्थ 'रक्षक' है, अतएव मारवाड़ (मरुवाड़) का अर्थ 'रेगिस्तान से रक्षित देश' है ।

प्राचीनकाल में जोधपुर राज्य के केवल पश्चिमी रेगिस्तान का ही मरुभूमि में समावेश होता था । राज्य के उत्तरी हिस्से की गणना जांगल देश में होती थी, जिसकी राजधानी 'अहिच्छत्रपुर' (नागौर) थी । पीछे से भीनमाल आदि प्रदेश पर जब गुर्जरों का राज्य हुआ, तब से इस राज्य का सारा पूर्वी हिस्सा 'गुर्जरवा' (गुजरात) कहलाने लगा । रघुवंशी प्रतिहारों के राज्य-समय तक वह इसी नाम से प्रसिद्ध रहा । फिर चौहानों के समय नागौर, सांभर आदि प्रदेश 'सपादलक्ष' नाम से प्रसिद्ध हुए । उनके राज्य का प्रताप बहुत बढ़ने पर उनके अधीन का सारा प्रदेश 'सपादलक्ष' कहलाने लगा ।

राजपूताने के सारे रेगिस्तान में पहले समुद्र लहराता था, परन्तु भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से भूमि ऊंची हो जाने से समुद्र का जल दक्षिण की ओर हट गया और उसके स्थान में रेतें का पुंज मात्र रह गया । रेगिस्तान से शंख, सीप, कौड़ी आदि के पाषाण में परिवर्तित रूप (Fossils) मिलते हैं, जो वहां पर पहले समुद्र का होना सूचित करते हैं^१ ।

जोधपुर राज्य राजपूताने के दक्षिण पश्चिम में $28^{\circ} 25'$ और $29^{\circ} 42'$

(१) रेगिस्तान, पहाड़, सघन वन, नदी और वीर पुरुषों की भुजाएं ये सब देशों के रक्षक माने जाते हैं, क्योंकि इनके कारण शत्रु उनमें आसानी से प्रवेश नहीं कर सकता—

देशांस्तान्धन्वशैलद्रुमसं (ग) हनसरिद्वीरबाहूपगूढान्... ।

डॉ० फ़्रीट; गुप्त इन्सक्रिप्शन्स; पृ० १४६ ।

(२) रामायण से पाया जाता है कि दक्षिण सागर ने जब सेतु बंधवाना स्वीकार किया तब रामचंद्र ने उसको भयभीत करने के लिए सींका हुआ अपना अमोघ बाण इधर फेंका, जिससे यहां समुद्र के स्थान में 'मरुकांतर' हो गया—

उत्तर अक्षांश तथा $70^{\circ} 25'$ और $75^{\circ} 22'$ पूर्व देशांतर के बीच फैला हुआ है। इसकी अधिक से अधिक लंबाई ३२० मील और चौड़ाई १७० मील है। इसका क्षेत्रफल ३५०१६ वर्गमील है।

जोधपुर राज्य के उत्तर में बीकानेर, उत्तर-पश्चिम में जैसलमेर, पश्चिम में सिंध का थर और पारकर जिला, दक्षिण-पश्चिम में कच्छ का रण, दक्षिण में पालनपुर और सिरोही, दक्षिण-पूर्व में उदयपुर, पूर्व में अजमेर-मेरवाड़ा तथा किशनगढ़ और उत्तर-पूर्व में जयपुर राज्य हैं।

जोधपुर राज्य में अर्बली (आढ़ावळा) पर्वत की श्रेणियां सांभर झील के पास से प्रारंभ होकर दक्षिण-पूर्व में उदयपुर और सिरोही राज्यों की सीमा तक चली गई हैं। इन श्रेणियों के अतिरिक्त और भी कई पहाड़ियां हैं, जिनमें मुख्य जसवंतपुरा जिले की सूधा की पहाड़ी (ऊंचाई ३२५७ फुट), सिवाना के पास छप्पन की पहाड़ी (३१६६ फुट) और जालोर के पास सोनगढ़ (सोनलगढ़, रोजा की पहाड़ी, २४०८ फुट) हैं। सब से ऊंची पहाड़ी, जिसकी ऊंचाई ३६०७ फुट है, नाणा स्टेशन से करीब १३ मील पूर्व में है।

जोधपुर राज्य में साल्भर बहनेवाली एक भी नदी नहीं है। वहां की मुख्य नदी लूणी है, जो अजमेर के दक्षिण-पश्चिम की पहाड़ियों से निकलती है, जहां उसे सागरमती कहते हैं। गोविंदगढ़ के पास सरसती (सरस्वती) नदी, जो

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सगरस्य महात्मनः ।

मुमोच तं शरं दीप्तं परं सागरदर्शनात् ॥ ३२ ॥

तेन तन्मरुकांतरं पृथिव्यां किल विश्रुतम् ।

निपातितः शरो यत्र वज्राशनिसमप्रभः ॥ ३३ ॥

वाल्मीकीय 'रामायण'; युद्धकांड, सर्ग २२ ।

राजपूताने का इतिहास



कायलाणे की भील

पुष्कर से निकलती है, उससे मिल जाती है। वहां से आगे वह लूणी कहलाती है और जोधपुर राज्य में प्रवेश करती है। वह पश्चिम तथा दक्षिण पश्चिम में बहती हुई कच्छ केरण में जा गिरती है। जोधपुर राज्य में उसका बहाव २०० मील है। अजमेर से लगाकर आवू तक की पहाड़ियों के पश्चिमी ढाल का पानी उसमें मिलता है। वह उष्णकाल में सूख जाती है। बालोतरे तक उसका जल मीठा रहता है और वहां से आगे खारा होता जाता है। उसके जल को खेती के काम में लाने के लिए बीलाड़ा के पास एक बांध बांधकर जसवंतसागर नाम का बड़ा तालाब बनाया गया है, जिसके भर जाने पर २०००० एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई हो सकती है। वहां से आगे बढ़ने पर जोजरी, बांड़ी, सूकड़ी, खारी और जवाई आदि बरसाती नदियां उसमें मिलती हैं।

सांभर, डीडवाना और पचपट्टा की प्राकृतिक भीलें खारे पानी की हैं, जहां नमक बनता है। सांभर की भील उन सब में बड़ी है। पूरी भर जाने

भीलें

पर उसकी अधिक से अधिक लंबाई २० मील और चौड़ाई २ से ७ मील तक हो जाती है। उस समय उसका क्षेत्रफल ६० वर्ग मील होता है। उक्त भील पर जयपुर और जोधपुर दोनों राज्यों का अधिकार है। ई० स० १८७० से अंग्रेज सरकार ने नमक बनाने के लिए दोनों राज्यों से उसे ठेके पर ले लिया है, जिसके एवज में जोधपुर राज्य को $४\frac{1}{2}$ लाख रुपये और जयपुर राज्य को $२\frac{1}{2}$ लाख रुपये सालाना मिलते हैं। इसी तरह जोधपुर राज्य ने डीडवाना और पचपट्टा की भीलों को भी नमक बनाने के लिए अंग्रेज सरकार को ठेके पर दे रखा है। मीठे पानी की कृत्रिम भीतों में जसवंतसागर (बीलाड़ा परगना), सरदारसमंद (पाली परगना), एडवर्डसमंद (नालोरे परगना), बालसमंद और कायलाणा (जोधपुर के निकट) प्रधान हैं। उनमें जसवंतसागर सब से बड़ी भील है, जिसको महाराजा जसवंतसिंह (दूसरा) ने बनवाया था। इनके अतिरिक्त चोपड़ा, जोगरवास, खारड़ा और सादड़ी के पास भी तालाब हैं, जिनके जल से खेती होती है। इनके सिवाय कई एक छोटे-छोटे तालाब भी हैं।

जलवायु के सम्बन्ध में यह राज्य स्वास्थ्यप्रद समझा जाता है। यहां उष्णकाल में गर्मी बहुत पड़ती है। अप्रैल, मई और जून महीनों में 'लू' चलती है और आगियां आती हैं। कभी-कभी अधिक 'लू' चलने से कहीं कुछ लोग मर भी जाते हैं। राज्य के पूर्वी विभाग की अपेक्षा उत्तरी और पश्चिमी विभाग में, जहां रेता अधिक है, गर्मी विशेष पड़ती है। जब कभी बहुत गर्मी पड़ती है तो कहीं-कहीं वह १२३° से अधिक पहुँच जाती है। रेता जल्दी ठंडा हो जाता है, जिससे रात में ठंडक रहती है।

जलवायु

शीतकाल में ठंड बहुत पड़ती है और कभी-कभी वह लगभग २४° तक पहुँच जाती है। रेतीले प्रदेश में रेत के जल्दी ठंडे हो जाने के कारण सर्दियों की अधिकता रहती है।

सामान्यतया इस राज्य में वर्षा कम होती है, परन्तु पश्चिमी और उत्तरी हिस्से की अपेक्षा दक्षिण-पूर्वी और दक्षिणी हिस्से में, जहां पर्वत श्रेणियां तथा जंगल आ गये हैं, वर्षा अधिक होती है। शहर जोधपुर की वर्षा की सालाना औसत १३ इंच के करीब है। ई० स० १८६३ में वहां करीब ३० इंच वर्षा हुई थी; ई० स० १८६६ में केवल एक ही इंच हुई। ई० स० १८८१ के अगस्त महीने में वहां एक दिन में १० इंच वृष्टि हुई। राज्य के अलग-अलग विभागों में वृष्टि की औसत अलग-अलग है। शिव आदि पश्चिमी परगनों की ७ इंच से भी कम; बाली, जसवंतपुरा आदि परगनों की १८ इंच से अधिक और सांभर की २० इंच तक की औसत है। कभी-कभी इस राज्य में अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि भी हो जाती है। ई० स० १८६३ में सांचोर में ५५½ इंच से भी अधिक वर्षा हुई। ई० स० १८६६ में शिव आदि परगनों में केवल १४ सेंट ही वर्षा हुई। पहले राजधानी में जल का कष्ट अधिक होने से लोग अपने मकानों का जल एकत्र करने के लिए घरों में टांके बनवाते थे, किन्तु आजकल वहां जल का वैसा कष्ट नहीं रहा।

वर्षा

जोधपुर राज्य में भूमि दो प्रकार की है। एक तो वह जिसमें खरीफ़

(सियालू) और रबी (उन्हालू) दोनों फ़सलें होती हैं, और दूसरा रेतीला मैदान, जिसमें एक ही फ़सल (खरीफ़) होती है ।

जमीन और पैदावार

राज्य के पूर्वी, दक्षिणी और कुछ दक्षिण-पश्चिमी भागों अर्थात् सांभर, परबतसर, मेड़ता, बीलाड़ा, कुछ हिस्सा जोधपुर (परगना), जैतारण, सोजत, पाली, देसूरी, वाली, जालोर और जसवंतपुरा में दोनों फ़सलें होती हैं । इन परगनों में रबी की फ़सल अधिकतर कुओं या तालाबों के जल से होती है । उत्तरी, पश्चिमी और कुछ दक्षिणी हिस्सों अर्थात् डीडवाना, नागोर, फलोदी, कुछ हिस्सा जोधपुर (परगना), शेरगढ़, पंचपट्टा, सिवाना, शिव, मालानी और सांचोर परगनों में केवल खरीफ़ की फ़सल होती है, जो चोमासे की वृष्टि पर निर्भर है ।

खरीफ़ की फ़सल की पैदावार बाजरा, जवार, मक्का, मोठ, मूंग, तिल, रुई और सन हैं । इनमें बाजरा सबसे अधिक पैदा होता है, जवार और मोठ इससे कम होते हैं, शेष वस्तुएं बहुत कम । रबी (उन्हालू) की फ़सल में गेहूं, जौ, चना, सरसों, अलसी और राई पैदा होती हैं । जहां कुओं अथवा तालाबों से जल पहुंचाने की सुविधा होती है वहीं इनकी खेती की जाती है । कहीं-कहीं गन्ने की खेती भी होती है । कुओं से जल रहूँट या चड़स के द्वारा निकालकर खेतों में पहुंचाया जाता है ।

फलों में मतीरा, खरबूजा, ककड़ी, सिंघाड़ा, अमरुद, आम, नारंगी, केला, बेर और अनार तथा शाकों में गोभी, लहसुन, प्याज़, आलू, मूली,

शकरकंद, शलजम, गाजर, मेथी और बैंगन आदि फल होते हैं ।

जोधपुर राज्य में विशेषकर अर्बली के पश्चिमी ढाल की ओर के वाली, देसूरी, परबतसर, सोजत और सिवाना के परगनों में जंगल हैं ।

जंगल उनमें सालर, गूलर, कड़ाया, धौ, ढाक आदि वृक्ष होते हैं । ढाल के नीचे के हिस्सों में ढाक (पलाश),

बेर, खेर, धामण और धौ के वृक्ष होते हैं । धौ और खेर की लकड़ी इमारतों के काम में आती है । बबूल प्रायः मैदानों में होता है । नीम बहुधा

बस्तियों के पास होते हैं। जंगल की पैदावार में इमारती लकड़ी, जलाने की लकड़ी, बांस, घास, शहद, मोम, गोंद आदि हैं। जंगल का कुछ भाग इमारती लकड़ी और घास के लिए राज्य की तरफ से सुरक्षित है तो भी अकाल के दिनों में वहां पर पशुओं को चराने तथा वहां से गरीबों को लकड़ी व घास लाने की आज्ञा मिल जाती है।

पालतू पशुओं में ऊंट, गाय, भैंस, घोड़ा, गधा, भेड़ और बकरी हैं। घोड़े और ऊंट सवारी के काम में आते हैं। इस प्रान्त में ऊंट बहुत

जंगली जानवर और
पशु-पक्षी

उपयोगी जानवर है। वह 'रेगिस्तान का जहाज़' कहलाता है। सवारी के अतिरिक्त उससे पानी, लकड़ी तथा पत्थर आदि बोझ लाने और खेतों में हल जोतने का काम भी लिया जाता है। जंगली जानवरों में बाघ, चीता, रीछ, सूअर, भेड़िया, लकड़बग्घा (जरख), नीलगाय, हिरन, चीतल और खरगोश अर्बली पर्वत के जंगलों में पाये जाते हैं। गांवां के पास मोर, कबूतर और तोते बहुत होते हैं। मोर, कबूतर और बंदरों को मारने की राज्य की ओर से मनाही है। जंगली पक्षियों में कई प्रकार के तीतर, बटेर और मुर्ग होते हैं। जलाशयों के पास बगुले, सारस, बतक, आड़, जलमुर्गाबियां आदि मिलते हैं। मछलियां, कछुए और मगर (घड़ियाल) झीलों में पाये जाते हैं।

जालोर और सोजत की खानों से पहले जस्ता और तांबा निकाला जाता था, परन्तु बाहर से आनेवाली ये धातुएं सस्ती मिलने के कारण

खानें बहुत वर्षों से ये खानें बंद हैं। ऐसा कहते हैं कि जालोर और पाली के पास के पहाड़ों में सोना है।

सांभर, डीडवाना और पचपद्रा की झीलों में नमक पैदा होता है। सब से बढ़िया संगमरमर मकराणे में निकलता है। इसी पत्थर से आगरे का ताज-महल, अजमेर के आनासागर पर की बारादरियां, दिल्ली का दीवाने खास और कलकत्ते का विक्टोरिया-स्मारक-भवन (Victoria Memorial) आदि कई सुन्दर इमारतें बनी हैं। इस पत्थर के टुकड़ों से बना हुआ चूना सफ़ेदी के लिए सर्वोत्तम समझा जाता है। मकान की छतों के लिए काम

में आनेवाली पत्थर की लंबी-लंबी पट्टियां जोधपुर, खाटू आदि में निकलती हैं। मकानों की चुनाई के काम का पत्थर जोधपुर, पचपद्रा, सोजत, पाली, खाटू, मेड़ता, नागोर आदि में पाया जाता है। कड़ी (जो इमारती पत्थरों को चिपकाने में सीमेंट का काम देती है) नागोर, फलोदी और बाड़मेर परगनों में निकलती है। मुलतानी मिट्टी, जिसे राजपूताना में 'मेट' कहते हैं और जो बाल धोने तथा बढ़िया बर्तन बनाने आदि के काम में आती है, फलोदी और बाड़मेर के जिलों में पाई जाती है। वह बाहर भी बहुत जाती है।

जोधपुर राज्य में प्रसिद्ध किले नागोर, जालोर, सिवाना और
जोधपुर हैं। इनके अतिरिक्त छोटे-बड़े कई गढ़
किने और भी हैं।

इस राज्य में बी० बी० पेंड सी० आई० रेल्वे (प्राचीन नाम
राजपूताना मालवा रेल्वे) और जोधपुर स्टेट रेल्वे दोनों हैं। बी० बी० पेंड
सी० आई० रेल्वे सरकारी है और दूसरी राज्य की।

रेल्वे दिल्ली से अहमदाबाद जानेवाली बी० बी० पेंड सी०
आई० रेल्वे बर स्टेशन से इस राज्य में प्रवेश करती है और नाणा स्टेशन
से कुछ आगे इस राज्य से अलग होती है। उक्त राज्य में इसकी लंबाई
लगभग १०४ मील के करीब है। सांभर भील से नमक लाने के लिए फुलेरा
जंक्शन से कुचामन रोड तक बी० बी० पेंड सी० आई० रेल्वे की एक
छोटी शाखा और बनी है, जिसकी लम्बाई २० मील है, जहां से आगे जोधपुर
राज्य की रेल्वे आरंभ होती है। जोधपुर राज्य की रेल्वे की लंबी लाइन
मारवाड़ जंक्शन से पाली, लूणी जंक्शन, समदड़ी, बालोतरा और बाड़मेर
होती हुई सिंध में प्रवेशकर छोर और मीरपुर खास होती हुई सिंध हैदरा-
बाद से जा मिलती है। राज्य की सीमा मुनाबास स्टेशन पर ही समाप्त हो
जाती है। इसी लाइन में समदड़ी से दक्षिण की ओर एक शाखा जालोर
और भीनमाल होती हुई राणीवाड़ा तक चली गई है, जहां से थोड़ी दूर पर
जोधपुर राज्य की सीमा समाप्त हो जाती है। बालोतरा से एक छोटी शाखा

उत्तर की ओर पंचपट्टा तक चली गई है। एक लंबी शाखा लृणी जंक्शन से निकलकर जोधपुर, पीपाड़ रोड, मेड़ता रोड, डेगाणा और मकराणा होती हुई कुचामन रोड में बी० बी० ऐंड सी० आई० रेल्वे से मिल जाती है। जोधपुर से एक शाखा उत्तर की तरफ मंडोवर, ओसियां और लोहाघट होकर फलोदी तक गई है। पीपाड़ रोड से एक छोटी शाखा दक्षिण में बीलाड़े को जाती है। मेड़ता रोड से एक शाखा मेड़ता शहर तक और दूसरी शाखा उत्तर में मूंडवा और नागोर होती हुई चिलो जंक्शन में बीकानेर राज्य की रेल्वे से मिल जाती है। डेगाणा से एक शाखा उत्तर की ओर खादू, डीडवाना और जसवंतगढ़ होती हुई बीकानेर स्टेट रेल्वे के सुजानगढ़ जंक्शन से जा मिलती है। जसवंतगढ़ से एक छोटी शाखा लाडनू को और मकराणा से एक छोटी शाखा परवतसर को गई है। लृणी जंक्शन से हँदसावाद जानेवाली लाइन की एक छोटी शाखा मीरपुर खास से उत्तर में खादग तक और दूसरी शाखा दक्षिण में झुड़ा तक गई है। ये दोनों शाखाएं राज्य से बाहर हैं। मारवाड़ जंक्शन से एक छोटी शाखा मेवाड़ राज्य की रेल्वे से फुलाद जंक्शन पर जा मिलती है। राज्य की रेल्वे की सम्पूर्ण लंबाई करीब ७७३ मील है।

इस राज्य में अब तक छः बार मनुष्यगणना हुई है। ई० स० १८८१ में १७५१६१८; ई० स० १८९१ में २५२८१७८; ई० स० १९०१ में १६३५५६५; ई० स० १९११ में २०५७५५३; ई० स० १९२१ में १८४१६४२ और ई० स० १९३१ में २१२५६८२ मनुष्यों की यहां आबादी रही। ई० स० १९०१ में मनुष्यों की अत्रिक कमी होने का कारण वि० सं० १९५६ (ई० स० १८६८-६९) का भयङ्कर दुष्काल था। वर्तमान काल में प्रत्येक वर्ग मील भूमि पर अनुमान ६० मनुष्यों की आबादी की औसत आती है।

जोधपुर राज्य के लोगों के मुख्य धर्म वैदिक (ब्राह्मण), जैन और इसलाम हैं। वैदिक धर्म के माननेवालों में वैष्णव, शैव, शाक्त आदि अनेक

धर्म

भेद हैं। जैन धर्म में श्वेतांबर, दिगंबर और धामक-वासी (टूढिया) आदि भेद हैं। मुसलमानों में सुन्नी

और शिया नाम के दो भेद हैं, जिनमें सुन्नियों की संख्या अधिक है और शिया मत के माननेवालों में दाऊदी बोहरे मुख्य हैं।

ई० स० १६३१ की मनुष्यगणना के अनुसार भिन्न-भिन्न धर्मावलंबियों की संख्या नीचे दी जाती है—

हिन्दू १८३१४४१, इनमें ब्राह्मण धर्म को माननेवाले १८२६२६८; आर्य (आर्यसमाजी) २१४३; सिख ३४; जैन ११३६६६ (श्वेताम्बर मतानुयायी ८३५२२, दिगम्बर मतानुयायी ५०१३, द्वंद्विये अर्थात् थानकवासी १८६२१ तथा तेरहपन्थी ६२२३) एवं जरायम पेशा क़ौम ३२४१ हैं। मुसलमान १७६८६३ (सुन्नी १७४५५५, शिया १०३६ और अहले हदीस १२६६); पारसी ४८ और ईसाई ६८६ हैं।

हिन्दुओं में ब्राह्मण, महाजन, राजपूत, जाट, माली, दोगा, कुम्हार, नाई, धोबी, दर्जी, लुहार, सुतार, कोली, गाडरी, मोची, घांची, रेवारी, बलाई, मेहतर आदि अनेक जातियां हैं। ब्राह्मण, महाजन आदि कई जातियों में अनेक उपजातियां

जातियां

हो गई हैं तथा उनमें परस्पर विवाद सम्बन्ध नहीं होता और ब्राह्मणों में तो बहुधा परस्पर भोजन-व्यवहार भी नहीं है। जंगली जातियों में भील, मीणे, गगगिये आदि हैं। मुसलमानों में शेख, सैयद, मुगल, पठान, रंगरेज़, लखारे, धुनियाँ (गिजारा), कूँग्रड़े, भिश्नी आदि कई भेद हैं। मुसलमानों में अधिकांश हिन्दू हैं, जिनके पूर्वज समय-समय पर मुसलमान राजाओं-द्वारा उस धर्म में परिवर्तित किये गये थे।

जोधपुर राज्य में अधिकतर लोग खेती करते हैं। कितने एक पशु-पालन से अपना निर्वाह करते हैं और कई एक व्यापार, नौकरी तथा अन्य धंधे और लेन-देन करते हैं। व्यापार करने-वाली जातियों में महाजन मुख्य हैं। ब्राह्मण विशेष कर पूजा-पाठ तथा पुरोहिताई और कोई-कोई व्यापार, नौकरी तथा खेती करते हैं। राजपूत अधिकतर सैनिक सेवा अथवा खेती करते हैं।

पेशा

यहां के हिन्दुओं का पहिनावा धोती, कुरता, अंगरखा तथा

पगड़ी है। देहाती लोग घुटनों तक की धोती व अंगरखी पहिनते हैं और
 पोशाक सिर पर मोटा घस्त्र, जिसे फेंटा कहते हैं, लपेटते
 हैं। राजकर्मचारी चुस्त पायजामे या ब्रिचिज़ का
 प्रयोग करते हैं। पगड़ी के बांधने की तर्ज़ में चोंचदार पगड़ी प्रसिद्ध है।
 आजकल साफ़े का रिवाज अधिक है। कोई-कोई कोट, पतलून, ब्रिचिज़
 तथा टोप भी पहनते हैं। जोधपुरी ब्रिचिज़ भारत भर में प्रसिद्ध है।
 इसका आविष्कार महाराजा सर प्रतापसिंह ने किया था।

स्त्रियों की पोशाक में लहंगा, कान्चली तथा दुपट्टा (ओढ़नी) है।
 शहर में आजकल केवल साड़ी अथवा धोती का प्रचार होने लगा है।
 मुसलमानों का पहिनावा भी हिन्दुओं का-सा ही है, किन्तु उनमें पायजामे
 का प्रचार अधिक है। मुसलमान स्त्रियां पायजामा, लंबा कुरता तथा दुपट्टा
 पहनती हैं। कोई-कोई स्त्रियां तिलक का भी प्रयोग करती हैं।

यहां की भाषा मारवाड़ी है, जो राजस्थानी भाषा का एक भेद है
 और जिसमें डिंगल के शब्दों का विशेष प्रयोग
 भाषा होता है।

यहां की लिपि नागरी है, किन्तु वह घसीट रूप में लिखी जाती है,
 जिसमें शुद्धता की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। राजकीय दफ्तरों
 लिपि में अंग्रेज़ी का व्यवहार भी होने लगा है।

मेड़ता तथा पाली में हाथीदांत की चूड़ियां, उनकी रंगाई तथा
 उसकी बनी कई अन्य वस्तुएं; जोधपुर तथा मेड़ता शहर में मिट्टी के रंगीन
 खिलौने; मकराणा में संगमरमर के पत्थर के
 दस्तकारी खिलौने, कूडियां, खरलें, कटोरे, प्याले आदि;
 बगड़ी, जोधपुर और नागौर में लाख से रंगे हुए लकड़ी के खिलौने तथा
 पलंग के पाथे अच्छे बनते हैं। जोधपुर, पाली तथा बाली में कपड़े की
 तरह-तह-तह की रंगाई तथा लहरिये, मोठड़े आदि की बंधाई का काम बहुत
 उत्तम होता है और वहां के ये वस्त्र राजपूताना तथा उसके बाहर दूर-दूर
 तक जाते हैं। पाली में लोहे का काम भी बहुत होता है। सोजत में घोड़े

की लगामें तथा ज़ीन अच्छी बनती हैं। ऊंटों की काठियां बाड़मेर की प्रसिद्ध हैं।

जोधपुर शहर में रेल का बड़ा कारखाना, बिजली का कारखाना, छापाखाना तथा बर्फ़, सोडा आदि के कारखाने हैं। लूणी, पाली और जोधपुर आदि में रूई और ऊन की गांठें बांधने के प्रेस हैं।

कारखाने

व्यापार के मुख्य केंद्र जोधपुर, पाली, पीपाड़, सोजत, मेड़ता, कुचामन, मकराना, डीडवाना, नागौर, सांभर आदि हैं। इस राज्य से बाहर जानेवाली चीज़ें भेड़, बकरे, ऊंट, घोड़े, बैल, गाय, ऊन, रुई, तिल, चमड़ा, हड्डी, नमक, संगमरमर का पत्थर, इमारती काम की पट्टियां, मुलतानी मिट्टी, आंवल की छाल, अनार और तरह-तरह के रंगीन वस्त्र हैं। राज्य में बाहर से आनेवाली वस्तुओं में रेल का सामान, मोटरें, साइकिलें, पेट्रोल, मिट्टी का तेल, कोयला, कपड़ा, ज़रदोज़ी वस्त्र, रंग, मोती आदि। रत्न, सोना, चांदी, तांबा, पीतल, लोहा आदि धातुएं; महुआ, विलायती शराब, गुड़, शकर, तंबाकू, अफ़्रीम, गांजा, भांग आदि मादक वस्तुएं; मेवा, चावल आदि अन्न; शाक, पान, लोहे के ट्रंक, हाथी दांत, इमारती काम की लकड़ी, कांच का सामान आदि हैं। प्राचीन काल में रेलवे के खुलने के पूर्व इस राज्य में पाली व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था। चारों ओर से इस स्थान में माल आता तथा यहां से कराची, बम्बई, अहमदाबाद आदि स्थानों को ऊंटों तथा बैलों द्वारा जाता था।

व्यापार

यहां के हिन्दुओं के त्योहारों में शीलसप्तमी, राखी (रक्षाबंधन), तीज (भाद्रपद), दशहरा, दिवाली और होली मुख्य हैं। गणगौर और दोनों तीज स्त्रियों के त्योहार हैं। राखी विशेषकर ब्राह्मणों का और दशहरा क्षत्रियों का त्योहार है।

त्योहार

मुसलमानों के मुख्य त्योहार मुहर्रम, ईदुल्फ़ितर और ईदुल्-जुहा हैं।

इस राज्य में परबतसर और बालोतरा के पास तिलवाड़े में प्रसिद्ध मेले भरते हैं। परबतसर का मेला भाद्रपद में तेजादशमी पर दस रोज तक तथा तिलवाड़े का चैत्र के महीने में लगता है। इन मेलों में ऊंट, घोड़े, गधे, गाय, बैल आदि पशुओं की अच्छी विक्री होती है। इन मेलों के अतिरिक्त राज्य में छोटे-बड़े कई मेले और लगते हैं।

जोधपुर राज्य में राजधानी के अतिरिक्त बड़े-बड़े सब कस्बों तथा तहसीलों में डाकखाने हैं। राज्य में डाकखानों की संख्या १२१ से अधिक है।

जोधपुर, मारवाड़ जंक्शन, सोजत, बालोतरा, बाड़मेर आदि स्थानों के अतिरिक्त तमाम रेल्वे स्टेशनों पर तार-घर हैं।

पहले राज्य की ओर से शिक्षा का प्रबंध न था। खानगी मदरसों में लोगों की शिक्षा होती थी। पंडित लोग संस्कृत तथा मौलवी उर्दू-फारसी पढ़ाते थे। अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना होने पर अंग्रेज़ी ढंग से शिक्षा का प्रचार हुआ। आज कल जोधपुर खास में उच्च शिक्षा के लिए एक कॉलेज तथा कई हाई स्कूल, मिडिल स्कूल और प्रारंभिक स्कूल तथा लड़कियों के स्कूल हैं। इनके अतिरिक्त तमाम बड़े-बड़े कस्बों में तथा गांवों में राज्य की ओर से पाठ-शालाएं खुली हुई हैं। उच्च कक्षाओं में अंग्रेज़ी के साथ-साथ गणित, विज्ञान, संस्कृत आदि भाषाओं और इतिहास आदि की शिक्षा दी जाती है। जनता की ओर से संस्थाएं खुली हुई हैं, जिन्हें राज्य की ओर से भी सहायता मिलती है।

पहले यहां लोगों की बीमारियों का इलाज वैद्य तथा हकीम करते थे। वर्तमान समय में राज्य में कई दवाखाने खुल गये हैं, जिनमें अंग्रेज़ी दवाइयों से इलाज होता है। इन अस्पतालों में चीर-फाड़ का काम अच्छा होता है। जोधपुर नगर में

एक बहुत बड़ा अस्पताल और डिस्पेन्सरियां हैं । राज्य के बड़े बड़े क़स्बों में भी दवाख़ाने स्थापित हैं । वैद्य तथा हकीम भी लोगों का इलाज करते हैं ।

शासन प्रबन्ध के सुभीते के लिए इस राज्य के २१ विभाग किये गये हैं, जिन्हें यहां हकूमत (परगना) कहते हैं । प्रत्येक हकूमत में एक-एक हाकिम नियत है और उसकी सहायता के लिए हकूमतें प्रत्येक तहसील में एक-एक नायब हाकिम रहता है । इन हाकिमों को दीवानी तथा फ़ौजदारी मुक़दमे तय करने के नियमित अधिकार हैं । इनके दिये हुए फ़ैसलों की अपीलें राजधानी की अदालतों में पेश होती हैं । राज्य की २१ हकूमतें नीचे लिखे अनुसार हैं—

- (१) जोधपुर (सदर)—यह राज्य के मध्य में है । इसका मुख्य नगर जोधपुर है, जो मारवाड़ राज्य की राजधानी है ।
- (२) बीलाड़ा—यह जोधपुर के पूर्व में स्थित है, इसमें बीलाड़ा और पीपाड़ मुख्य क़स्बे हैं ।
- (३) जेतारण—यह बीलाड़े के दक्षिण-पूर्व में है । इसका मुख्य क़स्बा जेतारण है ।
- (४) मेड़ता—यह जेतारण के उत्तर-पूर्व में है । आलनियावास, मेड़ता शहर और गीयां इसके खास क़स्बे हैं ।
- (५) परबतसर—यह मेड़ता के पूर्व में है । इसका मुख्य स्थान परबतसर है ।
- (६) सांभर—यह परबतसर के उत्तर-पूर्व में है । सांभर शहर और भील शामलाती हैं अर्थात् उनपर जयपुर और जोधपुर दोनों राज्यों का अधिकार है ।
- (७) डीडवाणा—यह सांभर के उत्तर-पश्चिम में है । इसका मुख्य क़स्बा डीडवाणा है ।
- (८) नागोर—यह डीडवाणा के पश्चिम में है । इसका मुख्य क़स्बा नागोर है ।

- (९) फलोदी—यह नागोर के उत्तर-पश्चिम में है। इसका मुख्य कस्बा फलोदी है।
- (१०) शेरगढ़—यह फलोदी के दक्षिण में है। इसका खास कस्बा शेरगढ़ है।
- (११) शिव—यह शेरगढ़ के पश्चिम में है। इसका प्रधान स्थान शिव है।
- (१२) मालानी—शिव के दक्षिण में स्थित, यह हकूमत राज्य में सब से बड़ी है। इसके प्रधान कस्बे बाड़मेर और जसोर हैं।
- (१३) सांचोर—यह मालानी के दक्षिण में है। सांचोर इसका प्रधान कस्बा है।
- (१४) पचपदरा—यह मालानी के पूर्व और शेरगढ़ के दक्षिण में है। पचपदरा और बालोतरा इसके मुख्य स्थान हैं।
- (१५) सिवाना—यह पचपदरा के दक्षिण में है। सिवाना इसका मुख्य कस्बा है।
- (१६) जसवंतपुरा—यह सांचोर के पूर्व में है। इसका मुख्य कस्बा भीनमाल है।
- (१७) जालोर—यह जसवंतपुरा के उत्तर में है। इसका मुख्य कस्बा जालोर है। यहां ऊंटों की काठियां अच्छी बनती हैं।
- (१८) पाली—यह जालोर के उत्तर-पूर्व में है। इसका मुख्य स्थान पाली है, जो रेल्वे के खुलने के पहले व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र था।
- (१९) बाली—यह पाली के दक्षिण में है। इसका प्रधान स्थान बाली है।
- (२०) देसूरी—यह बाली के उत्तर-पूर्व में है। नाडोल, राणपुर और सादड़ी इसके मुख्य स्थान हैं।
- (२१) सोजत—यह देसूरी के उत्तर-पूर्व में है। इसका मुख्य कस्बा सोजत है।

राजधानी में न्याय के लिए सदर दीवानी और फ़ौजदारी अदालतें हैं। हुक्मतों के हाकिमों के फैसलों की अपील सदर दीवानी अदालत जोधपुर में होती है। जोधपुर में चीफ़ कोर्ट के अतिरिक्त तीन सेशन कोर्ट हैं। इनमें हुक्मतों व शहर की छोटी अदालतों के मुकदमों की अपीलें पेश होती हैं। ये कोर्ट १०००० रु० तक के दीवानी दावे तथा ४००० रु० तक की अपीलें सुनती हैं। इन्हें १४ साल तक की सज़ा एवं ५००० रु० तक का जुर्माना करने का अधिकार है।

न्याय

फलोदी, सांभर, सोजत और मालानी में जुडीशियल सुपरिंटेंडेंट हैं, जिन्हें प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार हैं। दीवानी मामलों में वे १००१ से ४००० रु० तक के तथा रेवेन्यू संबंधी ३०० रुपये से ऊपर के दावे सुन सकते हैं।

प्रथम श्रेणी के जागीरदारों को दीवानी मामलों में १००० रु० तक के दावे सुनने तथा फ़ौजदारी मामलों में ६ मास कैद और ३०० रु० तक का जुर्माना करने का अधिकार है। दूसरी श्रेणी के जागीरदारों को ५०० रु० तक का दावा सुनने तथा फ़ौजदारी मामलों में तीन मास की कैद और १५० रु० दंड करने का अधिकार प्राप्त है।

राजधानी में एक कोतवाल रहता है, जिसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त हैं। वह दो वर्ष की सज़ा एवं १००० रु० तक जुर्माना कर सकता है। उसकी सहायता के लिए दो असिस्टेंट कोतवाल हैं, जिन्हें क्रमशः द्वितीय व तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेटों के अधिकार हैं।

संगीन जुमों की कार्यवाही तथा प्राणदंड में महाराजा साहब की अनुमति लेनी पड़ती है।

इस राज्य की भूमि खालसा, जागीर और धर्मादा में बँटी हुई है। खालसा की भूमि राज्य की $\frac{1}{3}$ है। जागीर में दी हुई भूमि जागीरदारों को उनके पूर्व-पुरुषों की राज्य की आपत्तिकाल में की हुई सेवाओं के उपलक्ष्य में अथवा राजा के कुटुम्बियों को मिली हुई है। मंदिरों, ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को पुण्यार्थ दी हुई भूमि

जागीर, भोम आदि

माफ़ी (धर्मादा) कहलाती है। कुछ गांव ऐसे हैं जिनकी आय जागीरदारों और राज्य में बंटी हुई है। ऐसी भूमि को यहां 'मुश्तरका' कहते हैं। इस राज्य में प्रथम श्रेणी के जागीरदारों की संख्या १४४ है। जो सब के सब ताज़ीमी हैं। उनमें पोकरण, आऊवा, आसोप, रीयां, रायपुर, रास, नीमाज, खैरवा, आलनियावास, भाद्राजून, अगेवा और कंटालिया मुख्य हैं। ये सब ठाकुर कहलाते हैं। जागीरदारों से निश्चित वार्षिक खिराज और चाकरी के रुपये लिये जाते हैं और दरबार आदि के समय महाराजा साहब की सेवा में उन्हें उपस्थित होना पड़ता है। पुण्यार्थ दी हुई भूमिवालों से कोई खिराज व सेवा नहीं ली जाती है। इसके अतिरिक्त भोम, डोहली, भूमिचार, दुंबा, जीविका आदि कई प्रकार की छोटी जागीरें हैं, जिनमें से किसी-किसी से कुछ कर अथवा सेवा ली जाती है।

इस राज्य की सेना में सरदार रिसाला, सरदार इन्फेंट्री, जोधपुर ट्रांसपोर्ट कोर और मिलिटरी बैंड हैं। इसमें वेक्कायदी सवार ४६६, क्वा-
 यदी सवार ६५७ और पैदल सेना तथा गोलंदाज़
 १०५८ हैं। इनके अलावा राज्य में २६६२ पुलिस
 के सिपाही हैं।

मारवाड़ राज्य की वार्षिक आय लगभग १४६००००० रु० और खर्च लगभग १११२२००० रु० है। आमदनी के मुख्य स्रोत ज़मीन का लगान,
 आबकारी, नमक-कर, चुंगी (सायर), रेल्वे, स्टाम्प,
 जुमाना, रजिस्ट्रेशन फीस, जागीरदारों का खिराज,
 खानें, जंगल, बिजलीघर आदि हैं। व्यय के मुख्य स्रोत सरकार का खिराज,
 सेना, पुलिस, हाथखर्च, महल-खर्च, अदालत, अस्तबल, धर्मादा, रेल,
 तामीर (पब्लिक-वर्क्स), अस्पताल, शिक्षा-विभाग आदि हैं।

प्राचीन काल में यहां के सिक्के चौकोर बनते थे, जो पीछे से गोल भी बनने लगे। उनपर कोई नाम नहीं, किन्तु वृत्त, पशु, धनुष, सूर्य, पुरुष
 आदि के अनेक भिन्न-भिन्न चिह्न अंकित होते थे,
 जिससे उनका नाम चिह्नांकित (Punch Marked)

सिके रक्खा गया है। क्षत्रियों के समय से उनके सिके चलने लगे, जो 'द्रम्म' कहलाते थे। उनके पीछे गुप्तों के सिकों का चलन हुआ। जब हूणों ने ईरान का खज़ाना लूटा और उसे वे हिन्दुस्तान में ले आये तब से ईरान के ससानियन सिके, जो बहुत पतले, परन्तु आकृति में बड़े होते थे और जिनके एक तरफ़ राजा का चेहरा और पहलवी लिपि में लेख तथा दूसरी तरफ़ अग्निकुंड एवं उसके दोनों तरफ़ एक-एक रत्नक पुरुष की आकृति बनी रहती थी, चलने लगे। पीछे से उनकी नकलें यहां भी बनने लगीं, जो क्रमशः आकृति में छोटी, किन्तु मोटी होती गईं और काल पाकर ऐसी भद्दी बनने लगीं, कि राजा के चेहरे को पहचानना मुश्किल हो गया। लोगों ने उसे गधे का खुर मान लिया, जिससे वे 'गधिये' कहलाने लगे। जिन दिनों ये गधिये सिके चलते थे, उन दिनों रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव ने, जिसको 'आदिवराह' भी कहते थे, अपने नाम के तांबे और चांदी के सिके प्रचलित किये। इनकी एक तरफ़ 'श्रीमदादिवराहदेव' लेख और दूसरी तरफ़ आदिवराह (नरवराह) की मूर्ति बनी है। पीछे से चौहानों के समय चौहान राजा अजयदेव, उसकी राणी सोमलदेवी, महाराजा सोमेश्वर और पृथ्वीराज के सिके चलते रहे। चौहानों के राज्य पर मुसलमानों का अधिकार होने के पीछे दिल्ली के सुलतानों और उनके पीछे मुगल बादशाहों के सिकों का यहां चलन हुआ।

जब दिल्ली की मुगल बादशाहत कमज़ोर हो गई तब राजपूताने के राजाओं ने भी बादशाह की आज्ञा से उस (बादशाह) के नाम के सिके बनाने के लिए अपने-अपने राज्यों में टकसालें खोलीं। इसपर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह ने वि० सं० १८३८ (ई० सं० १७८१) में शाह आलम (दूसरा) के समय अपनी राजधानी में टकसाल खोली जहां वि० सं० १६१५ (ई० सं० १८५८) तक उक्त बादशाह के नाम के सोने, चांदी और तांबे के सिके बनते रहे।

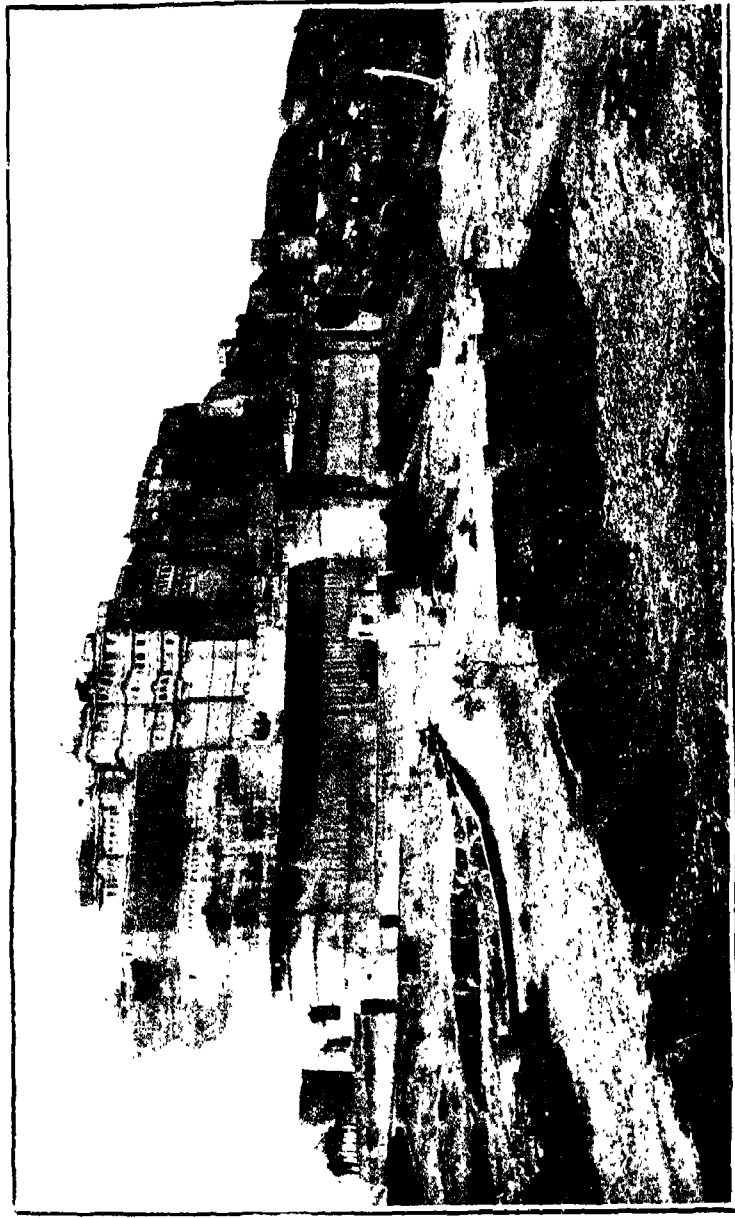
महाराजा विजयसिंह के समय के बने हुए चांदी के सिकों पर एक तरफ़ फ़ारसी लिपि में 'सिकह मुबारक बादशाह गाज़ी शाह आलम' और

दूसरी तरफ़ 'मैमनत मानूस ज़र्ब अल् मंसूर जोधपुर' लेख है। उसके तांबे के सिक्कों पर एक तरफ़ हिजरी सन् के अंक (पूरे या अधूरे) तथा 'दारुल मंसूर जोधपुर' और दूसरी तरफ़ 'जुलूस मैमनत मानूस ज़र्ब (जोधपुर)' लेख हैं। महाराजा विजयसिंह के सिक्कों पर हि० स० ११६२ से १२१५ (वि० सं० १८३५ से १८५७ = ई० स० १७७८ से १८००) तक के अंक तथा कहीं-कहीं बादशाह शाहआलम के सन् जुलूस (राज्यवर्ष) भी दिये हैं। विजयसिंह के समय के बने हुए सिक्के और पैसे 'विजयशाही' कहलाते हैं। उन सिक्कों में भाड़ और तलवार के चिह्न (बादशाह के नाम के बीच में) भी बने हैं। पिछले सब रूप्यों में भी ये दोनों चिह्न अङ्कित हैं।

महाराजा भीमसिंह और मानसिंह के समय भी वैसे ही सिक्के बनते रहे। महाराजा तन्तसिंह के पहले के रूप्यों पर राजा विजयसिंह के समय के रूप्यों के समान लेख हैं। तांबे के कुछ सिक्कों पर एक ओर बादशाह मुहम्मद अकबरशाह का नाम और दूसरी ओर 'सनह जुलूस २२ मैमनत मानूस ज़र्ब दारुल मन्सूर जोधपुर' लेख है। ग़दर के पीछे के उक्त महाराजा के बने रूप्यों पर बादशाह का नाम नहीं, किन्तु एक तरफ़ फारसी लिपि में 'ब-ज़माने मुबारक कीन विक्टोरिया मलिका मुअज़्ज़मह इंग्लिस्तान व हिंदुस्तान' और दूसरी तरफ़ 'महाराजाधिराज श्रीतन्तसिंह बहादुर ज़र्ब-इ-जोधपुर' लेख है। उक्त महाराजा की सोने की मुहरों पर भी उसी से मिलता हुआ लेख है। महाराजा जसवंतसिंह (दूसरा) के रूप्यों पर एक ओर ग़दर के पीछे के रूप्यों के समान और दूसरी तरफ़ 'महाराजा श्री जसवंतसिंह बहादुर ज़र्ब जोधपुर' लेख है।

सिपाही-विद्रोह के बाद के महाराजा तन्तसिंह और जसवंतसिंह के सिक्कों के दूसरी तरफ़ सब से ऊपर नागरी अक्षरों में 'श्रीमाताजी' लेख है और सोजत की टकसाल के सिक्कों पर नागरी अक्षरों में एक तरफ़ 'श्रीमहादेव' और दूसरी तरफ़ 'श्रीमाताजी' लेख भी मिलता है। जोधपुर के सिक्कों पर टकसाल के दारोगा के नाम का सूचक एक अक्षर (नागरी, ग, रा, बा, ला, ट, क, आ आदि) या सांकेतिक चिह्न

राजपूताने का इतिहास



जोधपुर का दुर्ग

(स्वस्तिक) भी मिलता है। जोधपुर के अतिरिक्त पाली, नागोर, सोजत और कुचामण में भी टकसालें थीं। कुचामण के रुपये, अठनी और चवनी के कम क्रीमत के सिक्के हलकी चांदी के बनते थे। ये अबतक विवाह आदि के समय इनाम में दिये जाते हैं और 'कुचामणी' कहलाते हैं। ये रुपये अजमेर में भी बनते थे और उनपर अजमेर का नाम भी मिलता था।

जोधपुर के रुपयों पर के फ़ारसी अक्षर भदे और कुछ अस्पष्ट भी होते थे और कई सिक्कों पर तो पूरा लेख भी नहीं आने पाता था, जिसका कारण ठप्पा बड़ा और सिक्कों का छोटा होना था। ई० स० १६०० (बि० सं० १६५७) में वे पुराने रुपये बंद हो गये और उनके स्थान में इस राज्य में कलदार का चलन हुआ।

यहां का राजकीय वर्ष श्रावण वदि १ से शुरू होता है, जिससे वह श्रावणादि कहलाता है। इस राज्य को अंग्रेज़ सरकार की तरफ़ से १७ तोपों की सलामी का सम्मान प्राप्त है और वष और तोपों की सलामी स्थानीय सलामी की संख्या १६ है।

जोधपुर राज्य की भूमि दो प्रकार की है। उसका सारा पश्चिमी, उत्तर-पश्चिमी, कुछ उत्तर-पूर्वी और अधिकांश दक्षिण-पश्चिमी प्रदेश मरुभूमि है, जहां प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान बहुत प्रसिद्ध और प्राचीन स्थान कम हैं। इसके विपरीत उक्त राज्य का कुछ उत्तर-पूर्वी और सारा दक्षिण-पूर्वी भाग अधिक आबादीवाला है, जिससे उधर प्राचीन और प्रसिद्ध स्थान बहुत हैं। उनमें से मुख्य-मुख्य का वर्णन नीचे किया जाता है—

जोधपुर—मारवाड़ की राजधानी पहले मंडोर थी। जब राव जोधा ने श्रावणादि बि० सं० १५१५ (चैत्रादि १५१६) ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० स० १४५६ ता० १३ मई) को जोधपुर के क़िले की नींव डाली और शहर बसाना आरंभ किया तब से जोधपुर नगर इस राज्य की राजधानी बना, जिससे मारवाड़ को अब जोधपुर राज्य भी कहते हैं।

राजपूत लोगों में यह विश्वास है कि यदि क़िले की नींव में कोई

जीवित आदमी गाड़ा जाय तो यह क़िला उसके बनवानेवाले के वंशधरों के हाथ से कदापि नहीं निकलता। इसलिए इस क़िले की नाँव में राजिया नामक भांभी (बलाई) ज़िंदा ही गाड़ा गया। जहाँ यह गाड़ा गया था उसके ऊपर खज़ाना तथा नज़्क़ारखाने की इमारतें बनी हुई हैं। भांभी के सहर्ष किये हुए इस आत्मत्याग और स्वामिभक्ति के बदले में राज्य की ओर से उसके वंशजों को भूमि दी गई, जो अब भी उनके अधिकार में है और वह 'राज बाग' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अपूर्व त्याग के कारण राज्य आदि की ओर से प्रकाशित होनेवाली कई पुस्तकों में राजिया के नाम का उल्लेख श्रद्धा के साथ किया गया है।

इस क़िले के चारों ओर सुदृढ़ दीवार है, जो २० फुट से लगाकर १२० फुट तक ऊंची और १२ से ७० फुट तक चौड़ी है। क़िले की अधिक से अधिक लंबाई ५०० गज़ और चौड़ाई २५० गज़ है। इसके दो प्रधान प्रवेशद्वार हैं—

१—लोहापोल—इसका अगला भाग राव मालदेव ने वि० सं० १६०५ (ई० सं० १५४८) में बनवाना आरंभ किया था, किन्तु इसकी समाप्ति महाराजा विजयसिंह ने की।

२—जयपोल—यह क़िले के उत्तर-पूर्व में है और इसका निर्माण महाराजा मानसिंह ने जयपुर की सेना पर (जिसने ई० सं० १८०६ में जोधपुर पर चढ़ाई की थी) विजय पाने की स्मृति में किया था। इसमें जो लोहे का दरवाज़ा लगा है उसे महाराजा अभयसिंह के समय अहमदाबाद से लाया हुआ बतलाते हैं। इन दो मुख्य द्वारों के अतिरिक्त इस क़िले में फ़तहपोल (जिसे महाराजा अजीतसिंह ने मुग़लों से जोधपुर छीनने के उपलक्ष्य में बनाया था), ध्रुवपोल, सूरजपोल, भैरोंपोल आदि और भी द्वार हैं।

इस क़िले के अंदर महाराजा सूरसिंह ने मोतीमहल, महाराजा अजीतसिंह ने फ़तहमहल, महाराजा अभयसिंह ने फूलमहल और महाराजा बल्लसिंह ने सिंगारमहल बनवाये। इसमें चामुंडा और आनंदघन के

मंदिर हैं। चामुंडा का मंदिर ई० स० १८५७ (वि० सं० १६१४) में बारूद-खाने के फूट जाने से उड़ गया था इसलिए महाराजा तारतसिंह ने इसका पुनर्निर्माण कराया। आनंदघन का मंदिर महाराजा अभयसिंह ने बनवाया था। इसमें स्फटिक की पांच मूर्तियां हैं, जिनके बारे में कहा जाता है कि बादशाह अकबर ने ये मूर्तियां महाराजा सूरसिंह को दी थीं।

इस किले में किलकिला, शंभुबाण और गजनीखां नाम की तीन तोपें मुख्य हैं। इनमें से पहली महाराजा अजीतसिंह ने अहमदाबाद में बनवाई थी और दूसरी सरबलंदखां से छीनी थी। तीसरी तोप महाराजा गजसिंह ने जालोर जीतकर वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में अपने हस्तगत की थी। कहते हैं कि इसे एक फ्रांसीसी ने बनाया था।

किले की पहाड़ी के नीचे नगर बसा है। राव मालदेव ने इसके चारों ओर नगरकोट बनवाया। इस कोट में छः द्वार हैं, जिनके नाम चांदपोल, नागोरी, मेड़तिया, सोजती, जालोरी और सिवांची दरवाजे हैं।

जोधपुर खास में किले और उसके पास के मंडोर को छोड़कर अन्य कोई वस्तु पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्व की नहीं है।

इस नगर में चार तालाब हैं, जो पद्मसागर, बाईजी का तालाब, गुलाबसागर और फ़तहसागर कहलाते हैं। इसके उत्तर में सूरसिंह का बनवाया हुआ सूरसागर नाम का एक और तालाब है।

शहर के प्रसिद्ध मंदिरों में कुंजबिहारी, बालकृष्ण और घनश्याम के मंदिर उल्लेखनीय हैं। इनमें कुंजबिहारी का मंदिर सब से बड़ा और सुन्दर है तथा नगर के बीच में बना हुआ है। इस मंदिर का निर्माण महाराजा विजयसिंह की उपपत्नी गुलाबराय ने कराया था। इसमें कारीगरी का अच्छा काम है। घनश्याम का मंदिर प्राचीन है और इसे राव गांगा ने बनवाया था। जब जोधपुर मुगलों के हाथ में चला गया और मुसलमानों का आतंक अधिक हो गया तब उन्होंने इस मंदिर को तोड़कर इसे मसजिद में परिवर्तित कर दिया था, किन्तु महाराजा अजीतसिंह ने जोधपुर पर अधिकार करने पर उसको पूर्ववत् मंदिर बनवा दिया। इसके बाद

महाराजा विजयसिंह ने इसे और भी बढ़ाया ।

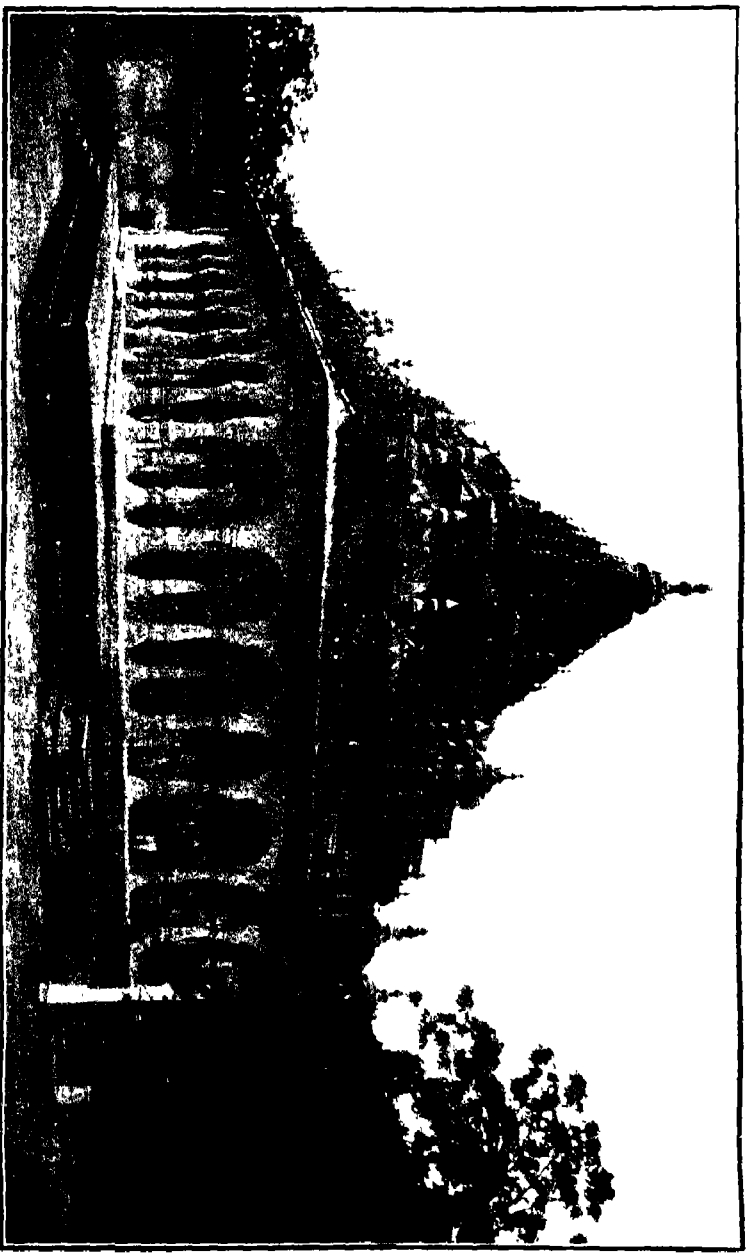
नगर के उत्तर पूर्व में कुछ दूरी पर महामंदिर है, जिसको महाराजा मानसिंह ने अपने गुरु देवनाथ की सम्मति से बनवाया था । इसमें जालंधर-नाथ की मूर्ति है । यह मंदिर विशाल तथा शिल्प की दृष्टि से दर्शनीय है । नागोरी दरवाजे के उत्तर में 'कागा का बाग' है, जिसे महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) ने बनवाया था और काबुल से उत्तम अनार के बीज लाकर इसमें अनार के पेड़ लगवाये थे । यहां साल में एक बार शीतला देवी का मेला भरता है । पिछले समय में भी इस नगर की बहुत कुछ वृद्धि हुई है और कई नई-नई इमारतें बनी हैं ।

नगर में एक घंटाघर है, जिसे 'सरदार क्लॉक टावर' कहते हैं । यह १०० फुट ऊंचा है और इसकी नींव महाराजा सरदारसिंह ने रखी थी । इसके आसपास बहुत सी दुकानें हैं ।

शहर से बाहर राई का बाग के महल और रेज़िडेन्सी तथा कई भव्य मकान बने हुए हैं और किले से सटी हुई पहाड़ी पर संगमरमर का बना हुआ महाराजा जसवंतसिंह का बड़ा स्मृति भवन (थड़ा, दग्धस्थान) बड़ा ही सुन्दर बना है ।

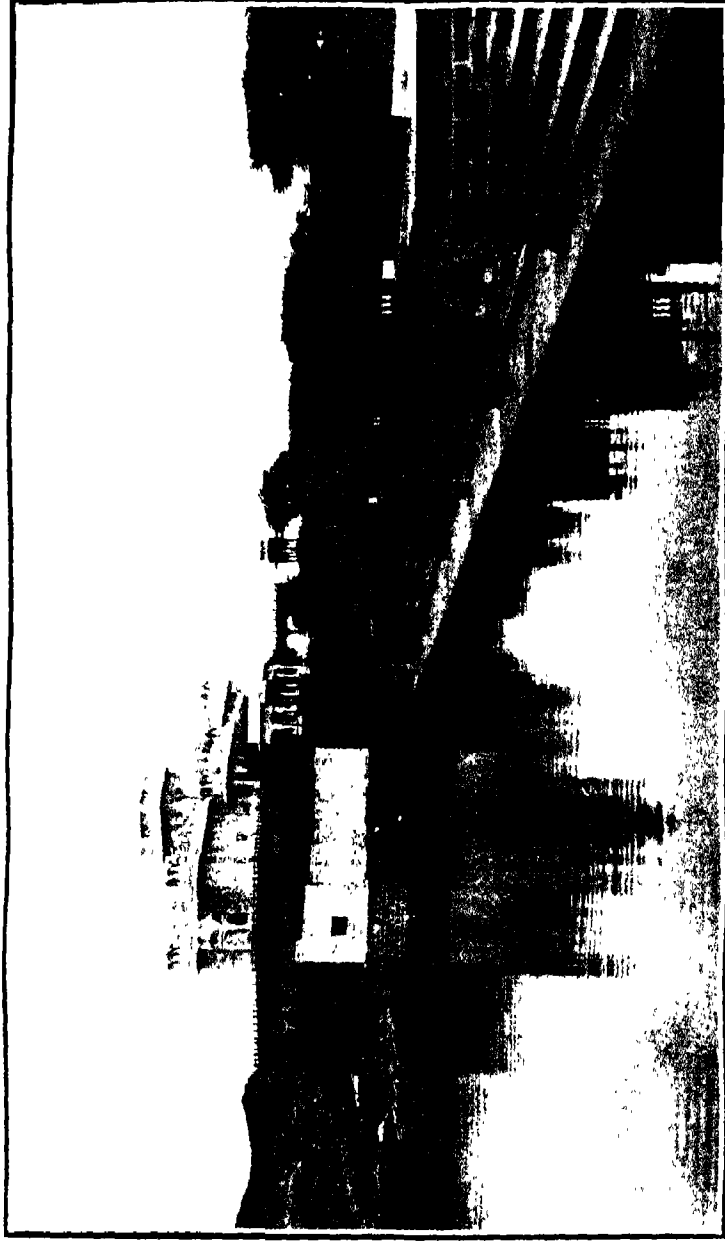
मंडोर—यह जोधपुर नगर से ५ मील उत्तर में नागाद्री नामक एक छोटीसी नदी के किनारे पर बसा है । यहां का किला एक पहाड़ी पर स्थित है । इसका अस्तित्व ईसवी सन् की चौथी सदी के आसपास से माना जाता है । शिलालेखों में इसका नाम 'मांडव्यपुर' मिलता है, जिसका अपभ्रंश 'मंडोर' है । यहां मांडव्य ऋषि का आश्रम होना भी लिखा मिलता है । ब्राह्मणवंशी प्रतिहार हरिश्चंद्र के पुत्र भोगभट, कक, रज्जिल और दद ने मंडोर को जीतकर यहां प्राकार (कोट) बनवाया था, जो अब नष्ट हो गया है । इसपर 'पंचकुंड' नामक स्थान है, जहां पांच कुंड बने हुए हैं, जिनको हिन्दू लोग पवित्र मानकर स्नानार्थ जाते हैं । वहां पहले राजकीय श्मशान थे, जहां राव चूड़ा, राव रणमल, राव जोधा तथा राव गांगा के स्मारक (थड़े) बने हुए हैं । मालदेव के समय से श्मशान इस स्थान से हटाकर मोतीसिंह

राजपूताने का इतिहास



महामन्दिर

राजपूताने का इतिहास



महाराजा जसवन्तसिंह (द्वितीय) का स्मारक

के बगीचे के पास रक्खा गया, जहां अन्य छत्रियों (थडों) में महाराजा अजीतसिंह की भी एक छत्री है, जो उन सब में विशाल और दर्शनीय है । इससे थोड़ी दूर पर पूर्व में 'ताना पोर' की दरगाह है। इस दरगाह के चंदन के किवाड़ हैं, जो कारीगरी की दृष्टि से सुंदर हैं। यहां साल में मुसलमानों के दो मेले भरते हैं ।

नागाद्री नदी के किनारे-किनारे तहतासिंह तक के मारवाड़ के राजाओं, राजकुमारों आदि के स्मारक (थड़े) बने हुए हैं । इस दग्धस्थान के पास महाराजा अभयसिंह के समय का 'तींतीस करोड़ देवता' का देवालय है, जिसमें एक ही चट्टान को काटकर १६ बड़ी-बड़ी मूर्तियां बनाई गई हैं, जिनमें ७ तो देवताओं की और नौ जालंधरनाथ, गुसाईं, रावल मल्लिनाथ (मालानीवाला), पावू^१, रामदेव^२, हरवू^३ (सांखला), जांभा^४, मेहा

(१) पावू राठोड़ राव आस्थान का पौत्र और धांधल का पुत्र था । इसने चारणों की गायें छुड़ाने में अपने प्राण गंवाये । यह बड़ा करामाती माना जाता है और इसकी गणना सिद्धों में होती है । अब तक इसकी प्रशंसा के गीत गाये जाते हैं ।

(२) रामदेव तंवर जाति का राजपूत था और सिद्ध के रूप में पूजा जाता है । ऐसी प्रसिद्धि है कि इसने वि० सं० की १६ वीं शताब्दी में पोकरण से ८ मील उत्तर रूणीजा (रूणीचा) नामक गांव में समाधि ली थी, जहां प्रतिवर्ष भाद्रपद मास में बड़ा मेला लगता है ।

(३) यह सांखला (परमार) जाति का राजपूत था और वैंगरी का रहने-वाला था । यह बड़ा शकुन जाननेवाला और करामाती माना जाता था तथा राव जोधा के समय में विद्यमान था ।

(४) यह पंवार जाति का राजपूत था । इसका जन्म पीपासर (बीकानेर) में वि० सं० १५०८ (ई० स० १४५१) में होना माना जाता है । ऐसा प्रसिद्ध है कि इसको जंगल में गुरु गोरखनाथ मिले थे, जिनसे इसको सिद्धि प्राप्त हुई । इसने 'विसनोई' नामक मत चलाया था, जो २६ नियमों पर अवलम्बित है और जिसके माननेवाले अब तक विद्यमान हैं । कहा जाता है कि इसकी मृत्यु बीकानेर राज्य के तालावे गांव में वि० सं० १५८३ (ई० स० १५२६) में हुई । उक्त स्थान में इसकी स्मृति में एक मन्दिर बना हुआ है, जहां प्रति वर्ष फाल्गुन बदि १३ के आस-पास मेला लगता है ।

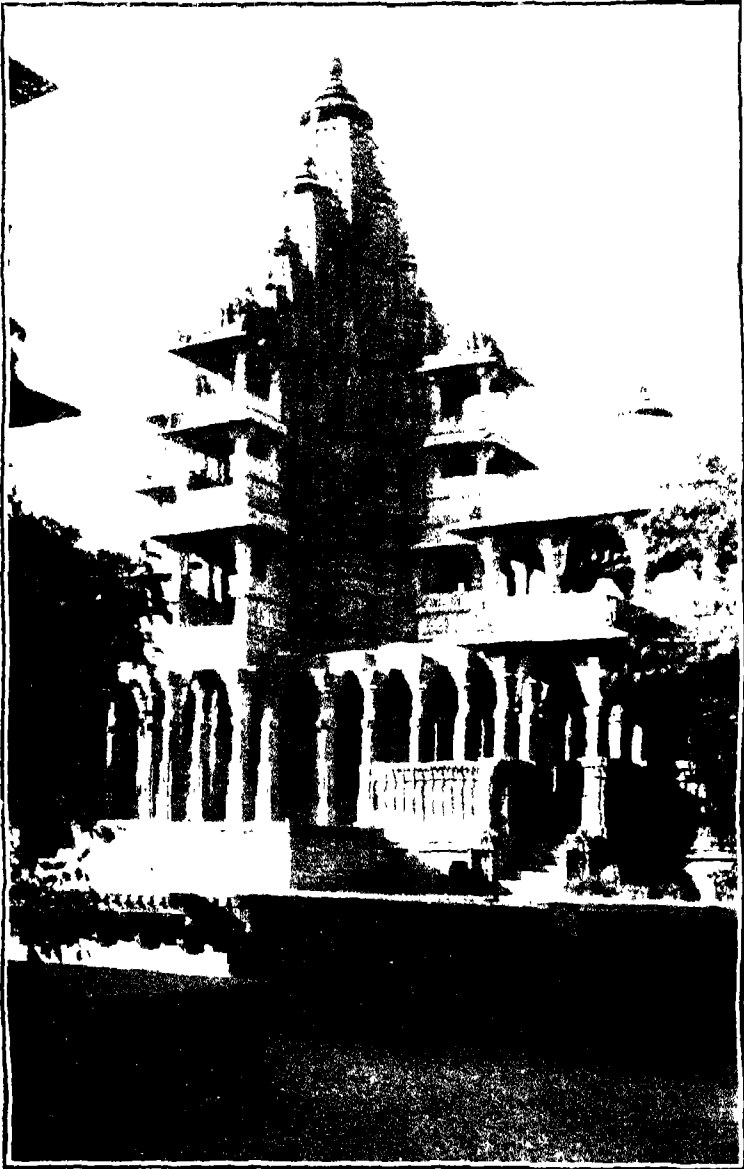
(मांगलिया)^१ और गोगा^२ की हैं । ये मूर्तियां कारीगरी की दृष्टि से सुंदर नहीं हैं तो भी इनसे राजपूत जाति में पाई जानेवाली वीर-पूजा का अच्छा परिचय मिलता है । इस स्थान के पास एक गुफा है, जिसमें एक मूर्ति खुदी है, जिसको नाहड़ाव (रघुवंशी प्रतिहार) की मूर्ति बतलाते हैं । यह गुफा बहुत प्राचीन नहीं जान पड़ती, किन्तु इसके पास-वाले एक चबूतरे से दसवीं सदी का एक लेख का टुकड़ा मिला है, जिसमें प्रतिहार कक के पुत्र का नाम मिलता है, जो इस समय राजपूताना म्यूज़ि-अम् (अजमेर) में सुरक्षित है । इस गुफा के ऊपरी भाग में गुप्त लिपि में कुछ व्यक्तियों के नाम अंकित हैं । मंडोर के भग्नावशेषों में एक जैन मंदिर है, जो दसवीं सदी का प्रतीत होता है । उससे आधे मील के फासले पर एक और मंदिर है, किन्तु उसका नीचे का भाग ही अवशिष्ट रहा है । उसके निकट ही एक तोरण है, जिसकी कारीगरी उत्कृष्ट एवं सराहनीय है, किन्तु वह भग्नावस्था में है । उसपर कृष्ण की लीलाओं के चित्र अंकित हैं^३ । उसके उत्तर-पूर्व में एक स्थान है, जो 'रावण की चौरी' कहलाता है । मंदोदरी के नाम से मंडोर की समानता होने से ही लोगों ने यहां रावण के विवाह होने आदि की कल्पना कर डाली है । इसमें एक शिला पर गणपति और अष्टमातृकाओं की प्रतिमाएं खुदी हुई हैं । मंडोर पहले-पहल नागवंशी क्षत्रियों के अधीन रहा होगा, जैसा कि उसके पास के नागकुंड, नागाद्री नदी, अहिशैल आदि नामों से अनुमान किया जाता है । फिर वह प्रतिहारों

(१) यह मांगलिया जाति का राजपूत था, जो गुहिलों की ही एक शाखा है । कहते हैं कि यह जैसलमेर के राजा के साथ की लड़ाई में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया था ।

(२) यह चौहान जाति का राजपूत था और अपनी असाधारण वीरता के लिए प्रसिद्ध है । बीकानेर राज्य की नौहर तहसील के गोगामेढी नामक गांव में इसका स्थान है, जहां इसकी स्मृति में प्रति वर्ष भाद्रपद वदि ६ को मेला लगता है ।

(३) इन लीलाओं के नीचे वि० सं० की दसवीं शताब्दी के आस-पास की लिपि के लेख थे, परन्तु उनपर जल गिरने तथा हवा का असर होने से वे इतने बिगड़ गये हैं कि कहीं-कहीं उनके अक्षर ही नज़र आते हैं ।

राजपूताने का इतिहास



महाराजा अजीतसिंह का स्मारक

के अधिकार में गया और उनसे राठोड़ों को दहेज में मिला ।

घटियाला—यह गांव जोधपुर से लगभग २० मील पश्चिमोत्तर में है। इसमें 'माता की साल' और 'खाखू देवल' नामक दो स्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से महत्त्व के हैं। इनमें से पहला तो नष्टप्राय है, किन्तु उसके एक ताक में देवी की मूर्ति और प्रतिहार राजा कक्कुक (वाउक का छोटा भाई) का प्राकृत (महाराष्ट्री भाषा) में कविताबद्ध लेख खुदा हुआ है, जो वि० सं० ६१८ (चैत्रादि ६१६) चैत्र सुदि २ (ई०स० ८६२ ता० ६ मार्च) का है। इसमें हरिश्चंद्र से लगाकर कक्कुक तक के मंडोर के प्रतिहारों (सामंतों) की वंशावली है और यह प्रतिहारों के इतिहास के लिए उतना ही उपयोगी है जितना कि उसके बड़े भाई वाउक का वि० सं० ८६४ (ई०स० ८३७) का जोधपुर (मंडोर) वाला लेख। इस लेख से ज्ञात होता है कि यह जैन मंदिर था और इसे प्रतिहारवंशी कक्कुक ने बनवाया था। माता की साल से पूर्व में कुछ ही दूर पर 'खाखू देवल' नाम का स्थान है, जहाँ एक पाषाण स्तंभ (लाट) खड़ा हुआ है, जिसके सिरे पर चारों दिशाओं में गणपति की एक-एक मूर्ति है। इस लाट पर कक्कुक के सम्बन्ध के चार संस्कृत लेख खुदे हैं। उनमें पूर्व का लेख सब से बड़ा है और उसमें कक्कुक तक की वंशावली तथा उसके वीरतापूर्ण कार्यों का वर्णन है। यह लेख माता की साल वाले प्राकृत लेख का संस्कृत सांगंश मात्र है और उसी समय का है। पश्चिम में भी तीन लेख खुदे हैं, जो कक्कुक से सम्बन्ध रखते हैं। तीसरे लेख में कक्कुक के उस विजयस्तंभ को खड़ा करने का उल्लेख है। चौथे लेख में कक्कुक की प्रिय १२ वस्तुओं का नामोल्लेख किया गया है। इन लेखों से पाया जाता है कि घटियाले का प्राचीन नाम 'रोहिन्सकूप' था। इन लेखों से यह भी अनुमान होता है कि इस गांव पर अभीरों (अहीरों) का आधिपत्य हो गया था और उन्होंने इसे नष्टप्राय कर दिया था, परन्तु कक्कुक ने उन्हें परास्त कर वहाँ बाज़ार बनवाया तथा ब्राह्मण, महाजन आदि को बसाकर उसे आबाद किया।

अरणा—यह गांव जोधपुर से १० मील दूर दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यह प्राचीनता की दृष्टि से महत्व का है। यहां की पहाड़ियों पर ११ वीं शताब्दी के मंदिर बने हुए हैं। इनके विषय में लोगों का कथन है कि ये मंदिर राजा गंधर्वसेन परमार ने बनवाये थे। पहाड़ी पर एक छोटा सा सुन्दर मंदिर है, जिसमें शिवलिंग है और बाहर के ताकों में वराह, गणपति और कुबेर की मूर्तियां हैं। इसके पास की एक चट्टान में कई छोटी-छोटी गुफाएं हैं।

कुछ ऊपर जाकर एक सभा-मंडप है, जिसके एक ताक में बड़ा सुन्दर काम है और उसके ऊपर के छबने में नवग्रह खुदे हुए हैं। एक स्तंभ पर वि० सं० की ११ वीं सदी का एक लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि ककुष्ठात्री गोत्रोत्पन्न ब्राह्मण ने हिमवत पर्वत पर नंदादेवी का मंदिर बनाया था। उसके पिता माता का नाम भी उसमें अंकित है। आज कल उस मंदिर का चिह्न भी नहीं है। यहां साल में एक बार मेला भरता है। इस स्थान में यत्र-तत्र और भी कई भग्न मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं।

तिवरी—यह स्थान जोधपुर से २२ मील उत्तर में है। इस गांव से थोड़ी दूर पर एक प्राचीन मंदिर है, जो 'खोखरी माता का मंदिर' कहलाता है। मंदिर पुराना होने से झुक गया है। इसकी दीवारें सादी हैं और उन पर कोई सुन्दर कारीगरी का काम नहीं है। इसके शिखर पर अच्छी खुदाई हुई है। यह मंदिर नवीं शताब्दी के आस-पास का अनुमान होता है। यह जनश्रुति है कि खोकरा नामक एक सुनार ने इस मंदिर का निर्माण कराया था। इसमें वेदी पर गजलक्ष्मी की मूर्ति है।

ओसियां—तिवरी से १४ मील उत्तर में स्थित यह स्थान पुरातत्त्व की दृष्टि से बहुत महत्व का है। जैन-ग्रंथों में इसका नाम 'उपकेश पट्टन' लिखा मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि इस स्थान से ही ओसवाल जाति के महाजनों की उत्पत्ति हुई है और जैनों में ऐसा माना जाता है कि रत्नप्रभसूरि ने यहां के राजा और सारी प्रजा को जैन बनाया। जैन यतियों

ने ओसवालों की उत्पत्ति का समय वीर-निर्वाण संवत्^१ ७० (विक्रम संवत् से ४०० और ईस्वी सन् से ४५७ वर्ष पूर्व) और भाटों ने वि० सं० २२२ (ई० सं० १६५) दिया है, जो कल्पित है, क्योंकि उस समय तक तो ओसियां नगर की स्थापना का भी पता नहीं चलता। ओसवालों की उत्पत्ति का समय वि० सं० की ११ वीं शताब्दी के आस-पास माना जा सकता है।

यहां पर १२ प्रसिद्ध मंदिर हैं, जिनकी बनावट भालरापाटन (पाटण, चन्द्रावती) के मंदिरों से मिलती हुई है। इनमें महावीर तथा सचियाय माता के मंदिर विशेष उल्लेखनीय हैं, ओसियां के मंदिरों के निर्माण का समय वि० सं० की नवीं शताब्दी प्रतीत होता है। जैन-मंदिर की वि० सं० १०१३ (ई० सं० ६५६) की श्लोकबद्ध प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण प्रतिहार राजा वत्सराज के समय में हुआ था। दिगम्बर जैन आचार्य जिनसेन के 'हरिवंश पुराण' के अनुसार शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४० = ई० सं० ७८३) में वत्सराज का विद्यमान होना पाया जाता है। अतः इस मंदिर का निर्माण भी इस समय के आसपास हो चुका होगा। इसके एक स्तंभ पर वि० सं० १०७५ (चैत्रादि १०७६) आषाढ़ सुदि १० (ई० सं० १०१६ ता० १५ जून) का एक छोटा सा लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि इसका द्वार दो व्यक्तियों ने मिलकर बनवाया था। इसके अतिरिक्त इस मंदिर के तोरण, स्तंभ व मूर्तियों आदि पर कई छोटे-छोटे लेख खुदे हैं, जो वि० सं० १०३५ से १७५८ (ई० सं० ६७८—१७०१) तक के हैं। इसका जीर्णोद्धार भी कई बार हुआ है।

सचियाय (सच्चिका) माता का मंदिर मारवाड़ भर में पवित्र माना जाता है और दूर-दूर से लोग उसके दर्शन के लिए आते हैं। ओसवाल महाजन इस देवी को विशेष रूप से पूजते हैं। प्रायः वे लोग यहां विवाह के बाद दर्शनार्थ आते हैं और अपने बच्चों की मानता भी यहां आकर पूरी करते हैं।

(१) इसके विशेष विवरण के लिए देखो मेरी; भारतीय प्राचीन लिपिमाज्ञा (द्वितीय संस्करण), पृ० १६३।

उक्त माता के मंदिर में वि० सं० १२३६ कार्तिक सुदि १ (ई० स० ११७६ ता० ३ अक्टोबर) बुधवार, वि० सं० १२३४ (चैत्रादि १२३५) चैत्र सुदि १० (ई० स० ११७८ ता० ३० मार्च) गुरुवार और वि० सं० १२४५ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० ११८६ ता० २२ फरवरी) के छोटे-छोटे लेख हैं । दूसरे लेख से ज्ञात होता है कि सेठ गयगल ने यहां पर चंडिका, शीतला, सच्चिका, क्षेमकरी और क्षेत्रपाल की मूर्तियां स्थापित कराई थीं । इसका सभा-मंडप स्तंभों पर स्थित है । इनके अतिरिक्त यहां हरिहर, सूर्य, पिप्पलादेवी आदि के विशाल और सुन्दर मंदिर भी हैं । ओसियां गांव से थोड़ी दूर पर कई स्मारक भी हैं, जिनमें से एक वि० सं० ८६५ (ई० स० ८३८) का है ।

उंस्तरा—यह जोधपुर परगने में जोधपुर से ३४ मील पूर्वोत्तर में है । यहां पर एक जीर्ण शीर्ण प्राचीन जैन मंदिर और कुछ देवजियां (वीरों के स्मारक) हैं । देवलियों पर लेख खुदे हैं । एक देवली पर के वि० सं० १२३७ चैत्र वदि ६ (ई० स० ११८१ ता० ६ मार्च) सोमवार के लेख में गोहिल वंशीय राणा निहुणगल के साथ उसकी राणियों का सती होना लिखा है । दूसरी देवली पर के वि० सं० १२४८ (चैत्रादि १२४९) ज्येष्ठ वदि ६ (ई० स० ११९२ ता० ४ मई) सोमवार के लेख में गुहलोत्र (गहलोत) वंशी राणा मोटीखरा के साथ उसकी मोहिल राणी राजी के सती होने का उल्लेख है । मोहिल अथवा मोयल चौहानों की एक शाखा है, जिसका पहले नागौर और बीकानेर राज्य के कुछ भाग पर अधिकार था । तीसरे उल्लेखनीय स्मारक पर वि० सं० १३४४ (चैत्रादि १३४५) वैशाख वदि ११ (ई० स० १२८८ ता० २६ मार्च) सोमवार के दो लेख हैं, जिनमें गहलोत वंशी मांगल्य (मांगलियो) शाखा के राव सीहा और उसके पुत्र दीया (टीडा) के साथ उनकी राणियों के सती होने का उल्लेख है । संस्कृत लेखदि में इसका नाम 'उच्छत्रा' मिलता है, जिसका अपभ्रंश 'उंस्तरा' है ।

बुचकला—बीलाड़ा परगने का यह गांव दो प्राचीन मंदिरों के

कारण महत्त्व का है। इनमें छोटा मंदिर शिव का है और बड़े को पार्वती का बतलाते हैं। बड़े मंदिर के बाहर के ताकों में नरसिंह और त्रिविक्रम की मूर्तियां हैं, जिससे अनुमान होता है कि यह विष्णु के किसी अवतार का मंदिर होना चाहिये। यह मंदिर अब नष्टप्राय हो गया है, किन्तु इसके सभामंडप के एक स्तंभ पर संभवतः वि० सं० ८७२ चैत्र सुदि ५ (ई० स० ८१६ ता० ८ मार्च) का एक लेख खुदा है, जो महाराजाधिराज परमेश्वर वत्सराज के पुत्र परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर नागभट्ट (रघुवंशी प्रतिहार) का है। दूसरे (शिव) मंदिर में गणपति, नवग्रह आदि की मूर्तियां हैं। गर्भगृह के सामने की दीवार में एक लेख भी है, जो वि० सं० १२२३ (ई० स० ११६७) का है। यह घिस गया है और अधिक महत्त्व का नहीं जान पड़ता।

पीपाड़—यह स्थान गुचकले से ६ मील उत्तर-पूर्व में है। यहां पुरा-तत्त्व की दृष्टि से महत्त्व की तीन वस्तुएं—पीलाद माता का मंदिर, विष्णु-मंदिर और गांव के बाहर का कुंड—हैं। इनमें से पहला प्राचीन है इसके पीछे के एक ताक में कार्तिकेय की प्रतिमा है, जिससे अनुमान होता है कि यह मंदिर देवी का नहीं था। दूसरा मंदिर विष्णु का है, जो देवी के मंदिर से अधिक प्राचीन माना जाता है। इस मंदिर के द्वार तथा स्तंभों का काम देखने से अनुमान होता है कि यह विक्रम की ६ वीं शताब्दी के आस-पास बना होगा, क्योंकि इसकी बनावट ओसियां के मंदिरों की बनावट से मिलती-जुलती है। इसमें शेषशायी की मूर्ति है।

भुंडाना—यह बीलाड़ा परगने में बीलाड़ा से २४ मील उत्तर में है। यहां ११ वीं शताब्दी के आस-पास का बना एक सुन्दर मंदिर है। इसमें एक लिंग है, जिसकी पूजा होती है। लिंग के पीछे शिव की मूर्ति है। प्रधान ताकों में महिषासुरमर्दिनी तथा गणपति की मूर्तियां हैं। पीछे के ताक में विष्णु के बुद्धावतार की मूर्ति है। गर्भ-गृह के बाहर के ताकों में अष्ट-दिक्पालों की मूर्तियां हैं।

बडलू—यह गांव बीलाड़ा से ३४ मील उत्तर में है। गांव से प्रायः

डेढ़ मील पूर्व में चांद बावड़ी नाम की प्राचीन बावड़ी है। इसके निकट के लेख से ज्ञात होता है कि यह बावड़ी राव चूंडा के छोटे पुत्रों में से कान्हा के पौत्र और भारमल के पुत्र हरदास की स्त्री टाकणी (टाक, तत्तक वंश की) इन्द्रा-द्वारा बनवाई गई और वि० सं० १५६४ (चैत्रादि १५६५) फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५३६ ता० २३ फ़रवरी) को बनकर सम्पूर्ण हुई।

गांव के मध्यभाग में पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है। इसके सभामंडप के ऊपरी भाग को छोड़कर शेष सब अंश १४ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्रतीत होता है।

गांव से आधे मील उत्तर में बहुतसी देवलियां (वीरों के स्मारक) हैं, जिनमें से कुछ पूर्णतया नवीन हैं। इनपर के लेख वि० सं० १०६८ (ई० स० १०११) से वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६२) तक के बहुधा पंवारों के हैं, जिनमें से सब से प्राचीन वि० सं० १०६८ आषाढ़ सुदि ६ (ई० स० १०११ ता० १२ जून) का है। उसमें दहितराज को महाबराह कहा है। अतएव संभव है कि वह सिन्ध में रहनेवाली 'बराहा' नाम की प्राचीन राजपूत जाति का हो। पुरानी ख्यातों में भाटियों और बराहों के बीच लड़ाई होने का उल्लेख मिलता है।

मेड़ता—यह मेड़ता परगने का मुख्य स्थान है। संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'मेडन्तक' मिलता है, जिसका अपभ्रंश मेड़ता है। यह बहुत प्राचीन नगर है। मंडोर के प्रतिहार सामन्त बाउक के वि० सं० ८६४ (ई० स० ८३७) के लेख में उसके आठवें पूर्व-पुरुष नागभट्ट का मेडन्तक (मेड़ता) को अपनी राजधानी बनाना लिखा है। राव जोधा के पुत्र दूदा को यह स्थान जागीर में मिला था, जिससे उसके वंशज मेड़तिया कहलाये। इसे जैमल मेड़तिया से छीनकर मालदेव ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। अब यहां प्राचीन वस्तुओं में १२ वीं शताब्दी के आसपास के दो स्तंभ तथा लक्ष्मी के मन्दिर के अन्दर की कुछ मूर्तियां अवशेष हैं।

मुसलमानों के समय की बहुत सी मसजिदें वगैरह यहां विद्यमान

हैं। मोची मसजिद में हि० सं० १०८६ (वि० सं० १७३२=ई० सं० १६७५) का लेख खुदा है। नगर के बीच में बादशाह औरंगज़ेब की बनवाई हुई जामी मसजिद है, जिसकी मरम्मत वि० सं० १८६४ (ई० सं० १८०७) में धोकलसिंह आदि ने करवाई थी।

यहां पर प्रायः १२ जैनमन्दिर हैं, जो नवीन हैं, परन्तु उनकी मूर्तियों पर वि० सं० १४५० से १८८३ (ई० सं० १३९३ से १८२६) तक के लेख हैं। चोपड़ों के मंदिर में बादशाह जहांगीर और शाहज़ादा शाहजहां के समय का वि० सं० १६७७ ज्येष्ठ वदि ५ (ई० सं० १६२० ता० ११ मई) गुरुवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि यह मंदिर चोपड़ा गोत्र के संघपति (संघवी) आसकरण-द्वारा बनवाया गया था।

एक मन्दिर में जोधपुर के राजा सूर्यसिंह (सूरसिंह) के समय का वि० सं० १६५६ माघ सुदि ५ (ई० सं० १६०३ ता० ७ जनवरी) शुक्रवार का लेख है। मेड़ता, प्रसिद्ध भक्त मीरां बाई का पीहर था और यहां का चारभुजा का मंदिर प्रसिद्ध है।

यहां के सोजतिया दरवाज़े की दीवार में फलोदी से लाकर एक लेख लगाया गया है, जो राणा करमसी के समय का वि० सं० १४०५ कार्तिक सुदि ११ (ई० सं० १३४८ ता० २ नवंबर) रविवार का है।

मेड़ता के उत्तर और पश्चिम में छोटे-छोटे तालाब हैं। डागोलाई तालाब के बांध पर महाराजा सिंधिया के फ़्रेंच कप्तान डी बौरबोन (De Bourbon) की कब्र है, जिससे पाया जाता है कि वह ई० सं० १७६० ता० ११ सितम्बर (वि० सं० १८४७ भाद्रपद सुदि ३) को घायल हुआ और ता० १८को६१ वर्ष की अवस्था में मर गया। मेड़ते की यह लड़ाई मरहटों और राटोड़ों के बीच ई० सं० १७६० (वि० सं० १८४७) में हुई थी।

पंडुखा—यह मेड़ता से ४ मील पश्चिम में है। गांव के बाहर पुराने मंदिरों के सामान से बना हुआ एक प्राचीन कुआँ है। इसपर दिल्ली के सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के समय का वि० सं० १३५८ (चैत्रादि १३५६) वैशाख वदि ६ (ई० सं० १३०२ ता० २० मार्च) का एक लेख है। मेड़ते में

उसने अपना फौजदार नियत किया था ।

कुएँ के निकट एक माता का मंदिर है ।

केकिंद—यह स्थान मेड़ता से १४ मील दक्षिण में है । अब यह जसनगर के नाम से प्रसिद्ध है । संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'किष्किन्धा' मिलता है, जिसका अपभ्रंश केकिन्द है ।

यहां ११ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्राचीन शिवमन्दिर है, जिसके बाहर की प्रायः सब मूर्तियां नष्ट हो गई हैं । प्रधान ताक खाली है, केवल दक्षिण ओर के ताक में हनुमान की नवीन मूर्ति है । ताकों पर सुंदर खुदाई का काम है, जिनमें अष्टदिक्पालों के अतिरिक्त अष्टमातृकाओं की मूर्तियां तथा नृसिंह और नटेश्वर की मूर्तियां भी हैं । सभामंडप के एक ताक में बालक गोद में लिए हुए एक रमणी की मूर्ति है, जो संभवतः कृष्ण को गोद में लिए हुए यशोदा की सूचक हो । कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य घटनाओं के भी चित्र वहां अंकित हैं—जैसे पूतनावध, माखन-चोरी इत्यादि ।

सभा-मंडप में ४ लेख हैं, जिनमें से एक नष्ट हो गया है । सबसे प्राचीन लेख तीन खंडों का है, एक खंड में वि० सं० ११७६ (चैत्रादि ११७७) वैशख सुदि १५ (ई० स० ११२० ता० १५ अप्रैल) गुरुवार चन्द्रग्रहण के दिन राजपूत (राजपुत्र) राणा महीपाल तथा किष्किन्धा (केकिन्द) के चाहमाण (चौहान) रुद्र-द्वारा गुणेश्वर के निमित्त भेंट दिये जाने का उल्लेख है । दूसरे खंड में वि० सं० १२०० (चैत्रादि १२०१) चैत्र सुदि १४ (ई० स० ११४४ ता० २० मार्च) सोमवार को गुणेश्वर के निमित्त चोपदेव-द्वारा दी गई भेंट का उल्लेख है और तीसरे खंड में वि० सं० १२०२ (चैत्रादि १२०३) चैत्र सुदि १४ (ई० स० ११४६ ता० २० मार्च) गुरुवार को राणी श्रीसांवलदेवी और राणक श्रीसाहणपाल-द्वारा दी गई भेंटों का अलग-अलग वर्णन है । दूसरा लेख किष्किन्धा (केकिन्द) के महामंडलीक श्रीराणक पीपलराज के समय का वि० सं० ११७८ चैत्र वदि १ (ई० स० ११२२ ता० २४ फरवरी) का है । तीसरा लेख वि० सं० १२२४

(ई० स० ११६७) का है, जिसमें महामंडलेश्वर श्रीजसधरपाल तथा अन्य महाजनों द्वारा गुणेश्वर के निमित्त दान दिये जाने के अलग-अलग उल्लेख हैं । अब यह मंदिर नीलकंठ महादेव का है, परन्तु उपर्युक्त लेखों से यह स्पष्ट है कि १३ वीं शताब्दी में मूर्ति का नाम गुणेश्वर रहा होगा ।

इसके निकट ही पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है, जिसके सभामंडप तथा कुछ स्तंभों को छोड़कर, जो १३ वीं शताब्दी के आस-पास के बने प्रतीत होते हैं, शेष सभी अंश नवीन हैं, जैसा कि इसके एक स्तंभ के लेख से प्रकट है । यह लेख राठोड़वंशी मल्लदेव (मालदेव) के प्रपौत्र, उदयसिंह के पौत्र और सूरसिंह के पुत्र गजसिंह के राज्य-काल का है । उदयसिंह के सम्बन्ध में इसमें लिखा है कि बब्बर (बाबर) के वंशधर अकब्वर (अकबर) ने उसे 'शाही' (राजा) की उपाधि प्रदान की थी और वह वृद्ध राजा के नाम से प्रसिद्ध था । वृद्ध राजा से आशय 'मोटा राजा' का होना चाहिये, जिस नाम से वह आगे चलकर प्रसिद्ध हुआ । आगे चलकर इसमें लिखा है कि नापा नाम के एक ओसवाल व्यक्ति ने, जो तीर्थयात्रा के निमित्त यहां आया था, वि० सं० १६६५ (ई० स० १६०८) में इस मंदिर के मंडप आदि बनवाये । तीर्थंकर की प्राचीन चरणचौकी पर वि० सं० १२३० (चैत्रादि १२३१) आषाढ सुदि ६ (ई० स० ११७४ ता० १० जून) का एक लेख है, जिसमें आनन्दसुरि की आज्ञा से विधि के मंदिर में मूलनायक की मूर्ति स्थापित किये जाने का उल्लेख है ।

भवाल—यह स्थान मेड़ता से १२ मील दक्षिण में है । गांव के बाहर महाकाली का मंदिर है । यह पहलै पंचायतन मंदिर था, पर अब चारों कोनों पर के देवालय नष्ट हो गये हैं । मंदिर के द्वार पर विष्णु की मूर्ति बनी है, जिसकी दाहिनी ओर ब्रह्मा और बाई ओर शिव हैं । ऊपर नवग्रह बने हैं ।

{ १ } पंचायतन मंदिर में पांच मंदिर होते हैं—मुख्य मंदिर मध्य में और शेष चारों कोनों पर । विष्णु के पंचायतन मंदिर में मध्य का मुख्य विशाल मंदिर विष्णु का होता है और मंदिर की परिक्रमा के चारों कोनों में से ईशान कोण में शिव, आग्नेय में गणपति, नैऋत्य में सूर्य और वायव्य में देवी के छोटे-छोटे मंदिर होते हैं ।

भीतर बीस हाथोंवाली महाकाली की मूर्ति है, जिसकी बाईं ओर ब्रह्माणी है। दोनों मूर्तियां नवीन प्रतीत होती हैं। बाहर के तीन ताकों में से एक में महिपासुरमर्दिनी, दूसरे में गणेश और पश्चिम के तीसरे ताक में एक छः हाथोंवाली मूर्ति है, जिसमें सूर्य, शिव एवं ब्रह्मा का मिश्रण पाया जाता है; क्योंकि ऊपर के दो हाथों में नाल सहित कमल (नीचे के दाहिनी ओर के दोनों हाथ टूटे हैं) और शेष में से एक में सर्प तथा दूसरे में चक्र हैं। सभामंडप के स्तम्भ सोलंकियों के समय के बने हैं। मंदिर के सामने दो देवालय हैं, जो सुरक्षित दशा में हैं। इसमें वि० सं० ११७० (चैत्रादि ११७१) ज्येष्ठ वदि १० (ई० सं० १११४ ता० २ मई) का एक लेख है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह मंदिर १२ वीं शताब्दी से बाद का निर्मित नहीं है। वि० सं० १३८० माघ वदि ११ (ई० सं० १३२३ ता० २४ दिसंबर) के लेख से प्रतीत होता है कि उस समय इसका जीर्णोद्धार हुआ होगा।

बीठन—यह स्थान भवाल से लगभग १८ मील पश्चिम में स्थित है। यह पहले एक बड़ी भील के लिए प्रसिद्ध था, जो अब प्रायः सूख गई है। इस भील के सम्बन्ध में एक दोहा प्रचलित है, जिसका आशय यह है कि इसे सांखला राजा ने बनवाया और उसकी पुत्री ने इस गांव को बसाया। इस तालाब के पास एक वृक्ष के नीचे तीन प्राचीन स्तंभ हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १००२ (ई० सं० ६४५) का लेख है, जिसमें कीर्तिस्तंभ बनवाये जाने का उल्लेख है।

खवासपुरा—ऊपर आये हुए बीठन से ६ मील उत्तर-पश्चिम में बसा हुआ यह स्थान शेरशाह के सेनाध्यक्ष खवासखां के नाम से प्रसिद्ध है, जो मालदेव की रूटीराणी का पीछा करते समय यहां ठहरा था। खवासखां की कब्र और उसके निवासस्थान के भग्नावशेष यहां अब तक विद्यमान हैं।

गांव से एक मील उत्तर पश्चिम में १५ वीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ महादेव का मन्दिर है।

फलोदी—यह स्थान मेड़ता जिले में मेड़ता रोड स्टेशन से एक मील दूरी पर बसा हुआ है। प्राचीन लेखादि में इसका नाम 'फलवर्द्धिका' मिलता है।

गांव के बाहर दो प्राचीन मंदिर हैं। पार्श्वनाथ का मंदिर पश्चिम में है। आश्विन मास में यहां प्रतिवर्ष बड़ा मेला लगता है, जिसमें दूर-दूर के लोग आकर सम्मिलित होते हैं। मंदिर के सामने दोनों तरफ एक-एक संगमरमर की शिला लगी है, जिसपर लेख खुदे हैं। एक लेख वि० सं० १२२१ मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० ११६४ ता० २१ नवंबर) का है, जिसमें पार्श्वनाथ के मंदिर के लिए पोरवाड़ रूपमुनि एवं भंडारी दसाड़ा आदि की दी हुई भेटों का उल्लेख है। दूसरे लेख में संवत् नहीं है। इसमें सेठ मुनिचन्द्र-द्वारा उत्तानपट्ट बनाये जाने का उल्लेख है। सभा-मंडप के एक कमरे के ताकों में कुछ मूर्तियां रक्खी हैं, और वहां समवसरण (समोसरण) तथा नन्दीश्वर द्वीप की रचनाएं हैं, परंतु ये नवीन शैली की हैं।

ब्रह्मणी का मंदिर गांव के पूर्व में है और ११ वीं शताब्दी के आस-पास का बना हुआ जान पड़ता है। सभा-मंडप का आहरी भाग तथा शिखर नया है, परन्तु भीतर के स्तम्भ एवं बाहरी दीवारें बहुधा पुरानी हैं। नये बने हुए तीनों ताकों में से एक में नृसिंह और दूसरे में वराह की मूर्ति है। तीसरे में एक आठ हाथोंवाली मूर्ति है, जिसके छः हाथ अब नष्ट हो गये हैं, जो सम्भवतः फलवर्द्धिका देवी की हो। वर्त्तमान ब्रह्मणी की मूर्ति नवीन है।

मंदिर के स्तंभों पर कई लेख हैं। सबसे प्राचीन लेख में संवत् नहीं है और फलवर्द्धिका देवी का उल्लेख है। दूसरा वि० सं० १४६५

(१) जोधपुर राज्य में फलोदी नाम के दो स्थान होने के कारण इसको 'पार्श्वनाथ की फलोदी' कहते हैं, क्योंकि यहां पार्श्वनाथ का जैनमंदिर मुख्य है। इसी नाम का दूसरा स्थान फलोदी परगने में पोकरण के निकट होने से 'पोकरण फलोदी' कहा जाता है।

भाद्रपद सुदि ५ (ई० स० १४०८ ता० २६ अगस्त) का लेख किसी तुगलक वंश के सुलतान के समय का है, जिसमें फलोदी के मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १५३५ (चैत्रादि १५३६) चैत्र सुदि १५ (ई० स० १४७६ ता० ६ अप्रैल) का मारवाड़ी भाषा में है, जिसमें मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है।

इस मंदिर की दक्षिण ओर पास ही एक और मंदिर है, जो किसी अन्य प्राचीन मंदिर के सामान से बनाया गया जान पड़ता है। इसके प्रधान ताकों में कुबेर, त्रिविक्रम और गणेश की मूर्तियां हैं। सुरक्षित मूल शिखर के अंश ११ वीं शताब्दी के आसपास के बने प्रतीत होते हैं।

किसरिया—यह छोटा सा गांव परबतसर परगने में है। इसके पास की एक पहाड़ी पर किसरिया अथवा कैवासमता का मंदिर है, जो प्राचीन है। इसमें वि० सं० १०५६ (ई० स० १६६६) का एक संस्कृत लेख है, जो चौहान राजा दुर्लभराज और उसके सामंत दधीचक (दहिया)-वंशी चञ्च का है। उसमें दुर्लभराज को सिंहराज का पुत्र और वाक्पतिराज का पौत्र बतलाया है। इसी तरह दहिया चञ्च को वैरिसिंह का पुत्र और मेघनाद का पौत्र कहा है। इस मंदिर के पास कई स्मारक स्तंभ भी हैं, जिनमें से एक दहिया कीर्तिसिंह (कीतू) के पुत्र विक्रम का वि० सं० १३०० ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० स० १२४३ ता० १ जून) सोमवार का है, जिससे अनुमान होता है कि बुचकले के आसपास का प्रदेश चौहानों के सामंत दहियों के अधिकार में था।

सांभर—यह इस नाम के परगने का मुख्य स्थान है और सांभर की खारी भील के दक्षिण पूर्वी तट पर है।

यह स्थान बहुत प्राचीन है। यहां की मीठे पानी की नालियासर नाम की भील के निकट कुछ टीले थे। जयपुर के प्रसिद्ध डा० टी० एच० इन्डली के आदेशानुसार वहां खुदाई कराने पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कुछ वस्तुएं मिली, जो जयपुर राज्य के अजायबघर में सुरक्षित हैं। इनमें मंदिरों के शिखर, अक्रीक आदि के दाने, पकाई हुई मिट्टी की बनी मनुष्यों

और जानवरों की मूर्तियां एवं कुछ प्राचीन तांबे के सिक्के आदि उल्लेखनीय हैं। डा० हेन्डली का यह अनुमान कि ये वस्तुएं बौद्धों से सम्बन्ध रखती हैं, ठीक नहीं है। वहां से मिली हुई पकाई हुई मिट्टी की मूर्तियों में से एक ऐसी है, जिसके एक बड़ा सिर और छः छोटे सिर हैं और यूप (यक्षस्तम्भ) भी बना है। उसके नीचे ई० स० पूर्व की दूसरी शताब्दी के आस-पास की लिपि में 'इन्द्रसमस' (इन्द्रशर्मणः) लेख है। इससे यह निश्चित है कि ये मूर्तियां आदि ब्राह्मण (वैदिक) धर्म से सम्बन्ध रखती हैं। संस्कृत लेखों में इसका नाम शाकम्भरी मिलता है, जिसका अपभ्रंश सांभर है। यह नगर चौहानों की पुरानी राजधानी था। इसी से चौहानों का सामान्य विरुद्ध शाकम्भरीश्वर (संभरीराय) हुआ।

सांभर चौहानों की मूल राजधानी होने के कारण पीछे से उनके अधिकार का सांभर, अजमेर आदि का सारा प्रदेश सपादलक्ष कहलाने लगा, जिसको भाषा में सवालक या श्वालक कहते थे। जिस समय चित्तोड़ के पूर्व के इलाकों पर चौहानों का राज्य था, उस समय मांडलगढ़ (मेवाड़) का क़िला भी सपादलक्ष में गिना जाता था। अब भी जोधपुर राज्य का नागौर परगना सवालक या श्वालक कहलाता है, जो सपादलक्ष का अपभ्रंश है।

सांभर से कुछ मील दूर शाकम्भरीदेवी का प्राचीन मंदिर है, जिसका कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है। यह देवी चौहानों की कुलदेवी मानी जाती है। दूसरा उल्लेखनीय मंदिर देवयानी (देवदानी) का है, जिसके पास एक कुंड भी है।

गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह ने सांभर और अजमेर के चौहान राजा अर्णोराज (आना) पर विजय पाई थी। उसके समय का एक बिगड़ी हुई दशा का लेख सांभर के एक कुएं में लगा हुआ मिला है। चौहानों के पीछे यहां मुसलमानों का अधिकार हुआ। अनन्तर कुछ समय तक यह प्रदेश मेवाड़ के महाराणा मोकल और कुंभा के अधिकार में रहा। कुछ दिनों तक मारवाड़ के राव मालदेव के अधीन रहकर यह

पुनः मुसलमानों के हाथ में चला गया, जिनसे मेवाड़ के महाराणा अमर-सिंह (द्वितीय) की सहायता से मारवाड़ के महाराजा अजीतसिंह और जयपुर के महाराजा जयसिंह (दूसरा) ने इसे फिर अपने हाथ में ले लिया। इसलिये सांभर शहर जोधपुर और जयपुर के सम्मिलित अधिकार में है। इसी तरह सांभर की खारी भील का अनुमान दो तिहाई अंश जोधपुर का और एक तिहाई अंश जयपुर का है, जहां सालाना कई लाख टन नमक बनता है। अब तो यह भील अंग्रेज़ सरकार के पास ठेके पर है, जिसके पवज़ में प्रतिवर्ष ४½ लाख रुपये जोधपुर को और २½ लाख रुपये जयपुर को मिलते हैं।

डीडवाना—यह इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है। यह गुर्जरत्रा मंडल या गुर्जरत्रा भूमि (प्राचीन गुजरात) का एक विषय (ज़िला) था, पेसा रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव के वि० सं० ६०० (ई० स० ८३४) के दानपत्र से पाया जाता है। चित्तोड़ के कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि यह प्रदेश महाराणा कुम्भा के आधीन था और वह यहां के नमक की खान से कर लिया करता था।

सिवा—यह स्थान डीडवाणा से लगभग ७ मील उत्तर-पूर्व में है। यहां के एक प्राचीन मन्दिर से रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम) का एक दानपत्र वि० सं० ६०० फाल्गुन सुदि १३ (ई० स० ८३४ ता० ६ फ़रवरी) का मिला है। यह ताम्रपत्र इस समय राजपूताना म्यूज़िअम् (अजमेर) में सुरक्षित है।

नागोर—यह इसी नाम के परगने का मुख्य स्थान है और राजपूताना के बहुत प्राचीन नगरों में से एक है। संस्कृत लेखों में इसको अहिछत्रपुर या नागपुर लिखा है। नागपुर का अर्थ नागों (नागवंशियों) का नगर है और अहिछत्रपुर का अर्थ है 'अहि (नाग) है छत्र (रक्षा करनेवाला) जिस नगर का'। ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के सूचक हैं। अतएव यह नगर प्राचीन काल में नागवंशियों का बसाया हुआ या उनकी राजधानी होना चाहिये।

पुराने समय में अद्विछत्रपुर जांगल देश की राजधानी थी और चौहानों का पूर्वज सामन्त यहीं का स्वामी था, ऐसा बीजोलियां (मेवाड़) के वि० सं० १२२६ फाल्गुन वदि ३ (ई० सं० ११७० ता० ५ फ़रवरी) गुरुवार के शिलालेख से ज्ञात होता है। यहीं से जाकर चौहानों ने सांभर को अपनी राजधानी बनाया था। प्राचीन काल में चौहानों के अधिकार का सारा प्रदेश अर्थात् सांभर, अजमेर आदि का राज्य सपादलक्ष (सवालक) कहलाता था और अब तक जोधपुर राज्य का नागौर परगना 'श्वालक' कहलाता है।

अजमेर पर मुसलमानों का आधिपत्य होने के कुछ समय बाद नागौर पर भी उनका अधिकार हो गया। तब से प्राचीन मन्दिरादि नष्ट किये जाने लगे।

यहां हिन्दू मंदिर बहुत हैं, परन्तु उनमें से अधिकांश नये हैं। प्राचीनता की दृष्टि से एक ही द्वारे में पास-पास बने हुए शिव तथा मुरलीधर के मंदिर महत्व के हैं। इनके स्तम्भ आदि पुराने हैं, शेष काम नया है। शिवमंदिर में फ़र्श से २५ सौदी नीचे उतरने पर शिव-लिंग आता है।

तीसरा बरमायां का मन्दिर है, जो योगिनी का माना जाता है। इसके प्राचीन स्तम्भों पर सुन्दर खुदाई का काम है। इनमें से तीन पर लेख खुदे हुए थे, जिनमें से एक तो बिगाड़ दिया गया है, शेष दो पर वि० सं० १६१८ ज्येष्ठ वदि १३ (ई० सं० १५६१ ता० १२ मई) और वि० सं० १६५६ चैत्र सुदि १३ (ई० सं० १६०२ ता० २५ मार्च) के लेख हैं। मुसलमानों के समय के यहां बहुत से लेख हैं, जिनमें से सबसे पुराना मुहम्मद तुग़लक के समय का एक दरवाज़े पर खुदा है (सन् अस्पष्ट है)। यहां पर बादशाह अक़बर के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से एक हि० सं० ६७२ (वि० सं० १६२१-२२ = ई० सं० १५६३-६५) का हसनकुलीख़ां की मसजिद में, दूसरा हि० सं० ६८५ (वि० सं० १६३४ = ई० सं० १५७७) का अक़बरी मसजिद में और तीसरा हसनकुलीख़ां के बनवाये हुए फ़व्वारे पर है। 'आईन-अक़बरी' आदि ग्रन्थों का रचयिता अक़बर का प्रीतिपात्र अतुलफ़ज़ल

और उसका भाई शेख फ़ैज़ी नागोर के रहनेवाले शेख मुबारक के बेटे थे।

शाहजहाँ के समय का एक लेख हि० स० १०४७ ता० २ ज़िल्हिज (वि० सं० १६६५ वैशाख सुदि ३ = ई० स० १६३८ ता० ७ अप्रैल) का किले के एक मकान में और दूसरा हि० स० १०५६ (वि० सं० १७०३ = ई० स० १६४६) का ताहिरखां की मसजिद में है।

औरंगज़ेब के समय के तीन लेख हैं, जिनमें से सबसे पहला हि० स० १०७१ (वि० सं० १७१७-१८ = ई० स० १६६०-६१) का है और दूसरा हि० स० १०७६ (वि० सं० १७२२-२३ = ई० स० १६६५-६६) का, जिसमें राय अमरसिंह के बेटे रायसिंह-द्वारा खानी तालाब बनवाये जाने का उल्लेख है।

गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़रखां ने अपने भाई शम्सखां को नागोर की जागीर दी थी, जिसने वहाँ अपने नाम से शम्स मसजिद और शम्स तालाब बनवाये। उसके पीछे उसका बेटा फ़ीरोज़खां वहाँ का स्वामी हुआ, जिसने वहाँ एक बड़ी मसजिद बनवाई, जिसको महाराणा कुम्भा ने नागोर विजय करते समय नष्ट कर दिया।

जब महाराजा अर्जीतसिंह अपने छोटे पुत्र बरतसिंह के हाथ से मारा गया तो महाराजा अभयसिंह ने नागोर की जागीर बरतसिंह को दे दी।

जनरल कनिंघम लिखता है कि बादशाह औरंगज़ेब ने जितने मंदिर यहाँ तोड़े उनसे अधिक मसजिदें बरतसिंह ने तोड़ीं। इसी कारण यहाँ के कई फ़ारसी लेख शहरपनाह की चुनाई में उल्टे-पुल्टे लगे हुए अब तक विद्यमान हैं।

गोठ—नागोर से २४ मील उत्तर-पूर्व में गोठ और मांगलोद गांवों की सीमा पर गोठ के निकट दधिमति माता का प्राचीन मंदिर है। इस देवी के नाम से इसके आसपास का प्रदेश 'दधिमति क्षेत्र' कहलाता है। यहाँ से निकले ब्राह्मण, राजपूत, गुजर और जाट क्रमशः दाहिमा ब्राह्मण, दाहिमा राजपूत, दाहिमा गुजर और दाहिमा जाट कहलाते हैं। वे सब एक माता को अपनी कुलदेवी मानते हैं। इस जीर्ण-शीर्ण मंदिर के सम्बन्ध का

एक शिलालेख गुप्त संवत् २८६ (वि० सं० ६६५ श्रावण वदि १३ = ई० स० ६०८ ता० १६ जुलाई) का मिला है। यह जोधपुर राज्य में मिलनेवाले लेखों में सब से पुराना है।

फलोदी—यह फलोदी परगने का मुख्य स्थान है। संस्कृत शिलालेखों में इसका भी प्राचीन नाम फलवर्द्धिका और विजयपुर मिलता है।

प्राचीन स्थानों में यहां के कल्याणराय तथा शान्तिनाथ के मंदिर एवं कोट उल्लेखनीय हैं। कल्याणराय के मंदिर का सबसे प्राचीन लेख निज मंदिर के बायें स्तंभ पर महाराज पृथ्वीदेव (पृथ्वीराज चौहान) और उसके मंडलेश्वर राणा कलीय (पंवारवंशीय पालहर का पुत्र) के समय का वि० सं० १२३६ (चैत्रादि १२३७) प्रथम आषाढ सुदि १० (ई० स० ११८० ता० ४ जून) बुधवार का है, जिसमें उक्त मंडलेश्वर-द्वारा दान दिये जाने का उल्लेख है। एक दूसरा लेख इसी मंदिर के सामने एक पत्थर पर महाराजाधिराज महाराजा जसवंतसिंह (जोधपुर) के समय का वि० सं० १६६६ आषाढ सुदि २ (ई० स० १६३६ ता० २२ जून) शनिवार का है, जिसमें मंदिर के सामने जैमल के पुत्र मुंहणोत नयणसिंह (नैणसी, प्रसिद्ध ख्यात लेखक) और नगर के सकल महाजनों एवं ब्राह्मणों द्वारा रङ्गमंडप बनवाये जाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त मन्दिर के हाते में एक छोटे कमरे के भीतर सूर्य की मूर्ति के आसन पर महाराजाधिराज महाराजा भीमसिंह (भीमसिंह, जोधपुर) के समय का वि० सं० १८५२ (शक सं० १७१७) आषाढ सुदि ५ (ई० स० १७६५ ता० २१ जून) रविवार का लेख है, जिसमें माहेश्वरी गोत्र के भवड शाखा के साह परमानन्द और उसके पुत्र धनरूप आदि के द्वारा उक्त मूर्ति के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

शान्तिनाथ के जैनमंदिर की दीवार पर महाराजा गजसिंह (जोधपुर) और उसके पुत्र कुंवर अमरसिंह के समय के (जय मुंहणोत जैमल मुख्य मंत्री था) वि० सं० १६८६ मार्गशीर्ष सुदि १३ (ई० स० १६३२ ता० २८ नवंबर) बुधवार के दो लेख हैं, जिनमें उपर्युक्त मंदिर के जीर्णोद्धार

किये जाने का उल्लेख है ।

यहां का गढ़ भी दर्शनीय है । इसमें पांच लेख हैं । पहला गढ़ के भीतरी द्वार पर जोधपुर के स्वामी राठोड़ राय श्रीसूरजमल (सूजा) के पुत्र नरसिंहदेव (नरा) के समय का वि० सं० १५३२ वैशाख वदि २ (? १२) (ई० सं० १४७५ ता० ३ अप्रैल) सोमवार का है, जिसमें उक्त पोल (द्वार) के निर्माण किये जाने का उल्लेख है । दूसरा गढ़ के बाहरी दरवाजे के एक स्तम्भ पर वि० सं० १५७३ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० सं० १५१६ ता० ४ दिसंबर) गुरुवार का है, जिसमें राठोड़वंशीय महाराज नरसिंह (नरा) के पुत्र महाराव हर्मीर-द्वारा बनवाये हुए उपर्युक्त द्वार के स्तम्भों के जीर्णोद्धार होने का उल्लेख है । गढ़ की बाहरी दीवार पर दो लेख हैं, जिनमें से एक महाराजाधिराज महाराजा रायसिंह (बीकानेर) के समय का वि० सं० १६५० (चैत्रादि १६५१) आषाढ सुदि ६ (ई० सं० १५९४ ता० १६ जून) रविवार चित्रा नक्षत्र का तथा दूसरा महाराजाधिराज महाराजा जतवंतसिंह (जोधपुर) और महाराजकुमार पृथ्वीसिंह के समय का वि० सं० १७१५ वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १६५८ ता० २७ अप्रैल) मंगलवार का है । इनमें भुज (रज) तथा जैनल के पुत्र मुंहणोत मंत्रीश्वर सामकरण और साहणी जगन्नाथ खोवत-द्वारा उक्त दीवार बनवाये जाने का उल्लेख है । पांचवां लेख महाराजा विजयसिंह और कुंवर फ़तहसिंह के समय का वि० सं० १८०६ माघ वदि १ (ई० सं० १७४३ ता० २० जनवरी) का है, जो गढ़ की बाहरी दीवार पर है और जिसमें जोगीदास की पराजय तथा मृत्यु का उल्लेख है । इसका आशय यह है कि जोगीदास गढ़ पर क्राविज्ञ हो गया था, जिससे महाराजा ने फ़ौज भेजकर सुरंग लगाकर कोट तोड़ा, जिसमें जोगीदास मारा गया ।

नगर के राणीसर तालाब के किनारे के कीर्तिस्तंभ पर वि० सं० १५८६ (द्वितीय) भाद्रपद सुदि ६ (ई० सं० १५३२ ता० ८ सितंबर) रविवार का एक अर्पण लेख है, जिसमें राठोड़वंशीय महाराजा सूरजमल (राव सूजा) का नाम दिया है ।

कहा जाता है कि यह नगर राव सूजा के पुत्र नरा ने बसाया था। वि० सं० १६०४ (ई० सं० १५४७) के लगभग राव मालदेव (राठोड़) ने इसे छुल करके डूंगरसी के हाथ से छीन लिया और पन्द्रह वर्ष तक यहां राज्य किया। अनन्तर यह रावल हरराज (जैसलमेर) के पुत्र भाखरसी के अधिकार में चला गया, जिससे लेकर वि० सं० १६३५ (ई० सं० १५७८) में अकबर ने इसे बीकानेर के राजा गायसिंह को दे दिया, जिसके राज्य में यहां शान्ति और समृद्धि का निवास रहा। फिर वि० सं० १६७२ (ई० सं० १६१५) में जहांगीर ने इसे जोधपुर के राजा सूरसिंह को दे दिया, जिसने यहां का इन्तज़ाम करने के लिए प्रसिद्ध ख्यातकार नैणसी के पिता मुह-शोत जैमल को यहां का हाकिम बनाया।

किराडू—मालानी पगगने के मुख्य स्थान बाडमेर से अनुमान १६ मील उत्तर-पश्चिम में हाथमा गांव के निकट अब किराडू नामक प्राचीन नगर के खंडहरमात्र अवशेष हैं। यहां आबादी बिलकुल नहीं है। शिलालेखों में इसका प्राचीन नाम 'किराटकूप' मिलता है, जिसका अपभ्रंश किराडू हुआ है। यहां पर पांच मंदिरों के भग्नावशेष विद्यमान हैं, जिनमें शिवमंदिर मुख्य है और वह कुछ अच्छी स्थिति में है। उसमें खुदाई का बहुत सुन्दर काम हुआ है। द्वार पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव की मूर्तियां खुदी हैं तथा उसके ऊपर के भाग में ब्रह्मा, विष्णु और सूर्य की एक सम्मिलित मूर्ति है जिसके एक सिर और दस हाथ हैं (दो हाथ सूर्य के, चार ब्रह्मा और चार विष्णु के), जिनमें से कुछ टूट गये हैं। सूर्य के दोनों हाथों में कमल, विष्णु के आयुधों में से गदा और चक्र हैं तथा ब्रह्मा के आयुधों में से खुर है। बाहर के ताकों में भैरव, नटेश और चामुंडा की मूर्तियां हैं।

यहां पर तीन शिलालेख हैं, जिनमें से पहला वि० सं० १२०६ (अर्थात्) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि १४ (ई० सं० ११५३ ता० २४ जनवरी) शनिवार का गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का है। यह लेख भी बहुत बिगड़ी हुई दशा में है। दूसरा वि० संवत् १२१८ आश्विन सुदि १ (ई० सं० ११६१ ता० २१ सितम्बर) गुरुवार का है, जिसमें परमार

सिंधुराज से लगाकर सोमेश्वर तक की वंशावली दी थी, परन्तु लेख के बिगड़ जाने से कुछ नाम जाते रहे हैं। ये परमार गुजरात के सोलंकियों के अधीन थे और सोमेश्वर सोलंकी कुमारपाल का सामंत था। तीसरा वि० सं० १२३५ कार्तिक सुदि १३ (ई० सं० ११७८ ता० २६ अक्टोबर) का गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव (दूसरा) और उसके सामन्त महाराज-पुत्र मदनब्रह्मदेव (चौहान) का है।

उपर्युक्त मंदिर के निकट ही एक दूसरा शिवमंदिर था, जिसका अधिकांश भाग नष्ट हो गया है। इसके बाहरी ताकों में ब्रह्मा, शिव और विष्णु की मूर्तियां हैं। यहां से कुछ दूरी पर दो और मंदिर हैं, जो उपर्युक्त दूसरे मंदिर के समान हैं। पांचवां मंदिर विष्णु का है, जिसका अधिकांश भाग टूट गया है। सभामंडप किसी तरह बचा हुआ है। इसके ताकों में विष्णु की मूर्तियां हैं, जिनमें एक गरुडारूढ़ विष्णु की त्रिमूर्ति है, जिसमें मध्य का मुख विष्णु और पार्श्व के मुखों में से एक नृसिंह तथा दूसरा वराह का है। मंदिर तथा इसकी मूर्तियों में खुदाई का काम बड़ा सुन्दर है।

जूना—हातमा (किराह) से लगभग १२ मील दक्षिण-पूर्व में जूना गांव है, जिसे जूना बाड़मेर भी कहते हैं। इसके पास की पहाड़ी पर एक किला था, जिसके कोट के भग्नावशेष ही यत्र-तत्र अब विद्यमान हैं। जूना से दो मील के अंतर पर तीन जैन मंदिरों के भग्नावशेष हैं, किन्तु वे प्राचीन नहीं हैं। उनमें से एक के, जो सबसे बड़ा है, सभामंडप के एक स्तंभ पर ४-५ लेख खुदे हैं, जिनमें से दो महत्व के हैं। पहला लेख वि० सं० १३५२ (चैत्रादि १३५३) वैशाख सुदि ४ (ई० सं० १२९६ ता० ८ अप्रैल) का है, जिसका सम्बंध बाड़मेर में राज्य करनेवाले महाराजा श्रीसामंतसिंह-देव चौहान (जालोर) से है। दूसरा लेख वि० सं० १३५६ कार्तिक (ई० सं० १२९९ अक्टोबर) का है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मंदिर आदिनाथ का था।

चोटण—यह जूना से दक्षिण-पश्चिम में २४ मील की दूरी पर बसा

है। इसके पास की पहाड़ी पर तीन मंदिरों के भग्नावशेष हैं। इनमें से पहले के मंडप के स्तंभों पर लेख खुदे हैं, जिनमें से एक श्रीकान्हडदेव चौहान (जालोर) के समय का वि० सं० की १४ वीं शताब्दी का है। इस मंदिर के सभामंडप के कोने में एक छोटा सा मंदिर है, जिसके द्वार के दोनों पाश्वों पर विष्णु के—वराह, वामन, बुद्ध और कल्कि आदि—अवतारों की मूर्तियां हैं। इसके समीप ही उत्तर में एक छोटा सा लकुलीश का मंदिर है, जिसके स्तंभों आदि की बनावट से यह ११ वीं शताब्दी का बना हुआ प्रतीत होता है। गर्भगृह के द्वार पर लकुलीश की मूर्ति है। इस मंदिर के बाहर के एक स्तंभ पर वि० सं० १३६५ पौष सुदि ६ (ई० सं० १३०८ ता० १६ दिसंबर) गुरुवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि लकुलीश (पाशुपत) संप्रदाय के साधु उत्तमराशि के शिष्य धर्मराशि ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। बनावट देखते हुए तीसरे शिवमंदिर का समय भी वही है, जो ऊपर के दोनों मंदिरों का है, किन्तु वहां पर कोई लेख नहीं मिला।

जसोल—यह स्थान मालानी परगने में मालानी से अनुमान ५२ मील पूर्व में लूणी नदी के किनारे पर है।

यहां के प्राचीन मंदिर सुरक्षित हैं। ठाकुरजी का मंदिर प्राचीन मंदिरादि के पत्थरों से बनाया गया है। सभामंडप में लगे हुए पत्थर पर वि० सं० १२४६ कार्तिक वदि २ (ई० सं० ११८६ ता० २८ सितंबर) का एक लेख खुदा है, जिसमें सहदेव के पुत्र सोनिंग-द्वारा तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ की दो मूर्तियां बनवाने का उल्लेख है। कहा जाता है कि ये दोनों मूर्तियां पहले खेट्ट (खेड) के महावीर स्वामी के मन्दिर में थीं। एक दूसरे स्तम्भ पर वि० सं० १२१० श्रावण वदि ७ (ई० सं० ११५३ ता० १४ जुलाई) का लेख है।

जैनमंदिर को दादादेरा कहते हैं। यहां रावल श्रीवीरमदेव के समय का वि० सं० १६८६ कार्तिक (चैत्रादि १६६० भाद्रपद) वदि २

(१) इसके विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १, (प्रथम संस्करण); पृ० ३३७।

(ई० स० १६३३ ता० ११ अगस्त) रविवार उत्तरा (भाद्रपद) नक्षत्र का एक लेख है। संभव है यह मल्लीनाथ का वंशधर हो, जो मल्लाणी का स्वामी था।

नगर—जसोल से ३ मील दक्षिण-पश्चिम में खुशक, दीहड़ प्रदेश में बसा हुआ अब यह एक वीरान गांव है। इसका प्राचीन नाम वीरमपुर था। यहां तीन जैन तथा एक विष्णु का मंदिर है।

जैन मंदिर पार्श्वनाथ, ऋषभदेव तथा शान्तिनाथ के हैं। इन मंदिरों की दीवारें प्राचीन हैं और १४ वीं शताब्दी के आसपास की जान पड़ती हैं। इनमें बहुत से लेख हैं, जिनमें से अधिकांश बार-बार पुताई होने के कारण अस्पष्ट हो गये हैं। ऋषभदेव के मंदिर में एक लेख रावल कुशकण के समय का वि० सं० १५६८ (चैत्रादि १५६६) वैशाख सुदि ७ (ई० स० १५१२ ता० २२ अप्रैल) गुरुवार पुण्य नक्षत्र का है, जिसमें जैनों-द्वारा इसके रंगमंडप के निर्माण किये जाने का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि पहले यह मन्दिर विमलनाथ का था। इसी मंदिर का एक दूसरा लेख रावल मेघराज के समय का वि० सं० १६३७ (चैत्रादि १६३८), शाके १५०२ वैशाख सुदि ३ (ई० स० १५८१ ता० ६ अप्रैल) गुरुवार रोहिणी नक्षत्र का है। तीसरा लेख वि० सं० १६६७ (चैत्रादि १६६८), शाके १५३२ (? ३३) त्रितीय आपाठ सुदि ६ (ई० स० १६११ ता० ५ जुलाई) शुक्रवार उत्तरा फाल्गुणी नक्षत्र का रावल तेजसी के समय का है।

शान्तिनाथ के मंदिर में एक लेख रावल मेघराज के समय का वि० सं० १६१४ मार्गशीर्ष वदि २ (ई० स० १५५७ ता० ८ नवम्बर) का है।

पार्श्वनाथ के मंदिर में रावल जगमाल के समय के दो लेख हैं, जिनमें से एक वि० सं० १६८१ चैत्र वदि ३ (ई० स० १६२५ ता० १४ फरवरी) सोमवार हस्त नक्षत्र का और दूसरा वि० सं० १६७८ (चैत्रादि १६७९), शाके १५४४ द्वितीय आपाठ सुदि २ (ई० स० १६२२ ता० ३० जून) रविवार का है।

विष्णुमंदिर रणछोड़जी का है। इसके एक ताक में हाथियों की लड़ाई अंकित है, जिसके ऊपर वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ७ (ई० स० १६३०

ता० २२ फ़रवरी) मंगलवार का एक लेख है, जिसमें महारावल जगमाल-द्वारा इसके बनवाये जाने का उल्लेख है। इसमें इस राजा के पूर्वजों की नामावली भी दी है।

खेड़—यह नगर से ५ मील उत्तर में लूणी नदी के किनारे पर बसा है। यह प्राचीन काल में राठोड़ों की राजधानी थी। पहले यह स्थान गोहिल-राजपूतों के अधिकार में था, जिनके डाभी मंत्रियों ने उनसे असंतुष्ट हो राठोड़ों को बुलवाया, जो गोहिलों की हत्या कर यहां के स्वामी बन बैठे। अब यह एक छोटा सा गांव रह गया है। प्राचीन नगर के भग्नावशेष अब भी यहां विद्यमान हैं।

यहां रणछोड़जी का प्राचीन मंदिर है, जो चारों तरफ़ टूटे-फूटे पत्थरों की दीवार से घिरा है। इसके कितने ही स्तम्भ १० वीं शताब्दी के और कितने ही १२ वीं शताब्दी के आसपास के बने हुए प्रतीत होते हैं। मंदिर के द्वार पर गरुड़ की मूर्ति है, जिसके ऊपरी भाग में नवग्रह अंकित हैं। बाहरी भाग में दिक्पालों की मूर्तियां हैं। पास में ब्रह्मा और भैरव के मंदिर हैं। चौक के दक्षिण-पूर्वी किनारे के प्राचीन देवालय में शेषशायी की पुरानी मूर्ति है।

इस मंदिर से आध मील दक्षिण में १२ वीं शताब्दी के आसपास का बना हुआ एक महादेव का मंदिर है। इसके सिवाय यहां एक और भी प्राचीन जीर्ण-शीर्ण मंदिर है।

सांचोर—उक्त नाम के परगने का मुख्य स्थान सांचोर जोधपुर से १५० मील दक्षिण-पश्चिम में लूणी नदी के किनारे पर बसा है। शिलालेखादि में इसका प्राचीन नाम 'सत्यपुर' मिलता है। पहले यह प्रदेश आबू के परमारों के अधीन था और वे (परमार) गुजरात के सोलंकीयों के सामंत थे। सांचोर परगने के बालेरा गांव से गुजरात के सोलंकी राजा मूलराज (प्रथम) का वि० सं० १०५१ माघ सुदि १५ (ई० स० ६६५ ता० १६ जनवरी) शनिवार का एक दानपत्र मिला है, जिसमें सत्यपुर मंडल (सांचोर परगना) का वरणक गांव, मूलराज की तरफ़ से दान किये जाने

का उल्लेख है। वरणक गांव संभवतः बालेरा का सूचक हो। यहां पर पहले वायेश्वर नामक एक शिवमंदिर और महावीर स्वामी के जैनमंदिर भी थे, जिनको तोड़कर उनके पत्थरों से मुसलमानों ने एक जुमा मसजिद बनवाई थी, जो अब अच्छी स्थिति में नहीं है। इस मसजिद में दो संस्कृत के और दो फ़ारसी के लेख हैं। संस्कृत लेखों में से एक वि० सं० १२७७ (ई० स० १२२०) का है, जो संघपति (संघवी) हरिश्चन्द्र-द्वारा मंडप बनवाये जाने का सूचक है। दूसरा लेख सांचोर के चौहान राजा भीमदेव के समय का वि० सं० १३२२ (चैत्रादि १३२३) वैशाख वदि १३ (ई० स० १२६६ ता० ५ अप्रैल) का है, जिसमें ओसवाल भंडारी छायाक-द्वारा महावीर के मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। फ़ारसी लेखों में से एक लेख गुलामवंश के नासिरुद्दीन मुहम्मदशाह के समय का है, जिसमें उक्त मसजिद के बनने का उल्लेख है और सांचोर का नाम महमूदाबाद लिखा है।

इन लेखों के सिवाय यहां तीन स्तंभों पर खुदे हुए लेख और भी मिले हैं, जिनमें से दो घुड़साल में और एक जेलखाने में है, जो अन्यत्र से लाकर खड़े किये गये हैं।

जेलखाने के स्तंभ पर जालोर के चौहान राजा सामंतसिंह के समय का वि० सं० १३४५ कार्तिक सुदि १४ (ई० स० १२८८ ता० ८ नवंबर) सोमवार का लेख खुदा है, जिसमें मेर जाति के प्रभा, पद्मा और आसपाल-द्वारा वायेश्वर के मंदिर को आठ द्रम्म भेंट किये जाने का उल्लेख है। घुड़साल के दो स्तंभों पर सांचोर के चौहान राजा प्रतापसिंह (पाता) के समय के वि० सं० १४४४ ज्येष्ठ वदि (ई० स० १३८७ मई) शुक्रवार के एक ही लेख के दो अंश खुदे हैं, जिनसे पाया जाता है कि प्रतापसिंह, साल्हा का, जिसने तुकों से श्रीमाल नगर छीना था, प्रपौत्र, विक्रमसिंह का पौत्र और संग्रामसिंह (जिसका बड़ा भाई भीम था) का पुत्र था। उस- (प्रतापसिंह) की गण्णी कामलदेवी ने, जो कर्पूरधारा के ऊंमट परमार वीरसिंह के प्रपौत्र, माकड़ के पौत्र और धैरीशल्य के पुत्र सूहड़शल्य की पुत्री थी, वायेश्वर के मंदिर का जीर्णोद्धार कराया और नैवेद्य के लिए

एक खेत भेंट किया। ये ऊंमट परमार मालवे के ऊंमट नहीं, किंतु भीन-माल के आसपास के ऊंटाटी (ऊंमटवाड़ी) प्रदेश के परमार होने चाहियें।

उपर्युक्त महावीर के जैनमंदिर का विशेष परिचय जिनप्रभसूरि ने अपने तीर्थकल्प के सत्यपुर में दिया है।

सांचोर से निकले हुए ब्राह्मण सांचोरे ब्राह्मण और वहां के चौहान राजपूत सांचोरे चौहान नाम से प्रसिद्ध हैं। सांचोर परगने पर पहले गुजरात के सोलंकीयों के सामंत आवू के परमारों का अधिकार रहा। उनसे जालोर के चौहानों ने उसे लिया, जहां उनकी एक शाखा का अधिकार रहा। फिर अलाउद्दीन खिलजी के समय जालोर के साथ सांचोर पर भी मुसलमानों का अधिकार हो गया। कुछ समय पीछे फिर चौहानों ने उसे ले लिया। तदनन्तर सांचोर बिहारी पठानों के अधिकार में रहा, जिनसे लेकर बादशाह जहांगीर ने उसे जोधपुर के महाराजा सूरसिंह को दिया था, ऐसी प्रसिद्धि है।

सिवाणा—यह इसी नाम के परगने का प्रधान नगर है। कहते हैं कि परमारों ने इसे बसाया था। परमार वीरनारायण का बनवाया हुआ गढ़ अब तक विद्यमान है। बाद में परमार सांतलदेव के समय में अलाउद्दीन खिलजी का इसपर अधिकार हुआ और बहुत पीछे से यह राठोड़ों के हाथ में गया। गढ़ बहुत ऊंचा नहीं है।

नगर के एक प्रवेश-द्वार पर लेख खुदा है, जिसमें लड़कियों को न मारने की राजाज्ञा है।

भीनमाल—जसवन्तपुरा परगने में जसवन्तपुरा (लोहियाणा) से अनुमान २० मील उत्तर-पश्चिम में भीनमाल नाम का प्राचीन नगर है। पीछे से इसको श्रीमाल नगर भी कहते थे। यहां के निवासी ब्राह्मण श्रीमाली नाम से अब तक प्रसिद्ध हैं। वि० सं० ६६७ (ई० सं० ६४०) के करीब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग गुजरात की तरफ होता हुआ यहां आया था। यह नगर गुर्जर (गुर्जरत्रा) देश की राजधानी थी। उसके समय में यहां बौद्धधर्म की अवन्ति हो रही थी, क्योंकि वह लिखता है—‘यहां विधर्मियों

(वैदिक धर्म के माननेवालों) की संख्या बहुत और बौद्धों की थोड़ी है; यहां एक ही संघाराम (बौद्ध मठ) है, जिसमें हीनयान सम्प्रदाय के १०० भ्रमण रहते हैं, जो सर्वास्तिवादी हैं ।'

यह नगर विद्या का भी एक पीठ था। प्रसिद्ध ज्योतिषी ब्रह्म-गुप्त ने वि० सं० ६८५ (शक सं० ५५० = ई० सं० ६२८) में यहां 'ब्राह्मस्फुट-सिद्धान्त' की रचना की थी। 'शिशुपालवध' महाकाव्य का कर्त्ता सुविख्यात माघ कवि भी यहीं का रहनेवाला था।

यहां पर जगत्स्वामी (जयस्वामी) नामक सूर्य का एक मंदिर है, जो राजपूताने के प्राचीन सूर्य के मंदिरों में से एक है। इसको लोग जगामंडेरा कहते हैं। इस मंदिर के स्तंभों पर भेंट, जीर्णोद्धार आदि के कई लेख खुदे हुए हैं, जिनमें से नौ तो इसी मंदिर के भग्नावशेष के पास के स्तंभों पर हैं, शेष में से पांच बराहजी की धर्मशाला में खड़े किये गये हैं और एक नगर के दक्षिण ओर के महालक्ष्मी के मंदिर में लगा है।

इस सूर्य-मंदिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १११७ माघ सुदि ६ (ई० सं० १०६० ता० ३१ दिसम्बर) रविवार को राजा कृष्णराज के समय में हुआ था। यह कृष्णराज (दूसरा) आनू के परमार राजा महीपाल (देवराज, ध्रुवभट्ट, धूर्भट) का पौत्र और धन्धुक का तीसरा पुत्र था, जो अपने बड़े भाई दन्तिवर्मा के पुत्र योगराज के विद्यमान होते हुए भी परमार राज्य का स्वामी बन बैठा था। इसी के समय का एक दूसरा लेख वि० सं० ११२३ (ई० सं० १०६६) का एक दूसरे स्तंभ पर खुदा है। परमारों के अतिरिक्त यहां पर महाराजपुत्र जयतसिंहदेव (चौहान) के समय का वि० सं० १२३६ आश्विन वदि १० (ई० सं० ११८२ ता० २५ अगस्त) बुधवार का और जालोर के चौहान उदयसिंह के राज्य-समय के वि० सं० १२६२, १२७४ और १३०५ (ई० सं० १२०५, १२१७ और १२४८) के तथा चाचिगदेव का वि० सं० १३३४ (ई० सं० १२७७) एवं सामंतसिंह के राज्यकाल के वि० सं० १३४२ और १३४५ (ई० सं० १२८६ और १२८८) के भी लेख हैं।

यह सूर्य का मंदिर टूटी-फूटी दशा में है। जिस समय सर जेम्स कैम्पबेल वहां गया उस समय इस जीर्ण-शीर्ण मन्दिर की उत्तरी दीवार विद्यमान थी, परन्तु खेद का विषय है कि प्राचीन वस्तुओं का महत्व न जाननेवाले वहां के तत्कालीन पुलिस सुपरिंटेंडेंट ने उसे तुड़वाकर वहां के बहुत से पत्थर अपने बंगले में चुनवा दिये।

जैकोब (यक्षकूप) तालाब के उत्तरी तट पर एक कुबेर की मूर्ति रक्ष्मी है, जिसकी खुदाई देखकर यह अनुमान किया जा सकता है कि वह विक्रम की ११ वीं शताब्दी के लगभग की बनी होनी चाहिये।

इस तालाब के निकट एक जैनमंदिर भी था, जो अब नष्ट हो गया है। इस मंदिर का एक स्तंभ तालाब के उत्तरी किनारे पर गज़नीख्वां (जालोरी पठान) की जीर्ण-शीर्ण क़ब्र के पास पड़ा हुआ है, जिसपर चौहान चाचिगदेव के समय का कार्तिकादि वि० सं० १३३३ (चैत्रादि १३३४) आश्विन सुदि १४ (ई० स० १२७७ ता० १२ सितंबर) सोमवार का लेख खुदा है, जिससे ज्ञात होता है कि यह मंदिर महावीर स्वामी का था।

नगर के भीतर चार जैन-मंदिर और हैं, जिनका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। भीनमाल से थोड़ी दूर उत्तर गौतम तालाब के पास सोलंकी राजा सिद्धराज का वि० सं० ११८६ (चैत्रादि ११८७) आषाढ़ सुदि १५ (ई० स० ११३० ता० २३ जून) का लेख है। 'श्रीमाल माहात्म्य' में यहां के कई प्राचीन स्थानों का वर्णन मिलता है।

यहां पर पहले गुर्जर वंशियों का राज्य था। फिर क्रमशः चावड़ों, रघुवंशी प्रतिहारों, परमारों और चौहानों का राज्य रहा। परमार और चौहान गुजरात के सोलंकीयों के सामन्त थे। चौहानों के राज्य की समाप्ति अलाउद्दीन खिलजी ने की। फिर उसके आसपास का प्रदेश पठानों को मिला, जो जालोरी पठान कहलाते थे। पीछे से यहां पर जोधपुर के राठोड़ों का अधिकार हुआ।

जालोर—जालोर परगने का यह मुख्य स्थान है और सूकड़ी नदी के किनारे पर बसा है ।

यहां पर प्राचीन सुदड़ गढ़ के भग्नावशेष हैं । कहते हैं कि पहले-पहल इसे परमारों ने बसाया था और बाद में यह चौहानों की राजधानी रहा । शिलालेखों में इसका नाम जाबालीपुर और किले का नाम सुवर्णगिरि मिलता है । सुवर्णगिरि का अपभ्रंश भाषा में सोनलगढ़ हुआ है और इसी के नाम से चौहानों की एक शाखा सोनगरा कहलाई है ।

यहां की सब से प्राचीन वस्तु यहां का तोपखाना है । अलाउद्दीन खिलजी के समय सोनलगढ़ चौहानों से मुसलमानों के हाथ में चला गया, जिन्होंने यहां के मंदिरों को तोड़कर मसजिद बनाई । बाद में राठोड़ों के हाथ में आने पर उन्होंने इसे अपना तोपखाना बना लिया । इसके तीन द्वारों में से उत्तर के द्वार पर फ़ारसी भाषा में एक लेख खुदा है, जिसमें मुहम्मद तुग़लक का नाम है ।

इस स्थान से जैन तथा हिन्दू मंदिरों से सम्बन्ध रखनेवाले कई लेख मिले हैं, जो नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—परमार राजा वीसल का वि० सं० ११७४ (चैत्रादि ११७५) आषाढ़ सुदि ५ (ई० स० १११८ ता० २५ जून) मंगलवार का एक लेख, जिसमें वीसल की राणी मेलरदेवी-द्वारा सिन्धुराजेश्वर के मंदिर पर सुवर्ण-कलश चढ़ाये जाने का उल्लेख है । इसमें वीसल के पूर्वजों की भी नामावली है ।

२—चौहान राजा कीर्तिपाल (कीतू) के पुत्र समरसिंह के समय का वि० सं० १२३६ (चैत्रादि १२४०) वैशाख (द्वितीय) सुदि ५ (ई० स० ११८३ ता० २८ अप्रैल) गुरुवार का एक लेख, जिसमें आदिनाथ के मन्दिर का सभामंडप बनावाये जाने का उल्लेख है ।

३—चार खंडों का एक लेख, जिसमें वि० सं० १२२१, १२४२,

(१) इन परमारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० २०४ ।

१२५६ और १२६८ (ई० सं० ११६५, ११८६, १२०० और १२१२) में पार्श्वनाथ के मंदिर के बनवाये जाने तथा जीर्णोद्धार होने आदि का उल्लेख है, जो वि० सं० १२२१ (ई० सं० ११६५) में चौलुक्य (सोलंकी) राजा कुमारपाल ने बनवाया था। वि० सं० १२४२ में महाराज समरसिंहदेव (चौहान) की आज्ञा से इसका जीर्णोद्धार हुआ।

४—वि० सं० १३२० (चैत्रादि १३२१) माघ सुदि १ (ई० सं० १२६५ ता० १६ जनवरी) सोमवार का एक लेख, जिसमें भट्टारक रावल लक्ष्मी-धर-द्वारा चन्दन विहार के महावीर स्वामी की पूजा के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

५—चौहान राजा चाचिगदेव के समय का वि० सं० १३२३ मार्ग-शीर्ष सुदि ५ (ई० सं० १२६६ ता० ३ नवम्बर) बुधवार का एक लेख, जिसमें उपर्युक्त महावीर स्वामी के भंडार के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

६—एक स्तम्भ पर वि० सं० १३५३ (श्रमांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० सं० १२९६ ता० २३ अप्रैल) सोमवार का लेख, जो सुवर्णगिरि (सोनलगढ़) के राजा महाराजकुल (महारावल) सामंतसिंह और उसके पुत्र कान्हड़देव के समय का है। इसमें पार्श्वनाथ के मंदिर के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है।

नगर के मध्य भाग में एक प्राचीन कचहरी है, जिसके विषय में ऐसा कहा जाता है कि कान्हड़देव के पुत्र सोनगरा वीरमदेव ने इसे बनवाया था। इसके प्रवेश-द्वार पर दो लेख हैं, जिसमें एक फ़ारसी में मुग़ल बादशाह जहांगीर के समय का और दूसरा मारवाड़ी भाषा में। कचहरी के बाहर कान्हड़देव के समय की बनवाई हुई 'सांडवाव' (बावली) है। शोरखाना दरवाजे के बाहर सुंडेलाय नामक तालाब है, जिसके पूर्वी किनारे पर चामुंडा माता का मंदिर है। इसके निकट एक छप्पर के नीचे एक मूर्ति है, जो चौसठ जोगिनी के नाम से पूजी जाती है। इसपर वि० सं० ११७५ (चैत्रादि ११७६) वैशाख वदि १ (ई० सं० १११६ ता० २६ मार्च) शनिवार का लेख खुदा है।

जालोर का गढ़ बहुत बड़ा है। इसमें दो प्राचीन जैनमंदिर तथा एक पुरानी मसजिद है। चौमुख मंदिर दो-मंजिला है, जिसके भीतर की मूर्तियों पर लेख खुदे हैं, जिनसे पता चलता है कि वे वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में स्थापित की गई थीं। इसके पश्चिमी द्वार के पास कुंथुनाथ की मूर्ति है, जिसपर वि० सं० १६८४ माघ सुदि १० (ई० स० १६२८ ता० ४ फ़रवरी) सोमवार का लेख है। इसमें इसके स्थापित किये जाने का उल्लेख है।

दूसरे जैनमंदिर में तीन तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं, जिनपर वि० सं० १६८१ प्रथम चैत्र वदि ५ (ई० स० १६२५ ता० १७ फ़रवरी) गुरुवार के राठोड़वंशी महाराजा गजसिंह के समय के लेख हैं। इसके निजमंदिर में दो कमरे हैं, जिनमें से एक में धर्मनाथ की मूर्ति है, जिसपर वि० सं० १६८३ (चैत्रादि १६८४) आपाढ वदि ४ (ई० स० १६२७ ता० २४ मई) गुरुवार का लेख है। दूसरे कमरे की मूर्ति पर भी उसी संवत् का लेख है। इस मंदिर के प्राचीन अंश में से केवल बाहरी दीवारें बच गई हैं।

इस मंदिर के निकट एक मसजिद है, जिसपर फ़ारसी में एक लेख खुदा है, जिससे पाया जाता है कि इसे गुजरात के सुलतान मुज़फ़्फ़र (दूसरा) ने बनवाया था।

गढ़ में अन्य दर्शनीय-स्थान राठोड़ों के महल, मल्लिकशाह की दर-गाह, दहियों का गढ़ और वीरमदेव की चौकी हैं। ऐसा कहते हैं कि यह क़िला दहियों के छल से ही अलाउद्दीन के हाथ लगा था। मुसलमानों के हाथ में जाने के पीछे यह क़िला जालोरी पठानों के अधिकार में रहा, फिर राठोड़ों को मिला।

पाली—यह पाली परगने का मुख्य स्थान है।

राजपूताने में रेल का प्रवेश होने के पहले यह नगर व्यापार का केन्द्र था और यहां के व्यापारियों की कोठियां मांडवी, सूरत और नवा-नगर तक थीं, जहां से पालीवाले व्यापारी ईरान, अरबिस्तान, अफ़्रीका, यूरोप तथा उत्तर में तिब्बत तक से माल मंगवाते और यहां का माल वहां

भेजते थे, परन्तु अब इसका वह महत्व जाता रहा है। अब भी यहां कपड़े की रंगाई, छुवाई तथा लोहे का काम होता है एवं लोइयां बनती हैं और ये वस्तुएं बाहर जाती हैं।

यहां के ब्राह्मण पालीवाल या पल्लीवाल नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें से नंदवाने बोहरे बड़े धनाढ्य थे और दूर-दूर तक व्यापार करते थे। मेवाड़ में इनको नंदवाने और दिल्ली, आगरा, कलकत्ता में बोहरे कहते हैं।

यहां के प्राचीन मंदिरों में सोमनाथ का मंदिर मुख्य है। इस मंदिर में खुदाई का काम बहुत सुन्दर है। सोलंकी राजा कुमारपाल के समय का वि० सं० १२०६ (चैत्रादि १२१०) द्वितीय ज्येष्ठ वदि ४ (ई० सं० ११५३ ता० १३ मई) का लेख विगड़ी हुई दशा में यहां मिला है। इसके निकट ही आनन्दकरणजी का मंदिर है।

तीसरे प्राचीन मंदिर का नाम 'नौलखा' है, जिसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है। यहां की मूर्तियों के आसनों पर कई लेख खुदे हैं। पुराने लेखों में वि० सं० ११४४, ११५१ तथा १२०१ (ई० सं० १०८७, १०९४ और ११४४) के लेख उल्लेखनीय हैं तथा पिछले लेख वि० सं० १५०१ (ई० सं० १४४४) से लगाकर वि० सं० १७०६ (ई० सं० १६४६) तक के हैं।

नगर के उत्तर-पूर्व में पातालेश्वर महादेव का प्राचीन मंदिर है, जो विक्रम की नवीं शताब्दी के आस-पास का बना जान पड़ता है। जीर्णोद्धार होते-होते इसका प्राचीन अंश प्रायः नष्ट हो गया है।

बीटू—यह पाली जिले में पाली से अनुमान १४ मील उत्तर-पश्चिम में है।

यहां लगभग ११ वीं शताब्दी का बना हुआ अकालनाथ का शिव-मंदिर है, जिसका शिखर पूर्णतया नष्ट हो गया है। इसके द्वार पर गरुड़ की मूर्ति बनी है, जिसके ऊपर एक कतार में लक्ष्मीनारायण, कुबेर, गण-पति, ब्रह्मा-सावित्री तथा शिव-गार्वती की मूर्तियां हैं। उससे ऊपर मध्य में एक शिव-लिंग है, जिसके दोनों ओर कलश से जल गिराती हुई दो मानव

आकृतियां बनी हैं। एक ताक में धर्मचक्र आसन पर बैठी हुई लकुलीश की मूर्ति है।

जोधपुर राजघराने के पूर्व पुरुष सीहा की देवली (स्मारक-स्तम्भ) इसी गांव के पास एक केर के वृक्ष के नीचे मिली थी, जो दो भागों में विभक्त है। ऊपर के भाग में अश्वारूढ़ सीहा की मूर्ति है। नीचे के भाग में वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० स० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार का लेख है, जिसमें सेतकुंवर के पुत्र राठोड़ सीहा की मृत्यु का उल्लेख है।

बाली—यह बाली हकूमत का मुख्य स्थान है।

प्राचीन काल में यह एक महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा, क्योंकि इसी के नाम से चौहानों की एक शाखा अब तक 'बालेचा' कहलाती है।

यहां के 'माता' के मंदिर से कई महत्व के लेख प्राप्त हुए हैं। यह मन्दिर वास्तव में एक स्वाभाविक गुफा है, जिसके सामने एक सभा-मंडप बनाकर उसे मन्दिर के रूप में परिचर्तित कर दिया गया है। चौक के स्तम्भों पर कई लेख खुदे हैं। एक स्तम्भ पर जयसिंह (जैत्रसिंह) और उसके सामन्त आशवाक (अश्वराज, आसराज) का वि० सं० १२०० (ई० स० १४३-४४) का लेख खुदा है। दूसरे स्तम्भ का लेख वि० सं० १२१६ भावण वदि १ (ई० स० ११५६ ता० ३ जुलाई) शुक्रवार का कुमारपाल के समय का है, जिसका दंड-नायक वैजलदेव था।

नाणा—यह बाली परगने में बाली से २१ मील दक्षिण में है।

यहां के प्राचीन मंदिरों में महावीरस्वामी का जैनमंदिर मुख्य है। इस मंदिर के सभा-मंडप के द्वार के तोरण के स्तम्भ और पश्चिमी द्वार विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी के आसपास के बने प्रतीत होते हैं। इस प्राचीन मंदिर का जीर्णोद्धार हुआ है। बाक्री का अंश जीर्णोद्धार के समय का बना है। मंदिर के द्वार के एक पार्श्व पर वि० सं० १०१७ (ई० स० १६०) का एक लेख है। मुख्य मूर्ति के आसन पर वि० सं० १५०६ माघ वदि १० (ई० स० १४५०

ता० ८ जनवरी) गुरुवार का लेख अंकित है। मंदिर के एक छबने पर मारवाड़ी भाषा में वि० सं० १६५६ भाद्रपद सुदि ७ (ई० स० १६०२ ता० १४ अगस्त) शनिवार का एक लम्बा लेख खुदा है, जिसका आशय यह है कि महाराणा अमरसिंह (प्रथम) ने मेहता नारायण को, जिसके पूर्वज सिवाने की लड़ाई में मारे गये थे, नाणा गांव दिया और यहां का एक रहूँट उसने महावीर की पूजा इत्यादि के खर्च के लिए भेंट किया। अन्य मूर्तियों पर के लेख वि० सं० १२०३ से १५०६ (ई० स० ११४६ से १४४६) तक के हैं। इस मंदिर के भीतर एक छोटा मसजिद का आकार बना हुआ है, जो संभवतः मुसलमानों की क्रूर दृष्टि से इसे बचाने के लिए बनाया गया हो। निकट ही लक्ष्मीनारायण का मंदिर है, जिसके बाहर सुरभि (सुरह) पर वि० सं० १३१४ (जैत्रादि १३१५) आपाद सुदि ५ (ई० स० १२५८ ता० ६ जून) गुरुवार का एक लेख खुदा है।

गांव के बाहर नीलकंठ महादेव का मंदिर है, जिसके द्वार के पास वि० सं० १२३७ (ई० स० ११८०) तथा वि० सं० १२५७ (ई० स० १२००) के दो लेख अंकित हैं। मंदिर के भीतर मारवाड़ी भाषा का लेख है, जिससे ज्ञात होता है कि इस मंदिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १२८३ (ई० स० १२२६) में अजयपालदेव के पुत्र भीमदेव (दूसरा, सोलंकी) के राज्य-समय में हुआ था। इस मंदिर से थोड़ी दूरी पर तीन और शिव-मन्दिरों के भग्नावशेष हैं, जो साधारण होते हुए भी नाणा के मंदिरों में सबसे प्राचीन प्रतीत होते हैं। परमार राजा महाराजाधिराज श्रीसोमसिंहदेव के समय का वि० सं० १२६० माघ वदि [? सुदि] १५ (ई० स० १२३४ ता० १६ जनवरी) सोमवार का लेख यहां पर ही मिला था, जो अब यहां से उठाकर नीलकंठ के मंदिर के दरवाजे के पास लगाया गया है। यह बहुत घिसा हुआ है। इस लेख में लकुलीश के मंदिर के निमित्त दिये गये दान का भी उल्लेख है।

बेलार—यह बाली परगने में नाणा से ३ मील उत्तर-पश्चिम में बसा है।

गांव से अनुमान आध मील दक्षिण में एक रम्य भील के तट पर एक शिवालय है। इसके द्वार पर गणेश की मूर्ति है और उसके ऊपर नवग्रह की मूर्तियां बनी हैं। गर्भगृह में शिवलिंग बना है, जिसकी पूजा होती है। इस मंदिर के पास सात और छोटे-छोटे मंदिर थे, जिनमें से अधिकांश गिर गये हैं।

ग्राम के भीतर एक जैनमंदिर है, जिसका सभामंडप विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के आस-पास का बना प्रतीत होता है। शेष सभी अंश नवीन हैं। स्तम्भों में से पांच पर लेख अंकित हैं, जो वि० सं० १२६५ (ई० सं० १२०८) के हैं और जिनमें ओसवालों-द्वारा इस मंदिर के जीर्णोद्धार किये जाने का उल्लेख है। एक स्तम्भपर वि० सं० १२३५ (अमांत) फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि ७ (ई० सं० ११७६ ता० १ मार्च) गुरुवार का लेख खुदा है, जिसमें थांघलदेव का नाम है।

भट्टंद—यह नाणा से डेढ़ मील उत्तर में है।

यहां कुछ प्राचीन मंदिर हैं, पर उनका कोई विशेष महत्व नहीं है। इनमें सरस्वती का मंदिर उल्लेखनीय है। गांव में एक प्राचीन बावली है, जिसपर वि० सं० ११०२ (चैत्रादि ११०३) मात क वदि ५ (ई० सं० १०४६ ता० २३ सितंबर) का एक लेख खुदा है, जो आठ के परमार राजा पूर्णपाल के समय का है। इस लेख में इस गांव का नाम 'भुडिपट्ट' दिया है, जिसका अपभ्रंश भट्टंद है।

बेड़ा—यह वाली से प्रायः १५ मील दक्षिण में है।

गांव के बाहर एक चतुर्भुज पर सूर्य की प्राचीन मूर्ति स्थापित है, जिसको अब रेवाड़ी लोग माता के नाम से पूजते हैं।

गांव के भीतर एक विष्णु (बाकुल) का मंदिर है, जिसकी बनावट पूर्णतया आधुनिक ढंग की है। इसके सस्वन्ध में आश्चर्यप्रद बात यह है कि मूर्ति के हाथ में एक तलवार है।

उपर्युक्त मंदिर के निकट ही एक बड़ा जैनमंदिर है, जिसके गर्भगृह के भीतर पीतल और पत्थर की लंबांकित मूर्तियां हैं। लेख वि० सं०

१३४७ से १६३० (ई० स० १२६० से १५७३) तक के हैं।

बेड़ा से दो मील की दूरी पर कुछ भग्नावशेष हैं, जिनको लोग 'जूना बेड़ा' कहते हैं। यहां की एक महावीर की मूर्ति पर वि० सं० ११४४ (ई० स० १०८७) का और पारसनाथ की मूर्ति पर वि० सं० १६४४ फाल्गुन (ई० स० १५८८) का एक-एक लेख खुदा है।

बेड़ा से तीन मील दूर जंगल में एक महादेव का मंदिर भी है, जिसका फ़र्श प्राचीन है। मंदिर के बाहरी भाग में कई स्मारक शिलाएं खड़ी हैं।

भाट्टंद—वाली से अनुमान १० मील दक्षिण में भाट्टंद गांव है।

गांव के बाहर तालाब के पास एक मिट्टी के ढेर पर बहुत प्राचीन जीर्ण-शीर्ण मंदिर है। इसका गर्भगृह दो भागों में विभक्त है और एक ताक में विष्णु के बुद्ध अवतार की मूर्ति है, जिसके सिर पर किरीट है और नीचे के दो हाथ तो पद्मासन से घेरी हुई जैनमूर्तियों के समान पैर के तलवों पर एक दूसरे पर धरे हुये हैं और ऊपर के दो हाथों में विष्णु के आयुध हैं।

गांव के भीतर एक दूसरा मंदिर जीर्ण दशा में है, जो बहुत पुराना नहीं है। इसके भीतर एक मूर्ति है, जिसके दो हाथ तो उपर्युक्त मन्दिर की मूर्ति के समान तलवों पर धरे हैं, परन्तु शेष दो में से एक में त्रिशूल है और दूसरे में सर्प। संभवतः यह ध्यानमग्न शिव की मूर्ति हो। यह मंदिर बहुत टूटा-फूटा है। कहते हैं कि एक थानेदार ने इसे अपना रसोड़ा बनाया था। सभामंडप के स्तम्भ पर चौलुक्य राजा कुमारपाल के समय का वि० सं० १२६० (चैत्रादि १२११) ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० ११५४ ता० २० मई) गुरुवार का एक लेख खुदा है, जो अब बहुत घिस गया है। इसमें उसके नाडोल के दंड-नायक (हाकिम) श्रीवैजाक' का भी उल्लेख है। इसमें एक

(१) वैजा, वैजाक, वैजलदेव या वैजलदेव सोलंकी राजा कुमारपाल और अजयपाल का सामंत और नर्मदा तट के एक मंडल का स्वामी था। उसका एक दानपत्र ब्रह्माण्ड पाठक से दिया हुआ वि० सं० १२३१ (चैत्रादि १२३२) का मिला है।

स्थल पर 'भाट्टपट्टनगर' शब्द आया है, जिसका अपभ्रंश भाटूंद है।

हथुंडी—यह बाली से प्रायः ११ मील दक्षिण-पूर्व में बसा है।

गांव में एक शिवमन्दिर है, जो बहुत प्राचीन नहीं है क्योंकि उसका प्रायः प्रत्येक प्राचीन अंश अब नष्ट हो गया है। यहां 'राता महावीर' का सादा जैनमन्दिर है, जहां से राष्ट्रकूट (राठोड़) धवल और उसके पुत्र बालप्रसाद के समय का वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० स० ९९७ ता० २४ जनवरी) रविवार का एक लेख मिला है, जो बड़े महत्व का है और इस समय राजपूताना म्यूज़ियम् (अजमेर) में सुरक्षित है। इस मंदिर के एक स्तम्भ पर वि० सं० १३३५ (चैत्रादि १३३६) श्रावण वदि १ (ई० स० १२७६ ता० २६ जून) सोमवार का लेख खुदा है, जिसमें राता महावीर के मंदिर के लिए २४ द्रम्म भेंट किये जाने का उल्लेख है। द्वार पर भी कई लेख हैं, जिनमें से एक वि० सं० १३४५ भाद्रपद वदि ६ (ई० स० १२८८ ता० २३ जुलाई) शुक्रवार का है और इसमें चाहुमान राजा सामन्त-सिंह का वर्णन है, जो जालोर का स्वामी था एवं जिसके अधिकार में यह प्रदेश था।

इस गांव का संस्कृत नाम हस्तिकुंडी था और यहां ११ वीं शताब्दी में राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की राजधानी थी। इसी स्थान के नाम से राठोड़ों की एक शाखा 'हथुंडिया राठोड़' प्रसिद्ध है। ये राठोड़ जोधपुर के राठोड़ों से भिन्न हैं और सम्भवतः दक्षिण या गुजरात के पुराने राठोड़ों से निकले हुए हों।

सेवाड़ी—यह स्थान बाली से ६ मील दक्षिण में बसा है।

प्राचीनता की दृष्टि से यहां का महावीर का मंदिर महत्वपूर्ण है, जिसकी बनावट ११ वीं शताब्दी के आसपास की है। इसका सभा-मंडप अर्वाचीन है। निज मंदिर के भीतर स्थापित मूर्ति के आसन पर एक लेख खुदा है, जिसमें केवल वि० सं० १२४५ (ई० स० ११८८) और 'सरदेर-

यह कुछ समय तक गुजरात के सोलंकियों की तरफ से नाडोल के चौहानों के प्रदेश का शासक भी रहा था। संभवतः यह भड़ोच के प्राचीन चौहानों का वंशधर हो।

गच्छ' पढ़ा जाता है। यहां एक सरस्वती की मूर्ति भी है। देवकुलिकाओं के छबनों पर कई लेख खुदे हैं, जिनमें सबसे प्राचीन चौहान महाराजा-धिराज अश्वराज (आसराज) के समय का वि० सं० ११६७ चैत्र सुदि १ (ई० सं० १११० ता० २३ मार्च) का है। दूसरा वि० सं० ११७२ (ई० सं० १११५) का है, जिसमें चौहान कटुकराज-द्वारा तीर्थंकर की पूजा के लिए दान दिये जाने का उल्लेख है। तीसरा लेख वि० सं० १२१३ (ई० सं० ११५६) का है, जिसमें नाडोल के दंडनायक (शासक, हाकिम) वैजा (वैजलदेव) का उल्लेख है, जो भाट्टंद में प्राप्त लेख में उल्लिखित वैजाक ही है।

गांव से आध मील दक्षिण-पूर्व में एक कुएं के पास पेड़ के नीचे बहुत सी मूर्तियां रखी हुई हैं।

पूर्व में प्रायः एक मील की दूरी पर मूंजा बालेचा का प्रख्यात गढ़ और छतरी है। यह मूंजा सीसोदा के राणा हम्मीर के हाथ से मारा गया था। बालेचा चौहानों की एक शाखा का नाम है।

सांडेराव—बाली से ६ मील उत्तर-पश्चिम में यह गांव है।

संस्कृत लेखादि में इसका नाम 'सण्डेर' मिलता है। इसके नाम से जैनों का एक गच्छ 'सण्डेरक या संडेर' नाम से प्रसिद्ध है।

पुरातत्व की दृष्टि से यहां का महावीरस्वामी का मंदिर महत्वपूर्ण है। इसमें चौहान केलहणदेव के समय का वि० सं० १२२१ माघ वदि २ (ई० सं० ११६५ ता० १ जनवरी) शुक्रवार का एक लेख है, जिसमें राज-माता आनलदेवी-द्वारा महावीरस्वामी (मूल-नायक) की पूजा के लिए भूमि दिये जाने का उल्लेख है। सभामंडप के स्तम्भों पर भी ४ लेख हैं, जिनमें से एक उपर्युक्त राजा के समय का वि० सं० १२३६ कार्तिक वदि २ (ई० सं० ११७६ ता० १६ सितंबर) बुधवार का है और एक चौहान महाराजाधिराज सामन्तसिंहदेव के समय का वि० सं० १२५८ (चैत्रादि १२५६) चैत्र सुदि १३ (ई० सं० १२०२ ता० ८ मार्च) शुक्रवार का है।

कोरटा—सांडेराव से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में यह गांव है। इससे मिला हुआ वामणेश नाम का गांव इसी की ब्रह्मपुरी (ब्राह्मणों के रहने का मोहल्ला) थी। संस्कृत शिलालेखों में इसका नाम 'कोरंटक' मिलता है और इसी के नाम पर जैनों का एक गच्छ 'कोरंटक' कहलाया है।

यहां तीन जैनमंदिर हैं, जिनमें से एक तो गांव के भीतर है और शेष दो बाहर। गांव के भीतर का शांतिनाथ का मंदिर चौदहवीं शताब्दी के आसपास का बना जान पड़ता है। इसके सभामंडप के स्तंभों पर दो लेख खुदे हैं।

मेठी गांव के निकट रिखवदेव (ऋषभदेव) का जैनमंदिर है, जिसकी मूर्ति के आसन पर वि० सं० ११४३ (चैत्रादि ११४४) वैशाख सुदि ३ (ई० सं० १०८७ ता० ८ अप्रैल) गुरुवार का लेख है।

यहां से करीब पांच मील के अन्तर पर महावीरस्वामी का मन्दिर है। इसके सभामंडप में कई खुदाई के पत्थर वामणेश से लाये हुए रखे हैं।

वामणेश नाम की इस प्राचीन नगर की ब्रह्मपुरी में एक सूर्य का मंदिर है, जिसका प्राचीन सभामंडप पूर्णतया नष्ट हो गया है। यहां के स्तंभों पर पांच लेख खुदे हैं, जिनमें से तीन महाराजाधिराज सामन्तसिंह के समय के (जो संभवतः चौहान होना चाहिये) वि० सं० १२५८ (ई० सं० १२०१) के हैं। शेष में से एक जालोर के चौहान सामन्तसिंह के समय का वि० सं० १३४८ (चैत्रादि १३४९) आपाढ़ वदि ४ (ई० सं० १२९२ ता० ६ जून) का है, जिसमें प्रति गहूँट सालाना तीन रुपये उक्त मंदिर के मेले के समय दान दिये जाने की आज्ञा है।

यहां से तीन ताम्रपात्र भी मिले हैं, जिनमें से एक नाडोल के चौहान आल्हण के पुत्र महाराज केलहणदेव का वि० सं० १२२० आषण वदि अमावास्या (ई० सं० ११६३ ता० ३ जुलाई) बुधवार सूर्यग्रहण के दिन का है। दूसरा उसी महाराजा के समय का वि० सं० १२२३

(चैत्रादि १२२४) ज्येष्ठ वदि १२ (ई० स० ११६७ ता० १७ मई) सोम-
(१ सौम्य = बुध)वार का है और तीसरा भी उसी महाराजा के समय का
है, परन्तु उसमें संवत् नहीं है। ये तीनों ताम्र-पत्र इस समय राजपूताना
म्यूजियम् (अजमेर) में सुरक्षित हैं।

सादड़ी—यह स्थान देसूरी परगने में देसूरी से ८ मील दक्षिण-
पश्चिम में है।

यह गोड़वाड़ प्रान्त का सबसे बड़ा कस्बा है और यहां बहुत से
मन्दिर हैं, जिनमें से वराह, कपूरलिंग महादेव एवं जागेश्वर के मंदिर
मुख्य हैं।

वराह के मन्दिर के पास भोलानाथ तथा लक्ष्मी के मंदिर हैं। उसके
प्रधान ताकों में से एक में ब्रह्मा तथा शेष में शिव, गणेश एवं पंचमुख
महादेव की मूर्तियां हैं। निज-गृह की वराह की मूर्ति के लिए यह प्रसिद्ध
है कि इसे नन्दवाने ब्राह्मण धालोप से लाये थे। गणेश और भोलानाथ के
मंदिरों के शिखरों को छोड़कर अन्य सभी भाग आधुनिक हैं।

नगर के बाहरी भाग में कपूरलिंग महादेव तथा चतुर्भुज के मंदिर
एक दूसरे के सामने बने हुए हैं।

चतुर्भुज का मंदिर प्रायः जीर्णविस्था में है, जिसके बाहर के ताक
में लकुलीश और शिव की मूर्तियां हैं। इसके द्वार के ऊपरी भाग में दोनों
ओर दो लेख खुदे हैं। वि० सं० १२२४ फागुन सुदि २ (ई० स० ११६८
ता० १२ फ़ावरी) सोमवार का लेख नाडोल के चौहान केलहणदेव का है।
निज मंदिर के भीतर काले पत्थर की चतुर्भुज की मूर्ति है, जिसके हाथों
में कमल, गदा, चक्र तथा शंख हैं।

नगर के निकट एक बावली के किनारे महाराणा प्रतापसिंह के पुत्र
महाराणा अमरसिंह के समय का वि० सं० १६५४ (चैत्रादि १६५५)
वैशाख वदि २ (ई० स० १५९८ ता० १३ अप्रैल) गुरुवार का लेख है,
जिसमें उस बावली के बनाये जाने का उल्लेख है। यह बावली और इसका
ऊपर की बारादरी मेवाड़ के प्रसिद्ध मंत्री भामाशाह के भाई ताराचंद ने

गोड़वाड़ का हाकिम रहते समय बनवाई थी। इसके पास ताराचंद, उसकी चार स्त्रियों, एक खवास, छः गायनियों, एक गवैये और उस (गवैये) की औरत की आकृतियां पत्थरों पर बनी हुई हैं।

जागेश्वर का मंदिर महाराणा अमरसिंह के मंत्री ताराचंद कावड़िया (भामाशाह का भाई) के बाग के अंदर की बागदरी का रूपान्तर कर एक साधु-द्वारा बनाया गया है। इस मंदिर के दो स्तंभों पर चार लेख हैं, जिनसे पता चलता है कि ये स्तंभ नाडोल के लक्ष्मणस्वामी (लाखणदेव) के मंदिर से लाये गये थे।

राणपुर—यह स्थान सादड़ी से ६ मील दक्षिण में है।

यहां आदिनाथ का विशाल और प्रसिद्ध चौमुख मंदिर है। यह जैनियों के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है। आदिनाथ का यह मंदिर वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) में महाराणा कुंभकर्ण (कुंभा) के राज्य-काल में बनाया गया था।

इसके सामने दो अन्य जैनमंदिर हैं, जिनमें से पार्श्वनाथ के मंदिर में अश्लील चित्र खुदे हैं।

वहां से दक्षिण में कुछ दूरी पर सूर्य का जीर्ण-शीर्ण मंदिर है, जिसके बाहर के भाग में ब्रह्मा, विष्णु और शिव की ऐसी मूर्तियां बनी हैं, जिनका ऊपर का भाग उन देवताओं का और नीचे का भाग सूर्य का है, जिसके पैरों में लम्बे बूट हैं और जो सात घोड़ों के रथ पर सवार है।

घाणेराम—देसूरी से ४ मील दक्षिण-पश्चिम में यह स्थान भी जैनो के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है।

जैनो का महावीरस्वामी का मंदिर यहां से तीन मील दक्षिण-पूर्व में है। इसमें दंडनायक वैजलदेव के समय का वि० सं० १२१३ भाद्रपद सुदि ४ (ई० सं० ११४६ ता० २१ अगस्त) मंगलवार का एक लेख है, जिसमें महावीर के निमित्त दान दिये जाने का उल्लेख है।

नारलाई—यह गांव देसूरी से ४ मील उत्तर-पश्चिम में है। छोटासा ग्राम होने पर भी यहां प्रायः सोलह प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें से अधिकांश

जैनों के हैं।

गांव के पूर्व में सोनगरे चौहानों के वनवाये हुए पहाड़ी किले के भग्नावशेष हैं। यह किला 'जयकल' नाम से प्रसिद्ध है और इसे जैन लोग शत्रुंजय के समान पवित्र मानते हैं। गढ़ में आदिनाथ का जैनमंदिर है, जिसकी मूर्ति के आसन पर वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) वैशाख सुदि ८ (ई० स० १६३० ता० १० अप्रैल) शनिवार का महाराणा जगतसिंह के समय का एक लेख है, जिसमें मंदिर के जीर्णोद्धार तथा आदिनाथ (मूलनायक) की मूर्ति के स्थापित होने का उल्लेख है।

पहाड़ी के शिखर पर वैजनाथ महादेव का नवीन मंदिर है। ज़रा और आगे हटकर पूर्वोत्तर शिखर पर गोरखमठड़ी है, जिसके दो खंडों में से एक में दत्तात्रेय की पाटुका और दूसरे में एक विशाल है, जो अब हिंगलाज माता के नाम से पूजा जाता है।

पहाड़ी के निम्न भाग में गांव से बाहर कई प्राचीन जैन मंदिर हैं, जिनमें से सुपार्श्व का मंदिर मुख्य है। इसके सभा-मंडप में मुनिमुवत की मूर्ति है, जिसपर अभयराज के समय का वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० स० १६६५ ता० ७ मई) रविवार का एक लेख है, जिसमें इसके बनाये जाने का उल्लेख है। यह अभयराज नाडोल का मेड़तिया जागीरदार होना संभव है।

गांव के दक्षिण-पूर्वी किनारे का एक अन्य पहाड़ी के शिखर पर नेमीनाथ का जैनमंदिर है, जिसे यहां 'जादवाजी' कहते हैं। इसके सभा-मंडप के स्तंभों पर दो लेख हैं। एक वि० सं० ११६५ आश्विन वदि १५ [अमावास्या] (ई० स० ११३८ ता० ६ सितंबर) मंगलवार का तथा दूसरा वि० सं० १४४३ (चैत्रादि १४४४) कार्तिक वदि १४ (ई० स० १३८७ ता० ११ अक्टोबर) शुक्रवार का चौहान महाराजाधिराज वणवीर-देव के पुत्र रणवीरदेव के समय का, जिनमें पूजा इत्यादि के लिए भेंट देने का उल्लेख है।

इन मंदिरों के अतिरिक्त यहां तपेश्वर का मंदिर है, जिसमें गणपति

एवं सूर्य की मूर्तियाँ हैं ।

आदीश्वर का एक दूसरा जैनमंदिर भी उल्लेखनीय है । इसमें वि० सं० १५५७ (चैत्रादि १५५८) वैशाख सुदि ६ (ई० सं० १५०१ ता० २३ अप्रैल) शुक्रवार का एक लेख है, जिसमें लिखा है कि यह मंदिर वि० सं० ६६४ (ई० सं० ६०७) में यशोभद्रसूरि-द्वारा खेड़ नामक स्थान से यहाँ मंत्र-शक्ति से लाया गया था^१ ।

इसके सभा-मंडप के ६ स्तंभों पर ५ लेख हैं, जिनमें से सबसे पुराना वि० सं० ११८७ फाल्गुन सुदि १४ (ई० सं० ११३१ ता० १२ फरवरी) गुरुवार का है । शेष चारों चाहुमान (चौहान) राजा रायपाल के समय के वि० सं० ११८६ से १२०२ (ई० सं० ११३२ से ११४५) तक के हैं । उपर्युक्त सभी लेखों में महावीर की पूजा इत्यादि के लिए दान देने का उल्लेख है । इससे यह स्पष्ट है कि यह मंदिर पहले महावीर स्वामी का रहा होगा, बाद में आदिनाथ की मूर्ति यहाँ पर स्थापित की गई, जैसा कि निज मंदिर के वि० सं० १५५७ (चैत्रादि १५५८) वैशाख सुदि ६ (ई० सं० १५०१ ता० २३ अप्रैल) शुक्रवार के लेख से प्रकट है । यहाँ कई अन्य छोटे-छोटे लेख भी हैं, जिनका समय वि० सं० १५६७ से १५७१ (ई० सं० १५१० से १५१४) तक है । इनसे यह ज्ञात होता है कि इसका समय-समय पर जीर्णोद्धार होता रहा है । वि० सं० १६७४ (ई० सं० १६१७) में तो आदिनाथ की नई मूर्ति बिठलाई गई थी ।

गांव के एक मील दक्षिण-पश्चिम के एक भोयरा (स्वाभाविक गुफा) में महादेव के मंदिर के निकट एक लेख चौलुक्य राजा कुमारपाल (कुंवर-पालदेव) के समय का वि० सं० १२२८ माघ सुदि १३ (ई० सं० ११७२ ता० १० जनवरी) सोमवार का है, जिसमें मंडप के बनाये जाने का उल्लेख है । इससे यह भी पता चलता है कि उस समय नाडोल चौहान केलहण के अधिकार में, बोरडी राणा लक्ष्मण के और सोनांणा ठाकुर अणसीह के अधिकार में था ।

(१) यह कथा कल्पित है ।

नाडोल—यह स्थान देसूरी से १० मील उत्तर-पश्चिम में है। यह गोड़वाड़ के जैनों के पांच तीर्थों में से एक है। यहां मारवाड़ के चाहु-मानों (चौहानों) की मूल राजधानी थी।

टाँड को वि० सं० १०२४ (ई० स० १६७) एवं वि० सं० १०३६ (ई० स० १८२) के दो लेख चाहुमान वंश के संस्थापक राजा लक्ष्मण के समय के यहां मिले थे, पर उसने इन दोनों पत्थरों को लन्दन की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी को प्रदान कर दिया।

अणहिलवाड़ा और सोमनाथ जाते समय महमूद गज़नवी इस नगर से गुज़रा था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने भी अणहिलवाड़ा जाते समय बाली तथा नाडोल के गढ़ों को छीना था।

पुरातत्त्व की दृष्टि से यहां का सूरजपोल नामक दरवाज़ा महत्व-पूर्ण है। इसके विषय में प्रसिद्धि है कि इसे नाडोल के चौहानों के मूल-पुरुष राय लाखण (लक्ष्मण) ने बनवाया था। यहां पर एक लेख वि० सं० १२२३ (चैत्रादि १२२४) श्रावण वदि १५ [अमावास्या] (ई० स० ११६७ ता० १८ जुलाई) मंगलवार का चौहान केतहण के समय का है, जिसका बहुत अंश घिस गया है। यहां से थोड़ी दूर पश्चिम में नीलकंठ महादेव का मंदिर है, जिसके एक तारक में वि० सं० १६६६ ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १६०६ ता० ७ जून) बुधवार का पातसाह श्रीस्लीमसाह नूरदी महमद जहांगीर (अकबर का पुत्र) के समय का लेख है। इसमें लिखा है कि जालोर के स्वामी गज़नीखां ने नाडोल के सामने जहांगीर के नाम से एक शहरपनाह बनवाया। इस मंदिर के पीछे प्राचीन गढ़ के भग्नावशेष हैं।

नगर के बाहर उत्तरी किनारे पर सोमेश्वर का मंदिर है, जिसके स्तंभ १२ वीं शताब्दी के आस-पास के बने प्रतीत होते हैं। स्तंभों पर खुदे हुए लेखों में चौहान राजा जोजलदेव के समय का वि० सं० ११४७ (चैत्रादि ११४८) वैशाख सुदि २ (ई० स० १०६१ ता० २३ अप्रैल) बुधवार का लेख सबसे प्राचीन है। अन्य दो लेख चौहान राजा रायपाल के समय के वि० सं० ११६८ श्रावण वदि ८ (ई० स० ११४१ ता० २६ जून)

रविवार एवं (कार्तिकादि) वि० सं० १२०० (चैत्रादि १२०१) [अमांत] भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि ८ (ई० सं० ११४४ ता० २३ अगस्त) बुधवार के हैं।

यहां का पद्मप्रभ का जैनमंदिर भी उल्लेखनीय है। इसके निज मंदिर की दोनों मूर्तियों के आसन पर वि० सं० १२१५ (चैत्रादि १२१६) वैशाख सुदि १० (ई० सं० ११५६ ता० २८ अप्रैल) मंगलवार के लेख हैं। मंदिर की अन्य तीन मूर्तियों पर एक ही आशय के वि० सं० १६८६ (चैत्रादि १६८७) प्रथम आषाढ वदि ५ (ई० सं० १६३० ता० २१ मई) शुक्रवार के लेख हैं, जिनसे यह ज्ञात होता है कि पद्मप्रभ की मूर्ति महाराणा जगतसिंह (प्रथम) के समय स्थापित की गई थी।

गांव के बाहर प्रायः पन्द्रह मंदिर थे, जिनमें खेत्रपाल (क्षेत्रपाल) का स्थान बहुत प्राचीन था। वे अब नष्टप्राय हो गये हैं।

गांव से आध मील पूर्व में 'जूना खेड़ा' है। पहले यह गांव इसी स्थान पर था। प्राचीन मंदिरों के यहां अनेक भग्नावशेष हैं, जिनमें हनुमान का मंदिर सबसे प्राचीन कहा जाता है।

वरकाणा—देसूरी जिले में वसा हुआ यह स्थान भी जैनों के गोड़वाड़ के पांच तीर्थों में से एक है। यहां पार्श्वनाथ का जैनमंदिर है, जो १७ वीं शताब्दी के आसपास का बना प्रतीत होता है।

आऊआ—सोजत परगने में सोजत से २१ मील दक्षिण में है। यहां कामेश्वर का प्राचीन मंदिर है। इसके सभामंडप में चार लेख खुदे हैं, जिनमें सबसे प्राचीन नाडोल के चौहान अणहिल के पुत्र जेन्द्रपाल के समय का वि० सं० ११३२ आश्विन वदि १५ [अमावास्या] (ई० सं० १०७५ ता० १२ सितंबर) शनिवार का है। दूसरा लेख वि० सं० ११६८ फाल्गुन वदि १३ (ई० सं० १११२ ता० २८ जनवरी) रविवार का और तीसरा वि० सं० १२२६ (अमांत) आश्विन (पूर्णिमांत कार्तिक) वदि १ (ई० सं० ११७२ ता० ४ अक्टोबर) बुधवार का है। उपर्युक्त तीनों लेखों में मन्दिर को दान दिये जाने का उल्लेख है।

दूसरा अध्याय

वर्तमान राठोड़ों से पूर्व के मारवाड़ के राजवंश

राजपूताने के प्राचीन राजवंशों का विस्तृत इतिहास हमने अपने 'राजपूताने के इतिहास' की प्रथम जिल्द में दिया है। उनमें से कितने एक का अधिकार मारवाड़ पर भी रहा, जिनका परिचय बहुत संक्षेप से यहां दिया जाता है।

मौर्य वंश

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशों और राज्यों की भांति इस राज्य का प्राचीन इतिहास भी अंधकार में ही है। महाभारत-काल में यह राज्य पांडवों के अधीन था। उनके पीछे मौर्यवंश की स्थापना तक का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। इस प्रतापी राज्यवंश का संस्थापक चन्द्रगुप्त था, जो नंद-वंश का राज्य छीनकर विक्रम संवत् से २६४ (ई० स० से ३२१) वर्ष पूर्व पाटलीपुत्र (पटना, बिहार) के राज्यसिंहासन पर बैठा। उसने क्रमशः सारा उत्तरी हिन्दुस्तान विजयकर अपने अधीन किया, जिससे राजपूताने के मारवाड़ आदि प्रदेश भी उसके हाथ में आ गये। चन्द्रगुप्त मौर्यवंश में बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसके समय में, राज्य भर में समृद्धि और शान्ति का निवास रहा और कलाओं आदि का अच्छा विकास हुआ। प्रसिद्ध यूनानी विजेता सिकन्दर ने चढ़ाई कर पंजाब के कुछ अंश पर अधिकार कर लिया था, परन्तु उसके लौटते ही चन्द्रगुप्त ने वहां से यूनानियों को निकाल दिया। सिकन्दर के मरने पर उसका राज्य उसके सेनापतियों में बंट गया। बाक्ट्रिया (बलख) का प्रदेश उसके सेनापति

सेल्युकस निकेटार के हिस्से में आया, जिसने पुनः पंजाब का प्रदेश विजय करने के लिए चढ़ाई की, पर उसे चन्द्रगुप्त से हारकर बहुत से और भी प्रदेश उसे सौंपने पड़े। पीछे से उसका राजदूत मेगास्थनीज़ चन्द्रगुप्त के दरबार में आकर रहा। चन्द्रगुप्त का पौत्र अशोक भी बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बौद्ध धर्म ग्रहणकर उसके प्रचार के लिए जगह-जगह स्तंभ खड़े कराके उनपर तथा पहाड़ी चट्टानों पर अपनी धर्म-आज्ञायें खुदवाई और भारतवर्ष से बाहर भी धर्मप्रचारकों को भेजा। इस वंश के अंतिम राजा बृहद्रथ को मारकर उसका सेनापति सुगवंशी पुष्यमित्र उसके राज्य का स्वामी हुआ^१। सुगवंशियों का राज्य मारवाड़ पर रहा या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता।

कुशन वंश

तदनन्तर कुशन-वंशियों का यहां राज्य होना अनुमान किया जाता है। संभवतः कनिष्क या इसके पिता वाभेष्क के समय से उनका इधर अधिकार हुआ हो। इस वंश में कनिष्क बड़ा प्रतापी राजा हुआ, जिसका राज्य राजपूताना, सिंध, खोतान, यारकन्द आदि तक फैला हुआ था। बौद्ध-धर्मानुयायी होने पर भी वह हिन्दुओं के शिव आदि देवताओं का पूजक था^२।

क्षत्रप वंश

कुशन-वंशियों के पीछे शक जाति के पश्चिमी क्षत्रपों का इस प्रदेश पर अधिकार रहा, जैसा कि महाक्षत्रप रुद्रदामा के शक संवत् ७२ (वि० सं० २०७ = ई० सं० १५०) से कुछ ही पीछे के लेख से पाया जाता है। वह क्षत्रपों में बड़ा प्रतापी हुआ। उसके वंशजों का इस प्रदेश पर बहुत समय तक अधिकार बना रहा। अंतिम क्षत्रप राजा स्वामी रुद्रसिंह हुआ,

(१) मौर्य राजवंश के विस्तृत इतिहास के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ६८-१०८।

(२) वही; पृ० १२४-२७।

जिसे शक संवत् ३१० (वि० सं० ४४५ = ई० सं० ३८८) के कुछ पीछे मारकर गुप्तवंश के महाप्रतापी राजा चन्द्रगुप्त (दूसरा) ने, जिसका विरुद्ध विक्रमादित्य भी था, सारा राज्य अपने अधीन किया^१। अतएव मारवाड़ भी उस(स्वामी रुद्रसिंह)के अधिकार से चला गया।

गुप्त वंश

चन्द्रगुप्त बड़ा शक्तिशाली राजा था। उसने अपने पिता समुद्रगुप्त से अधिक देश अपने राज्य में मिलाये। उसका विद्यानुराग भी बड़ा-चढ़ा था। उसके राज्यकाल में प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाहियान भारत में आया, जिसने उस समय के राज्य-वैभव, न्याय-प्रवन्ध आदि का अपनी यात्रा-पुस्तक में अच्छा वर्णन किया है। चन्द्रगुप्त से लगाकर भातुगुप्त तक गुप्त-वंशियों का यहां अधिकार रहा। उनके सिके मारवाड़ में मिलते हैं^२।

हर्ग वंश

गुप्तवंश के पीछे यहां हर्गवंश के राजा तोरमाण का अधिकार हुआ, जिसका थोड़े समय बाद ही देहांत हो गया। उसका पुत्र मिहिरकुल बड़ा प्रतापी हुआ। वह पीछे से बौद्ध धर्म का कट्टर विरोधी बन गया, जिससे उसने उक्त धर्म के उपदेशकों आदि को मरवाने की आज्ञा निकाल दी। वि० सं० ५८६ (ई० सं० ५३५) के आस-पास मालवा के राजा यशोधर्म ने उसे हटाकर उसका राज्य छीन लिया और मारवाड़ पर भी उस(यशोधर्म)का अधिकार हो गया। उसके पीछे उसके वंशजों का कुछ भी पता नहीं चलता^३।

गुर्जर वंश

हर्गवंश के पीछे गुर्जर वंश का यहां अधिकार होता पाया जाता है, जिनकी राजधानी भीनमाल थी। गुर्जरों के अधीन होने के कारण मारवाड़

(१) रत्नों के विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ११२-२४।

(२) वही; जि० १; पृ० १२७-३६।

(३) वही; जि० १; पृ० १४२-४६।

का भीनमाल से उत्तर का सारा पूर्वी हिस्सा गुर्जरवा (गुजरात, पुराना) कहलाता था । डीडवाना परगना भी गुर्जरवा का एक ज़िला था, ऐसा प्रतिहार राजा भोजदेव (प्रथम, मिहिर, आदिवराह) के वि० सं० ६०० (ई० सं० ८४३) के डीडवाना दफ़्त के सिवा गांव के दानपत्र से पाया जाता है । गुर्जर वंश के राजाओं का विशेष वृत्तान्त और नाम आदि अब तक बात नहीं हुए^१ ।

चावड़ा वंश

गुर्जरों के पीछे यहां चावड़ों का अधिकार हुआ, जिनकी राजधानी भी भीनमाल ही रही । भीनमाल के चावड़ों का शृंखलाबद्ध इतिहास अब तक नहीं मिला, पर वहां उनका राज्य वि० सं० ७६६ (ई० सं० ७३६) तक रहना तो लाट देश के सोलंकी सामंत पुलकेशी (अवनिजनाश्रय) के उक्त संवत् के दानपत्र से सिद्ध है । वसंतगढ़ (सिरोही राज्य) से एक शिलालेख राजा वर्मलात का वि० सं० ६८२ (ई० सं० ६२५) का मिला है । भीनमाल के रहनेवाले प्रसिद्ध माघ कवि ने अपने रचे हुए 'शिशुपालवध' (माघकाव्य) में अपने दादा सुप्रभदेव को वर्मलात राजा का सर्वाधिकारी (मुख्य मंत्री) लिखा है, अतएव वर्मलात भीनमाल का राजा होना चाहिये । वसंतगढ़ के लेख तथा 'शिशुपालवध' में राजा वर्मलात का वंश-परिचय नहीं दिया है । भीनमाल में रहनेवाले ब्रह्मगुप्त ज्योतिषी ने शक सं० ४५० (वि० सं० ६८५ = ई० सं० ६२८) में अर्थात् वर्मलात के समय के शिलालेख से केवल तीन वर्ष पीछे 'ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त' नामक ग्रन्थ रचा, जिसमें वह लिखता है कि उस समय वहां का राजा चाप(चावड़ा)वंशी व्याघ्रमुख था, अतएव या तो व्याघ्रमुख वर्मलात का उत्तराधिकारी रहा हो अथवा ये नाम एक ही व्यक्ति के हों और व्याघ्रमुख उस(वर्मलात)का बिरुद रहा हो^२ ।

(१) गुर्जर वंश के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १४७-५१ ।

(२) वही; जि० १; पृ० १६२-६५ ।

बैस वंश

कन्नौज के बैसवंशी महाप्रतापी राजा हर्षवर्द्धन ने चावड़ों को अपने अधीन किया। उसे श्रीहर्ष, हर्ष और शीलादित्य भी कहते थे। वह बड़ा वीर था। उसने सिंहासनारूढ़ होते ही दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया और वह तीस वर्ष तक निरंतर युद्ध करता रहा। उसने कश्मीर से लेकर आसाम तक और नेपाल से नर्मदा तक के सब देश अपने अधीन कर विशाल राज्य स्थापित किया। उसने दक्षिण को भी अपने अधीन करना चाहा, पर बादामी (वातापी, बंबई अहाते के बीजापुर जिले के बादामी विभाग का मुख्य स्थान) के चालुक्य (सोलंकी) राजा पुलकेशी (दूसरा) से हार जाने पर उसका वह मनोरथ सफल न हुआ। वह स्वयं कलाप्रेमी, विद्वान् और विद्यानुरागी था तथा उसके आश्रय में बड़े-बड़े विद्वान् रहते थे। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएन्त्संग उसके समय में भारतवर्ष में आया और उसके साथ भी रहा। हर्षवर्द्धन ने चीन के बादशाह से मैत्री स्थापित कर वहां अपना ब्राह्मण दूत भेजा, जो वहां से वि० सं० ७०० (ई० स० ६४३) में लौटा। वि० सं० ७०४ (ई० स० ६४७) में चीन के बादशाह ने दूसरी बार अपने दूतदल को जिसका मुखिया वंगहुपन्त्से था, हर्षवर्द्धन के दरबार में भेजा, परंतु उसके मगध में पहुंचने के पूर्व ही वि० सं० ७०५ (ई० स० ६४८) के आस-पास हर्ष का देहांत हो गया। उसके मरते ही राज्य में अव्यवस्था फैल गई और उसके सेनापति अर्जुन ने राज्यासिंहासन छीनकर चीनी दूतदल को लूट लिया। इसमें कई चीनी सिपाही मारे गये। तब उक्त दूतदल का मुखिया (वंगहुपन्त्से) अपने बचे हुए साथियों सहित भागकर नेपाल चला गया, जहां से थोड़े दिनों बाद ही सहायता लाकर उसने अर्जुन को गिरफ्तार कर लिया और वह उसे पकड़कर चीन ले गया।

(१) बैस वंश के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १५४-६१ ।

रघुवंशी प्रतिहार^१

हर्ष की मृत्यु के पीछे उसके कन्नौज के साम्राज्य में अव्यवस्था फैल गई, जिससे लाभ उठाकर भीनमाल के रघुवंशी प्रतिहार राजा नागभट (दूसरा) ने चक्रायुध को परास्तकर वह विशाल राज्य अपने अधीन कर लिया। उसके समय से ही इन प्रतिहारों की राजधानी कन्नौज हुई। उसने आंध्र, सेंधव (सिंध), विदर्भ (वराह), कर्लिग और बंग के राजाओं को जीता तथा आनर्त, मालव, किर्गट, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य देशों के पहाड़ी किले ले लिये। मारवाड़ में उसका एक शिलालेख वुचकुला (वीलाड़ा परगना) से वि० सं० ८७२ (ई० स० ८१५) का मिला है। उसके पौत्र भोजदेव (प्रथम) का वि० सं० ६०० (ई० स० ८४३) का एक दानपत्र मारवाड़ के सिदा (डीडवाणा परगना) नामक स्थान से मिला है। विनायकपाल (भोजदेव प्रथम का पौत्र) के समय से प्रतिहारों का राज्य निर्यल होने लगा। उनके पीछे राज्यपाल के राज्य समय में महमूद गज़नवी ने कन्नौज पर चढ़ाई की और राज्यपाल के गंगा पार भाग जाने पर वहां के सातों किलों को तोड़ डाला तथा वहां बचे हुए लोगों को मार डाला। इससे इन प्रतिहारों की स्थिति अधिक निर्यल हो गई और कुछ समय पीछे बदायूं के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा गोपाल ने कन्नौज का राज्य छीन लिया, परन्तु इन राठोड़ों का राज्य वहां अधिक दिनों तक न रहने पाया, क्योंकि गाहड़वाल (गहरवार) चन्द्रदेव ने, जो महीचन्द्र का पुत्र था, राठोड़ों से कन्नौज का राज्य छीन लिया, जिससे उन (राठोड़ों) को गाहड़-

(१) प्रतिहार शब्द चौहान, परमार आदि के समान वंशकर्ता का सूचक नहीं, किन्तु राजकीय पद का सूचक है। प्रतिहार का कार्य राजा के निवासस्थान के द्वार पर रहकर उसकी रक्षा करना था। यह पद राजाओं के विश्वासपात्र पुरुषों को ही मिलता था और इसमें किसी जाति विशेष को प्रधानता नहीं दी जाती थी। अब तक के शोध से ब्राह्मण, रघुवंशी, गुर्जर (गुज्जर), चावड़ा और बारड़ (परमारों की एक शाखा) जाति के प्रतिहारों का पता चलता है। आज-कल के कुछ विद्वानों ने तमाम प्रतिहारों को गुर्जर मान लिया है, जो सर्वथा निर्मूल और अमोत्पादक है।

वालों का सामंत बनना पड़ा।

जिन दिनों इन रघुवंशी प्रतिहारों का राज्य कन्नौज और मारवाड़ आदि पर रहा उन दिनों ब्राह्मणवंश के प्रतिहार हरिश्चन्द्र के वंशजों का अधिकार मंडोर आदि पर था और वे रघुवंशी प्रतिहारों के सामंत थे^१।

गुहिल वंश

मेवाड़ के गुहिलवंशियों का राज्य भी मारवाड़ के खेड़, पीपाड़ आदि स्थानों में रघुवंशी प्रतिहारों के राजत्वकाल से लगाकर बहुत पीछे तक रहा। खेड़ का राज्य राव सीहा के पुत्रों ने गुहिलों के मंत्री डामियों से मिलकर छुल से लिया था। अब भी मारवाड़ में गुहिलवंशियों (गोहिलों) के कुछ ठिकाने विद्यमान हैं^२।

परमार

ऊपर आये हुए कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों का राज्य निर्बल होने पर उनके परमार सामंत स्वतंत्र बन बैठे, परन्तु यह वंश अधिक समय तक स्वतंत्र न रह सका और इसे गुजरात के सोलंकीयों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। राजपूताना और मारवाड़ के परमारों की शृंखलाबद्ध वंशावली उत्पलराज से मिलती है। इनका मूल स्थान आबू था, जहां से ये अलग-अलग हिस्सों में फैले। उस (उत्पलराज) के चौथे वंशधर धरणी-वगढ़ का प्रभाव बहुत बढ़ा और उसके अधीन गुजरात, आबू, मारवाड़ और सिंध तक के बहुत से प्रदेश हो गये। वि० सं० १२२० (ई० सं० ११६३) के लगभग इस वंश में धारावर्प हुआ, जो बड़ा वीर और शक्तिशाली था। उसने गुजरात के राजाओं की समय-समय पर बड़ी सहायता की। इन परमारों की मारवाड़ की शाखाओं के शिलालेख जोधपुर राज्य में ओसियां, भीनमाल, भाटुंद, जालोर, किराड़, कोयलवाव, नाणा

(१) रघुवंशी प्रतिहारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १६४-६० ।

(२) वही; जि० १; पृ० १६४-७१ ।

(३) मेरा; उदयपुर राज्य का इतिहास; जि० १; पृ० १२६-२६ ।

आदि स्थानों से मिले हैं। इनकी शक्ति कम होने पर चौहानों ने क्रमशः इनके इलाक़े छीन लिये। वि० सं० १३५० माघ सुदि १ (ई० सं० १२६३ ता० २६ दिसम्बर) मंगलवार के लेख से पाया जाता है कि उस समय परमार महाराजकुल वीसलदेव आबू का राजा था। वि० सं० १३६८ (ई० सं० १३११) के आस-पास जालोर के चौहानवंशी राव लुंभा ने आबू और चन्द्रावती परमारों से छीनकर आबू के परमार राज्य की भी समाप्ति की^१।

सोलंकी

गुजरात के अंतिम चावड़ा राजा सामंतसिंह को वि० सं० ६६८ (ई० सं० ६४१) में मारकर उसका भानजा सोलंकी मूलराज गुजरात का स्वामी बना। फिर उसने उत्तर में अपना पैर बढ़ाकर आबू के परमार राजा धरणीवराह को हराया, जिसको हथुंडी के राष्ट्रकूट (राठोड़) राजा धवल ने शरण दी। वहां से आगे बढ़कर उसने मारवाड़ के कुछ अंश पर दखल किया और वि० सं० १०५१ माघ सुदि १५ (ई० सं० ६६५ ता० १६ जनवरी) को उसने सत्यपुर (सांचोर) हकूमत का वरणक गांव दान में दिया। इससे निश्चित है कि मूलराज के समय से ही सोलंकियों का अधिकार मारवाड़ के कुछ हिस्से पर अवश्य हो गया था। उसके पीछे सिद्धराज (जयसिंह), कुमारपाल एवं भीमदेव (दूसरा) के शिलालेख और ताम्रपत्र आदि मीनमाल, किराड़, पाली, भाट्टंद, नाडोल, बाली, जालोर, सांचोर, नारलाई, नानाणा, नाणा आदि में मिले हैं। भीमदेव (दूसरा) के समय की गुजरात के राज्य की अवनत दशा का लाभ उठाकर उन(सोलंकियों)के सामंत परमार तथा चौहान स्वतंत्र बन बैठे। जब दक्षिण से सिद्धराज और उत्तर से शम्सुद्दीन अलतमश ने गुजरात पर चढ़ाई की उस समय मंत्री वस्तुपाल और तेजपाल ने स्वतंत्र बन बैठे हुए सामंतों में से जालोर के उदयसिंह, आबू के परमार धारावर्ध और सोमसिंह आदि को समझा-बुझाकर पीछे गुजरात का सहायक बना लिया। इस प्रकार गुजरात के सोलंकियों के पिछले समय तक मारवाड़

(१) परमारों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास', जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० १६०-२०५।

के कितने ही अंश पर उनका अधिकार बना रहा' ।

चौहान

चौहानों का मूल राज्य अहिच्छत्रपुर (नागोर) में था । पीछे से उनकी राजधानी सांभर हुई । सांभर के राजा वाक्पतिराज के दो पुत्र सिंहराज और लक्ष्मण हुए । सिंहराज के वंशज सांभर के स्वामी रहे और लक्ष्मण ने नाडोल में अपना राज्य स्थापित किया । जब से महमूद गज़नवी ने लाहौर पर अधिकार कर लिया तब से मुसलमानों की चढ़ाइयां पंजाब की तरफ से राजपूताने की तरफ कभी-कभी होने लगीं, जिससे सांभर के चौहान राजा अजयदेव ने अजमेर (अजयमेरु) का पहाड़ी क़िला बनाकर अपनी राजधानी वहां स्थापित की । सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज (तृतीय) तक चौहानों की राजधानी अजमेर रही । शहाबुद्दीन गोरी-द्वारा पृथ्वीराज के क़ैद किये और मरवाये जाने के बाद सुलतान ने उस (पृथ्वीराज) के पुत्र गोविन्दराज को अपनी अधीनता स्वीकार कर लेने पर अजमेर की गद्दी पर बिठलाया, परन्तु पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने सुलतान की अधीनता स्वीकार करने के कारण गोविन्दराज से अजमेर की गद्दी छीन ली, जिससे बहरणथंभोर जा रहा । उसके वंशज हम्मीर से अलाउद्दीन खिलज़ी ने रणथंभोर का राज्य छीन लिया । इधर हरिराज से शहाबुद्दीन गोरी ने अजमेर का राज्य ले लिया और वहां पर मुसलमानों का राज्य हो गया ।

नाडोल के स्वामी लक्ष्मण से कई पीढ़ी बाद आल्हण के चार पुत्र केल्हण, गजसिंह, कीर्तिपाल (कीतू) और विजयसिंह हुए । कीर्तिपाल ने जालोर का क़िला परमारों से छीनकर वहां चौहानों का राज्य स्थिर किया । जालोर के क़िले का नाम सोनलगढ़ (सुवर्णगिरि) होने के कारण कीर्तिपाल के वंशज सोनगरे चौहान कहलाये । सोनगरों का प्रताप बहुत बढ़ा और इनकी शाखायें भारवाड़ में कई जगह फैलीं तथा नाडोल, मंडोर,

(१) सोलंकीयों के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० २३६-२१ ।

बाहड़मेर, भीनमाल, रतनपुर, सत्यपुर (सांचोर) आदि पर इन्हीं का अधिकार रहा। इन्होंने वि० सं० १२१८ (ई० सं० ११६१) के बाद परमारों से किराडू भी छीन लिया। कीर्तिपाल के छोटे वंशधर कान्हड़देव से अलाउद्दीन खिलजी ने जालोर का क़िला छीनकर वहां के चौहान राज्य की समाप्ति की। पीछे से कान्हड़देव के वंशधरों की जागीरें पाली तथा गोड़वाड़ ज़िले आदि में रहीं, पर वह इलाक़ा पीछे से सीसोदियों के अधीन हुआ। फिर जोधपुर के महाराजा विजयसिंह के समय में वह जोधपुर राज्य के अन्तर्गत हो गया।

आल्हण के चौथे पुत्र विजयसिंह के वंशज सांचोर में रहे और वे सांचोर में चौहान कहलाये। यहां के चौहान राज्य की समाप्ति भी अलाउद्दीन खिलजी के समय हुई, परन्तु थोड़े समय पीछे चौहानों ने सांचोर पर पीछा अधिकार कर लिया।

वि० सं० १३०० (ई० सं० १२४३) के आस-पास कन्नौज की तरफ़ से राठोड़ कुंवर सेतगम का पुत्र सीहा साधारण स्थिति में मारवाड़ में आया और उसके वंशजों ने क्रमशः अपना राज्य बढ़ाते हुए सारे मारवाड़ प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उन्हीं के वंशज इस समय राजपूताने में जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़ के स्वामी हैं।

(१) चौहानों के विस्तृत इतिहास के लिए देखो मेरा 'सिरोही राज्य का इतिहास'; पृ० ११७-८६।

(२) वि० सं० की. १० वीं शताब्दी के मध्य के आस-पास राठोड़ों की एक शाखा ने आकर हथुंडी (गोड़वाड़) में अपना राज्य कायम किया था। वह शाखा जोधपुर के वर्तमान राठोड़ों के भिन्न थी। उसका वृत्तान्त आगे राठोड़ों के प्राचीन इतिहास में दिया जायगा।

तीसरा अध्याय

राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का प्राचीन इतिहास

मारवाड़ में वर्तमान राठोड़ों के आने से पूर्व हिन्दुस्थान में जहाँ-कहीं राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) के राज्य या ठिकाने रहने का अब तक के शोध से पता चला, उसका बहुत ही संक्षिप्त परिचय इस प्रकरण में दिया जाता है ।

भिन्न-भिन्न ताम्रपत्रों, शिलालेखों, पुस्तकों आदि में राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की उत्पत्ति के विषय में भिन्न-भिन्न मत मिलते हैं । राठोड़ों के भाटों ने उन्हें दैन्यवंशी हिरण्यकन्यप की सन्तान लिखा है^१ । जोधपुर राज्य की ख्यात में राठोड़ों की वंशावली आदिनारायण, ब्रह्मा, मरीचि आदि से आरम्भ करते हुए आगे चलकर लिखा है—‘राजा विश्वतमान् का पुत्र राजा बृहद्वल द्वारा के अंत और कलिभुग के प्रारम्भ में हुआ । महाभारत के समय वह भी कुंकणदेश से बुलाया गया । कुरुक्षेत्र की ओर जाते समय मार्ग में उसे गौतम ऋषि मिले, जिससे उसने अपने निःसन्तान होने की बात कही । इसपर ऋषि ने मंत्र पढ़ा हुआ जल उसे देकर कहा कि इसे अपनी प्रियपात्र राखी को पिलाना । कुछ ही समय बाद राजा बृहद्वल ने काफ़ी शराब पी ली, जिससे विशेष प्यास लगने पर उसने व्याकुल होकर मंत्रसिद्ध जल स्वयं पी लिया । फलतः उसके गर्भ रह गया और वह उसी अवस्था में महाभारत में मारा गया । तब उसकी राठ (रीढ़) फाड़कर भीतर से बालक निकाला गया, जो पीछे से इस घटना के कारण राठोड़ नाम से प्रसिद्ध हुआ^२ ।’

(१) रामनारायण दूगड़; राजस्थान रत्नाकर; भाग १, पृ० ८८ ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५ ।

दयालदास राठोड़ों को सूर्यवंशी लिखता है और उनकी उत्पत्ति के विषय में उसका कथन है—‘ब्रह्मा के वंश में सुमित्र का पुत्र विश्वराय हुआ, जिसके पुत्र मल्लगाय के कोई सन्तान न होने से उसने पुत्र-प्राप्ति की कामना से ‘राटेश्वरी देवी’ की आराधना की। देवी ने स्वप्न में आकर उससे कहा कि तेरे पुत्र ही होगा, जिसका नाम तुम ‘रठवर’ रखना। पीछे उसकी जादमणी राणी चन्द्रकला के गर्भ रहा, जिसके पुत्र होने पर राजा ने उसका नाम ‘रठवर’ रक्खा। उसी रठवर के वंशज रठवर (राठोड़) कहलाये’।’

कर्नल टॉड ने अपने बृहद् ग्रन्थ ‘राजस्थान’ में राठोड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो मत दिये हैं वे इस प्रकार हैं—

‘इस वास्तविक प्रसिद्ध जाति की उत्पत्ति के विषय में सन्देह है। राठोड़ों की वंशावलि यां रामचन्द्र के दूसरे पुत्र कुश से इसकी उत्पत्ति बतलाती हैं। अतएव ये सूर्यवंशी होंगे, परन्तु इस जाति के भाट लोग इसे यह प्रतिष्ठा नहीं देते और कुश के वंशज स्वीकार करने पर भी वे राठोड़ों को सूर्यवंशी कश्यप की दैत्य (Titan = राक्षस) कन्या से उत्पन्न सन्तान बतलाते हैं। कतिपय वंशावली लेखक राठोड़ों को कुशिक^१-वंशी मानते हैं^२।’

दक्षिणी के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा विज्जल के वर्तमान शक सं० १०८४ (वि० सं० १२१८) के मनगोली गांव के शिलालेख में भी राठोड़ों को दैत्यवंशी लिखा है^३। प्रभासपाटन से मिले हुए यादव राजा भीम के वि० सं० १४४२ (ई० सं० १३८५) के शिलालेख में उन्हें सूर्य और चन्द्र-

(१) सिंढायच दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० २-३।

(२) विश्वामित्र का दादा।

(३) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० १०५।

(४) रट्टनूपदितिककुलसंघट्टदिनघपट्ट.....

वंशों से भिन्न तीसरा ही वंश माना है' । डाक्टर बर्नेल ने राठोड़ों को द्रविड़ जाति का मानकर उनको आजकल की 'रेडी' जाति से मिला दिया है^१ । जैन वृत्तान्तों के अनुसार राठोड़ शब्द 'रहट' से बना है, जिसका अर्थ इन्द्र की रीढ़ की हड्डी होता है और उनकी उत्पत्ति पालीपुर के राजा यवनाश्व से हुई है^२ ।

मयूरगिरि (दुगलाना) के स्वामी नारायणशाह के आश्रित रुद्रकवि ने उसकी आज्ञानुसार शक सं० १५१८ (वि० सं० १६५३=ई० सं० १५९६) में 'राष्ट्रौदवंशमहाकाव्य' की रचना की थी । उसमें उक्त वंश की उत्पत्ति के विषय में लिखा है —

'एकबार जब कैलाश पर्वत पर पार्वती के साथ शिव जुआ खेल रहे थे, एक पासा शिव के शीश पर के चन्द्रमा से जा लगा, जिससे एक ग्यारह वर्षीय बालक की उत्पत्ति हुई । उस बालक की प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव ने उसे घर दिया कि तुम्हें कान्यकुब्ज का राज्य प्राप्त होगा । उसी अवसर पर लातना ने (जो संभवतः कान्यकुब्ज के राजाओं की कुलदेवी हो) प्रार्थना की कि कन्नौज की गद्दी के लिए वह बालक उसे दे दिया जाय । शिव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली । तब वीरभद्र (शिव का एक प्रसिद्ध गण) ने उस बालक को एक तलवार प्रदान की और लातना ने बालक को ले जाकर कन्नौज के सूर्यवंशी राजा नारायण को, जो पुत्र-प्राप्ति की कामना से उपासना कर रहा था, दे दिया । लातना ने स्वयं अदृश्य रहते हुए कहा कि बालक का नाम राठौड़ (राठोड़) प्रसिद्ध होगा क्योंकि यह तुम्हारे राज्य और कुल की रक्षा करेगा ।'

(१) वंशो(शां) प्रसिद्धो(द्धौ) हि यथा रवीन्द्रो[ः]

राष्ट्रौडवंशस्तु तथा तृतीयः । ।

नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); भाग ४, पृ० ३४७ ।

(२) गैज़टियर ऑफ़ दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ३८३ ।

(३) वही; जि० १, भाग १, पृ० ११६ ।

(४) रुद्रकवि; राष्ट्रौदवंशमहाकाव्य; सर्ग १, श्लोक १२-२६ ।

ऊपर राठोड़ों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में जो विभिन्न मत दिये हैं वे प्रामाणिक नहीं माने जा सकते, क्योंकि उनमें से अधिकांश निराधार और काल्पनिक हैं। ख्यातों आदि की बातें तो सर्वथा मनगढ़न्त कल्पनाएं हैं। इसी प्रकार भाटों आदि की तैयार की हुई वंशावलियां भी माननीय नहीं कही जा सकतीं, क्योंकि उनमें कई नाम झूठे धर दिये हैं। डाक्टर बर्नेल का उन्हें 'रेडी' मानना भी असंगत है। रेडी वर्तमान समय की दक्षिण के तेलगू किसानों की एक नीची जाति का नाम है, जिससे राठोड़ों का कोई सम्बन्ध नहीं है। जैन वृत्तान्त भी ऐसा ही है। राजा विज्जल तथा प्रभास-पाटन के शिलालेख भी प्रमाणरूप नहीं माने जा सकते, क्योंकि वे राठोड़ों से भिन्न वंश के हैं। उपर्युक्त रत्नकविरचित 'राष्ट्रौदवंश-महाकाव्य' भी भाटों आदि के कथन के जैसा ही होने के कारण प्राचीन इतिहास के लिए उपयोगी नहीं है।

राठोड़ वंशस्तुतः शुद्ध आर्य हैं। उनका मूल राज्य दक्षिण में था, जहां से गुजरात, काठियावाड़, राजपूताना, मालवा, मध्यप्रदेश, गया, वदायूं आदि में उनके स्वतंत्र या पालेय राज्य स्थापित हुए, जिनका विस्तृत विवरण आगे दिया जायगा। इन राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) के ताम्रपत्रादि में जहां भी इनके वंश का उल्लेख किया है वहां इन्हें चन्द्रवंशी ही लिखा है। दक्षिण के राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्ष (प्रथम) के समय के शक सं० ७८२ (वि० सं० ६१७) के कोह्लर के शिलालेख^१, राठोड़ गोविन्दराज (सुवर्ण-वर्ष) के शक सं० ८५२ (वि० सं० ६८७) के खंभात के ताम्रपत्र^२, उसी राजा के शक सं० ८५५ (वि० सं० ६९०) के सांगली से मिले हुए दानपत्र^३,

(१) ...सुराष्ट्रकूटार्जितवंशपूर्वजस्स वीरनारायण एव यो विभुः ॥

तदीय भूपायतयादवान्वये क्रमेण वाद्धाविव रत्नसंचयः ॥

एपिप्राकृष्या इंडिका; जि० ६, पृ० २६।

(२) ...शशधर इव दन्तिदुर्गराजो यदुकुलविमलवियत्यथोदियाय ॥

वही; जि० ७, पृ० ३७।

(३) ...शशधर इव दन्तिदुर्गराजो यदुकुलविमलवियत्यथोदियाय ॥

इंडियन पैरीक्वेरी; जि० १२, पृ० २४६।

कृष्णराज (तृतीय, अकालवर्ष) के शक सं० ८८० (वि० सं० १०१५) के करहाड के दानपत्र^१ और कर्कराज (द्वितीय, अमोघवर्ष) के शक सं० ८९४ (वि० सं० १०२९) के करडा के दानपत्र^२ में राठोड़ों को यदुवंशी लिखा है । राठोड़ राजा इन्द्रराज (तृतीय, नित्यवर्ष) के शक सं० ८३६ (वि० सं० ९७१) के वेगुमरा से मिले हुए दो दानपत्रों^३ और कृष्णराज (तृतीय, अकालवर्ष) के शक सं० ८६२ (वि० सं० ९९७) के देवली से मिले हुए दानपत्र^४ में राठोड़ों का चंद्रवंश की यदुशाखा के सान्यकि के वंश में होना लिखा है । हलायुध गंडित स्वरचित 'कविरहस्य' नामक ग्रंथ में उसके नायक राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज को सोमवंश (चंद्रवंश) का भूपण

(१) मुकामणीनां गण इव यदुवंशो दुग्धसिन्धूयमाने ॥...

तमनु च सुतराष्ट्रकूटनाम्ना भुवि विदितोजनि राष्ट्रकूटवंशः ॥

एपिग्राहिया इंडिका; जि० ४, पृ० २८२ ।

(२) उदगादय दंतितुग्गीभानुर्यदुवंशोदयपर्वतात् प्रतापी ॥

इंडियन मंडिकरी; जि० १२, पृ० २६४ ।

(३) ...तस्मादत्रिः सुतोभूदमृतक्रमस्मिन्द इन्दुस्ततोपि ।

तस्माद्वंशो यदूनां... ॥ तत्रान्वये विततसाल्यकिवंश-

जन्मा श्रीदान्तिदुर्गनृपातः पुरुषोत्तमोभूत् ॥

जर्नेल ऑफ़ दि बाम्बे प्रांच ऑफ़ एशियाटिक सोसाइटी; जि० १८, पृ० २५७ ।

...तस्माद्वंशो यदूनां... ॥ तत्रान्वये विततसाल्यकि-

वंशजन्मा श्रीदान्तिदुर्गनृपतिः पुरुषोत्तमोभूत् ॥

वही; जि० १८, पृ० २६१ ।

(४) मुकामणीनां गण इव यदुवंशो दुग्धसिन्धूयमाने ।...

तद्वंशजा जगति साल्यकिवर्गभाज...रद्वः । तमनु च सुत-

राष्ट्रकूटनाम्ना भुवि विदितोजनि राष्ट्रकूटवंशः ॥

एपिग्राहिया इंडिका; जि० ५, पृ० १९२-९३ ।

लिखता है' ।

इन प्रमाणों के बल पर तो यही मानना पड़ेगा कि राठोड़ चंद्रवंशी हैं, परन्तु राजपूताना के वर्तमान राठोड़ अपने को सूर्यवंशी ही मानते हैं । इसका कारण संभवतः यही प्रतीत होता है कि वे अपने वंश के प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों और पुस्तकों की अपेक्षा भाटों के कथन को ही अधिक प्रामाणिक मानते हैं ।

‘राठोड़’ शब्द केवल भाषा में ही प्रचलित है । संस्कृत पुस्तकों, शिलालेखों और दानपत्रों में उसके लिए ‘राष्ट्रकूट’ शब्द मिलता है ।

राठोड़ नाम की
उत्पत्ति

दक्षिण तथा भारत के अन्य विभागों में प्राचीन काल में जहां-जहां राठोड़ों का राज्य रहा, वहां बहुधा ‘राष्ट्रकूट’ शब्द का ही प्रयोग होता रहा ।

प्राकृत शब्दों की उत्पत्ति के नियमानुसार ‘राष्ट्रकूट’ शब्द का प्राकृत रूप ‘रठऊड़’ होता है, जिससे ‘राठउड़’ या ‘राठोड़’ शब्द बनता है, जैसे ‘चित्तकूट’ से ‘चित्तऊड़’ और उससे ‘चित्तौड़’ या ‘चीतोड़’ बनता है । ‘राष्ट्रकूट’ के स्थान में कहीं-कहीं ‘राष्ट्रवर्य’ शब्द भी मिलता है, जिससे ‘राठवड़’ शब्द बना है । ‘राष्ट्रकूट’ और ‘राष्ट्रवर्य’ दोनों का अर्थ एक ही है, क्योंकि राष्ट्रकूट का अर्थ ‘राष्ट्र’ जाति या वंश का शिरोमणि हैं और ‘राष्ट्रवर्य’ का अर्थ ‘राष्ट्र’ जाति या वंश में श्रेष्ठ है । राजपूताना आदि के पिछले संस्कृत लेखकों

(१) अस्यगस्यमुनिज्योत्स्नार्पावित्रे दक्षिणापथे ।

कृष्णराज इति ख्यातो राजा साम्राज्य दीक्षितः ॥

तोलयत्यतुलं शक्त्या यो भारं भुवनेश्वरः ।

कस्तं तुलयति स्थाम्ना राष्ट्रकूटकुलोद्भवम् ॥

सोमं मुनोति यज्ञेषु सोमवंशविभूषणः ।

.....

गैज़ेटियर ऑफ् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी, जि० १, भाग २, पृ० २०८ टि० ३,
पृ० २०१ टि० १-२ ।

ने 'राठोड़' शब्द को संस्कृत के सांचे में ढालकर 'राष्ट्रोड़' या 'राष्ट्रौढ' बनाया है, परन्तु ऐसे उदाहरण कम मिलते हैं। दक्षिण के राठोड़ों के तथा कभी-कभी उनकी शाखाओं के लेखों में 'राष्ट्रकूट' शब्द के लिए 'रट्ट' शब्द मिलता है, जो 'राष्ट्र' का ही प्राकृत रूप है।

राठोड़ों का प्राचीन उल्लेख अशोक के पांचवें प्रज्ञापन में गिरनार^३, धौली^४, शहबाज़गढ़ी^५ और मानसेरा^६ के लेखों में पैटनवालों के साथ समास में मिलता है, जिससे पाया जाता है कि उस समय ये दक्षिण के निवासी थे। 'रिस्टिक', 'लठिक' और 'रठिक' ये 'रट्ट' शब्द के प्राकृत रूप हैं, जो 'राष्ट्रकूट'

राठोड़ वंश की
प्राचीनता

(१) 'रट्ट' नाम से मिलते हुए नामवाली एक 'आरट्ट' नाम की भिन्न जाति पंजाब में रहती थी। यह बहुत प्राचीन जाति थी। इसका दूसरा नाम 'बाह्लीक' (बाहिक) भी था। इस जाति के स्त्री-पुरुषों के रहन-सहन, आचार-विचार की महा-भारत में बड़ी निंदा की है—

आरट्टा नाम बाह्लीका एतेष्वार्यो हि नो वसेत् ॥ ४३ ॥

आरट्टा नाम बाह्लीका वर्जनीया विपश्चिता ॥ ४८ ॥

आरट्टा नाम बाह्लीका नतेष्वार्यो द्वयहंवसेत् ॥ ५१ ॥

महाभारत; कर्ण पर्व, अध्याय ३० (कुम्भकोण संस्करण)

मुसलमानों के राजत्वकाल में इन लोगों को मुसलमान बनाया गया और अब ये 'राठ' कहलाते हैं।

(२) ...धंमयुतस च योणकंबोजगंधारानं रिस्टिकपितेणिकानं
(ई० दुल्लश; कर्पस इन्द्रिकपानम् इन्द्रिकेरम्; जि० १, पृ० ८) ।

(१) ...धंमयुतस योनकंबोचगंधालेसु लठिकपितेनिकेसु ..
(वही; जि० १, पृ० ८७) ।

(४) ध्रमयुतस योनकंबोयगंधरनं रठिकनं पितिनिकनं...
(वही; जि० १, पृ० ४२) ।

(५) ...ध्रमयुतस योनकंबोजगंधरन रठिकपितिनिकनं...
(वही; जि० १, पृ० ७४) ।

शब्द में मिलता है। बहुत पहले से राजा और सामन्त लोग अपने नाम के साथ 'महा' शब्द लगाते रहे हैं। जैसे भोजवंशियों ने अपने को 'महामोज' लिखा, ऐसे ही राष्ट्रवंशी अपने को 'महाराष्ट्र' या 'महाराष्ट्रिक' लिखने लगे, जिसका प्राकृत रूप 'महारठी' दक्षिण में भाजा, बेड़सा, काली और नानाघाट की गुफाओं में खुदे हुए प्राकृत लेखों में पाया जाता है। उन्हीं लेखों से यह भी बात होता है कि 'महामोज' और 'महाराष्ट्रिक' वंशियों में परस्पर विवाह सम्बन्ध भी होने थे। देशों के नाम वहुधा उनमें बसनेवाली या उनपर अधिकार जमानेवाली जातियों के नाम से प्रसिद्ध होते रहे हैं। जैसे 'मालव' जाति के अधिकार करने से अर्वाक्षी देश 'मालवा' कहलाया और 'गुर्जर' या 'गुज' जाति के नाम से लाट, सुराष्ट्र, श्वभ्र आदि देशों का नाम गुजरात पड़ा, ऐसे ही इस महाराष्ट्रिक जाति के अधीन का दक्षिण का देश महाराष्ट्र नाम से प्रसिद्ध हुआ, जहाँ के निवासी महाराष्ट्र या महाराष्ट्रिक (मराठा) कहलाते हैं।

अशोक के समय से लगाकर वि० सं० ५५० के आसपास तक दक्षिण के राष्ट्रों का कुछ भी इतिहास नहीं मिलता। कहीं-कहीं नाम मात्र का उल्लेख मिलता है। कलाडगी ज़िले के येवूर गांव के पास के सोमेश्वर के मंदिर में लगे हुए चालुक्य (सोलंकी) वंशी राजाओं की वंशावलीवाले एक लेख में उन वंश के राजा जयसिंह (प्रथम) के विषय में लिखा है—'उमने राष्ट्रकूट कृष्ण के पुत्र इन्द्र को, जो अपने लश्कर में ८०० हाथी रखता था, जीता और पांच सौ राजाओं को जीतकर चालुक्य वंश की राज्यलक्ष्मी पाई की'।^१ इससे मालूम होता है कि जयसिंह के समय अर्थात् वि० सं० ५५० (ई० सं० ४६३) के आसपास दक्षिण में राष्ट्रों का प्रबल राज्य था, क्योंकि लश्कर में ८०० हाथी रखना सामान्य राजा का काम नहीं। इस प्रकार वि० सं० ६५० (ई० सं० ५६३) के पहले का कुछ ही वृत्तान्त मिलता है। वि० सं० ६५० के आस-पास से लगाकर

दक्षिण के राष्ट्रों का
प्रारंभिक इतिहास

वि० सं० १०३० (ई० सं० १७३) के कुछ पीछे तक का दक्षिण के राठोड़ों का जो शृंखलाबद्ध इतिहास मिलता है, वह बहुत ही संक्षेप रूप से यहाँ लिखा जाता है ।

१, २, ३ और ४—शिलालेखों और ताम्रपत्रों के अनुसार दक्षिण के राठोड़ों की वंशावली दन्तिवर्मा से शुरू होती है। उसके पीछे क्रमशः इन्द्रराज और गोविन्दराज हुए। इन तीनों राजाओं के पराक्रम की प्रशंसा के अतिरिक्त कोई विशेष ऐतिहासिक वृत्तान्त नहीं मिलता, परन्तु दक्षिण के कलाडगी गांव के पास की पहाड़ी पर के जैनमंदिर में लगे हुए भारत-युद्ध संवत् ३७३५ और शक संवत् ५५६ (वि० सं० ६६१=ई० सं० ६३४) के लेख में दक्षिण के महाप्रतापी चालुक्य राजा पुलकेशी (दूसरा) के विषय में लिखा है—'समय पाकर पुलकेशी का जीतने की इच्छा से अप्पाइक और गोविन्द चढ़ आये, परन्तु एक (अप्पाइक) को तो लड़ाई में भय का भान हो गया और दूसरे (गोविन्द) ने उपकार का फल पाया' । इससे पाया जाता है कि अप्पाइक तो लड़ाई में हारकर भाग गया हो और गोविन्द पुलकेशी से मिल गया हो तथा उसने उससे लाभ उठाया हो। संभवतः यह गोविन्द उपर्युक्त इन्द्रराज का पुत्र हो। ऊपर हम बतला चुके हैं कि दन्तिवर्मा से पूर्व भी राठोड़ दक्षिण में प्रचल थे और इस समय भी वे अपना गया हुआ राज्य पीछा लेने के उद्योग में अप्पाइक के साथ पुलकेशी पर चढ़ आये हों। इस समय तक उनका थोड़ा बहुत राज्य उस तरफ अवश्य रहा होगा। पुलकेशी (दूसरा) ने वि० सं० ६६७ से ६६५ (ई० सं० ६१० से ६३८) तक राज्य किया और गोविन्दराज उसका समकालीन रहा, जिससे हम दन्तिवर्मा का समय वि० सं० ६५० (ई० सं० ५६३) के आसपास स्थिर कर सकते हैं। गोविन्दराज के बाद उसका पुत्र कर्कराज (ककराज) उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसके चार पुत्र—इन्द्रराज, धुवराज, कृष्णराज और नक्षराज—हुए।

५ और ६—कर्कराज के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रराज (दूसरा)

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ६, पृ० ५ ।

दक्षिण के राठोड़ों के राज्य का स्वामी हुआ। उसका पुत्र दन्तिदुर्ग (दन्तिधर्मा), जो उसका उत्तराधिकारी हुआ, बड़ा प्रतापी था। उसे वैरमेघ भी कहते थे। सामनगढ़ से मिले हुए शक संवत् ६७५ (वि० सं० ८११ = ई० सं० ७५४) के उसके ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने माही और रेवा (नर्मदा) नदियों के बीच का प्रदेश (लाटदेश) विजय किया; राजावल्लभ को जीत 'राजाधिराज परमेश्वर' का विरुद्ध धारण किया; कांची, केरल, चोल व पांड्य देशों के राजाओं को तथा श्रीहर्ष और वज्रट को जीतनेवाले कर्णाटक (सोलंकियों) के असंख्य लश्कर को जीता, जो अजेय कहलाता था। प्रसिद्ध पेलोग की गुफा के दशावतार के लेख में लिखा है—'उसने वल्लभ के लश्कर को और कांची, कलिंग, कोशल, श्रीशैल, मालव, लाट, टंक आदि देशों के राजाओं को जीतकर "श्रीवल्लभ" नाम धारण किया तथा उज्जैन में रत्न और सुवर्ण का दान दिया'। ऊपर आया हुआ "वल्लभ" सोलंकियों का खिताब था, जिन्हें जीतकर यह खिताब राठोड़ों ने धारण किया था। ऊपर के लेखों में सोलंकी राजा का नाम नहीं दिया है, परन्तु अन्य साधनों से यह अनुमान होता है कि सोलंकी राजा कीर्तिवर्मा (द्वितीय) से दन्तिदुर्ग ने राज्य छीना होगा। दन्तिदुर्ग ने लाट देश विजयकर अपने चचेरे भाई गोविन्दराज को अथवा उसके पुत्र कर्कराज को दे दिया हो ऐसा अनुमान होता है, क्योंकि आंतरोली गांव^३ से गुजरात के कर्कराज का एक ताम्रपत्र शक संवत् ६७६ (वि० सं० ८१४) आश्विन सुदि ७ (ई० सं० ७५७ ता० २४ सितम्बर) का मिला है, जिससे पाया जाता है कि उस समय वह गुजरात का राजा था। उससे कुछ पूर्व ही यह देश विजय हुआ होगा।

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वरी; जि० ११, पृ० ११२।

(२) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् वेस्टर्न इन्डिया; जि० ५, पृ० ८७।

(३) बम्बई अदालत के मूरत जिले में।

(४) जर्नेल ऑव् दि बॉम्बे ब्राञ्ज ऑव् दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; जि०

दन्तिदुर्ग दक्षिण के राठोड़ों के राज्य को बढ़ानेवाला राजा हुआ। उसका राज्य गुजरात और मालवा की उत्तरी सीमा से लगाकर दक्षिण में रामेश्वर के निकट तक फैला हुआ था।

७—दन्तिदुर्ग के निःसन्तान मरने पर उसका चाचा कृष्णराज उसका उत्तराधिकारी हुआ, जिसको शुभतुंग, अकालवर्ष और कन्नेश्वर भी कहते थे। बड़ोदा से मिले हुए शक संवत् ७३४ महावैशाखी [वैशाख सुदि १५] (वि० सं० ८६६ = ई० स० ८१२ ता० ३० अप्रैल) के ताम्रपत्र में लिखा है—‘उस (कृष्णराज) ने कुमार्ग पर चलनेवाले अपने एक कुटुंबी को जड़ से उखेड़ अपने वंश के लाभ के वास्ते राज्य किया’^१। क्वावी (गुजरात), नवसारी^२ और कग्दा के ताम्रपत्रों से यह निश्चित है कि जिसको उसने मारा वह दन्तिदुर्ग न था। अतएव अनुमानतः वह गुजरात का कर्कराज रहा होगा, जिसने दन्तिदुर्ग के मरने पर स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया होगा। उसके बाद उसके किसी भी वंशज का उल्लेख नहीं मिलता, जिससे संभव है कि उसके साथ उक्त शाखा की समाप्ति हुई होगी। पैटण^३ से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि कृष्णराज ने राहण को, जो बड़ा अभिमानी था, हराकर “राजाधिराज परमेश्वर” का बिरुद धारण किया^४। बड़ोदा से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है कि उसने महावराह को हरिण बनाया अर्थात् किसी चालुक्य राजा को परास्त कर भगाया, क्योंकि “वराह” चालुक्यों (सोलंकियों) का ही राज्यचिह्न था^५। अलास^६ के शक संवत् ६६२ (वि० सं० ८२७) आपाठ सुदि ७ (ई० स० ७७० ता० ४ जून) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके राज्य-समय में

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १२८।

(२) बड़ोदा राज्य में।

(३) हैदराबाद राज्य के औरंगाबाद ज़िले में।

(४) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ७, पृ० १०७।

(५) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १६९।

(६) अम्बई अहाते के कुरुंदवाड़ ज़िले में।

ही उसके पुत्र गोविन्दराज ने वेंगी के चालुक्य राजा विष्णुवर्धन (चौथा) को परास्त किया^१। इस प्रकार चालुक्यों को पराजित कर कृष्णराज ने दन्ति-दुर्ग के प्रारम्भ किये हुए कार्य को पूरा किया। शक सं० ६६० (वि० सं० ८२५) वैशाख वदि अमावास्या (ई० सं० ७६८ ता० २३ मार्च) बुधवार सूर्यग्रहण के तालेगांव से मिले हुए ताम्रपत्र के अनुसार उसने गंगवाडी पर चढ़ाई की थी^२।

वह बड़ा शिवभक्त था। उसके बनवाये हुए अनेक मन्दिरों में एलोरा का कैलाश मन्दिर, जो पहाड़ को काट-काट कर बनाया गया है, संसार की शिल्पकला का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। उसके दो पुत्र—गोविन्दराज और धुवराज—हुए।

८—कृष्णराज की मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी गोविन्दराज (द्वितीय) हुआ। उसके अन्य विरुद्ध अथवा उपनाम अकालवर्ष, वल्लभ, प्रभूतवर्ष और विक्रमावलोक भी थे। उसके द्वारा वेंगी के राजा विष्णुवर्धन के परास्त किये जाने का उल्लेख ऊपर आ गया है। दौलताबाद^३ से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने गोवर्द्धन को विजय किया और पारिजात नाम के राजा पर चढ़ाई की^४। गोवर्द्धन और पारिजात के सम्बन्ध में विशेष वृत्त ज्ञात न होने से उनके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। करहाड^५ से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—‘गोविन्दराज ने भोग-विलास में पड़कर राज-कार्य में चित्त न दिया और अपने भाई निरुपम (धुवराज) के भरोसे राज्यकार्य छोड़ दिया, जिससे उसकी हुकूमत कमजोर हो गई।’ धुवराज यहां तक मनमानी करने लगा कि उसने कई दानपत्र भी केवल

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ६, पृ० २०६।

(२) वही; जि० १३, पृ० २७५।

(३) निज़ाम राज्य में।

(४) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ६, पृ० १८५।

(५) बम्बई अहाते के सतारा जिले में।

(६) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ४, पृ० २७८।

अपने नाम से ही जारी किये, जैसा कि 'पिम्पेरी' के शक सं० ६६७ (वि० सं० ८३२=ई० सं० ७७५) के दानपत्र से पाया जाता है^१। पैठण से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'धुवराज ने जब रत्न, सुवर्ण आदि पर अधिकार कर लिया तो वल्लभ (गोविन्दराज) ने मालवा, कांची आदि के शत्रु राजाओं से मेल कर लिया और उनको ले आया, परन्तु धुवराज ने कुछ न माना और लड़ाई करके उसको तथा उसके मददगार राजाओं को हराकर वह राज्य का स्वामी बन बैठा^२।' जिनसेनाचार्य ने 'हरिवंशपुराण' नाम के जैनग्रंथ की समाप्ति में लिखा है—'शक संवत् ७०५ (वि० सं० ८४० = ई० सं० ७८३) में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ उस समय उत्तर में इन्द्रायुध, दक्षिण में कृष्णराज का पुत्र वल्लभ (गोविन्दराज) और पूर्व में अच्यन्ती का राजा राज्य करते थे।' इससे स्पष्ट है कि उस समय तक गोविन्दराज का राज्य क्रायम था। धुवराज के पुत्र गोविन्दराज (तृतीय) का पहला दानपत्र शक संवत् ७१६ (वि० सं० ८५१) (अर्मांत) वैशाख पूर्णिमांत ज्येष्ठ वदि अमावास्या रविवार (ई० सं० ७६४ ता० ४ मई) सूर्यग्रहण का पैठण से मिला है^३। इसलिए धुवराज ने शक संवत् ७०५ और ७१५ (वि० सं० ८४० और ८५० = ई० सं० ७८३-७९३) के बीच किसी समय अपने भाई से राज्य छीना होगा। इस लड़ाई के बाद गोविन्दराज की क्या दशा हुई इसका पता नहीं चलता।

६—धुवराज के अन्य बिरुद अथवा खिताब धोर, निरूपम, कलिवल्लभ और धारावर्ष मिलते हैं। सर्वप्रथम उसने कांची के पल्लव राजा को हराकर उसके हाथी छीने और गंगवशी राजा को कैद किया। राधनपुर^४ से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'उसने अपने महापराक्रमी लश्कर से गौड़ों के राजा की लक्ष्मी हरण करनेवाले वत्सराज (रघुवंशी प्रतिहार) को

(१) पूर्वी खानदेश में।

(२) अल्लेकर; दि राष्ट्रकूटाज्ज ऐण्ड देअर राइम्स; पृ० ५०।

(३) गैजेटियर ऑव दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० ३६३।

(४) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ३, पृ० १०५।

(५) गुजरात में।

मारवाड़ के बीच भगा दिया और उसने गौड़ों के राजा से जो दो श्वेत छत्र छीने थे वे उससे ले लिये^१। नवसारी के ताम्रपत्र में लिखा है—‘उसने कोशल देश और उत्तराखंड के राजाओं के छत्र छीने^२।’ ध्रुवराज बड़ा प्रतापी राजा था। उसका राज्य दक्षिण में रामेश्वर के निकट से लगाकर उत्तर में अयोध्या तक फैला हुआ था। कपडवंज^३ के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके कई पुत्र हुए, जिनमें से गोविन्दराज को उसने अपने जीवनकाल में कंटिका (समुद्र या नदी के किनारे का देश अर्थात् संभवतः समुद्रतट का कोंकण से लगाकर खंभात तक का प्रदेश) दिया था^४। ध्रुवराज उसे संपूर्ण राज्य का स्वामी बनाना चाहता था, पर पिता के जीवित रहते उस पुत्र ने उसे स्वीकार न किया। दूसरे पुत्र इन्द्रराज को पीछे से गोविन्दराज ने लाट का राज्य दिया। ध्रुवराज के दो पुत्रों—स्तम्भ (रणचलोक) और कर्क (सुवर्णवर्ष)—के नाम और मिलते हैं, जिनमें से प्रथम गंगवाडी का हाकिम नियत किया गया और दूसरा खानदेश का स्वामी था।

ध्रुवराज की मृत्यु शक सं० ७१४ (वि० सं० ८४० = ई० स० ७६३) और शक सं० ७१६ (वि० सं० ८४१ = ई० स० ७६५) के बीच किसी समय हुई होगी क्योंकि वि० सं० ८४० (ई० स० ७६३) के दौलताबाद के ताम्रपत्र के लिखे जाने के समय वह जीवित था और वि० सं० ८४१ (ई० स० ७६५) का पैटण का ताम्रपत्र उसके पुत्र के समय का लिखा हुआ है।

१०—ध्रुवराज का उत्तराधिकारी गोविन्दराज (तृतीय) हुआ। उसके अन्य नाम अथवा विरुद्ध प्रभूत्वर्ष, जगन्तुंग, जगद्रुद्र और वल्लभ या वल्लभनरेन्द्र मिलते हैं। राधनपुर और वारणी (गुजरात) के ताम्रपत्रों में

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ६, पृ० २४२।

(२) गैज़टियर ऑव दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० १६७।

(३) बम्बई अहोते के खड़ा ज़िले में।

(४) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० १, पृ० ५२।

लिखा है—‘वृष्ण के समय जैसे यादवों को जीतनेवाला कोई न था, वैसे ही उसके समय में राठोड़ों को कोई जीतनेवाला न रहा । उसके राज्य-समय बारह राजा राठोड़ों के राज्य को बर्बाद करने के लिए चढ़ आये पर उसने उन सभी को तितर-बितर कर दिया। गंगवंशी राजा पर दया कर उसने उसे कैद से मुक्त कर दिया, परन्तु अपने राज्य में पहुँचने पर जब उसने पुनः शत्रुता अख्तियार कर ली तो उसने उसको फिर पकड़कर कैद कर लिया । इसके बाद उसने गुर्जेश्वर (गुजरात का राजा) को जीत मालवा पर चढ़ाई की । वहाँ का राजा घिना लड़े ही अधीन हो गया । मालवा से आगे बढ़कर वह विंध्याचल के निकट जा ठहरा, जहाँ के राजा मारशर्व ने भी उसकी अधीनता स्वीकार की । वहाँ से लौटकर वह श्रीभवन (सरभौन, गुजरात का भड़ोच ज़िला) में आया, जहाँ चातुर्मास व्यतीत कर उसने दक्षिण में तुंगभद्रा के तट पर पहुँच वहाँ के पल्लव राजा को अधीन बनाया । वेंगी देश के राजा ने सन्देश पहुँचते ही उपस्थित होकर अधीनता स्वीकार कर ली ।’ उपर्युक्त बारह राजा कौन थे, इसका पता नहीं चलता पर वे गोविन्द-राज के बड़े भाई स्तम्भ के विद्रोही हो जाने पर उसके साथ होकर उसे राज्य दिलाने के लिए आये होंगे। संजान^१ के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि राज्य के कितने ही अफसर भी स्तम्भ के शामिल हो गये थे । इधर गोविन्दराज ने भी अपना पक्ष काफ़ी बलवान् कर लिया था, जिससे उसकी ही विजय हुई^२ । मन्ने^३ से मिले हुए शक सं० ७२४ (वि० सं० ८५६ = ई० सं० ८०२) के एक दानपत्र से पाया जाता है कि वह (दानपत्र) स्तम्भ ने गोविन्दराज की आज्ञानुसार लिखा था^४ । इससे अनुमान होता है कि उस- (स्तम्भ) को पीछे से उसकी जागीर मिल गई होगी । ऊपर आया हुआ

(१) मैजेस्टियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी जि० १, भाग २, पृ० १६८ ।

(२) बम्बई अहाते के थाना ज़िले में ।

(३) एपिग्राफ़िया इन्डिका; जि० १८, पृ० २४३ ।

(४) माहसोर राज्य में ।

(५) एपिग्राफ़िया कर्णाटिका; जि० ६, नेलमंगल तालुका संख्या ६१ ।

वेंगी का राजा विजयादित्य होना चाहिये ।

संज्ञान से मिले हुए उस(गोविन्दराज)के पुत्र अमोघवर्ष के ताम्रपत्र से ऊपर के कथन की पुष्टि होती है । साथ ही उसमें उसके गंगवाडी, केरल, पाण्ड्य, चोल और कांची के राजाओं को परास्त करने तथा उसके कांची में रहते समय सिंहल (लंका) के स्वामी के अपनी एवं अपने मंत्री की मूर्तियां उसके पास भेजकर अधीनता स्वीकार करने का उल्लेख है । ये मूर्तियां गोविन्दराज ने शिवमंदिर के सामने लगाने के लिए माल-खेड भेज दीं^१ । फिर उसने उत्तर में चढ़ाई कर नागभट (द्वितीय, रघुवंशी प्रतिहार) को हराया जो भागकर राजपूताने में चला गया । उक्त ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उसने राजा धर्मपाल और चक्रायुध को अधीन किया^२ । इसके बाद उसकी कहीं कोई चढ़ाई नहीं हुई । तोरखेड^३ के ताम्र-पत्रों के लिखे जाने अर्थात् शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७०) पौष सुदि ७ (ई० सं० ८१३ ता० ४ दिसम्बर) रविवार तक वह विद्यमान था । अमोघवर्ष के शक संवत् ७८८ (वि० सं० ९२३) [अमान्त] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) वदि अमावास्या (ई० सं० ८६६ ता० १६ जून) रविवार के शिखर^४ के लेख से पाया जाता है कि उस समय उसे राज्य करते हुए ४२ वर्ष हुए थे^५ । इस प्रकार शक संवत् ७३७ (वि० सं० ८७२ = ई० सं० ८१५) के आस-पास किसी समय उसका राज्याभिषेक और उसके कुछ पूर्व ही गोविन्दराज का देहांत हुआ होगा । गोविन्दराज बड़ा वीर, साहसी, निर्भीक और राठोड़ों की शक्ति तथा साम्राज्य को बढ़ानेवाला हुआ । वाणी-डिंडोरी, नवसारी तथा बड़ोदा के उसके भतीजे (इन्द्र के पुत्र) कर्क के ताम्रपत्रों में उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा मिलता है ।

(१) अल्टेकर; राष्ट्रकूट राज ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० ६८ ।

(२) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० १८, पृ० २४३ ।

(३) खानदेश (बम्बई) में ।

(४) श्रीपुर, बम्बई अहाते के धारवाड ज़िले में ।

(५) इन्डियन ऐन्टिक्वरी; जि० १२, पृ० २१६ ।

११—गोविन्दराज का उत्तराधिकारी अमोघवर्ष हुआ। उसके अन्य नाम अथवा खिताब दुर्लभ, शर्व, वीरनारायण, नृपतुंग और वल्लभ आदि मिलते हैं, परन्तु वह अमोघवर्ष के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हुआ। उसके संज्ञान के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसका जन्म शक सं० ७३० (वि० सं० ८६५ = ई० स० ८०८) में हुआ था^१। इस प्रकार वह सिंहासनारोहण के समय लगभग सात वर्ष का रहा होगा। उसकी छोटी अवस्था देखकर उसके समय में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी, जिसके फलस्वरूप उसे गद्दी से हाथ धोना पड़ा। सूरत से मिले हुए गुजरात के कर्कराज के शक सं० ७४३ (वि० सं० ८७८) वैशाख सुदि १५ (ई० स० ८२१ ता० २१ अप्रैल) रविवार के ताम्रपत्र में उसके-द्वारा विद्रोह के अन्त किये जाने और अमोघवर्ष के पुनः सिंहासन-पर बिठलाये जाने का उल्लेख है^२। उक्त कर्कराज के नवमारी से मिले हुए शक सं० ७३८ (वि० सं० ८७३ = ई० स० ८१६) के ताम्रपत्र में इसके विषय में कुछ भी लिखा नहीं मिलता, जिससे यह अनुमान होता है कि ई० स० ८१६ और ८२१ के बीच किसी समय यह घटना हुई होगी। पूर्वी चालुक्य अम्म (प्रथम) के इंडेरू^३ के दानपत्र से पाया जाता है कि विजयादित्य (द्वितीय) ने गट्टों (राष्ट्रकूटों) और गंगवंशियों से बारह वर्ष तक लड़ाइयाँ कीं^४। इन लड़ाइयों का अंतिम समय अमोघवर्ष के प्रारम्भ के राज्यवर्षों से मिलता है, अतएव अधिक सम्भव तो यही है कि विजयादित्य ने ही यह उत्पात खड़ा कर अमोघवर्ष को गद्दी से उतार दिया हो। शिरूर से मिले हुए अमोघवर्ष के शक सं० ७८८ (वि० सं० ९२३ = ई० स० ८६६) के दानपत्र में लिखा है कि बेंगी का राजा उसकी सेवा करता था अर्थात् उसके अधीन हो गया था^५। गोविन्दराज

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० १८, पृ० २४३।

(२) अल्टेकर; दि राष्ट्रकूटाज्ज ऐरड देअर दाहम्स; पृ० ७४।

(३) मदास अहाते के कृष्णा जिले में।

(४) इंडियन ऐन्टिकेरी; जि० १३, पृ० ५३।

(५) वही; जि० १२, पृ० २१६।

(चतुर्थ) के शक सं० ८५५ (वि० सं० ६६०) श्रावण सुदि १५ (ई० स० ६३३ ता० ८ अगस्त) गुरुवार के सांगली^१ के ताम्रपत्र में लिखा है कि वेंगवल्ली के युद्धक्षेत्र में, जहां उसका चालुक्यों और अभ्यूपखों से युद्ध हुआ, अमोघवर्ष ने यम को तृप्त किया^२। कृष्णराज (तृतीय) के करहाड़ के शक सं० ८८० (वि० सं० १०१५) [अमांत] फाल्गुन (पूर्णिमांत चैत्र) वदि १३ (ई० स० ६५६ ता० ६ मार्च) बुधवार के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि चालुक्य वंश को नष्ट करने पर भी अमोघवर्ष का क्रोध शान्त न हुआ^३। कर्कराज (द्वितीय) के करडा के ताम्रपत्र में लिखा है कि वह चालुक्य वंश को नाश करने के लिए अग्नि के समान हुआ^४। इससे स्पष्ट है कि उसने शक्ति बढ़ने पर चालुक्यों को परास्त किया था। उपर्युक्त ईडेरू के दानपत्र में भी लिखा है—‘गुणग विजयादित्य के वाद वेंगी का राज्य राष्ट्रकूटों के हाथ में चला गया परन्तु वाद में भीमने उसे कृष्णराज (द्वितीय) से पीछा लिया’^५।

गुजरात के राटोड़ राजा कर्कराज के मरने पर उसका पुत्र ध्रुवराज विद्रोही हो गया, जिससे अमोघवर्ष ने उसपर चढ़ाई की, जिसमें वह (ध्रुवराज) मारा गया। वेगुमर्ग^६ से मिले हुए शक सं० ७८६ (वि० सं० ६२४) [अमांत] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आपाढ) वदि अमावास्या (ई० स० ८६७ ता० ६ जून) शुक्रवार, सूर्यग्रहण के ताम्रपत्र में लिखा है—‘वल्लभ (अमोघवर्ष) के लश्कर को भगाने के लिए लड़ता हुआ ध्रुवराज सैंकड़ों घाव खाकर मर गया और वल्लभ के लश्कर से दया हुआ उस (ध्रुवराज) का मुल्क उसके पुत्र अकालवर्ष ने प्राप्त किया’^७।

(१) बम्बई अहाते के सांगली राज्य की राजधानी ।

(२) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० २४६ ।

(३) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ४, पृ० २८१ ।

(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० २६४ ।

(५) वही; जि० १४, पृ० १६७ ।

(६) बड़ोदा राज्य में ।

(७) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १७६ ।

अमोघवर्ष के कोदूर' के शक सं० ७८२ (वि० सं० ६१७) आश्विन सुदि १५ (ई० सं० ८६० ता० ३ अक्टोबर) गुरुवार के शिलालेख से पाया जाता है कि मुकुलवंशी बंकेय उसका बड़ा वीर अफसर था, जिसने उसके पुत्र के विद्रोही हो जाने पर बड़ी सहायता पहुंचाई थी, जिससे उसने उस(बंकेय)को बनवासी, बेलगोल, कुन्दर्ग, कुन्दूर और पुरीगरी का हाकिम बनाया। बंकेय ने कडलदुर्ग पर अधिकार कर तलवन के राजा को भी हराया था^१। कन्देरी^२ की गुफा के शक संवत् ७६५ (?) (वि० सं० ६०० = ई० सं० ८४३), शक संवत् ७७५ (? ७७३) तथा ७६६ (वि० सं० ६१० और ६३४ = ई० सं० ८४३ तथा ८७७) के लेखों से ज्ञात होता है कि उसके समय सारा कोंकण देश उसके सामन्त कपर्दी के पुत्र पुल्लशक्ति और उसके पुत्र कपर्दी (द्वितीय) के अधिकार में था^३। शिरूर के उस- (अमोघवर्ष)के लेख में अंग, बंग, मालवा और मगध के राजाओं का उसके अधीन होना लिखा है^४।

कण्डा के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि अमोघवर्ष ने मान्यम्बेट को इन्द्रपुरी से भी अधिक सुदूर बनाया^५। अमोघवर्ष के सम्बन्ध का अंतिम उल्लेख वीरसेन रचित 'जयधवल-टीका' में मिलता है, जिसके अनुसार उसका शक संवत् ७६६ (वि० सं० ६३४) फाल्गुन सुदि १० (ई० सं० ८७८ ता० १६ फरवरी) तक जीवित रहना पाया जाता है। स्वयं अमोघवर्ष के रचे हुए ग्रन्थ 'रत्नमाला' (प्रश्नोत्तररत्नमाला) से पाया जाता है कि उसने विवेक से राज छोड़ दिया था। इससे तो यही अनुमान होता है कि वृद्ध होने पर उसने अपने पुत्र कृष्णराज को राज्याधिकार सौंप दिया हो। उस(अमोघवर्ष)ने

(१) बम्बई अहाते के बेलगाम ज़िले में।

(२) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ६, पृ० ३०।

(३) बम्बई अहाते के थाना ज़िले में।

(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १३, पृ० १३६, १३४ तथा १३५।

(५) वही; जि० १२, पृ० २१६।

(६) वही; जि० १२, पृ० २६३।

साठ वर्ष से अधिक समय तक राज्य किया। उसकी रुचि विद्या और धर्म पर विशेष थी। 'कविराजमार्ग' नाम का अलंकार का कनाड़ी भाषा का ग्रन्थ उसने बनाया था। विद्वानों का वह बड़ा आदर करता था। जैनधर्म के प्रति भी उसकी बड़ी श्रद्धा थी। 'सिल्सिलानुत्तवारीख' का लेखक सुलेमान उसके विषय में लिखता है कि वह दुनियाँ के चार बड़े बादशाहों में से एक था।

१२—अमोघवर्ष का उत्तगधिकारी कृष्णराज (द्वितीय) हुआ, जिसके अन्य नाम अथवा खिताब कन्न और अकालवर्ष मिलते हैं। करहाड़ से मिले हुए ताम्रपत्र में लिखा है—'उसने गुर्जरो (गुजरातवालों) को हराया, लाटवालों का गर्व तोड़ा, गौड़ों को नम्रता सिखाई, समुद्रतटवालों की नाँद उड़ाई और आंध्र, कलिंग, गंग व मगधवालों से अपनी अज्ञा मनवाई।'। ऊपर आये हुए 'लाटवालों का गर्व तोड़ा' से यह आशय प्रतीत होता है कि गुजरात के राठोड़ राजा ध्रुवराज के भूमि दवाने पर कृष्णराज ने उससे गुजरात का राज्य छीन लिया हो। कपड़वंज से मिले हुए कृष्णराज के समय के शक संवत् ८४२ (वि० सं० ६६७) वैशाख सुदि १२ (ई० सं० ६६० ता० २७ अप्रैल) शुक्रवार के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसके देश को दमानेवाले शत्रु को धवलप्य ने मारा, जिसे कृष्णराज ने गुजरात में जागीर दी। इससे अनुमान होता है कि धवलप्य ने, जो कृष्णराज का सरदार रहा होगा, गुजरात का राज्य नष्ट किया। शक संवत् ८१० (वि० सं० ६४५ = ई० सं० ८८८) के बाद गुजरात के राठोड़ राजाओं का उल्लेख नहीं मिलता। उक्त संवत् के बेगुमरा से मिले हुए ताम्रपत्र में गुजरात के राठोड़ कृष्ण का उज्जयिनी में कृष्णराज (द्वितीय) की तरफ से लड़ने हुए शत्रु (भोज, प्रथम, रघुवंशी प्रतिहार) को परास्त

(१) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ४, पृ० २७८।

(२) बम्बई अहाने के खेड़ा जिले में।

(३) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १, पृ० ५३।

करना लिखा है^१। इन्द्रराज (तृतीय) के शक सं० ८३६ (वि० सं० १७१) फाल्गुन सुदि ७ (ई० स० ११५ ता० २४ फ़रवरी) के बेगुमरा के ताम्रपत्र से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। इस लड़ाई में जगन्नु और चेदी का राजा भी शामिल रहे थे^२।

दक्षिण के देश विजय करने में वेंगी देश के चालुक्य राजा विजयादित्य (तीसरा, गुणानंद) ने कृष्णराज का सामना किया, जिसमें कृष्णराज की हार हुई। इसका उल्लेख राठोड़ों के ताम्रपत्रों आदि में तो नहीं, किंतु चालुक्यों के ताम्रपत्रों आदि में मिलता है। चालुक्य राजा अम्म के ईडेरू के ताम्रपत्र में लिखा है—‘महादेव के समान शक्तिवाले उस महापराक्रमी राजा (विजयादित्य, तीसरा) ने राठोड़ों द्वारा ललकारे जाने पर लड़ाई में गंगवंशियों को जीत मेंगि का सिर काटा और कृष्णराज को भयभीत कर उसके उत्तम नगर को जला दिया। ४४ वर्ष राजकर उसके मरने पर राठोड़ों ने फिर वेंगीमंडल ले लिया^३।’ मेंगि के मारे जाने का चालुक्यों के कई दूसरे ताम्रपत्रों में भी उल्लेख मिलता है। हज़ीना हुआ वेंगी देश राठोड़ों के अधीन अधिक दिनों तक न रहा होगा, क्योंकि उपर्युक्त ईडेरू के ताम्रपत्र में आगे चलकर लिखा है—‘उस (विजयादित्य, तीसरा) के छोटे भाई विक्रमादित्य के पुत्र चालुक्य भीम ने, जिसका दूसरा नाम द्रोहार्जुन था, अपने पराक्रम और तलवार की सहायता से राज्य पर अधिकार कर लिया^४।’ कृष्णराज का राज्य गंगा तट के देश से लगाकर कन्याकुमारी के निकट तक फैला हुआ था।

कृष्णराज का विवाह चेदि के कलचुरि (हैहय) वंशी राजा कोकिल

(१) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १३, पृ० ६६ : यह लेख शक संवत् ८१० (वि० सं० १४५) [अर्मांत] चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि अमावास्या (ई० स० ८८८ ता० १२ अप्रैल) सोः वार सूर्यग्रहण का है।

(२) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १, पृ० २४।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १३, पृ० ५३।

(४) वही; जि० १३, पृ० ५३।

की पुत्री से हुआ था, जो शंकुक की छोटी बहिन थी। इससे जगत्तुंग नाम का पुत्र हुआ, जिसका विवाह उसके मामा रणविग्रह की पुत्री लक्ष्मी के साथ हुआ^१, जिससे उसके इंद्र नाम का पुत्र हुआ। जगत्तुंग का देहांत कुंवरपदे में ही हो जाने से कृष्णराज की मृत्यु होने पर उस (जगत्तुंग) का पुत्र इन्द्र राज्य का स्वामी बना।

१३-इन्द्रराज (तृतीय) के अन्य नाम अथवा खिताब रटुकंदर्प, कीर्ति-नारायण और नित्यवर्ष मिलते हैं। उसके समय के नवसारी के ताम्रपत्र में लिखा है—‘यह राजा अपने पट्टबन्धोत्सव (राज्याभिषेकोत्सव) के लिए शक सं० ८३६ (वि० सं० ६७१) फाल्गुन सुदि ७ (ई० सं० ६१५ ता० २४ फरवरी) को कुरुंदक (दक्षिण में कृष्णा और पंचगंगा का संगम) गया और उस उत्सव पर तुला से उतरते समय कुरुंदक गांव के अतिरिक्त अन्य बहुत से गांव और धन उसने दान में दिया^२।’ अतएव इस समय से कुछ दिन पूर्व ही कृष्णराज का देहांत हुआ होगा। उपर्युक्त ताम्रपत्र से यह भी ज्ञात होता है कि उसने मेरु को उजाड़ डाला और उपेन्द्र नाम के राजा को, जिसने गोवर्द्धन विजय किया था, परास्त किया^३। उपेन्द्र संभवतः परमारवंशी कृष्णराज रहा होगा, जिसका उदयपुर (मालवा) की प्रशस्ति के अनुसार एक नाम उपेन्द्रराज भी था। खंभात^४ के ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि उसने उज्जयिनी पर आक्रमण किया, यमुना को पार किया और फिर कन्नोज को जीत लिया। ग्युवंशी प्रतिहार

(१) मामा की लड़की से विवाह करने को नर्मदा से उत्तरवाले बुरा समझते हैं, परन्तु दक्षिण में इसकी प्रथा है और वहां पर चारों वंशों के लोग मामा की लड़की से शादी करते हैं। यह प्रथा प्राचीन है क्योंकि श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न और पौत्र अनिरुद्ध के विवाह उनके मामा की पुत्रियों से होना भागवत में लिखा है। इसी तरह अर्जुन का एक विवाह उसके मामा वसुदेव की पुत्री सुभद्रा से हुआ था। प्राचीन समय से ही इस प्रथा के विद्यमान होने के उदाहरण मिलते हैं, परन्तु वह धर्मविरुद्ध ही मानी गई है।

(२) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ग्राव्न्स ऑव् रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० २२, पृ० ८५।

(३) वही; जि० १८, पृ० २५३।

(४) बम्बई अहाते के खंभात राज्य की राजधानी।

राजा महीपाल भागा, जिसका इन्द्रराज के अफसर चालुक्य नरसिंह ने पीछा किया^१। खजराहो^२ के चन्देलों के लेख से भी महीपाल के हारकर भागने की पुष्टि होती है^३। कुडप्पा ज़िले के दानवुलपाडू नाम के स्थान से प्राप्त ऐतिहासिक साधनों से उस (इन्द्र) के एक अफसर श्रीविजय का पता चलता है, जिसने जैनधर्मावलम्बी होते हुए भी अपने स्वामी के शत्रुओं को हराया था^४। इन्द्रराज के दो पुत्र अमोधवर्ष और गोविन्दराज हुए।

१४ और १५—इन्द्रराज का उत्तराधिकारी अमोधवर्ष (द्वितीय) हुआ; पर वह अधिक दिनों तक राज्य न कर सका। शिलारा वंशी अपराजित के भादान^५ के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि अमोधवर्ष सिंहासनारूढ़ होने के एक वर्ष के भीतर मर गया^६। कृष्णराज (तृतीय) के करहाड़^७ और देवली^८ के ताम्रपत्रों से भी इसकी पुष्टि होती है। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई गोविन्दराज (चतुर्थ) हुआ। उसके दूसरे नाम अथवा खिताब साहसांक और सुवर्णवर्ष मिलते हैं। वह बड़ा विलासप्रिय राजा था। उसके खारेपाटन^९ के ताम्रपत्र में लिखा है कि वह वेश्याओं से घिरा रहता था^{१०}। देवली और करहाड़ के ताम्रपत्रों से भी पाया जाता है कि उसके दिन-रात भोग-विलास में रत रहने और कुमार्गगामी हो जाने से मंत्री

(१) अल्टेकर; दि राष्ट्रकुटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० १०१-२।

(२) मध्यभारत के छतरपुर राज्य में।

(३) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १, पृ० १२२।

(४) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव् इंडिया रिपोर्ट्स ई० स० १६०५-६; पृ० १२१-२।

(५) बम्बई अहते के थाना ज़िले में।

(६) अल्टेकर; दि राष्ट्रकुटाज़ ऐण्ड देअर टाइम्स; पृ० १०५।

(७) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ४; पृ० २८८।

(८) वर्धा ज़िले (मध्यप्रांत) में। एपिग्राफिया इंडिका; जि० ५, पृ० १८८।

(९) बम्बई अहते के रत्नगिरि ज़िले के देवगढ़ तालुके में।

(१०) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ३, पृ० २६२।

आदि उसके विरोधी बन गये, जिससे वह शीघ्र ही नष्ट हो गया^१। उसके समय में राज्य की दशा ठीक न रही। महीपाल ने पुनः कन्नौज पर अधिकार कर लिया। पूर्वा चालुक्यवंशी भीम (द्वितीय) ने भी उसकी सेना को परास्त किया। पद्य कवि अपने काव्य 'विक्रमार्जुनविजय' में लिखता है कि उस (गोविन्दराज चतुर्थ) का राज्य बद्दिगदेव (अमोघवर्ष) को दिया गया। इसकी पुष्टि देवली और करदाड़ के कृष्णराज (तृतीय) के ताम्रपत्रों से भी होती है। गोविन्दराज का अन्तिम उल्लेख शक संवत् ८५६ (वि० सं० ६६१ = ई० सं० ६३४) के ताम्रपत्र में मिलता है^२। बद्दिगदेव का सबसे पहला उल्लेख शक सं० ८५६ (वि० सं० ६६४) [अमांत] भाद्रपद (पूर्णिमांत आश्विन) वदि अमावास्या (ई० सं० ६३७ ता० ७ सितम्बर) गुरुवार के ताम्रपत्र में मिलता है^३। इससे स्पष्ट है कि उक्त दोनों संवत्‌ों के बीच किसी समय गोविन्दराज का देहांत हुआ होगा।

१६—अमोघवर्ष (तृतीय, बद्दिगदेव) गोविन्दराज (चतुर्थ) का चाचा था और उसके (गोविन्दराज) के निःसन्तान मरने पर वह दक्षिण के राठोड़ राज्य का स्वामी हुआ। वह बड़ी सान्त्विक वृत्ति का वीर और बुद्धिमान् राजा था। उसके चार पुत्रों—कृष्णराज, जगत्तंग, खोटिंग और निरुपम—के नाम मिलते हैं। उसकी पुत्री का विवाह पश्चिमी गंगवंशी भूतुग (द्वितीय) के साथ हुआ था। उनका राज्य अधिक दिनों तक न रहा होगा। वि० सं० ६६१ (ई० सं० ६३४) में गोविन्दराज विद्यमान था। उसके बाद शक संवत् ८६२ (वि० सं० ६६७) [अमांत] वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० सं० ६४० ता० २६ अप्रैल) के वर्षा के ताम्रपत्र के अनुसार उस समय अमोघवर्ष (तृतीय) का पुत्र कृष्णराज (तृतीय) सिंहासन पर था^४।

(१) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ४, पृ० २८८। वही; जि० १, पृ० १८८।

(२) एपिग्राफ़िया कर्णाटिका (होनाली तालुका); जि० ७; पृ० ६३-४, सं० २१-२३ अंग्रेज़ी अनुवाद।

(३) वही; जि० ११ (चित्तलटुग); पृ० १६, सं० ७६ अंग्रेज़ी अनुवाद।

(४) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० ५, पृ० १६२।

इससे अनुमान होता है कि उक्त दोनों संवतों के बीच कुछ समय के लिए अमोववर्ष (तृतीय) राजा रहा होगा।

१७—कृष्णराज (तृतीय) अमोववर्ष (तृतीय) का ज्येष्ठ पुत्र होने से वही उसकी मृत्यु के बाद उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके अन्य नाम अथवा खिताब कन्नरदेव, अकालवर्ष और वल्लभदेव मिलते हैं। देवली के ताम्रपत्र में लिखा है—‘वह कुंवरपदे से कार्तिक स्वामी जैसा शक्तिवान् था। उसने अपनी आज्ञा न माननेवाले सभी शत्रुओं को बरबाद किया, मधुकैटभ की नाई लोगों को दुःख देनेवाले दन्तिग और वण्णुक को मारा, गंगवंशी रत्नयमल को मारकर उसकी जगह पर भूतार्थ (भूतुग) को कायम किया और पहलवंशी राजा अंतिग को कष्ट में डाला। उसके हाथ से दक्षिण के तमाम किले फतह होने की बात सुनकर गुजरात का (प्रतिहार) राजा, जो कालिंजर और चित्रकूट लेने की आशा में था, भयभीत हो गया। पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक और हिमालय से सिंहल-द्वीप तक के सामन्त उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। वह पिता का आज्ञाकारी था।.....पिता का देहांत होने पर राजा हुआ और बाद में प्राण से भी अधिक प्यारे छोटे भाई जगन्तुंग के पुण्य के निमित्त शक संवत् ८६२ (वि० सं० ६६७) शारदरी संवत्सर (अर्मांत) वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) वदि ५ (ई० सं० ६७० ता० २६ अप्रैल) को उल्लेख ब्राह्मण भाइल्ल के पुत्र ऋष्यप को एक गांव दान में दिया।’ उसके चोल, चेर, सिंहल, पांड्य आदि देशों के राजाओं को जीतने का उल्लेख जैन महाकवि सोमदेव-सूरि के ‘यशस्तिलक’ नाम के महाकाव्य के अन्त में है। आत्कुर के लेख में गंगवंशी भूतुग (द्वितीय)-द्वारा चोल के राजा राजादित्य का मारा जाना लिखा है। कहीं-कहीं उसका राजादित्य को दया से मरवाना लिखा है, जो ठीक नहीं माना जा सकता। आत्कुर के लेख से पाया जाता है कि भूतुग को कृष्णराज ने बनवर्सी, किमुकाड, वेलघोल, बागेनाड़ और पुरीगेर के

(१) एषियाटिका इंडिका, जि० ५, पृ० १६२।

(२) माहसौर राज्य में।

परगने जागीर में दिये थे^१। कृष्णराज के पांचवें राज्यवर्ष के सिद्धलिंग-मादम् के शिलालेख में कांची और तंजोर विजय किये जाने का उल्लेख मिलता है^२। कृष्णराज के समय तक मालवे के परमार राठोड़ों के अधीन रहे, जैसा कि सीयक के वि० सं० १००५ (अर्मांत) माघ (पूर्णिमांत फाल्गुन) वदि अमावास्या (ई० स० ९४९ ता० ३१ जनवरी) बुधवार के हरसोला^३ के ताम्रपत्र से पाया जाता है^४। मारसिंह के अवणबेलगोला^५ के स्मारक से पाया जाता है कि उसने कृष्णराज के लिए उत्तर का प्रदेश जीता^६। संभवतः उत्तर के देशाधिपतियों के विगड़ने पर कृष्णराज ने उसकी अध्यक्षता में वहां सेना भेजी होगी। वाङ्ग के अरुम्बाक^७ के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने कर्णराज-वल्लभ (कृष्णराज, तृतीय) की सहायता से पूर्वी चालुक्य राजा अम्म (द्वितीय) को निकाल दिया^८। वि० संवत् १०१०-११ (ई० स० ९५३-४) के लगभग चन्देलों ने कालिंजर पर पुनः अधिकार कर लिया^९। दक्षिणी अर्काट जिले के किल्लूर के विरट्टनेश्वर के मंदिर में कृष्णराज के तीसवें राज्यवर्ष का एक लेख मिला है^{१०}। उसके राज्यसमय हि० स० ३३२ (वि० सं० १००१ = ई० स० ९४४) में अरव यात्री अल् मसूदी ने मुरुजुलज्जहव नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें लिखा है—'इस समय हिन्दुस्तान के राजाओं में सबसे बड़ा मानकेर (मान्यखेट) का

(१) एपिग्राफिया इंडिका; जि० २, पृ० १६७।

(२) मद्रास एपिग्राफिकल कलेक्शन्स; ई० स० १९०९, संख्या ३७५।

(३) गुजरात के अहमदाबाद जिले में।

(४) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १९, पृ० २३६।

(५) माहसोर राज्य के हसन जिले में।

(६) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ५, पृ० १७९।

(७) अरुम्बाक गांव का ताम्रपत्र मद्रास अहाते के तनुकु तालुके के पोलापुरा गांव से मिला था।

(८) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १९, पृ० १३७।

(९) अल्तेकर; दि राष्ट्रकूटाज एण्ड देअर टाइम्स; पृ० १२१।

(१०) मद्रास एपिग्राफिकल कलेक्शन्स; ई० स० १९०२, संख्या २३२।

राजा बलहरा (राठोड़) है । हिन्दुस्तान के बहुत से राजा उसको अपना मालिक मानते हैं । उसके पास हाथी और लश्कर असंख्य हैं । लश्कर अधिकतर पैदल है, क्योंकि उसकी राजधानी पहाड़ों में है ।' कोल्लगल्लू के शक सं० ८८६ (वि० सं० १०२४) फाल्गुन सुदि ६ (ई० सं० १६८ ता० ७ फरवरी) के लेख से पाया जाता है कि उसी वर्ष उस (कृष्णराज) का देहान्त हो गया और उसका भाई खोट्टिग उसका उत्तराधिकारी हुआ ।

१८—खोट्टिग के सिंहासनारूढ़ होने के बाद से ही दक्षिण के राठोड़ों की अवनति होने लगी । इसका कारण यह था कि वह अपने पूर्वजों की भांति साहसी और शक्तिशाली न था । उसके समय में मालवा के परमारों ने चढ़ाई कर मान्यखेट को लूटा । उदयपुर (मालवा) की प्रशस्ति में उसके सम्बन्ध में लिखा है कि राजा वैरिसिंह के पुत्र दर्पदेव (सीयक, दूसरा) ने युद्ध में खोट्टिग को परास्त किया । यह लड़ाई नर्मदा के किनारे खलिघट्ट नाम के स्थान में हुई, जिसमें वागड़ का स्वामी परमार कंकदेव, जो श्रीहर्षदेव का कुटुंबी था, हाथी पर चढ़कर लड़ता हुआ मारा गया । फिर दर्पदेव ने आगे बढ़कर वि० सं० १०२६ (ई० सं० १७२) में मान्यखेट को लूटा । इसके बाद के ताम्रपत्रादिक खोट्टिग के उत्तराधिकारी के मिलते हैं । ई० सं० १७२ (वि० सं० १०२६) के सोमब^४ के लेख में कर्क को राजा लिखा है^५ । अतएव उसी वर्ष खोट्टिग का देहान्त हो गया होगा । यह निःसन्तान मरा, जिसे उसके बाद उसके छोटे भाई निरुपम का पुत्र कर्कराज (दूसरा) गद्दी पर बैठा । कर्कराज के समय का एक लेख शक

(१) मद्रास एपिग्राफिकल् कलेक्शन्स: ई० सं० १६१३, संख्या २३६ ।

(२) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १४, पृ० १६७ । राजपूताना म्यूजियम् (अजमेर) की रिपोर्ट; ई० सं० १६१६-७; पृ० २ ।

(३) धनपाल; पाइयलच्छीनाममाला; श्लोक १६८ ।

(४) माहसोर के शिमोगा जिले में ।

(५) एपिग्राफिया कर्णाटिका; जि० ८, भाग १, लेख संख्या ४५५, पृ० ७७ (अंग्रेजी अनुवाद) ।

सं० ८६४ (वि० सं० १०२६) आश्विन सुदि १५ (ई० स० ९७२ ता० २५ सितंबर) बुधवार चंद्रग्रहण का करड़ा से मिला है, जिसमें खोटिंग का उल्लेख है ।

१६ और २०—कर्कराज (दूसरा) के अन्य नाम अथवा खिताब कक, ककल, कर्कर और अमोघवर्ष मिलते हैं । उसके समय के करड़ा के ताम्रपत्र में लिखा है कि उसने गुजरात, चोल, पांड्य, इण आदि के राजाओं को जीता था^१, पर यह कथन विश्वास के योग्य नहीं प्रतीत होता, क्योंकि वह अधिक दिनों तक गद्दी पर न रहा था और न उसकी शक्ति इतनी बड़ी हुई थी । वस्तुतः उसके समय में राठोड़ों की रही सही शक्ति भी लुप्त हो गई । खारेपाटण के शक सं० ६३० (वि० सं० १०६५) ज्येष्ठ सुदि १५ (ई० स० १००८ ता० २२ मई) के ताम्रपत्र में लिखा है—‘चालुक्य राजा तैलप (द्वितीय) ने ककल (कर्कराज, द्वितीय) से रट्ट (राठोड़ों का) राज्य छीन लिया^२ । इनकी पुष्टि मेरे^३ से मिले हुए भादान के शक सं० ६१६ (वि० सं० १०५३) [अर्थात्] आपाठ (पूर्णिमांत श्रावण) वदि ४ (ई० स० ९९७ ता० २१ जून) के ताम्रपत्र और येवूर के शक सं० ६६६ (वि० सं० ११२३) श्रावण सुदि १५ (ई० स० १०७७ ता० ६ अगस्त) रविवार चन्द्रग्रहण के लेख^४ से भी होती है । धारवाड़ प्रांत के गड़ग गांव के धीनारायण के मंदिर में लगे हुए लेख में श्रीमुख संवत्सर अर्थात् वर्तमान शक सं० ८६६ [गन ८१५] (वि० सं० १०३०) से तैलप का राज्याभि लिखा है^५ । उसी प्रांत के गंडूर गांव के एक लेख से उक्त श्रीमुख संवत्सर के आपाठ (जून) मास तक

(१) एफिग्राफिया इंडिका; जि० १२, पृ० २६३ ।

(२) वही; जि० ३, पृ० २६२ ।

(३) बम्बई अहान के धाना जिले के भिवन्डी नामक स्थान से दस मील उत्तर में ।

(४) एफिग्राफिया इंडिका; जि० ३, पृ० २६७ ।

(५) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० ८, पृ० १२ ।

(६) वही; जि० २१; पृ० १६७ ।

ककल (कर्कराज, द्वितीय) का गद्दी पर होना पाया जाता है' । अतएव गत शक संवत् ८६५ (चैत्रादि वि० सं० १०३० = ई० सं० १७३-७४) के आषाढ़ और फाल्गुण के बीच किसी समय राठोड़ों का महाराज्य चालुक्यों के हाथ में चला गया होगा । कर्कराज का क्या हुआ यह पता नहीं चलता, परन्तु सोमब ताल्लुके से वि० सं० १०४८ (ई० सं० १६१) के दो लेख मिले हैं, जिनमें महाराजाधिराज परमेश्वर परमभट्टराज श्रीककलदेव लिखा मिलता है^१ । संभवतः यह कर्कराज (द्वितीय) से ही सम्बन्ध रखता हो । कर्कराज के बाद गंगधंशी नोलवांतक मारसिंह तथा कतिपय राठोड़ सरदारों ने कृष्णराज (तृतीय) के पुत्र इन्द्रराज (चतुर्थ) को गद्दी पर बैठाकर राठोड़ राज्य कायम रखने का प्रयत्न किया, परन्तु उसमें उन्हें सफलता नहीं मिली । वि० सं० १०३२ (ई० सं० १७५) में मारसिंह अनशन करके मर गया और वि० सं० १०३६ वैशाख वदि ७ (ई० सं० १८२ ता० २० मार्च) को इन्द्रराज (चतुर्थ) ने भी इसी प्रकार अपना प्राण त्याग किया^२ । इस प्रकार दक्षिण के राष्ट्रकुलों के प्रतापी राज्य की समाप्ति हुई ।

दक्षिण के प्रतापी राठोड़ों की राजधानी मान्यखेट अथवा मालखेट का सर्वप्रथम उल्लेख अमोववर्ष (प्रथम) के ताम्रपत्र में आता है । उसमें लिखा है कि उस (अमोववर्ष) ने इन्द्रपुरी को लज्जित करनेवाले मान्यखेट नगर को बसाया ।

दक्षिण के राठोड़ों की
राजधानी

इससे तो यही पाया जाता है कि मान्यखेट राजधानी उसके समय से हुई और उसके पहले कोई दूसरी राजधानी रही होगी । कुछ लोगों का मत है कि 'मयूरखिंडी' अथवा 'मोरखिंड' में उनकी पहली राजधानी होनी चाहिये, क्योंकि गोविन्दराज (तृतीय) के वाणी-डिंडोरी, राधनपुर एवं कडवा के ताम्रपत्र उसी स्थान से लिखे गये थे । पर यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि ऐसी दशा में उनमें 'मयूरखिंडी-

(१) इंडियन ऐंटिकेरी; जि० १२; पृ० २७२ ।

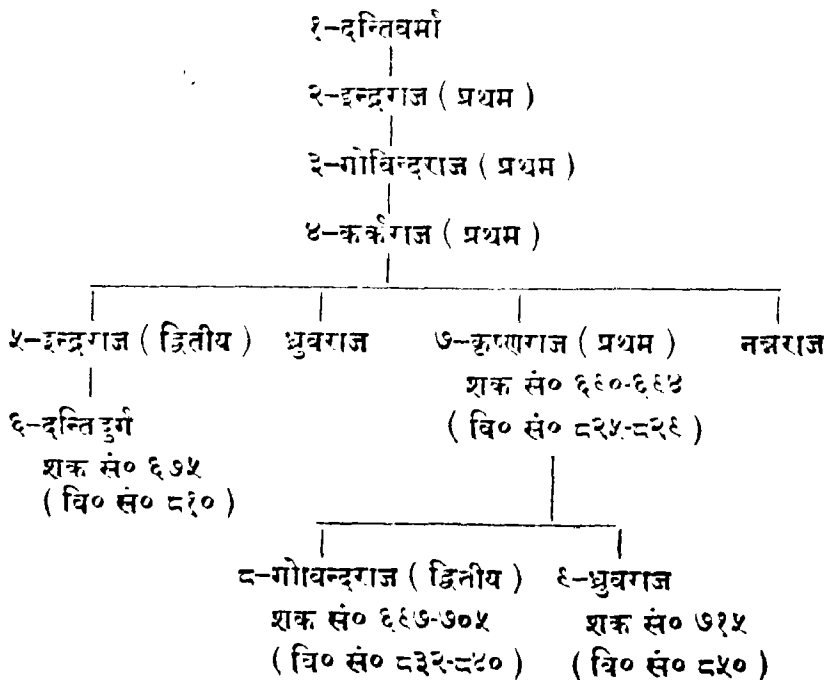
(२) अल्लेकर; दि राष्ट्रकुटाज्ञ एण्ड देअर टाइम्स; पृ० १३१ ।

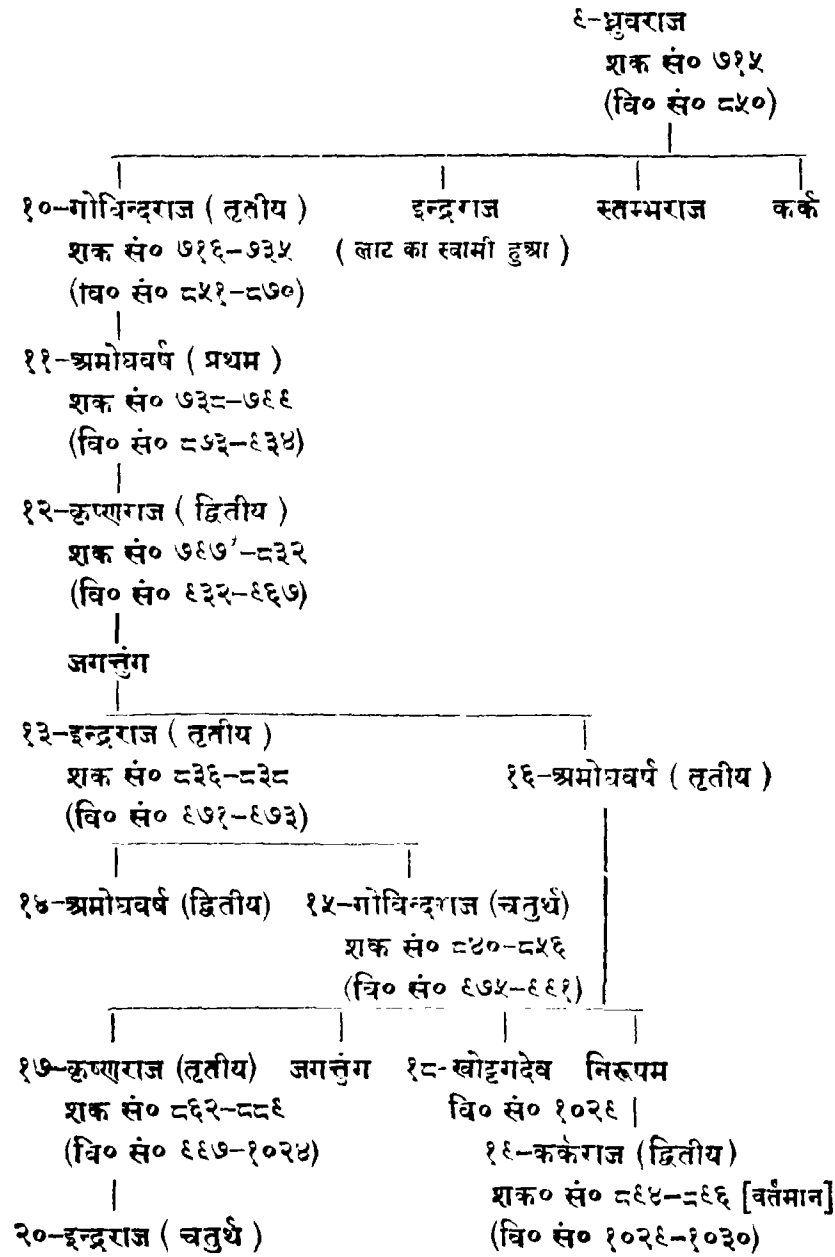
(३) वही; पृ० १३१-२ ।

वास्तव्येन मया' के स्थान में 'मयूगखिंडी समवासितेन मया' होना चाहिये था। इसी प्रकार नासिक, लाटूर और पैठण में भी दक्षिण के राठोड़ों की पूर्व-राजधानी नहीं मानी जा सकती। मि० कज़न्स का अनुमान है कि प्रतिद्ध एलोरा की गुफाओं के निकट के पठार पर स्थित 'सूलुवंजन' के आस-पास उनकी पूर्व-राजधानी रही होगी, पर जब तक शोध से यह निश्चित न हो जाय, इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। संभव है कि उनकी पूर्व-राजधानी वरार के 'एलिचपुर' में ही बनी रही हो, जहां पहले उनका राज्य था। इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कह सकना असंभव है। यह निश्चित है कि अमोयवर्ष (प्रथम) के समय से इन राठोड़ों की राजधानी मान्यखेट हो गई थी, जो उनके अन्तिम समय तक बनी रही।

दक्षिण के राष्ट्रकुटों (राठोड़ों) की वंशावली

निश्चित ज्ञात समय सहित





(१) अमोघवर्ष के वृद्ध होने के कारण कृष्णराज राज्यकार्य करने लग गया था।

दक्षिण के राठोड़ों से फटे हुए लाट' (गुजरात) के राठोड़ राजाओं के ताम्रपत्रों में सबसे पुराना आंतरोली-छरोली का है, जो शक संवत् ६७६

गुजरात के राठोड़ों की
पहली शाखा

(वि० सं० ८१४) आश्विन सुदि ७ (ई० सं० ७५७

ता० २४ सितंबर) का है । उसमें कमशः ककराज,

(कर्कराज) ध्रुवराज, गोविन्दराज और ककराज

के नाम मिलते हैं । इनमें से पहला तो दक्षिण का राजा था ।

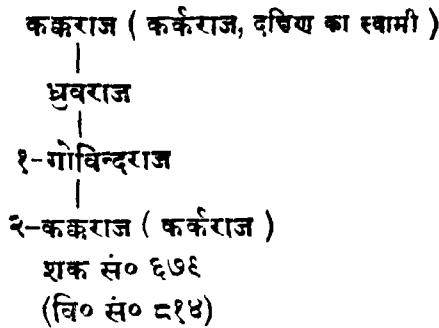
ध्रुवराज उसके छोटे पुत्रों में से था, जिसके वंश में कमशः गोविन्दराज और ककराज हुए । दक्षिण के राठोड़ राजा दन्तिदुर्ग ने सोलंक्रियां से गुजरात का प्रदेश जीतकर अपने चचेरे भाई गोविन्दराज अथवा उसके पुत्र ककराज को दे दिया होगा । उक्त ताम्रपत्र में ककराज के विरुद्ध परम-भट्टारक, महाराजाधिराज और परमेश्वर लिखे हैं, जो स्वतंत्र और बड़े राजा के द्योतक हैं, पर साथ ही उसे 'पांच महाशब्द' धारण करनेवाला भी लिखा है, जिससे पाया जाता है कि वह स्वतंत्र राजा नहीं, किन्तु सामन्त रहा होगा । ककराज के बाद इस शाखा का पता नहीं चलता । बड़ोदा के ताम्रपत्र में लिखा है—'दन्तिदुर्ग के बाद उसका चाचा कृष्णराज कुमार पर चलनेवाले अपने एक कुटुम्बी को जड़ से उखाड़कर अपने वंश के लाभ के लिए राज्य करने लगा' । अनुमान होता है कि उसने गुजरात के ककराज या उसके वंश का ही समूल नाश किया होगा ।

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकुटों (राठोड़ों) की पहली शाखा की वंशावली नीचे लिखे अनुसार है:—

(१) गुजरात का वह हिस्सा जो तारी और माही नदियों के बीच में है । उसकी सीमा समय-समय पर बदलती भी रही है ।

(२) गैज़टियर ऑफ् दि बॉम्बे प्रेसिडेंसी; जि० १, भाग १, पृ० १२१ ।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १५८ ।



१ और २—लाट (गुजरात) के राठोड़ों की दूसरी शाखा का इतिहास इन्द्रराज से प्रारम्भ होता है। वह दक्षिण के राठोड़ राजा धुवराज का छोटा पुत्र था, जिसे बड़े भाई गोविन्दराज (तृतीय) के गुजरात के राठोड़ों की दूसरी शाखा राज्य-काल में लाट (गुजरात) की जागीर मिली। उसके पुत्र कर्कराज के समय के बड़ोदा के ताम्रपत्र में लिखा है—‘इन्द्रराज ने अपने पर चढ़ाई करनेवाले गुर्जरेश्वर (गुजरात का राजा, प्रतिहार) को हरिण की नाई भगाया और जिन सामंतों का नैभय श्रीवल्लभ (दक्षिण का राठोड़ राजा गोविन्दराज, तृतीय) लूट रहा था, उनको बचाया’। इससे स्पष्ट है कि वह अपने बड़े भाई की कृपा से लाट जैसे बड़े देश का राजा बनते ही उसके विरोधियों का मददगार बन गया था। वह अधिक दिनों तक गद्दी पर न रहा, क्योंकि बड़ोदा के ताम्रपत्र के अनुसार शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६६= ई० सं० ८१२) में उसका पुत्र कर्कराज गुजरात का स्वामी था^१। कर्कराज का अन्य बिरुद अथवा नाम सुवर्णवर्ध भी मिलता है। तोरखेड़े के शक सं० ७३५ (वि० सं० ८७०) पौष सुदि ७ (ई० सं० ८१३ ता० ६ दिसंबर) के ताम्रपत्र में कर्कराज

(१) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १२, पृ० १५८।

(२) वही; जि० १२, पृ० १५७।

के एक छोटे भाई का उल्लेख मिलता है^१। उस (कर्कराज) के बड़ोदा से मिले हुए ताम्रपत्र से पाया जाता है कि गोड़ और दंगाल के राजाओं को जीतने के कारण अभिमानी बने हुए गुर्जरेश्वर (गुहवंशी प्रतिहार वत्सराज) के हाथ से बरबाद होते हुए मालवा के राजा को बचाने के लिए उसे उसके स्वामी (गोविन्दराज, तृतीय) ने भेजा^२। कर्कराज अपने पिता के विपरीत राज्यभक्त बना रहा और अमोघवर्ष के हाथ से दक्षिण का राज्य चला जाने पर उसी ने विद्रोहियों को हराकर उसे फिर गद्दी पर बैठाया। कर्कराज के समय के शक सं० ७३४, ७३८^३, ७४३^४ और ७४६^५ (वि० सं० ८६६, ८७३, ८७८ और ८८१ = ई० सं० ८१२, ८१६, ८२१ और ८२४) के ताम्रपत्र मिले हैं। उसकी मृत्यु होने पर उसके पुत्र ध्रुवराज की अवस्था छोटी होने के कारण गोविन्दराज (कर्कराज का भाई) राज्यकार्य संभालने लगा। कोई-कोई विद्वान् ऐसा भी मानते हैं कि वह अपने भतीजे की छोटी अवस्था देखकर उसका राज्य दबा बैठा था, परन्तु ऐसा मानना ठीक नहीं है, क्योंकि वह अपने ताम्रपत्रों में अपने भाई (कर्कराज) की बड़ी प्रशंसा करता है और अपने को कहीं राजा नहीं

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ३, पृ० ५३ ।

(२) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १२, पृ० १५७ ।

(३) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्राञ्च ऑव् दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी; जि० २०, पृ० १३५ ।

(४) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० २१, पृ० १३३ ।

(५) वही; जि० २२, पृ० ७७ ।

(६) बड़ोदा से मिले हुए कर्कराज के शक सं० ७३४ (वि० सं० ८६६ = ई० सं० ८१२) के दानपत्र में दूतक का नाम राजपुत्र श्रीदन्तिवर्मा लिखा है, जिससे कोई-कोई विद्वान् उसे भी कर्कराज का पुत्र मानते हैं । राजपुत्र का अर्थ राजा का पुत्र अथवा किसी भी राजवंशी का पुत्र होता है । दन्तिवर्मा कर्कराज का पुत्र अथवा किसी भी राजवंशी का पुत्र हो सकता है ।

(७) गोविन्दराज के शक सं० ७३५ और ७४६ (वि० सं० ८७० और ८८४ = ई० सं० ८१३ और ८२७) के दो दानपत्र मिले हैं (एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ३, पृ० ५४ तथा इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ५, पृ० १४५) ।

लिखता। कर्कराज और उसके भाई गोविन्दराज के ताम्रपत्र लगभग एक ही समय के मिलते हैं, जिससे निश्चित है कि वह अपने भाई के राजत्वकाल में भी राज्यकार्य की देखरेख करता था अर्थात् जिलों का शासक रहा होगा। अतएव उस (कर्कराज) की मृत्यु होने पर ध्रुवराज की छोटी अवस्था होने के कारण वह उस समय भी राज्यकार्य संभालने लगा होगा। पीछे से ध्रुवराज ने अपने चाचा गोविन्दराज के प्रियपात्र ज्योतिषी भट्ट मोहेश्वर के पुत्र योग को पूसिलाचल्ली नामक गांव जागीर में दिया^१। यदि गोविन्दराज ने अपने भाई का राज्य दबा लिया होता तो वह ऐसा कभी न करता। अतएव यही मानना पड़ेगा कि गोविन्दराज ने अपने भाई के मरने पर लाट का राज्य दबाया नहीं, अपितु अपने भतीजे की बाल्यावस्था के कारण राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया हो।

३, ४, ५ और ६—ध्रुवराज (प्रथम) के अन्य नाम अथवा विरुद्ध निरुपम और धारावर्ष मिलते हैं। बड़ोदा के ताम्रपत्र के अनुसार शक सं० ७५७ (वि० सं० ८६२) कार्तिक सुदि १५ (ई० सं० ८३५ ता० १० अक्टोबर) को वह गद्दी पर था^२। बेगुमरा से मिले हुए शक सं० ७८६ (वि० सं० ८९४) [अर्थात्] ज्येष्ठ (पूर्णिमांत आषाढ) यदि अमावास्या (ई० सं० ८६७ ता० ६ जून) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि वह दक्षिण के राठोड़ राजा अमोघवर्ष (प्रथम) से दासी हो गया, जिससे उस (अमोघवर्ष) ने उसपर चढ़ाई कर दी^३। संभवतः इसी लड़ाई में ध्रुवराज मारा गया हो। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र अकालवर्ष हुआ, जिसे शुभतुंग भी कहते थे। उक्त बेगुमरा के ताम्रपत्र में उसके विषय में लिखा है—‘उसके दुष्ट सेवक उससे बदल गये तो भी उसने बल्लभ (अमोघवर्ष) के लश्कर से दबा हुआ अपने पूर्वजों का राज्य तुरंत ही हस्तगत कर लिया’^४।

(१) इन्डियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० १६७।

(२) वही; जि० १४, पृ० १६६।

(३) वही; जि० १२, पृ० १७६।

(४) वही; जि० १२; पृ० १७६।

उसके तीन पुत्रों—ध्रुवराज, दन्तिवर्मा और गोविन्दराज—के नाम मिलते हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र ध्रुवराज (द्वितीय) हुआ, जिसका एक और नाम अथवा विरुद धारावर्ष मिलता है। उक्त बेगुमरा का दानपत्र उसी के समय का है, जिससे पाया जाता है कि उसे एक ही समय में अपने एक भाई और कतिपय कुटुंबियों का सामना करना पड़ा। उसे एक ओर दक्षिण के राठोड़ राजा वल्लभ, दूसरी ओर गुर्जरों (गुजरात के राजा) के सैन्य और तीसरी ओर राजा मिहिर की क़ौज से लोहा लेना पड़ा। इन सब लड़ाइयों में उसका छोटा भाई गोविन्दराज उसका सहायक बना रहा। ऊपर आया हुआ गुजरात का राजा संभवतः उत्तरी गुजरात का राजा क्षेमराज चावड़ा रहा होगा, क्योंकि वह प्रदेश उस समय उसके ही अधिकार में था। मिहिर राजा कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार राजा भोजदेव था। उस (ध्रुवराज) के छोटे भाई दन्तिवर्मा का एक दानपत्र शक सं० ७८६ (वि० सं० ६२४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ६ (ई० स० ८६७ ता० २३ दिसम्बर) का मिला है^१। दन्तिवर्मा अपने भाई के राज्यसमय में किसी प्रदेश का शासक रहा हो, ऐसा अनुमान होता है। शक सं० ८०६ (वि० सं० ६४१) मार्गशीर्ष सुदि २ (ई० स० ८८४ ता० २३ नवंबर) तक ध्रुवराज गद्दी पर था^२, जैसा कि उसके उक्त संबन्ध के दानपत्र से पाया जाता है।

उसका उत्तराधिकारी उसका भतीजा (दन्तिवर्मा का पुत्र) कृष्णराज हुआ, जिसके समय का शक सं० ८१० (वि० सं० ६४५) [अमांत] चैत्र (पूर्णिमांत वैशाख) वदि अमावास्या (ई० स० ८८८ ता० १५ अप्रैल) सूर्यग्रहण का एक दानपत्र मिला है^३। उसने प्रतिहारों को उज्जैन में हराया था। गुजरात की दूसरी शाखा का वह अन्तिम राजा हुआ। उसके बाद उसके वंशवालों का क्या हुआ इसका कुछ पता नहीं चलता। उसका

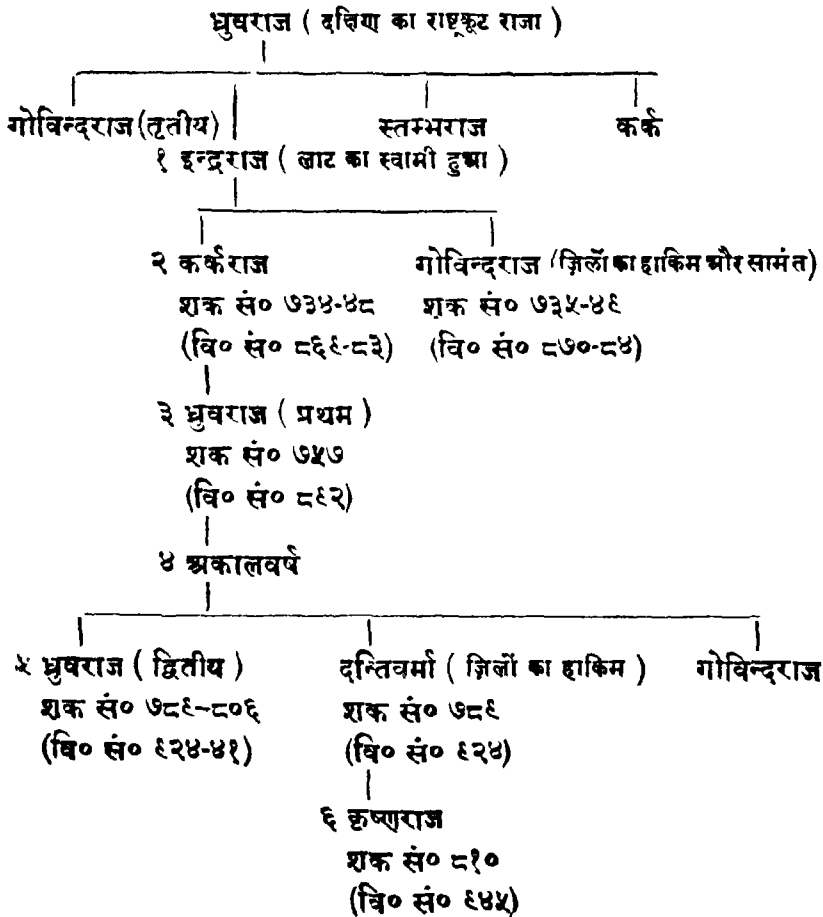
(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ६, पृ० २८०।

(२) वही; जि० २२, पृ० ६४।

(३) वही; जि० १३, पृ० ६६।

उत्कर्ष देखकर दक्षिण के राठोड़ राजा कृष्णराज (द्वितीय) ने उसपर चढ़ाईकर लाट का प्रदेश अपने राज्य में मिला लिया ।

लाट (गुजरात) के राष्ट्रकुटों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा की वंशावली



सौन्दत्ति के रट्ट (राठोड़)

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि दक्षिण के राठोड़ों का महाराज्य

सोलंकी तैलप्प के हाथों नष्ट हुआ था। इतना होने पर भी राठोड़ों की कई छोटी शाखाओं का अस्तित्व बना रहा, जो सोलंकीयों के अधीन रहीं। बम्बई अर्द्धाते के धारवाड़ ज़िले में राठोड़ों की एक जागीर का पता चलता है, जिसका मुख्य स्थान परसगढ़ तालुके का सौंदत्ति नाम का नगर था। उनकी दो शाखाओं का एक दूसरी के बाद होना पाया जाता है। वे अपने को बहुधा रट्ट लिखते और कभी-कभी राष्ट्रकूट शब्द का भी प्रयोग करते थे। वे अपने को राष्ट्रकूट कृष्ण के वंश में होना बतलाते हैं, जो ऊपर आये हुए दक्षिण के कृष्ण नाम के तीन राजाओं में से कोई एक होना चाहिये।

पहली शाखा में सर्वप्रथम नाम मेरड का मिलता है। उसके बाद क्रमशः पृथ्वीराम, पिट्टुग और शान्तिवर्मा हुए। शान्तिवर्मा का एक लेख शक सं० ६०२ (वि० सं० १०३७) पौष सुदि १० (ई० सं० ६८० ता० १६ दिसंबर) का मिला है, जिसमें उसे तैलप का सामन्त लिखा है। उसके बाद इस शाखा का उल्लेख नहीं मिलता।

सौन्दत्ति के रट्टों का
पहली शाखा

सौन्दत्ति के रट्टों (राठोड़ों) की पहली शाखा का वंशवृक्ष

- १-मेरड
- |
- २-पृथ्वीराम
- |
- ३-पिट्टुग
- |
- ४-शान्तिवर्मा
- शक सं० ६०२
- (वि० सं० १०३७)

१ और २—सौन्दत्ति के रट्टों (राटोड़ों) की दूसरी शाखा का प्रारम्भ कन्न से पाया जाता है। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कार्तवीर्य (प्रथम) हुआ, जो तैलप्प के अधीन कुंडी प्रदेश का स्वामी था। उसके समय का शक सं० ६०२ (वि० सं० १०३७= ई० सं० ६८०) का एक लेख मिला है^१, जिससे अनुमान होता है कि उसने ही रट्टों की पहली शाखा से राज्य छीनकर उसकी समाप्ति की होगी।

३, ४, ५ और ६—कार्तवीर्य (प्रथम) के बाद उसका पुत्र दायिम (दावरि) सौन्दत्ति के राज्य का स्वामी हुआ। दायिम का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई कन्न (प्रथम) हुआ, जिसके बाद उसका पुत्र परग (परग) गद्दी पर बैठा। परग के समय का शक सं० ६६२ (वि० सं० १०६७) मार्गशीर्ष सुदि ५ (ई० सं० १०४० ता० १२ नवंबर) का एक लेख मिला है^२, जिससे पाया जाता है कि वह सोलंकी जयसिंह (द्वितीय) का महासामन्त और लट्टूर का हाकिम था। परग का उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई अङ्ग हुआ, जिसका शक सं० ६७० [गत शक सं० ६६६] (वि० सं० ११०४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि ७ (ई० सं० १०४८ ता० १० जनवरी) रविवार का एक लेख मिला है, जिसमें उसे सोलंकी त्रैलोक्य (सोमेश्वर, प्रथम) का महासामन्त लिखा है^३।

७, ८, ९, १० और ११—अंक के बाद उसका भतीजा (परग का पुत्र) सेन (प्रथम) गद्दी पर बैठा। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कन्न (द्वितीय) हुआ, जिसके समय का शक सं० १००४ (वि० सं० ११३६) कार्तिक सुदि १ (ई० सं० १०८२ ता० २५ अक्टोबर) का ताम्रपत्र मिला है, जिसमें उसे सोलंकी विक्रमादित्य (छठा) का महासामन्त

(१) गैज़टियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग २, पृ० २५३।

(२) इंडियन ऐंटिक्वेरी; जि० १६, पृ० १६१।

(३) जर्नेल ऑव् दि बॉम्बे ग्रान्च ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० १७२।

लिखा है'। उसके समय का एक लेख शक सं० १००६ (वि० सं० ११४४) [अमांत] पौष (पूर्णिमांत माघ) वदि १४ (? १३) (ई० स० १०८७ ता० २५ दिसम्बर) शनिवार का भी मिला है^२। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा भाई कार्तवीर्य (द्वितीय) हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र सेन (द्वितीय) हुआ, जिसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र कार्तवीर्य (तृतीय) हुआ, जिसे कट्टम भी कहते थे। उसके समय के एक खण्डित लेख में उसकी उपाधियां महामण्डलेश्वर और चक्रवर्ती लिखी हैं^३, जिससे अनुमान होता है कि जिस समय सोलंकी राजा तैल (तृतीय) का राज्य उसके कलचुरिवंशी सामन्त विज्जल ने छीना, उस समय की अव्यवस्था से लाभ उठाकर कार्तवीर्य स्वतंत्र हो गया होगा। उसके समय के शक सं० १०६१^४ (वि० सं० १२०१), शक सं० १०८४^५ (वि० सं० १२१६) और शक सं० १०८६^६ (वि० सं० १२२१) के भी लेख मिले हैं।

१२, १३ और १४—उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मीदेव (प्रथम) हुआ, जिसे लक्ष्मण और लक्ष्मीधर भी कहते थे। उसके पीछे उसका पुत्र कार्तवीर्य (चतुर्थ) सौंदत्ति का स्वामी हुआ, जिसके एक छोटे भाई मल्लिकार्जुन का नाम मिलता है। कार्तवीर्य के समय के शक सं० ११२१^७ (वि० सं० १२५६ = ई० स० ११६६), वर्तमान/शक सं० ११२४ [गत शक सं० ११२३] (वि० सं० १२५८) वैशाख सुदि १५ (ई० स०

(१) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ३, पृ० ३०६।

(२) जर्नेल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २६७-८।

(३) जर्नेल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० १८१।

(४) कर्णाटक देश इन्क्रिप्शन्स; जि० २, पृ० २४७।

(५) वही; जि० २, पृ० २४८।

(६) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४, पृ० ११६।

(७) कर्णाटक देश इन्क्रिप्शन्स; जि० २, पृ० २६१।

१२०१ ता० २० अप्रैल) शुक्रवार^१, (वर्तमान) शक सं० ११२७ [गत शक सं० ११२६] (वि० सं० १२६१) पौष सुदि २ (ई० स० १२०४ ता० २५ दिसंबर) शनिवार^२, शक सं० ११३१ [गत शक सं० ११३०] (वि० सं० १२६५) कार्तिक सुदि १२ (ई० स० १२०८ ता० २२ अक्टोबर) बुधवार^३ और शक सं० ११४१ [गत शक सं० ११४०] (वि० सं० १२७५) माघ सुदि ७ (ई० स० १२१६ ता० २४ जनवरी) गुरुवार^४ के ताम्रपत्र और शिलालेख मिले हैं। उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र लक्ष्मीदेव (द्वितीय) हुआ। उसके समय का एक लेख शक सं० ११५१ [गत शक सं० ११५०] (वि० सं० १२८५) [अमान] आपाठ (पूर्णिमांत श्रावण) वदि अमावास्या (ई० स० १२२८ ता० ३ जुलाई) सोमवार सूर्यग्रहण का मिला है^५। उसके बाद इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

सौदत्ति के रट्टों (राठोड़ों) की दूसरी शाखा की वंशावली

१-तन्त्र

|

२-कार्तवीर्य (प्रथम)

शक सं० ६०२

(वि० सं० १०३७)

(१) ग्राहम; कोल्हापुर; पृ० ४१५, संख्या ६।

(२) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २२०।

(३) इंडियन ऐंटीक्वेरी; जि० १६, पृ० २४२।

(४) जर्नल ऑव् दि बॉम्बे ब्रांच ऑव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी; जि० १०, पृ० २४०।

(५) वही; जि० १०, पृ० २६०। आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट्स (वेस्टर्न इण्डिया); जि० २, पृ० २२३ तथा जि० ३, पृ० १०७।

२-कार्तवीर्य (प्रथम)

शक सं० ६०२

(वि० सं० १०३७)

३-दायिम

४-कन्न (प्रथम)

५-परग

शक सं० ६६२

(वि० सं० १०६७)

६-अङ्क

शक सं० ६६६

(वि० सं० ११०४)

७-सेन (प्रथम)

८-कन्न (द्वितीय)

शक सं० १००४-१००६

(वि० सं० ११३६-११४८)

९-कार्तवीर्य (द्वितीय)

१०-सेन (द्वितीय)

११-कार्तवीर्य (तृतीय)

शक सं० १०६६-१०८६

(वि० सं० १२०१-१२२१)

१२-लक्ष्मीदेव (प्रथम)

१३-कार्तवीर्य (चतुर्थ)

शक सं० ११२१-११४०

(वि० सं० १२५६-१२७५)

मल्लिकार्जुन

१४-लक्ष्मीदेव (द्वितीय)

शक सं० ११५०

(वि० सं० १२८५)

मध्यभारत और मध्यप्रांतों के राष्ट्रकूट (राठोड़)

मध्य भारत और मध्य प्रांतों के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

१-मानपुर के राठोड़

२-वेतुल के राठोड़ और

३-पथारी के राठोड़

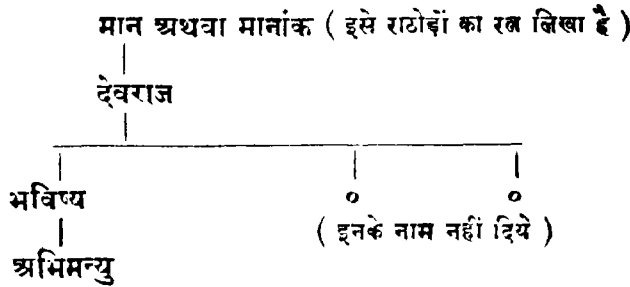
राष्ट्रकूट अभिमन्यु के उड़ीक वाटिका के दानपत्र में राठोड़ों की इस शाखा का उल्लेख मिलता है। यह दानपत्र किस स्थान से मिला अथवा

किस संवत् का है यह कुछ भी ज्ञात नहीं होता, मानपुर के राठोड़

परन्तु इसकी लिपि आदि को देखते हुए यह कहा

जा सकता है कि यह दानपत्र ई० स० की सातवीं शताब्दी के आस-पास का है। इससे पता चलता है कि अभिमन्यु ने यह दानपत्र मानपुर से जारी किया था, जो संभवतः उसकी राजधानी रही होगी। डा० प्रलीट का अनुमान है कि यह मानपुर मालवे का मानपुर होना चाहिये, जो मऊ से बारह मील दक्षिण पूर्व में है और जिसे उक्त राठोड़ शाखा के प्रवर्तक मानांक ने बसाया होगा। इस शाखा का दक्षिण के प्रतापी राठोड़ों से क्या सम्बन्ध था, यह कहना कठिन है। अभिमन्यु के दानपत्र में उसका राज्य-चिह्न देर दिया है और मान्यखेट के राठोड़ों का राज्यचिह्न शिव अथवा गरुड़ था। इन दोनों घरानों के नामों में भी समानता नहीं दिखाई पड़ती।

मानपुर के राष्ट्रकुटों (राठोड़ों) की वंशावली



राष्ट्रकुटों की इस शाखा का उल्लेख नन्दराज के 'तिवरखेड़' के दान-पत्र में मिलता है। यह दानपत्र शक संवत् ७७३ (वि० सं० ६८८ = ई० स० ६३१) का है और इसमें नन्दराज के प्रपितामह दुर्गराज से लगाकर नन्दराज तक की वंशावली दी है^१।

बेतुल के राठोड़

नन्दराज बड़ा धीर था और उसे युद्धशूर भी कहते थे। उन राजाओं में से किसी के साथ बड़े राजा का खिताब न होने से यह अनुमान होता है कि वे किसी बड़े राजा के सामंत रहे होंगे। उनका राज्यचिह्न गरुड़ है, जो मान्यखेट के राठोड़ों का है और मान्यखेटवालों के नाम के साथ उनके नामों की समानता है, अतएव यह भी माना जा सकता है कि कदाचित् वे मान्यखेटवाले राष्ट्रकुटों के पूर्वज या संबंधी रहे हों।

इन राष्ट्रकुटों का उल्लेख मुलताई के दानपत्र में भी आता है, जो शक संवत् ६३१ (वि० सं० ७६६ = ई० स० ७०६) का है। इसमें भी नन्दराज तक के वही चार नाम हैं, जो 'तिवरखेड़' के ताम्रपत्र में आये हैं^२। फ्लीट ने यह दानपत्र नन्दराज के समय का माना है, पर मूललेख की छाप

(१) मध्यप्रान्त में मुलताई नदमील में।

(२) एपिग्राफिया इन्डिका; जि० ११, पृ० २७६।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वरी; जि० १८, पृ० २३०।

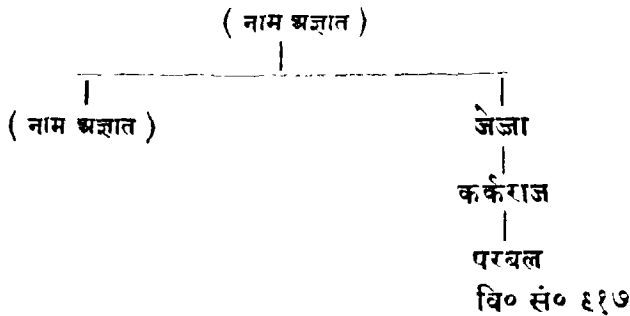
पढ़ने से यह निश्चित हो जाता है कि प्रलीट ने इसके पढ़ने में गलती की है और यह नाम नन्नराज है। अतएव तिवरखेड़ और मुलताई दोनों स्थानों के दानपत्र एक ही व्यक्ति नन्नराज के समय के लिखे हुए होने चाहियें, पर ऐसी दशा में दोनों दानपत्रों के लिखे जाने के समय में ७८ वर्ष का अन्तर आता है। नन्नराज का इतने समय तक गद्दी पर रहना कल्पना में नहीं आता। ऐसी दशा में यही कहना पड़ेगा कि या तो मुलताई का दान-पत्र फर्जी है अथवा उसमें दिया हुआ संवत् गलत है।

बेतुल के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली

१-दुर्गराज
|
२-गोविंदराज
|
३-स्वामिकराज
|
४-नन्नराज
शक सं० ४५३
(वि० सं० ६८८)

राष्ट्रकूटों की इस शाखा का उल्लेख राजा परवल के पथारी (भोपाल-राज्य) के प्रस्तर-स्तम्भ पर खुदे हुए लेख में मिलता है। यह शिलालेख वि० सं० ६१७ (चैत्रादि ६१८) चैत्र सुदि ६ (ई० स० ८६१ ता० २१ मार्च) शुक्रवार का है और इसमें जेजा से लगाकर परवल तक की वंशावली दी है^१। जेजा के बड़े भाई ने कारणाट (करनाटक) की सेना को परास्तकर लाट देश पर अधिकार कर लिया था और उस (जेजा) के पुत्र कर्कराज ने वीरतापूर्वक लड़कर नागावलोक को हराया था। कीलहार्न के मतानुसार नागावलोक कन्नौज का रघुवंशी प्रतिहार नागभट (द्वितीय) रहा होगा।

पथारी के राष्ट्रकुटों (राठोड़ों) की वंशावली



बिहार के राष्ट्रकुट (राठोड़)

बुद्ध गया से एक लेख बिना संवत् का मिला है, जिसमें राष्ट्रकुटों के नीचे लिखे नाम मिलते हैं—

- १-नन्न (गुणाधलोक),
- २-कीर्तिराज (नं० १ का पुत्र)
- ३-तुंग (धर्माधलोक, नं० २ का पुत्र) ।

ये राष्ट्रकुट राजा कहां के थे और किस समय हुए इसका कुछ हाल लिखा हुआ नहीं मिलता । बंगाल के पालवंशी राजा नारायणपाल के पुत्र राज्यपाल की राणी भाग्यदेवी राष्ट्रकुट तुंग की पुत्री थी, ऐसा उसके वंशज महीपालदेव के ताम्रपत्र से पाया जाता है । संभवतः भाग्यदेवी बुद्ध गया के लेख के राठोड़ तुंग की पुत्री हो ।

कन्नौज के गाहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र (ई० स० १११४-११५४) की राणी कुमारदेवी के सारनाथ के शिलालेख में उसके नाना का नाम

(१) एपिग्राफिया इण्डिका; जि० ६, पृ० २४८ ।

(२) राजेन्द्रलाल मित्र; बुद्ध गया; पृ० १२३ ।

महण दिया है। बंगाल के पालवंशी राजा रामपाल का मामा राष्ट्रकूट मथन (महण) था, ऐसा सन्ध्याकर नंदी के “रामचरित” नामक काव्य से पाया जाता है। संभव है कि उपर्युक्त लेखवाला महण और “रामचरित” में आया हुआ राष्ट्रकूट मथन (महण) एक ही व्यक्ति हो।

संयुक्त प्रान्तों के राष्ट्रकूट (राठोड़)

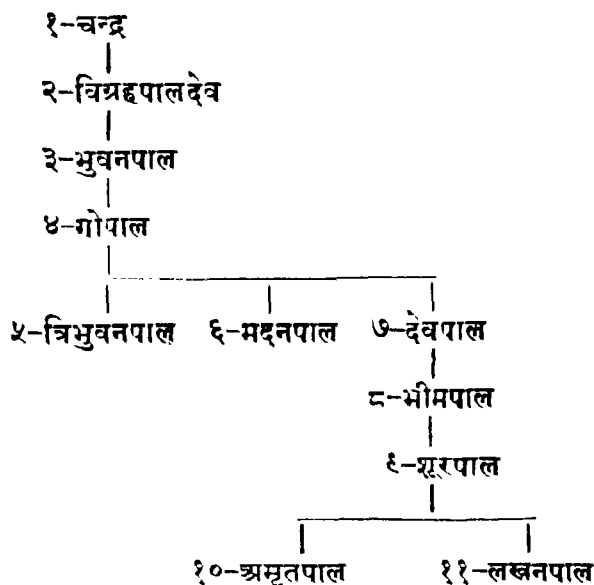
कन्नौज के प्रतापी गाहड़वाल राजाओं के साम्राज्य के अन्तर्गत बदायूं से एक शिलालेख मित्रा है। उससे पाया जाता है कि पांचाल देश के आभूषण रूप वोदामयूता (बदायूं) नामक नगर में पहला राष्ट्रकूट राजा चन्द्र हुआ। उसका पुत्र विग्रहपालदेव बड़ा प्रतापी हुआ, जिसके बाद क्रमशः भुवनपाल और गोपाल हुए। गोपाल के तीन पुत्र—त्रिभुवनपाल, मदनपाल और देवपाल—थे, जो क्रमशः उक्त राष्ट्रकूट राज्य के स्वामी हुए। देवपाल के बाद क्रमशः भीमपाल और शूरपाल हुए। शूरपाल के दो पुत्र—अमृतपाल और लखनपाल—थे, जिनमें से लखनपाल के समय का यह शिलालेख है^१।

बदायूं पर मुसलमानों का अधिकार कुतुबुद्दीन ऐबक के समय में हुआ था। वहां का पहला हाकिम शम्सुद्दीन अलतमश हुआ, जो पीछे से दिल्ली का सुलतान बना। बदायूं की जुमा मसजिद के दरवाजे पर शम्सुद्दीन के समय का हि० सं० ६२० (वि० सं० १२०० = ई० सं० १२२३) का एक लेख खुदा है,^२ अतएव राठोड़ों का उपर्युक्त लेख वि० सं० १२०० (ई० सं० १२२३) से पूर्व का होना चाहिये।

(१) एपिग्राफिया इण्डिका; जि० १, पृ० ६१।

(२) कनिंगहम; आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ् इंडिया; जि० ११, पृ० ५, प्लेट संख्या ४। आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ् नार्दर्न इंडिया; जि० १, पृ० ७१।

बदायूं के राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) की वंशावली



इस लेख से ऊपर आये हुए राष्ट्रकूट राजाओं के नामों के अतिरिक्त और कोई वृत्त ज्ञात नहीं होता और न इससे उनमें से किसी के समय का ही पता चलता है । आवस्ती से मिले हुए वि० सं० ११७६ (ई० सं० १११६) के वास्तव्य वंशीय विद्याधर के लेख से इस सम्बन्ध में कुछ विशेष प्रकाश पड़ता है । उससे पाया जाता है कि वह (विद्याधर) मदनपाल का मंत्री था और उसका पिता जनक (वास्तव्यवंशी विल्वशिव का पुत्र) गाधीपुर (कन्नौज) के राजा गोपाल का मंत्री था । कन्नौज के गाहड़वाल राजाओं में गोपाल नाम का कोई राजा नहीं हुआ । बदायूं के राष्ट्रकूटों के शिलालेख में गोपाल और उसके दूसरे पुत्र मदनपाल के नाम आये हैं । अतएव अधिक संभव तो यही है कि विद्याधर बदायूं के राष्ट्रकूट

राजा मदनपाल का और उसका पिता जनक मदनपाल के पिता गोपाल का, जिसे गाधीपुर का राजा लिखा है, मंत्री रहा होगा। यह लेख वि० सं० ११७६ का है, अतएव हम मदनपाल का समय उक्त समय के आस पास स्थिर कर सकते हैं। यदि हम प्रत्येक राजा का औसत राज्य-समय २० वर्ष मान लें तो मदनपाल के भाई त्रिभुवनपाल का वि० सं० ११५६ के और उसके पिता गोपाल का वि० सं० ११३६ के आस-पास विद्यमान रहना स्थिर होता है। इस हिसाब से यह अनुमान होता है कि वदायूं की उक्त राठोड़ शाखा का प्रवर्तक चन्द्र वि० सं० १०७६ के लगभग विद्यमान रहा होगा।

कन्नौज के प्रतिहार राजा राज्यपाल के समय वि० सं० १०७५ (ई० सं० १०१८) में महमूद गज़नवी की चढ़ाई कन्नौज पर हुई। तब से ही वहां के प्रतिहारों का राज्य निर्बल होने लगा और दिन-दिन उसकी अवनति होने लगी। उस समय की प्रतिहारों की निर्बलता से लाभ उठाकर वदायूं के राष्ट्रकूट राजा गोपाल ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया, परन्तु उसका अधिकार अधिक दिनों तक वहां रहा हो ऐसा अनुमान नहीं होता क्योंकि गाहड़वाल (गहरवार) यशोविग्रह के पौत्र और महीचन्द्र के पुत्र चन्द्रदेव ने सारा पांचाल देश विजयकर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया था। उस (चन्द्रदेव) के दानपत्र वि० सं० ११४८ से लगाकर ११५६ (ई० सं० १०९१ से १०९६) तक के मिले हैं, जिससे अनुमान होता है कि वह वदायूं के चौथे राष्ट्रकूट राजा गोपाल का समकालीन रहा होगा और उससे अथवा उसके पुत्र से उसने कन्नौज लिया होगा।

काठियावाड़ के राष्ट्रकूट

जून।गढ़ राज्य के वनथली नामक स्थान से मिला हुआ एक शिला-लेख राजकोट म्यूजियम में रखा हुआ है, जिसके ऊपर का बाईं तरफ का कुछ अंश जाता रहा है। उसमें वहां के राष्ट्रकूट सामन्तों के नाम

क्रमशः उद्दल, जैत्रसिंह और भीमसिंह मिलते हैं^१। भीमसिंह की पुत्री नागलदेवी का विवाह किसी अन्य वंश (वंश के नाम का पता नहीं चलता) के क्षेमानन्द के पुत्र विजयानन्द से हुआ था। क्षेमानन्द का विवाह चौलुक्य (घघेल) वीरधवल की पुत्री प्रीमलदेवी से हुआ था। चौलुक्य वीरधवल का देहांत वि० सं० १२६४ (ई० स० १२३८) में हुआ था। अतएव वि० सं० १२६० के आस-पास राष्ट्रकूट भीमसिंह का विद्यमान होना अनुमान होता है और उसके पिता तथा दादा का उससे पूर्व।

काठियावाड़ के राष्ट्रकूटों से सम्बन्ध रखनेवाला एक दूसरा शिलालेख वि० सं० १३४६ (चैत्रादि १३४७) [श्रमांत] वैशाख (पूर्णिमांत ज्येष्ठ) षदि ६ (ई० स० १२६० ता० १ मई) सोमवार का चौलुक्य (घघेल) सारंगदेव के समय का वनथली से मिला है, जिसमें राष्ट्रकूट मल्ल और हरिपाल के नाम मिलते हैं^२। हरिपाल उपर्युक्त क्षेमानन्द के पुत्र विजयानन्द के लिए लड़ा था। ये राष्ट्रकूट उपर्युक्त काठियावाड़ के राठोड़ों के वंशधर रहे होंगे।

(१) दि एनल्स ऑव दि मंडारकर इन्स्टिट्यूट; जि० ५, पृ० १७१-१।

(२) वही; जि० ५, पृ० १७४ का टिप्पण।

वि० सं० १४०० (ई० स० १३४३) के पीछे मारवाड़ के राठोड़ों के वंशधर काठियावाड़ में पहुंचे। वाडेल ने छल से द्वारिका और घंट के स्वामियों को मारकर वहां अधिकार कर लिया। उसके वंश के वाडेल राठोड़ कहलाये। वंजा ने दक्षिणी तट पर अधिकार कर गीर (जूनागढ़ राज्य) के दक्षिण की रावल नदी के किनारे अपने नाम से वैजलकोट बसाया। उसके वंशज वाजा राठोड़ कहलाये। वैजलकोट से आगे बढ़कर उन्होंने जना (जूनागढ़) लिया और अपने राज्य का पूर्व में भांभमेर और मनारी तक प्रसार किया, परन्तु पीछे से उन्हें ग्रासियों ने निकाल दिया। तब उन्होंने भावनगर राज्य की शरण ली, जहां पर वे अब छोटे-छोटे जमींदार हैं।

वि० सं० १४४२ (ई० स०-१३८५) का एक लेख वेरावल (जूनागढ़ राज्य) से मिला है, जिसमें राष्ट्रोड़ (राठोड़) वंशी धर्म का नाम मिलता है (नागरी प्रचारिणी पत्रिका नवीन संस्करण; भाग ४, पृ० ३४७)। वह काठियावाड़ के राठोड़ों की किस शाखा में से था यह कहा नहीं जा सकता।

गुर्जरेश्वर पुरोहित सोमेश्वर स्वरचित “कीर्तिकौमुदी” नामक काव्यग्रन्थ में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव दूसरे के समय की उसके राज्य की दुर्दशा का वर्णन करते हुए लिखता है कि राष्ट्रकूटवंशी वीर प्रतापमल्ल आज नहीं है, जो शत्रुओं का निकट आना सहन नहीं कर सकता था, जैसे गन्ध हस्ती शत्रुओं के मदमत्त हाथियों की गन्ध को सहन नहीं कर सकता। प्रतापमल्ल सोलंकीयों का कोई वीर सामन्त होना चाहिये। उसकी जागीर कहाँ थी, इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस प्रतापमल्ल का समय भीमदेव (?) की गद्दीनशानी अर्थात् वि० सं० १२३५ (ई० स० ११७८) के निकट या कुछ पूर्व होना चाहिये।

राजपूताने के पहले के राष्ट्रकूट (राठोड़)

राजपूताने के कुछ हिस्सोंमें राष्ट्रकूटों का प्राचीन काल में भी राज्य होना पाया जाता है। वहाँ के पहले के राष्ट्रकूट राजाओं को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) हस्तिकुंडी (हथुंडी) के राठोड़

(२) धनोप के राठोड़

(३) बागड़ के राठोड़

ये राठोड़ गुजरात के राठोड़ों की नाई दक्षिण के राठोड़ों के ही वंशज रहे हों, ऐसा अनुमान होता है।

हस्तिकुंडी (हथुंडी, मारवाड़ के गोड़वाड़ इलाके में) से लाकर बीजापुर में रखे हुए दो विभाग के एक शिलालेख से हस्तिकुंडी में

राठोड़ों का राज्य होना पाया जाता है। इस राठोड़

हस्तिकुंडी के राठोड़

शाखा के सबसे पहले राजा का नाम हरिवर्मा

मिलता है, जिसका पुत्र विदग्धराज वि० सं० ६७३ (ई० स० ६१६) में विद्यमान था। उसने हस्तिकुंडी में एक चैत्यगृह (जैन मन्दिर) बनवाया।

उसका पुत्र मम्मट हुआ, जो वि० सं० ६६६ (ई० स० ६३६) में राजगद्दी

पर था। मम्मट का पुत्र धवल बड़ा वीर था। उसने मालवे के परमार राजा मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई होने पर मेवाड़वालों की सहायता की, दुर्लभ-राज (सांभर का चौहान) से महेन्द्र (नाडोल का चौहान) को बचाया और धरणीवराह (आबू का परमार राजा) को आश्रय दिया, जिसको मूलराज (गुजरात का सोलंकी राजा) जड़ से उखाड़ना चाहता था। उक्त लेख से पाया जाता है कि उसके लिखे जाने अर्थात् वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० सं० ६६७ ता० २४ जनवरी) रविवार को धवल विद्यमान था। उसकी राजधानी हस्तिकुंडी थी। वृद्ध होने पर उसने बालप्रसाद को अपना उत्तराधिकारी बनाया, जिसके बाद का कोई हाल नहीं मिलता।

हथुंडी के राष्ट्रकूटों (राठोढ़ों) की वंशावली

१-हरिवर्मा

२-विदग्धराज (वि० सं० ६७३ = ई० सं० ६१६)

३-मम्मट (वि० सं० ६६६ = ई० सं० ६३६)

४-धवल (वि० सं० १०५३ = ई० सं० ६६७)

५-बालप्रसाद

बालप्रसाद के पीछे भी हथुंडी के राठोड़ इधर विद्यमान थे और अब भी हैं। वे हथुंडिये राठोड़ कहलाते हैं। सिरोही राज्य के कांटल (पोंडवाड़ा के पास) गांव के निकट के एक शिवालय के बाहर खड़े हुए स्तम्भ पर खुदे हुए वि० सं० १२७३ माघ सुदि १५ (ई० सं० १२१८ ता० १३ जनवरी) शनिवार चंद्रग्रहण के लेख में हथुंडिया राठोड़ (राठोड़) आना और उसके पुत्र लखणसी, कमण तथा शोभा के नाम मिलते हैं^१।

(१) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १०, पृ० २०।

(२) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० २६, पृ० ५१।

सिरोही राज्य के नादिया गांव के विशाल जैन मंदिर के स्तम्भ पर वि० सं० १२९८ पौष सुदि ३ (ई० स० १२४१ ता० ७ दिसंबर) का लेख है, जिसमें राठउड़ (राठोड़) पुनसी, उसके पुत्र कमण और पौत्र भीम के नाम मिलते हैं^१। ये भी हथुंडिये राठोड़ होने चाहियें।

नाडोल के चौहान राजा आलहणदेव की स्त्री अन्नलदेवी राठौड़ (राठोड़) सहुल की पुत्री थी^२। यह सहुल भी हथुंडिया राठोड़ होना चाहिये।

मेवाड़ के राजा भर्तृपट्ट (भर्तृभट्ट दूसरा) की राणी महालक्ष्मी राष्ट्रकूट (राठोड़) वंश की थी^३। यह भी हथुंडी के किसी राठोड़ राजा की पुत्री होनी चाहिये। हम ऊपर लिख आये हैं कि हथुंडी के राठोड़ राजा धवल ने मालवे के राजा मुंज की मेवाड़ पर चढ़ाई होने के समय मेवाड़ के राजा की सहायता की थी, जो संभवतः मेवाड़ और हथुंडी के परस्पर के सम्बन्ध के कारण हो।

राठोड़ों की इस शाखा का उल्लेख राठोड़ चञ्च के धनोप (शाहपुरा) के वि० सं० १०६३ वैशाख सुदि ५ (ई० स० १००६ ता० ५ अप्रैल) के शिलालेख में मिलता है^४। उसके अनुसार राठोड़ धनोप के राठोड़ भलील हुआ, जिसका पुत्र दन्तिबर्मा था। उसके बाद क्रमशः उसके दो पुत्र—बुद्धराज और गोविन्द—हुए, जिनमें से किसी एक का वंशधर चञ्च था। संभव है कि धनोप के राठोड़ दक्षिण के राठोड़ों के वंशज रहे हों। उनके नाम भी इसकी पुष्टि करते हैं।

नौगामा (बांसवाड़ा) गांव के निकट के एक नाले के किनारे एक स्मारक स्तम्भ खड़ा है, जिसके ऊपर के भाग में हाथ में तलवार लिये हुए

(१) राजपूताना म्यूजियम् (बजमेर) की रिपोर्ट; ई० स० १९२३-४, पृ० ३।

(२) वि० सं० १२९८ (ई० स० ११९१) का नाडोल के चौहान कीर्तिपाठ का दानपत्र (इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १४६)।

(३) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १ (प्रथम संस्करण), पृ० ४२४।

(४) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १०५।

वागड़ के राठोड़

एक वीर पुरुष की आकृति बनी है और नीचे के भाग में लेख खुदा है'। लेख का आशय यह है कि वि० सं० १३६१ वैशाख वदि..... (ई० सं० १३०५ अप्रैल) को राठोड़ राका का पुत्र वीरम [स्वर्ग को सिधारा]। ये राठोड़ वागड़िये राठोड़ कहलाते थे। मेवाड़ के छप्पन ज़िले में, जो वागड़ से मिला हुआ है, पुराने समय से राठोड़ रहते हैं, जो छप्पनिये राठोड़ कहलाते हैं। ये राठोड़ वागड़िये राठोड़ों के ही वंशधर होने चाहियें। महाराणा उदयसिंह के समय मेवाड़वालों का छप्पन पर अधिकार हुआ था।

चौथा अध्याय

राठोड़ और गाहड़वाल (गहरवार)

राठोड़ों और गाहड़वालों के सम्बन्ध में एक भ्रान्तिमूलक धारणा फैली हुई है, जिसका निराकरण करना आवश्यक है। कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि ये दोनों एक ही वंश के विभिन्न नाम हैं और एक ही जाति के सूचक हैं। इस धारणा की उत्पत्ति का मूल चन्द बरदाई-कृत “पृथ्वी-राज रासा” है, जिसमें उसने कन्नौज के राजा विजयचन्द्र और जयचन्द्र को, जो गाहड़वाल थे, कमधज तथा राठोड़ लिखा है^१। उसके आधार पर कर्नल टॉड ने भी उक्त राजाओं को राठोड़ ही मान लिया^२ और वास्तविक इतिहास के अज्ञान में भाटों आदि ने भी अपनी वंशावलियों आदि में उन्हें राठोड़ लिख दिया। परिणाम यह हुआ कि राजपूताने के वर्तमान राठोड़ भाटों आदि के कथन को प्रामाणिक मानकर अपने आपको गाहड़वाल जयचन्द्र का वंशज मानते हैं।

कुछ समय पूर्व तक मैं भी टॉड के कथनानुसार राठोड़ों को गाहड़वालों का ही वंशज मानता था, पर क्रमशः इतिहास-क्षेत्र में शोध की वृद्धि होने के फल-स्वरूप इस सम्बन्ध में नई बातें प्रकाश में आईं, जिससे मुझे अपना पूर्व मत बदलने पर बाध्य होना पड़ा। टॉड-कृत “राजस्थान” के प्रकाश में आने के बाद भारतीय विद्वानों में भी इतिहास प्रेम की जागृति

(१) कमधज के लिए देखो ‘पृथ्वीराज रासा’ (नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); समय ४६, पृ० १२५५ और राठोड़ के लिए समय १, पृ० ५४ तथा समय ५६, पृ० १४१०। ये दोनों शब्द ‘पृथ्वीराज रासा’ में कई जगह आये हैं।

(२) टॉड राजस्थान (ऑक्सफ़र्ड संस्करण); जि० १, पृ० १०५।

हुई और यहां के निवासियों में वास्तविक इतिहास जानने की रुचि बढ़ी। शनैः-शनैः शोध का कार्य आगे बढ़ा और कितने ही नये महत्वपूर्ण लेखों, ताम्रपत्रों आदि का पता चला।

कन्नौज के राजाओं के पहले के प्रकाशित ताम्रपत्रों में उनका वंशपरिचय नहीं दिया था, जिससे बहुत समय तक टॉड के कथनानुसार सब विद्वान् उन्हें राठोड़ वंश का ही मानते रहे, पर पीछे से राजा गोविन्दचंद्र के कितने ही ऐसे ताम्रपत्र मिले, जिनमें उसे गाहड़वाल वंश का बतलाया है^१। इसी प्रकार गोविन्दचंद्र की राणी कुमारदेवी के शिलालेख में भी उन्हें गाहड़वाल ही लिखा है^२। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल वंश के थे। इस ओर सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय डाक्टर हॉर्नली को है, जिसने गाहड़वालों को राठोड़ों से भिन्न बतलाने का प्रयत्न किया है^३।

भाटों आदि का यह कथन कि जयचंद्र आदि राठोड़ थे प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। इस बात के लिए "पृथ्वीराज रासा" के अतिरिक्त उनके पास और कोई आधार नहीं है। यही कारण है कि उनकी वंशावलियों में दो नामों को छोड़कर शेष सभी नाम और संवत् कल्पित दिये हुए हैं। जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र का मल्लुली शहर से वि० सं० १२५३ (ई० सं० ११६६) का

(१) बसही का वि० सं० ११६१ का ताम्रपत्र

(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० १०३);

कमोली का वि० सं० ११६२ का ताम्रपत्र

(एपिग्राफिया इंडिका; जि० २, पृ० ३५६);

राहन का वि० सं० ११६६ का दानपत्र

(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १८, पृ० १५);

आदि।

(२) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ६, पृ० ३२३।

(३) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० १४, पृ० ८६।

दानपत्र मिला है', परन्तु भाटों की वंशावलियों में उसका नाम भी नहीं मिलता, जिसका कारण यही है कि उनकी वंशावलियां "पृथ्वीराज रासा" के आधार पर ही बनी हैं, जिसमें उसका नाम नहीं है। वर्तमान रूप में मिलनेवाले वि० सं० की सोलहवीं सदी के आस-पास के बने हुए "पृथ्वीराज रासा" के विषय में यहां इतना कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वह केवल कवि-कल्पना है। उसमें दी हुई कुछ घटनाएं भले ही ऐतिहासिक हों, पर अधिकांश काल्पनिक ही हैं। फलतः प्रगतिशील इतिहास के लिए यह ग्रन्थ सर्वथा उपयोगी नहीं कहा जा सकता।

भाटों की वास्तविकता का ज्ञान न होने के कारण उनके प्राचीन इतिहास-संबंधी वर्णन अधिकांश अशुद्ध और काल्पनिक हैं। उन्होंने गाहड़वाल वंशियों को ही राठोड़ वंशी लिखने में गलती खाई, इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने कई दूसरे वंशों का वर्णन भी ऐसा ही निराधार लिख दिया है। काठियावाड़ के गोहिल वस्तुतः मेवाड़ के सूर्यवंशी गुहिल राजा शालिवाहन के वंशज हैं और मारवाड़ के खेड़ इलाके से ही उधर गये हैं^१। गिरनार (काठियावाड़) के यादव राजाओं के सम्बन्ध के वि० सं० की पंद्रहवीं-शताब्दी के आस-पास के बने हुए "मण्डलीक-महाकाव्य" में उन्हें सूर्यवंशी ही लिखा है^२, पर भाटों ने उनको चंद्रवंशी तथा शक संघत् के प्रवर्तक शालिवाहन का, जिसको जैन लेखक लकड़हारा^३ या कुम्हार का

(१) एपिग्राफिया इंडिका; जि० १०, पृ० ६५।

(२) मुहण्योत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ४५७-६०। कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६। अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान (गुजराती); पृ० ११३। मार्कंड एन० मेहता एंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान (अंग्रेज़ी); पृ० ४८७। नागरी प्रचारिणी पत्रिका (नवीन संस्करण); जि० ३, पृ० ३६१-२।

(३) गंगाधर; मंडलीक महाकाव्य; सर्ग ६, श्लोक २३। मूल अवतरण के लिए देखो मेरा 'राजपूताने का इतिहास'; जि० २, पृ० १३५५ टि० ३।

(४) मेरुतुंग; प्रबन्धचिन्तामणि (सातवाहन, शालिवाहन प्रबन्ध); पृ० १० (निर्णयसागर संस्करण)।

पुत्र' मानते हैं, वंशधर बना लिया^२। पोरबन्दर (काठियावाड़) के जेठवा राजाओं को, जो कन्नौज के रघुवंशी प्रतिहारों के वंशधर हैं, भाटों ने हनुमान का वंशज माना है^३। वि० सं० की छठी से सोलहवीं शताब्दी तक सोलंकी अपने को चंद्रवंशी ही मानते थे^४। उनको भाटों ने अग्निवंशी लिख दिया^५। मारवाड़ और कन्नौज के प्रतापी प्रतिहारों को, जो अपने को सूर्यवंशी लिखते रहे^६ तथा चौहानों को, जिनको वीसलदेव (चतुर्थ) के समय के चौहानों के इतिहास के शिलाओं पर खुदे हुए एक संस्कृत काव्य^७ तथा पृथ्वीराज (तृतीय) के "पृथ्वीराज विजय महाकाव्य" में सूर्यवंशी लिखा है, भाटों ने अग्निवंशी मान लिया^८। अब ये सब अपने को, जैसा भाटों ने लिखा, वैसा ही मानने लगे हैं। भाटों की तैयार की हुई गाहड़वालों की वंशावली और संवत् कहां तक कल्पित हैं, यह नीचे दिये हुए नक्शे से स्पष्ट हो जायगा—

(१) राजशेखर; चतुर्विंशति प्रबन्ध (प्रबन्धकोष); पृ० ७३-८२ । श्रीहेम-चन्द्राचार्य ग्रन्थावली; संख्या २० ।

(२) कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान (गुजराती); पृ० ३४६ । अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान (गुजराती); पृ० ११३ । मार्कंड एन० मेहता एंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान (अंग्रेजी); पृ० ४८७ ।

(३) गैज़ेटियर ऑव् दि बॉम्बे प्रेसिडेन्सी; जि० १, भाग १, पृ० १३५ । कालीदास देवशंकर पंड्या; गुजरात राजस्थान; पृ० २५३ । अमृतलाल गोवर्द्धनदास शाह और काशीराम उत्तमराम पंड्या; हिन्द राजस्थान; पृ० १६५ । मार्कंड एन० मेहता एंड मनु एन० मेहता; हिन्द राजस्थान; पृ० ७०२ ।

(४) देसो मेरा "सोलंकीयों का प्राचीन इतिहास"; भाग १, प्रकरण १, पृ० १-१३ ।

(५) पृथ्वीराज रासा; समय १, पृ० ५४-५ ।

(६) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ७४-५ ।

(७) वही; जि० १ (द्वितीय संस्करण); ७२ और ७३ टि० १ ।

(८) वही; जि० १ (द्वितीय संस्करण); पृ० ७१, टि० १ ।

(९) पृथ्वीराज रासा; समय १, पृ० ५४-५ ।

| जोधपुर राज्य की ख्यात से नाम | ख्यात में दिया हुआ समय | ताम्रपत्रादि से नाम | ताम्रपत्रादि से निश्चित ज्ञात समय |
|---------------------------------|---------------------------|---------------------|--------------------------------------|
| सेतुग | | यशोधिश्रह | |
| भरथ | वि० सं० ५१६-२६ | महीचंद्र(महीपाल) | |
| पुंज | | चंद्रदेव | वि० सं० ११४८-५६ |
| धर्मवंध | | मदनपाल | वि० सं० ११६३-६६ |
| अभयचंद्र | | गोविन्दचंद्र | वि० सं० ११७१-१२११ |
| विजयचंद्र | | विजयचंद्र | वि० सं० १२२४-२५ |
| जयचंद्र | वि० सं० ११३२-८१ | जयचंद्र | वि० सं० १२२६-५० |
| वरदाईसेन | | हरिचंद्र | वि० सं० १२५३ (जन्म वि० सं० १२३२) |

गाहड़वालोंने और राठोड़ों में समानता का अनुमान करना निराश्रम ही है। हम ऊपर बतला आये हैं कि राष्ट्रकूटों (राठोड़ों) का बड़ा प्रतापी राज्य सर्वप्रथम दक्षिण में रहा^१। दक्षिण का राज्य सोलंक्रियों-द्वारा छीने जाने पर भी उनका कई जगह अधिकार बना रहा। दक्षिण, गुजरात, काठियावाड़, सौन्दत्ति, हथुंडी, गया, बेतुल, पथारी, धनोप आदि से उनके शिलालेख एवं ताम्रपत्र मिले हैं^२। उनमें उन्होंने अपने आपको राष्ट्रकूट ही लिखा है। सौन्दत्तिवाले अपने को बहुधा “रट्ट” लिखते रहे, जो “राष्ट्र” या “राष्ट्रकूट” (राठोड़) का ही संक्षिप्त रूप है और दक्षिण के राठोड़ों के

(१) देखो ऊपर; पृ० ८८।

(२) देखो ऊपर; पृ० ८८-१३४।

ताम्रपत्रों में भी कभी-कभी मिलता है। यदि गाहड़वालों के साथ उनकी किसी प्रकार की भी समानता होती तो इसका उल्लेख उन (राठोड़ों) के ताम्रपत्रों आदि में अवश्य होता अथवा यदि गाहड़वाल ही अपने को राठोड़ों का वंशज मानते होते तो भी वे अपने ताम्रपत्रों आदि में इसका उल्लेख गर्व के साथ अवश्य करते, क्योंकि राठोड़ वंश गाहड़वालों से अधिक प्रतापी रहा, जैसा कि उनके दक्षिण के इतिहास से स्पष्ट है।

जिन दिनों कन्नौज में गाहड़वालों का राज्य था, उन्हीं दिनों राष्ट्रकूटों की एक शाखा कन्नौज-राज्य के अंतर्गत बदायूं में राज्य करती थी, जिसका प्रवर्तक चन्द्र था। उसके तथा कन्नौज के गाहड़वाल चन्द्रदेव के नामों में समानता होने के कारण कुछ लोगों ने दोनों को एक ही व्यक्ति मानकर उस (गाहड़वाल चन्द्रदेव) के दो पुत्रों—मदनपाल एवं विग्रहपाल^१—से क्रमशः कन्नौज और बदायूं की शाखाओं का चलना मान लिया है, पर यह निर्मूल ही है। कन्नौज के चन्द्रदेव के लेख वि० सं० ११४८ से वि० सं० ११५६ तक के^२ और उसके पुत्र मदनपाल के वि० सं० ११६१, ११६३ (११६४) और ११६६ के मिले हैं^३। उधर बदायूं के चन्द्र के पांचवें वंशधर मदनपाल के समय का एक लेख वि० सं० ११७६ का मिला है^४। यह मदनपाल कन्नौज के चन्द्रदेव के दूसरे वंशधर गोविन्दचन्द्रदेव का समकालीन था, जिसके वि० सं० ११७६ के कई ताम्रपत्र मिले हैं^५। इससे बदायूं के चन्द्र का

(१) विग्रहपाल कन्नौज के गाहड़वाल चन्द्रदेव का पुत्र नहीं, किन्तु उससे भिन्न बदायूं के राठोड़ चन्द्र का पुत्र था। इन दोनों को एक ही व्यक्ति का पुत्र मानना सरासर गलती है।

(२) डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर; ए लिस्ट ऑव दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव दि नॉर्डर्न इंडिया; संख्या १५४, १५७, १६२ और १६४।

(३) वही; संख्या १६८ और १७१।

(४) आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव नॉर्डर्न इंडिया (न्यू सीरीज़); जि० १, पृ० ७१।

(५) डा० देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर; ए लिस्ट ऑव दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव नॉर्डर्न इंडिया; संख्या २०१, २०२ और २०३।

वि० सं० १०७६ में विद्यमान होना निश्चित है। ऐसी दशा में बदायूं का चन्द्र और कन्नौज का चन्द्रदेव समकालीन एवं एक नहीं हो सकते। बदायूं के चन्द्र को वहां के शिलालेख में वोदामयूता (बदायूं) का पहला राजा लिखा है^१ और गाहड़वाल चन्द्रदेव को उसके ताम्रपत्र में गाधीपुर (कन्नौज) के राज्य को विजय करनेवाला लिखा है^२। इन विभिन्नताओं को देखते हुए तो यही अनुमान दृढ़ होता है कि ये दोनों एक नहीं वरन् भिन्न व्यक्ति थे।

राजपूतों में एक ही वंश में परस्पर विवाह सम्बन्ध नहीं होता। पहले भी राजपूताने में कोई गाहड़वाल नहीं था और न अब है, पर संयुक्त प्रान्त में गाहड़वाल और राठोड़ दोनों ही हैं। वहां के राठोड़ राठोड़ों में^३ और गाहड़वाल गाहड़वालों में^४ शादी नहीं करते, पर इन दोनों वंशों में

(१) ...प्रख्याताखिलराष्ट्रकूटकुलजदमापालदोः पालिता ।

पंचालाभिधदेशभूषणकरी वोदामयूता पुरी ॥...

तत्रादितोभवदनन्तगुणो नरेन्द्र-

श्रद्धः स्वखड्गभयभीषितवैरिवृन्दः ।

एपिग्राफिया इंडिका; जि० १, पृ० ६४ ।

(२) आसीदशीतद्युतिवंशजातदमापालमालासु दिवं गतासु ।

साक्षाद्विवस्वानिव भूरिधाम्ना नाम्ना यशोविग्रह इत्युदारः ॥

तत्सुतोभून्महीचन्द्रश्चन्द्रधामनिभं निजम् ।...॥

तस्याभूत्तनयो नयैरसरिकः क्रान्तद्विषन्मंडलो

विध्वस्तोद्धतधरियोधतिमिरः श्रीचन्द्रदेवो नृपः ।

येनो.....श्रीमद्गाधिपुराधिराज्यमसमं दोर्विक्रमेणार्जितम् ॥

चन्द्रदेव के वि० सं० ११४८ के दानपत्र से ।

(एपिग्राफिया इंडिका; जि० ६, पृ० ३०४) ।

(३) पृ० एच० बिंग्ले; राजपूत; पृ० १२१ ।

(४) वही; पृ० ७३ ।

वहाँ परस्पर विवाह सम्बन्ध होते हैं,^१ जिसके कई ताज़े उदाहरण भी विद्यमान हैं^२। यदि गाहड़वाल और राठोड़ एक ही वंश के होते तो ऐसा कभी न होता। इन दोनों वंशों के गोत्र भी भिन्न हैं, पर गोत्र नये पुरोहित बनाने के साथ बदलते रहे हैं, जिससे इसपर विचार करना निरर्थक है।

गाहड़वाल राजपूताने में आये हों, ऐसा पाया नहीं जाता। यदि वे राजपूताना में आये होते तो उनकी बड़ी ख्याति हुई होती, परन्तु बांकीदास के समय तक गाहड़वाल भी राठोड़ हैं, ऐसा कोई मानता न था, क्योंकि उसने राठोड़ों की शाखाओं और उपशाखाओं के जो नाम दिये हैं उनमें गाहड़-वालों का नाम नहीं है^३। अन्य ख्यातों आदि में न तो इनका अलग नामोल्लेख किया है और न इन्हें राठोड़ों की शाखाओं अथवा उपशाखाओं (खाँपों) में ही लिखा है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में राठोड़ों के प्रसंग में गाहड़वालों का उल्लेख नहीं है^४, पर मुंदेलों के वृत्तान्त में उन्हें गाहड़वालों का वंशज लिखा है^५। “पृथ्वीराज रासा” में जहाँ छत्तीस राजवंशों के नाम दिये हैं वहाँ तो गाहड़वालों का नाम नहीं है, परन्तु आगे चलकर एक स्थल पर

(१) ए० एच० बिंग्ले: राजपूतस; पृ० ७३। कुक; टाइनस पेंड कास्ट्स ऑव् दि नार्थ वेस्टर्न प्राविसेज; जि० २, पृ० ३७१। इलियट; ग्लॉसरी (बीम्स); जि० १, पृ० ४५ और १२१।

(२) जुन्वल के राठोड़ राजा भगतचन्द की बहिन का विवाह वर्तमान औरछा नरेश गाहड़वाल वीरसिंहजुदेव के पिता स्वर्गवासी राजाबहादुर भगवंतसिंहजू के साथ हुआ था। पुराहाट (चक्रधरपुर) के राठोड़ राजा नरपतिसिंह की पुत्री का विवाह रामगढ़ (पश्चा संस्थान) के स्वर्गवासी राजा दुर्गानारायणसिंह गाहड़वाल के साथ हुआ था। दुर्गानारायणसिंह का पुत्र राजा कामाख्यानारायणसिंह गाहड़वाल इस समय विद्यमान है। ऐसे उदाहरण और भी मिलते हैं।

(३) कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १३५ और २३६।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ४७।

(५) वही; जि० २, पृ० २१२।

गाहड़वालों का भी नामोल्लेख किया है। टॉड ने अपने ग्रन्थ “राजस्थान” में जहां राजपूतों के ३६ राजवंशों के परिशोधित नाम दिये हैं, वहां उसने इन दोनों वंशों को भिन्न माना है और गाहड़वालों के विषय में तो यह लिखा है—

‘गहरवाल राजपूत को राजस्थान में उसके राजपूत भाई कठिनता से जानते हैं, क्योंकि वे लोग उसके अशुद्ध रक्त^३ को अपने में मिलाना स्वीकार नहीं करेंगे, यद्यपि धीरे-धीरे होने के कारण वह उनकी समानता के योग्य है’।

डॉ० देवदत्त भंडारकर ने उत्तर भारत के शिलालेखों आदि की एक सूची प्रकाशित की है। उसमें उसने जयचन्द्र और उसके पूर्वजों के मिले हुए समस्त ताम्रपत्रों आदि में उनकी गाहड़वाल ही लिखा है^४। अब कोई

(१) “चन्देल वैस जागरां सूर ।

चेरे सुसहस इक मलहन नूर ॥

सोलंखी जद्व सजि अनेक ।

सजि गहरवार गोहिल अनेक” ॥

पृथ्वीराज रासा; महोबा समय; पृ० २५०६ ।

(२) टॉड; राजस्थान; जि० १, पृ० ६८ के सामने का नक्शा ।

(३) यह कर्नेल टॉड का भ्रम ही है, क्योंकि गाहड़वाल उच्चकुल के राजपूत हैं। कन्नौज का प्रसिद्ध राजा जयचन्द्र और उसके पूर्वज गाहड़वाल थे। संयुक्त प्रांत में, जहां यह जाति अबतक विद्यमान है, उच्चकुल के शुद्ध राजपूत वंशों अर्थात् गौड़, वैस, चंदेल, चौहान, राठोड़, भदोरिया, कछवाहा, निकुंभ, पड़िहार आदि के साथ इनका विवाह सम्बन्ध होता है (कसान पृ० पृ० बिंगले; राजपूत; पृ० ७३ । कसान लुअर्ड; सेंट्रल इंडिया गैज़ेटियर सीरीज़; जि० ६, पृ० १० । कुक; ट्रान्स एण्ड कास्ट्स ऑव् दि नार्थ वेस्टर्न प्रोविंसेज़; जि० २, पृ० ३७१ । इलियट्; ग्लासरी (बीम्स); जि० १, पृ० ४५ और १२१) ।

(४) राजस्थान; जि० १, पृ० १३६ ।

(५) डॉ० डी० आर० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् दि नोर्डर्न इंडिया; संख्या १५४, १५७, १६२, १६४, १७१, १७४, १७८, १८५, १८७, १८८, १८९, १९३, १९५, २०१, २०२, २०३, २०५, २०७, २०६, २१७, २१८,

पुगतत्त्ववेत्ता उनको गाहड़वाल मानने में संकोच नहीं करता । भारतवर्ष के प्राचीन इतिहासलेखक वी० ए० स्मिथ ने स्वरचित "अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया" नामक ग्रन्थ में इन दोनों जातियों को भिन्न माना है और लिखा है—

‘कन्नौज का राठोड़वंश कल्पनामात्र है । वहाँ के राजा गाहड़वाल अथवा गहरवाल जाति के थे, जैसा कि गोविन्दचंद्र के वि० सं० ११६१ (ई० सं० ११०४) के बसाही के ताम्रपत्र से पूर्णतया स्पष्ट है और गौतम जाति की कथाओं से भी यही पाया जाता है । कन्नौज के राजाओं के साथ राठोड़ शब्द लगने का कारण मुख्यतया यह है कि जोधपुर के राठोड़ राजा अपने आपको राजा जयचन्द्र के वंश के एक बच निकले हुए बालक का वंशज मानते हैं । ऐसी बहुत सी कथाएं प्रसिद्ध हैं, पर वे इतिहास के लिए सर्वथा निरूपयोगी हैं’ ।

“मध्यभारत के विस्तृत गैज़ेटियर सीरीज़” के कर्ता कैप्टेन ई० सी० लुअर्ड ने ओरछा राज्य के वृत्तान्त में राठोड़ों और गाहड़वालों को भिन्न लिखा है^१ तथा डॉक्टर रामशङ्कर त्रिपाठी^२ और डॉ० हेमचन्द्र राय^३ ने भी अपनी पुस्तकों में इन दोनों वंशों को भिन्न ही माना है ।

इन सब बातों पर विचार करने से तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वस्तुतः गाहड़वाल और राठोड़ दो भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं और इनमें परस्पर किसी प्रकार की भी समानता नहीं है । गाहड़वाल एक अलग जाति है, जो सूर्यवंशी^४ है और राठोड़ इससे विपरीत चंद्रवंशी^५ हैं, जैसा

२२१, २२७, २२८, २४१, २६२, २६६, २७१, २७६, २८१, ३३३, ३४४, ३६८, ३६९, ३७२, ३७४, ३७५, ३७८, ३८७, ३८८, ३८९, ४०६, ४३३ और १५२५ ।

(१) वी० ए० स्मिथ; अर्ली हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (अनुर्थ संस्करण); पृ० ३६६ टि० ५ ।

(२) जि० ६ पृ० पृ० १० ।

(३) पृ० ३०० ।

(४) डाइनेस्टिक् हिस्ट्री ऑफ़ नॉर्दर्न इंडिया; जि० १, पृ० ५५१-२ ।

(५) देखो ऊपर; पृ० १४१ टि० २ ।

(६) देखो ऊपर; पृ० ८६ ।

कि उनके शिलालेखों, दानपत्रों तथा प्राचीन पुस्तकों से निश्चित है। इनमें आपस में विवाह सम्बन्ध होना भी इनके भिन्न होने का प्रबल प्रमाण है। राजपूताना के वर्तमान राठोड़ों के मूलपुरुष राव सीहा के मृत्यु स्मारक में उसे राठोड़ ही लिखा है^१ तथा बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बीकानेर के किले की वि० सं० १६५० की बृहत् प्रशस्ति में उसने अपने वंश को राठोड़ बंश ही लिखा है। ऐसी दशा में बुंदेलों के समान राजपूताना के राठोड़ों को गाहड़वाल जयचन्द्र का वंशधर मानने के लिए हम किसी प्रकार भी प्रस्तुत नहीं हैं। संभवतः राजपूताना के वर्तमान राठोड़ वंश के राठोड़ों के वंशधर हों। राठोड़ सर्वत्र अपने लिए राष्ट्रकूट या राठोड़ ही लिखते रहे हैं। इसीलिए राठोड़ों के इतिहास में हमने गाहड़वालों का इतिहास दर्ज करना उचित नहीं समझा।

(१) इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० १८१ तथा ३०१।

पांचवां अध्याय

राव सीहा से राव रणमल तक

राव सीहा

जोधपुर आदि राज्यों के वर्तमान राठोड़ों का मूलपुरुष सीहा^१ था, जिसका वास्तविक वृत्तान्त ख्यात-लेखकों को नहीं मिला, जिससे उन्होंने उसके सम्बन्ध में बहुधा कल्पित बातें लिख दीं। उनका सरांश नीचे उद्धृत किया जाता है।

मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में लिखा है—

‘राव सीहा (सिंहसेन) कन्नौज से यात्रा के लिये द्वारिका चला।

नैणसी की ख्यात
और सीहा

उसने गोत्रहत्या बहुत की थी, इससे मन विरक्त

होने पर अपने पुत्र को राजपाट सौंप वह १०१

राजपूत ठाकुर आदि को साथ ले पैदल ही चल

पड़ा। मार्ग में वह गुजरात में ठहरा, जहां चावड़े व सोलंकी राज करते थे।

उनकी राजधानी पाटण (अणहिलवाड़ा) थी। उन्होंने उसका स्वागत

किया और उससे सिंध के मारू लाखा जाम राजा के साथ अपने वैर की

बात कहकर उससे लाखा को पराजित करने में सहायता मांगी। राव

सीहा ने उन्हें आश्वासन दिया और द्वारिका से लौटने पर लाखा के साथ

युद्ध करने का वचन दे उन्हें फ़ौज इकट्ठी करने का आदेश कर उसने द्वारिका

की ओर प्रयाण किया। एक मास बाद लौटने पर उसका लाखा से युद्ध

हुआ, जिसमें लाखा अपने भानजे राखायत के साथ काम आया। अनन्तर

(१) जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, राव सीहा बदायूं के राठोड़ों का वंशधर होना चाहिये। बदायूं वि० सं० १२५३ में मुसलमानों के हाथ में चला गया था, जिससे संतराम अथवा उसका पुत्र सीहा मारवाड़ में चला गया हो।

पाटण में पहुंचने पर चावड़ी के यहां उसका विवाह हुआ। कन्नौज लौटने पर चावड़ी रानी से उसके तीन पराक्रमी पुत्र हुए। कुंवरो के कुछ सयाने होने पर राव सीहा का परलोकवास हो गया।'

दूसरे स्थान पर नैणसी लिखता है—

'राव सीहा की एक गणी सोलंकनी प्रसिद्ध राव जयसिंह की पुत्री थी, जिसके पेट से आस्थान का जन्म हुआ। दूसरी राणी चावड़ी सोभागदे मूलराज बागनाथोत की बेटी से ऊन्ड़ और सोनिंग का जन्म हुआ'।'

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

'राव सीहा वरदाईसेन का पौत्र और सेतराम का पुत्र था। वह जब कन्नौज से पुष्कर-यात्रा के लिए गया तो भीनमाल के ब्राह्मणों ने उसके पास उपस्थित हो मुलतान के बादशाह के सुल्हों का वर्णन कर उससे सहायता की याचना की। सीहा ने उन्हें आश्वासन दे लौटाया और आप. शत्रु उसका पता पाकर सावधान न हो जाय इस आशंका से फौजों को भिन्न-भिन्न मार्ग से प्रवेश करा मुसलमानों पर चढ़ गया। युद्ध में उसकी विजय हुई। अनन्तर वह भीनमाल ब्राह्मणों को देकर वहां से कन्नौज चला गया।

जोधपुर राज्य की ख्यात
और सीहा

'भीनमाल में मुसलमानों पर सीहा की विजय होने का समाचार चारों ओर द्रुतवेग से फैल गया। गुजरात के सोलंकी राजा ने उसकी वीरता के समाचार सुन उसके साथ अपनी पुत्री (जिसकी सगाई लाखा फूलाणी से हो चुकी थी) के विवाह के नारियल भेजे। तब वह (सीहा) कन्नौज से द्वारिका-यात्रा को खाना हुआ। मार्ग में उसे कितने ही स्थानों में भूमियों से लड़ाई करनी पड़ी। भीलड़ी गांव के स्वामी ईंडर के प्रधान आसा डाभी को मारकर वह पाटण पहुंचा, जहां उसका मूलराज से मिलना हुआ। द्वारिका पहुंचने पर उसे वहां भाटियों से युद्ध करना पड़ा, जिसमें भाटी लाखा का भाई दलपत मारा गया। वहां से लौटने पर उसने

अणहिलवाड़ा पाटण में जाकर मूलराज सोलंकी की कन्या से विवाह किया। अनन्तर उसने लाख्वा फूलाणी पर चढ़ाई कर दी, जिसमें वि० सं० १२०६ कार्तिक सुदि ७ (ई० सं० ११५२) को वह (लाख्वा) मारा गया।

‘लाख्वा फूलाणी पर विजय प्राप्तकर जब सीहा कन्नौज को लौट रहा था तो मार्ग में पाली के पल्लीवाल (पालीवाले) ब्राह्मण जसोधर ने उपस्थित हो एक लाख रुपया सीहा के नज़र कर उससे बालेचा चौहान सरदार के कर्णों से पल्लीवाल ब्राह्मणों की रक्षा करने की प्रार्थना की। इस-पर उसने दस दिन वहां ठहर कर बालेचा चौहानों को मार वहां के ब्राह्मणों का दुःख मोचन किया। वहां पर ही उसके पुत्र आस्थान का जन्म हुआ।

‘कन्नौज लौटने पर वहां का राज्य अल्ह को सौंप वह स्वयं गोय-दाणा के गढ़ में रहने लगा जहां तेरह वर्ष राज्य करने के बाद उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु से पूर्व उसने अपने पुत्रों को पाली में जाकर रहने का आदेश दिया।

‘उसकी छः राणियों से पांच पुत्र हुए—(१) आस्थान; जिसका जन्म वि० सं० १२१८ कार्तिक वदि १४ (ई० सं० ११६१) गुरुवार को हुआ; (२) सोनिंग, जिसका जन्म वि० सं० १२२३ पौष वदि १ (ई० सं० ११६६) और (३) अज, जिसका जन्म वि० सं० १२२५ आषाढ वदि १ (ई० सं० ११६८) को हुआ; (४) भीम और (५) रामसेन (पैदा होते ही मर गया)। एक पुत्री रूपवाई भी हुई जो बचपन में मर गई। राव सीहा सोनगरों का भानजा था’।

दीकानेर के सिंढायच कवि दयालदास ने अपनी ख्यात में लिखा है—

‘राव सीहा, जिसका जन्म वि० सं० ११७५ कार्तिक सुदि ५ (ई० सं० १११८) को हुआ था, वि० सं० १२१२ वैशाख वदि १२ (ई० सं० ११५५) को गद्दी पर बैठा। मुगलों से वह ५२ लड़ाइयां लड़ा और उनको

दयालदाम की ख्यात
और सीहा

उसने कन्नौज में बसने न दिया, जिसपर दिल्ली के बादशाह ने उसे अपने पास बुलाकर अपना मनसबदार बनाया और चौबीस लाख की आय के कन्नौज के तीस परगने दिये । अनन्तर अपने ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को कन्नौज का राज्य सौंपकर उसने दस हजार फौज अपने साथ लेकर रणछोड़जी (द्वारिका) की यात्रा की । मार्ग में मूलराज सोलंकी ने उसका स्वागत किया और उससे लाख फूलाणी को मारने का वचन ले उसके साथ अपनी कन्या व्याह दी । लाख फूलाणी को मारकर वह कन्नौज लौटा, जहां वि० सं० १२४३ माघ सुदि २ (ई० सं० ११८७) को उसकी मृत्यु हुई ।

‘सोलंखणी राणी से उसके तीन कुंवर अज, सोनिंग और आस्थान हुए; ४७ पुत्र पहले के भी थे (जिनके नाम भी उसमें दिये हैं) । सबसे बड़ा कुंवर जसवन्तसिंह था ।’

कर्नल टॉड ने अपने इतिहास “राजस्थान” में लिखा है—

‘राठौड़ नैनपाल ने कन्नौज में अपना राज्य वि० सं० ५२६ (ई० सं० ४७०) में स्थापित किया । उस समय से लगाकर टॉड राजस्थान और सीहा उसके वंशज जयचन्द्र तक राठौड़ों का वहां राज्य रहा । शहाबुद्दीन गोरी ने वि० सं० १२४६ (ई० सं० ११९३) में उससे कन्नौज छीन लिया ।

‘कन्नौज का राज्य चले जाने के १८ वर्ष बाद वि० सं० १२६८ में वहां के अंतिम राजा (जयचन्द्र) के पोते सीहा और सेतराम अपनी जन्म-भूमि का परित्याग कर २०० साथियों के साथ पश्चिमी रेगिस्तान की ओर, ख्यातों के अनुसार द्वारिका की यात्रा करने के लिए परन्तु वास्तव में कोई नया ठिकाना कायम करने की गरज से, रवाना हुए ।

‘राव सीहा सर्वप्रथम बीकानेर से २० मील पश्चिम कुलुमद के सोलंकी सरदार के यहां गया, जिसने उसका बड़ा आदर किया । उसके बदले में उसने लाख फूलाणी से युद्ध करने में उक्त सरदार की सहायता की, जिसमें लाख की पराजय हुई । सोलंकी सरदार ने इसके एवज में

अपनी बहन उसको व्याह दी। वहां से लौटते हुए अणहिलवाड़ा पाटण में उसका अच्छा स्वागत हुआ। वहां फिर लाखा फूलाणी से सामना होने पर उसने उसे अकेले मारा। अनन्तर उसने मेवा (महेवा) के डाभियों तथा खेड़धर (खेड़) के गोहिलों पर विजय प्राप्तकर खेड़ में अपनी राजधानी स्थापित की। उसके तीन पुत्र अश्वथामा (आसथान), सोर्निंग और अज हुए^१।

पाली के वर्णन में टॉड ने इतना और लिखा है कि वहां के ब्राह्मणों की रक्षा करने के पश्चात् उसने स्वयं होली के दिन उनकी हत्या कर वहां की भूमि अपने अधिकार में कर ली, परन्तु बारह मास बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। वहां पर ही उसके पुत्र अश्वथामा (आसथान) का जन्म हुआ^२।

नैणसी के कथनानुसार सीहा के समय गुजरात पर चावड़े और सोलंकी दोनों राज्य करते थे, परन्तु अपने मामा गुजरात के नैणसी के कथन की जांच अन्तिम चावड़ा राजा सामन्तसिंह (भूयड, भूभट) को मारकर तो सोलंकी राजा मूलराज ने वि० सं० ६६८ (ई० सं० ६४१) में गुजरात का राज्य छीन लिया था। तब से वहां सोलंकीयों का ही राज्य स्थिर हुआ। सीहा (अनुमान वि० सं० १३०० से १३३०) के समकालीन तो गुजरात के तीन सोलंकी राजा, त्रिभुवनपाल, राणा वीसलदेव (वनेल) और अर्जुनदेव थे, जिन्होंने वि० सं० १३०० से १३३१ (ई० सं० १२४३ से १२७४) तक गुजरात पर राज्य किया था।

आगे चलकर नैणसी ने सीहा के हाथ से सिन्ध के स्वामी लाखा फूलाणी का मारा जाना लिखा है, जो सर्वथा कल्पित ही है क्योंकि लाखा तो कच्छ के जाड़ेजा (जाड़ेजा, यादवों की एक शाखा) राजा फूल का पुत्र (फूलाणी) था। वह सीहा का सम-

(१) टॉ० रा०; जि० २, पृ० ६३६-४२।

(२) टॉ० रा०; जि० २, पृ० ६४१-४३।

कालीन नहीं धरन् सीढा की मृत्यु से २०० से भी अधिक वर्ष पूर्व सोलंकी मूलराज के हाथ मारा गया था, जैसा कि हेमचन्द्र के “द्वयाश्रयमहाकाव्य”, गुर्जरेश्वर-पुरोहित सोमेश्वर-रचित “कीर्तिकौमुदी”, मेरुतुंग की “प्रबंधचिन्तामणि”, अरिसिंह-विरचित “सुकृत-संकीर्तन” आदि प्राचीन ग्रन्थों से पाया जाता है। मूलराज ने सोरठ के राजा गृहरिपु पर जब चढ़ाई की उस समय उस (गृहरिपु) की सहायता के लिए लाखा गया था और वहीं मारा गया। एक पुगली गुजराती कविता में वि० सं० १०३६ (ई० सं० ६७६) में आटफोट (सींगट्ट, दक्षिणी काठियावाड़) में उसका मारा

(१) हेमचन्द्राचार्य; द्वयाश्रयमहाकाव्य: सर्ग २-५ में इस लड़ाई का और पांचवें सर्ग में लाखा के मारे जाने का विस्तृत हाल है।

कुन्तेन सर्वसारेणावधील्लक्षं चुलुक्कराट्

द्वयाश्रयमहाकाव्य; सर्ग ५। १२८।

द्वयाश्रय महाकाव्य की रचना वि० सं० १२१७ (ई० सं० ११६०) के बास-पास हुई थी।

(२) सपत्राकृतशत्रूणां संपराये स्वपत्रिणाम्।

मेहेच्छकच्छभूपालं लक्षं लक्ष्मीं चकार यः ॥

कीर्तिकौमुदी; सर्ग २। ४।

(३) स्वप्रतापानले येन लक्षहोमं वितन्वता।

सूत्रितस्तत्कलत्राणां बाष्पावग्रहनिग्रहः ॥ १ ॥

कच्छपलक्षं हत्वा सहसाधिकलम्बजालमायातम्।

संगरसागरमध्ये धीवरता दर्शिता येन ॥ २ ॥

प्रबन्धचिन्तामणि (बंबई का ई० सं० १८८८ का संस्करण); पृ० ४७।

(४) न भूमृतः केऽपि यदग्रभागे भेजुर्गुरुत्वं किल सापि मग्ना।

अदृश्यतां यत्तरवारिवारिनिधौ दधौ कच्छपलक्षसेना ॥ ६ ॥

सुकृतसंकीर्तन; सर्ग २। ६।

जाना मिलता है^१ और कच्छ की कविता में भी उसका मूलराज के हाथ से मारा जाना पाया जाता है^२ । ऐसी दशा में सीहा के हाथ से लाख्वा फूलाणी का मारा जाना सर्वथा असंभव है । लाख्वा फूलाणी बड़ा ही सम्पत्ति-शाली और दानी राजा होने के कारण उसकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी और चारण, भाट आदि उसकी दानशीलता के कवित्त, दोहे आदि गाया करते थे । इस प्रकार उसका नाम प्रसिद्ध होने से, उसके मारे जाने की कथा सीहा के साथ जोड़ दी गई है ।

इसी प्रकार जयसिंह की पुत्री के साथ सीहा का विवाह होने का नैणसी का कथन भी निर्मूल है, क्योंकि उस (जयसिंह, सिद्धराज) ने वि० सं० ११५० से ११६६ (ई० सं० १०६४ से ११४३) तक राज्य किया था^३ और सीहा की मृत्यु वि० सं० १३३० (ई० सं० १२७३) में होना उसके मृत्यु स्मारक लेख से निश्चित है, जैसा कि आगे बतलाया जायगा । इस लिए वह उसका समकालीन नहीं हो सकता ।

भीनमाल के ब्राह्मणों का पुष्कर में जाकर मुल्तान के बादशाह से अपनी रक्षा के लिए सीहा से प्रार्थना करना, उसका वहां जाकर मुसल-

(१) शांके नव एक में, मास कार्तिक निरंतर

.....

आठमे पक्ष शुक्र चांदणे मूलराज हाथ लाखो मरे ।

रासमाला (गुजराती अनुवाद, द्वितीय संस्करण); पृ० ८६ ।

(२) अची फुलाणी फरोरयो, रारो मंडाणू,

मूलराज सांग ऊखली लाखो मराणू,

वही; पृ० ८६ ।

(३) गैज़ेटियर ऑव् दि बाम्बे प्रेसिडेंसी; जि० १, भा० १, पृ० १७१-८१ ।

सिद्धराज जयसिंह के समय के आठ शिलालेखादि अब तक प्राप्त हुए हैं, जो वि० सं० ११५० (ई० सं० १०६४) से ११६६ (ई० सं० ११४३) तक के हैं ।

[देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० १ (द्वितीय संस्करण), पृ० २४३ और टि० १] ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के
कथन की जांच

मानों को हराना और फिर भीनमाल ब्राह्मणों को दे देना, उपर्युक्त ख्यात में लिखा हुआ यह सारा वर्णन एवं उसके संबंध की बनाई हुई कविता कल्पित हैं, क्योंकि सीहा के समय अर्थात् अनुमान वि० सं० १३०० से १३३० (ई० सं० १२४३ से १२७३) तक भीनमाल में चौहान राजा उदयसिंह और उसका पुत्र चाचिगदेव राज्य करते थे और उनके पीछे भी बहुत वर्षों तक वहां उनके वंशजों का राज्य रहा था ।

जोधपुर राज्य की ख्यात का यह कथन भी कि सीहा ने मूलराज की कन्या से विवाह किया और फिर वि० सं० १२०६ (ई० सं० ११५२) में उसके वैरी लाखा फूलाणी को मारा, कल्पित है, जैसा कि ऊपर नैणसी की ख्यात की जांच में दिखलाया जा चुका है । ऐसे ही भाटी लाखा के भाई दलपत का सीहा के हाथ से मारा जाना भी निराधार है ।

हां, बालेचा चौहानों से पाली के (पल्लीवाल) ब्राह्मणों की रक्षा करने और उनसे १००००० रुपये मिलने के वर्णन में संभवतः कुछ सत्यता हो, क्योंकि उस समय वहां के पल्लीवाल ब्राह्मण सम्पन्न थे और उधर चौहानों की बालेचा शाखा के सरदारों की जागीरें थीं । हो सकता है कि वे या मीने आदि ब्राह्मणों को कष्ट देते या लूटते हों, जिससे उन (ब्राह्मणों)

(१) भीनमाल लीधी भिड़े, सीहे सेल वजाय ।

दत दीधो सत संग्रह्यो, सो फल कधे न जाय ॥

लख दल सीह लंकाल, विप्र तिय बाल छुड़ावते ।

किलमां सिर वहे काल, किरमर गहि आयो कमध ॥

(जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११) ।

बहुत पीछे की बनी हुई ख्यातों में ऐसी कल्पित कविताएं जगह-जगह मिलती हैं, जो पीछे की बनाई हुई हैं । ऐसी कविताओं को, जो समकालीन कवियों की कृति नहीं हों, हम अपने इतिहास में स्थान देना उचित नहीं समझते ।

(२) एपिग्राफिया इंडिका; जि० ११; पृ० ७८ के सामने का वंशवृत्त ।

की रक्षा करने के एवज़ में सीहा ने कुछ द्रव्य पाया हो ।

परन्तु उसका वहां से कन्नौज जाना, अल्ह को वहां की गद्दी पर बैठाना और स्वयं गोयंदाणा के गढ़ में रहकर तेरह बरस तक राज्य करना, अपने बेटों को पाली जाकर रहने का आदेश देना तथा उसी गढ़ (गोयंदाणा) में देहांत होना आदि शेष सारा वर्णन निर्मूल कल्पना है, क्योंकि कन्नौज का राज्य सीहा के जन्म से पूर्व ही मुसलमानों के अधिकार में चला गया था । इसी से वह मारवाड़ में गया और पाली में ठहरा था । उसकी मृत्यु वि० सं० १२३० (ई० सं० १२७३) में पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम के बीटू गांव में हुई थी, जहां से उसका मृत्यु-स्मारक लेख (देवली) मिल चुका है । ऐसी दशा में उपर्युक्त कथन पर किस प्रकार विश्वास किया जा सकता है ।

सीहा का वि० सं० ११७५ (ई० सं० १११८) में जन्म होना, वि० सं० १२१२ (ई० सं० ११५५) में कन्नौज की गद्दी पर बैठना, मुगलों से

दयालदास के कथन की
जाच

बावन लड़ाइयां लड़ना और कन्नौज पर उनका अधिकार न होने देना, परन्तु फिर दिल्ली के बादशाह के

पास जाना तथा मनसब में चौदीस लाख की आय के कन्नौज के तीस परगने पाना, अपने ज्येष्ठ पुत्र जसवंतसिंह को कन्नौज का राज्य दे १०००० सेना के साथ छारिका की तरफ जाना, मार्ग में मूल-राज सोलंकी के शत्रु लाखा को मारकर उसकी कन्या से विवाह करना, तदनन्तर कन्नौज लौटने पर वि० सं० १२४३ (ई० सं० ११८६) में उसकी मृत्यु होना, उपर्युक्त ख्यात की ये सारी की सारी बातें कल्पित हैं और बहुधा इनका खंडन ऊपर की जांचों में हो चुका है । मुगलों का राज्य तो वि० सं० १५८३ में स्थापित हुआ था । आस्थान, अज और सोनिंग से पूर्व ४७ पुत्रों का होना भी मानने योग्य नहीं है, क्योंकि दूसरी ख्यातों में बहुधा केवल इन्हीं तीन पुत्रों के होने का उल्लेख मिलता है ।

गठोड़ नैनपाल का वि० सं० ५२६ (ई० सं० ४७०) में कन्नौज का राज्य स्थापित करना और जयचन्द्र (गहरवार) की मृत्यु अर्थात् वि० सं०

कर्नल टॉड के कथन की
जांच

१२५० (ई० स० ११६३) तक वहां राठोड़ों का राज्य रहना कपोलकल्पना है । वि० सं० ५२६ (ई० स० ४७०) में तो कन्नौज पर गुप्तवंशियों का राज्य था । फिर मोखरियों का वहां आधिपत्य हुआ । उक्त वंश के राजा गृहवर्मा के मालवे के राजा के हाथ से मारे जाने पर महाप्रतापी वैसवंशी राजा श्रीहर्ष ने कन्नौज को अपने अधीन कर लिया और उसे अपनी नई राजधानी बनाया । वि० सं० ७०५ (ई० स० ६४८) के आसपास उसकी मृत्यु होने पर कुछ समय तक वहां पर अव्यवस्था रही, जिसके पीछे मारवाड़ (भीनमाल) के पड़िहार नागभट (दूसरा) ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया । तब से लगाकर वि० सं० की बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के आस-पास तक पड़िहारों का वहां राज्य रहा । अनन्तर वि० सं० ११५० (ई० स० १०६३) से कुछ ही वर्ष पूर्व गहरवार यशोविग्रह के पौत्र और राजा महिचन्द्र के पुत्र चन्द्रदेव ने कन्नौज को ले लिया, जिसका चौथा वंशधर जयचन्द्र हुआ । जयचन्द्र के पीछे उसका पुत्र गहरवार हरिश्चन्द्र उसके रहे-सहे राज्य का स्वामी हुआ, जिसका वि० सं० १२५३ (ई० स० ११६६) का एक दानपत्र मछलीशहर (यू० पी०) से मिला है, परन्तु ख्यातों में हरिश्चन्द्र का नाम तक नहीं है ।

ऐसे ही सेतगम और सीहा भाई-भाई नहीं, वरन् पिता-पुत्र थे, क्योंकि सीहा के स्मारक लेख में उसे कुंवर सेतराम का पुत्र और राठोड़ लिखा है । उसकी मृत्यु भी उसी लेख से वि० सं० १३३० (ई० स० १२७३) में होना सिद्ध है । ऐसी दशा में उसका वि० सं० १२६८ (ई० स० १२११) में नहीं, किन्तु वि० सं० १३०० (ई० स० १२७३) के आस-पास मारवाड़ में जाना मानना युक्तिसंगत है ।

सीहा की एक स्त्री सोलंकिनी पार्वती अवश्य थी, जिसने उसका स्मारक (देवली) बनवाया था । संभव है कि वह टॉड के कथनानुसार कोलूमद के सोलंकी सरदार की पुत्री हो । लाखा फूलाणी के मारने की बात का निराकरण ऊपर किया जा चुका है ।

आगे का यह कथन भी कि सीहा ने मेवा (महेवा) के डाभियों और खेड़धर (खेड़) के गोहिलों पर विजय प्राप्त कर खेड़ में अपनी राजधानी स्थापित की, निर्मूल है, क्योंकि सीहा तो पाली के आस-पास ही रहता था और उसके निकट ही मरा था। खेड़ के गोहिलों से तो उनका इलाका उसके पुत्र सोनिंग ने लिया था, जैसा कि नगर गांव (जोधपुर) से मिले हुए महेचे राठोड़ जगमाल (रावल मल्लीनाथ के वंशधर) के वि० सं० १६८६ (ई० सं० १६२६) के लेख से ज्ञात होता है^१।

पाली के ब्राह्मणों को मारकर सीहा का वहां की भूमि पर अधिकार करना भी निराधार कल्पना है। पाली पर उस समय ब्राह्मणों का राज्य भी नहीं था। वे तो अन्य जातियों के समान वहां के धनाढ्य निवासी थे। वहां के स्वामी तो जालोर के चौहान थे और उसके आस-पास का प्रदेश बालेचा चौहानों की जागीर में था। यह अधिक सम्भव है कि उन धनाढ्य ब्राह्मणों के जान-माल की रक्षार्थ सीहा शत्रुओं से लड़ता हुआ मारा गया हो।

सीहा के समय का उसकी देवली पर के छोटे लेख के अतिरिक्त न तो कोई शिलालेख या दानपत्र मिला है और न कोई समकालीन लेखक-
 ब्राग लिखा हुआ उसका वृत्तान्त। नैणसी की
 सीहा के सम्बन्ध का निश्चित
 हाल और उसकी मृत्यु
 ख्यात का लिखा जाना भी सीहा की मृत्यु के प्रायः
 ३७५ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ था। अन्य ख्यातें तथा
 टॉड का 'राजस्थान' तो उससे भी बहुत पीछे के लिखे हुए हैं। इस कारण
 इतिहास के वास्तविक अंधकार की दशा में उनमें मनमानी गढ़त बातों
 का लिखा जाना बहुत संभव है।

सीहा के विषय में जो कुछ हमें निश्चय-रूप से ज्ञात होता है, वह यह है कि वह राठोड़ कुंवर सेतराम का पुत्र था। उसकी एक स्त्री पार्वती सोलंकी वंश की थी और पाली से चौदह मील उत्तर-पश्चिम में बीटू गांव के

(१) डॉ० दे० रा० भंडारकर; ए लिस्ट ऑफ़ दि इन्क्रिप्शन्स ऑफ़ नोर्दर्न इंडिया; संख्या ६८२।

पास वि० सं० १३३० कार्तिक वदि १२ (ई० सं० १२७३ ता० ६ अक्टोबर) सोमवार को उसकी मृत्यु हुई, जैसा कि उसके देवली के लेख से प्रकट है^१। उक्त देवली के ऊपरी भाग में शत्रु की छाती में भाला मारते

(१) ओं ॥ सांवछ १३३०

कार्तिक वदि १२ सोम-

वारे रठडा श्री सेत-

कवर सुनु सीहो दे-

वलोकै गतः सो [लं]-

क पारवतिः तस्यार्थे दे-

वली स्थापिना [ता] करापिव सुमं भवतुः

(इंडियन ऐन्टिक्वेरी; जि० ४०, पृ० ३०१) ।

जोधपुर राज्य के इतिहास के लिए यह लेख बड़े महत्व का है, क्योंकि विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी तक के राजाओं के जो संवत् जोधपुर राज्य की ख्यात एवं अन्य ख्यातों आदि में मिलते हैं, वे बहुधा कल्पित हैं। उनकी जांच करने के लिए यही एक निश्चित साधन है। इसका संवत् ख्यातों के संवत् से न मिलने के कारण, जोधपुर राज्य के इतिहास कार्यालय के कार्यकर्ताओं ने इसे कृत्रिम ठहराने का प्रयत्न किया और इस सम्बन्ध में जांच करने के लिए उपर्युक्त इतिहास कार्यालय के अध्यक्ष गुमानसिंह का ई० सं० १६१२ ता० २० मार्च का अंग्रेजी का एक लम्बा पत्र मय लेख की छाप के मेरे पास आया। गुमानसिंह की भी यही धारणा थी कि लेख जाली है, परन्तु लिपि पर विचार करने से, मुझे वह असली मालूम हुआ। मैंने अपना विचार उसे लिख दिया तथा यह भी सूचित कर दिया कि निश्चित मत दे सकने के लिए मूल लेख को देखना आवश्यक है। इसपर वह लेख राजपूताना म्यूजियम् (अजमेर) में लाया गया, जहां कई महीने तक वह मेरे दफ्तर में पड़ा रहा। मूल लेख देखकर मुझे उसके असली होने में कोई सन्देह न रहा। मैंने तदनुसार इतिहास-कार्यालय के अध्यक्ष को सूचित कर दिया कि लेख कृत्रिम नहीं है। वह उसी ज़माने का है, क्योंकि उसके ऊपर भाला मारते हुए जो अश्वारूढ़ राव सीहा की आकृति बनी है वह कारीगरी की दृष्टि से उसी समय की बनी मूर्तियों के समान ही सुन्दर है। उसका सिर खुला है, केश का जूड़ा बंधा है तथा नीचे की तरफ लटकती हुई दाढ़ी है, जो उसके पुरानी होने के साक्षी रूप हैं। स्वर्गगत पुरुषों की अथवा देवमन्दिर बनानेवालों की जो मूर्तियां प्राचीन समय में

हुए अश्वारूढ़ सीहा की सुंदर मूर्ति बनी हुई होने से उसका लड़कर काम आना ज्ञात होता है।

उसके तीन पुत्रों—आस्थान, सोनिंग और अज—का उल्लेख अधिकांश ख्यातों में मिलता है।

राव आस्थान (अश्वत्थामा)

मुहणोत नैणसी अपनी ख्यात में लिखता है—

‘राव सीहा देवलोक पहुंचा, तब चावड़ी अपने तीनों पुत्रों

स्थापित की जाती थीं, वे ऐसी ही बनती थीं। ऐसी दो मूर्तियां इस समय राजपूताना म्यूजियम् (अजमेर) में सुरक्षित हैं, जिनमें से एक पर वि० सं० १३८६ (चैत्रादि १३६०) ज्येष्ठ सुदि ५ बुधवार का लेख है, जिससे पाया जाता है कि वह स्त्री सहित पंवार भावसीह (भावसिंह) की मूर्ति है। दूसरी मूर्ति पर कोई लेख नहीं है। आवू पर के प्रसिद्ध विमलशाह के मन्दिर की हस्तिशाला में अश्वारूढ़ विमलशाह की मूर्ति तथा तेजपाल के बनवाये हुए लूणवर्मही नामक मन्दिर में वस्तुपाल, तेजपाल और उनके पिता की मूर्तियां हैं, जिनके भी सिर खुले, केश बंधे हुए एवं नीचे लटकती हुई लम्बी, चपटी दाढ़ी है। ऐसी और भी बहुतसी राजपूतों की मूर्तियां आवू पर के अचलेश्वर के मन्दिर में तथा राजपूताना के कई दूसरे स्थानों में मेरे देखने में आई हैं। ये चिह्न प्राचीनता के ही सूचक हैं।

इस लेख के शोध का श्रेय जोधपुर निवासी (स्वर्गवासी) ब्रह्मभट्ट नानूराम को है। जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता मुंशी देवीप्रसाद के साथ रहने से उसको भी इतिहास का शौक लग गया था, जिससे वह जहां जाता वहां प्राचीन लेखों को तलाश कर उनकी छाँट लिया करता था। सीहा के पौत्र और आस्थान के पुत्र धूहड़ के स्मारक लेख की छाँट भी निगड़ी (निरभीगड़ी) गांव से वही लाया था, जिसको जोधपुर राज्य के इतिहास कार्यालय के कार्यकर्ताओं में से एक व्यक्ति पढ़ाने के लिए मेरे पास लाया था। लेख पानी में रहने के कारण अधिकांश बिगड़ा हुआ था, परन्तु उसमें—

‘संवत् (त्) १३६६.....आस्था[मा]सुत धूहड़’

पढ़ने में आया। इन दोनों मृत्यु-संवत्तों को छोड़कर विक्रम की पंद्रहवीं शताब्दी के आस-पास तक के मारवाड़ के राजाओं के जन्म, गद्दीनशीनी और देहांत के शुद्ध संवत् अब तक अंधकार में ही हैं।

मुंहणोत नैणसी का कथन

(आस्थान, सोर्निंग और अज) को लेकर अपने पीहर जा रही। काल पाकर वे जवान हुए और चौगान खेलने जाने लगे। एक दिन खेलते-खेलते उनकी गेंद किसी बुढ़िया के पांवों में जा लगी, जो वहां कंडे चुन रही थी। एक कुंवर गेंद लेने गया और बुढ़िया से कहा कि इसे उठा दो। बुढ़िया बोली मेरे सिर पर भार है तुम ही उतर कर लेलो। तब कुंवर ने बुढ़िया को धक्का मारा, जिससे उसके सब कंडे बिखर गये। क्रोध कर बुढ़िया कहने लगी—“हमारे ही घर में पाले-पोसे गये और हमीं को धक्का मारते हो। मामा का माल खाकर मोटे हुए और उसी की प्रजा को सताते हो। तुम्हारे तो कोई ठौर है नहीं।” ऐसे ताने सुनकर कुंवर घर आये, माता से पृच्छा कि हमारा पिता कौन है, हमारा देश कहां है और हम किसके यहां पलते हैं। माता ने बात टालने की चेष्टा की, पर कुंवरों ने न माना तब उसने कहा कि तुम अपने नाना के घर पलते हो। कुंवर मामा के पास गये और विदा मांगी। मामा ने बहुत कहा, पर आस्थान न रहा। वह विदा होकर ईडर गया और वहां से चलकर पाली गांव में डेरा किया। वहां कन्ह नाम का मेर शासक था। जो प्रजा से कर भी लेता था और उनके साथ अनीति भी करता था। आस्थान ने उसे मारकर ८४ गांवों के साथ पाली को अपने अधिकार में कर लिया। साथ ही उसने भाद्राजण की चौरासी भी जा दवाई।

‘उन दिनों खेड़ में गोहिल राज करते थे। उनका प्रधान एक डाभी राजपूत था। किसी कारणवश प्रधान और उसके भाई-बन्धु गोहिलों से अप्रसन्न होकर खेड़ से चल दिये और आस्थान का राज्य बढ़ता हुआ देखकर उन्होंने मन में विचार कि इनसे गोहिलों को मरवावें। उन्होंने

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस विषय में लिखा है—‘भाई से अनबन होने के कारण वि० सं० १२३३ (ई० स० ११७६) में आस्थान अपने छोटे भाई सोर्निंग और अज को साथ ले पाली आया, भूमियों से पक्षीवालों का वित्त जुटाकर उनकी कृपा प्राप्त की और फिर वहीं रहकर उनकी रक्षा करने लगा, जिसके बदले में

आस्थान के पास जाकर सारी बात कही और यह भी कहा कि हम तुम्हें खेड़ का राज्य दिलाते हैं, जब हम तुमको सूचना करावें तब तुरन्त चूक करना। इधर गोहिलों ने भी विचार किया कि इन राठोड़ों का पड़ोस में आकर राज्य बांधना ठीक नहीं, इसलिए किसी प्रकार इनको यहां से हटाना चाहिये। मित्रता करने के लिए उन्होंने डाभी को आस्थान के पास भेजा और उसे अपने यहां गोठ में शामिल होने का निमन्त्रण दिया। डाभी ने सब बात आस्थान से तय कर इसकी सूचना गोहिलों के पास भेज दी और उसने खेड़ जाकर गोहिलों से कहा हम तुम्हारे चाकर हैं, तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते अतएव दाहिनी तरफ़ आप लोग रहना, हम बाई तरफ़ खड़े रहेंगे। आस्थान के आते ही डाभी ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और कहा कि “डाभी डावें गोहिल जीमयै।” यह सुनकर राठोड़ गोहिलों पर दूट पड़े और उन्होंने उन्हें मार गिराया तथा खेड़ का राज्य लेकर आस्थान ने वहां अपनी राजधानी स्थापित की, उसे कुछ कर मिलने लगा।

(जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५-१६)।

दयालदास की ख्यात में लिखा है—‘जसवन्तासिंह के गद्दी पर बैठने पर आस्थान, जिसका जन्म वि० सं० १२०४ भाद्रपद सुदि १ (ई० स० ११४७) को हुआ था, भाइयों को साथ ले वि० सं० १२४४ कार्तिक वदि २ (ई० स० ११८७) को कन्नौज में पाटण (ननिहाल) की तरफ़ चला। मार्ग में वह पाली में ठहरा जहां उन दिनों मेरों द्वारा अनेकों अत्याचार होते थे, जिनको वि० सं० १२४७ माघ वदि २ (ई० स० ११८९) को मार पल्लीवाल ब्राह्मणों से कुछ कर ठहराकर वह वहीं रहने लगा।’

(दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४१)।

(१) कुछ अन्तर के साथ इसका उल्लेख जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० १६) एवं दयालदास की ख्यात (जि० १, पृ० ४१-२) में भी मिलता है। बांकीदास-कृत ‘ऐतिहासिक बातें’ में भी इसका उल्लेख है (संख्या ७८०); परन्तु इनके विरुद्ध इन सब ख्यातों से पूर्व वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२९) का राठोड़ महारावल जगमाल के समय का नगर गांव से जो लेख मिला है, उसमें सीहा के पुत्र सोनिंग-द्वारा गोहिलों से खेड़ लिये जाने का उल्लेख है। (डॉ० भंडारकर; ए बिस्ट

जिससे उसके वंशज “खेड़ेचा” प्रसिद्ध हुए ।’

जोधपुर राज्य की ख्यात में आस्थान के विषय में इतना और लिखा मिलता है—

‘अनंतर आस्थान ने भीलों को मारकर ईडर को अपने अधिकार में किया और उसे अपने छोटे भाई सोनिंग को दे दिया’ । उसके वंश के ईडरिया राठोड़ कहलाये ।

ऑव् दि इन्स्क्रिप्शन्स ऑव् नोर्डर्न इंडिया: संख्या ६८२) । इससे यह प्रमाणित है कि खेड़ आस्थान ने नहीं, किन्तु उसके भाई सोनिंग ने विजय किया था । संभव है कि उसने अपने बड़े भाई आस्थान की आज्ञा से जाकर खेड़ विजय किया हो ।

(१) मुंह्यात नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ५५-५७ ।

(२) टॉड राजस्थान में लिखा है कि डाभियों को छल से मारकर आस्थान ने ईडर का राज्य सोनिंग को दिया था, जिसके वंशज हथुंडिया राठोड़ कहलाये (जि० २, पृ० ६४३) ।

टॉड का यह कथन निर्मूल है क्योंकि इन राठोड़ों के मारवाड़ में आने से पहले हथुंडी में राठोड़ों का राज्य था, जो हथुंडिया राठोड़ कहलाते थे । उनके समय का एक शिलालेख वि० सं० १०५३ माघ सुदि १३ (ई० स० ६६७ ता० २४ जनवरी) का मिल चुका है (देखो ऊपर; पृ० ६२) ।

ऊपर आये हुए ख्यात के कथन के समान ही टॉड का ईडर की विजय के संबंध कः कथन केवल कल्पना मात्र है उस समय वहां भीलों अथवा डाभियों का राज्य नहीं, किन्तु सोलंकीयों का राज्य था, जैसा कि ईडर के मुरलीधर के मन्दिर में लगी हुई संस्कृत की वि० सं० १३५४ कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १२६७ ता० २७ अक्टोबर) रविवार की बड़ी प्रशस्ति से पाया जाता है (बुद्धिप्रकाश; पुस्तक ५७, जनवरी, ई० स० १९१०; पृ० २७) । ईडर एक सम्पन्न, प्राचीन और प्रसिद्ध नगर था, जहां सोलंकी कुमारपाल ने “कुमारपाल विहार” नाम का जैन मन्दिर बनवाया था । उस मन्दिर का तथा उसके जीर्णोद्धार का उल्लेख प्रार्तद्वासोम-राचित “सोमसौभाग्यकाव्य” में, जिसकी रचना वि० सं० १५२४ में हुई थी, मिलता है । वि० सं० १३५६ में अलाउद्दीन खिलजी के समय उसके छोटे भाई उलगाखां ने बघेल कर्णदेव से गुजरात छीना था (जिनप्रभसुरि; तीर्थकल्प में सत्यपुरकल्प; पृ० ६५; कलकत्ता संस्करण) । गुजरात-विजय का यही वर्ष “तजियतुलअम्सार”, “तारीखे अलाई” तथा “तारीखे फ़ीरोज़शाही”

अज के साथ फ़ौज देकर आस्थान ने उसे द्वारका की तरफ़ भेजा, जहाँ का स्वामी चावड़ा विक्रमसेन था। वहाँ जलदेवी ने अज को स्वप्न दिया कि मैं यहाँ की भूमि तुझे देती हूँ, तू विक्रमसेन का सिर काटकर मुझे चढ़ा। अज ने तदनुसार विक्रमसेन को मारकर उस प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और उसका सिर जलदेवी को चढ़ाया। इसीसे उसके वंशज बाढ़ेल कहलाये।

‘कुछ दिनों बाद वादशाह फ़ीरोज़शाह ने मक्का जाते हुए मार्ग में पाली को लूटा और स्त्रियों आदि को पकड़ा। इसपर आस्थान ने खेड़ में भी मिलता है। संभव है कि खिलज़ियों के राज्य की अवनति होने पर पीछे से राठोढ़ों ने ईडर पर अधिकार किया हो।

(१) टॉड के कथनानुसार अज ने ओखामंडल के राजा बीकमसी को मारकर उसके राज्य पर अधिकार किया (जि० २, पृ० १४३)। दयालदास लिखता है कि अज ने शंखोद्वार (द्वारका) का राज्य प्राप्त किया (जि० १, पृ० ४२), पर यह कथन निर्मूल है। उस समय तक सारा काठियावाड़ सोलंकीयों के अधीन था, न कि चावड़ों के और बाढ़ेल तो वि० सं० १४०० के पीछे उधर गये थे। जब वि० सं० १३६६ में आस्थान के पुत्र भूहड़ का देहान्त हुआ था (देखो ऊपर; पृ० १५८; टिप्पण) तो फिर वि० सं० १४०० के पीछे उसके चाचा अज का जीवित रहना और काठियावाड़ में जाना कैसे संभव हो सकता है ?

(२) यह कथन निर्मूल है, क्योंकि वि० सं० १२४६ (ई० स० ११६२) तक तो अजमेर पर भी मुसलमानों का राज्य नहीं हुआ था और वहाँ प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान राज्य करता था। आस्थान का समकालीन यदि कोई फ़ीरोज़ नाम का मुसलमान सुलतान हो तो वह जलालुद्दीन फ़ीरोज़ खिलज़ी (वि० सं० १३४६-१३५३) हो सकता है, परन्तु न तो वह कभी मक्के गया और न कभी मारवाड़ में आया। वह तो एक बार हि० स० ६६० (वि० सं० १३४८ = ई० स० १२६१) के लगभग रणथम्भोर का क़िला जीतने के लिए गया था, परन्तु उसे जीतना असम्भव जान मालवे के दो-चार मन्दिरों को तोड़ वह पुनः दिल्ली लौट गया (ब्रिग; फिरिस्ता; जि० १, पृ० ३०१-२)। इस चढ़ाई का उल्लेख टॉड और नैणसी ने भी नहीं किया है। इस विषय की किसी अज्ञात कवि की कविता भी मिलती है, जो समकालीन लेखक की नहीं, किन्तु पीछे से बनी हुई है। मारवाड़ में तो सर्वप्रथम अल्लाउद्दीन खिलज़ी ने ही प्रवेश किया था।

से आकर उसके साथ युद्ध किया और उसी लड़ाई में पाली के तालाब के निकट वि० सं० १२४८ वैशाख सुदि १५ (ई० सं० ११६१) को वह अपने १४० राजपूतों के साथ काम आया^१ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसकी दो राणियां थीं, जिनसे उसके आठ पुत्र हुए^२—(१) धूहड़, (२) जोप^३, (३) धांधल^४,

(१) जि० १, पृ० १७-१६ । बांकीदास ने भी पाली में ही आस्थान का काम आना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१५) । दयालदास के अनुसार उसकी वि० सं० १२७० वैशाख वदि १ (ई० सं० १२१३) को मृत्यु हुई (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ४३), परन्तु ख्यातों के संवत् निराधार और कल्पित ही हैं ।

(२) जि० १, पृ० १६-२० ।

(३) ख्यात के अनुसार इसके नीचे लिखे हुए छः पुत्र हुए—

१—सींधल इसके वंशज सींधल राठोड़ कहलाये ।

२—जोलू ,, जोलू ,,

३—जोरा ,, जोरा ,,

४—ऊहड़ ,, ऊहड़ ,,

५—राजिग

६—मूलू ,, मूलू ,,

(४) धांधल के तीन पुत्र—पावू, बूड़ा और उदल—हुए । धांधल के वंश के धांधल राठोड़ कहलाये । उसके पुत्रों में पावू करामाती माना जाता है, जिसका विवाह सोढ़ों के यहां हुआ था । विवाह कर लौटने पर रात्रि को जिंदराव खीची (पावू का बहनोई) ने काछेले चारणों की गायें लूटीं, जिसकी पुकार चारणों ने बूड़ा और पावू के महलों पर की । बूड़ा तो न उतरा, परन्तु पावू ने तुरन्त तैयार हो अपने साथ सहित खीची का पीछा किया और उससे गायें वापस छीन लीं । खीची कुंडल, कम्मा धोरंधार को साथ ले फिर पावू पर चढ़ आया । इस बार पावू अपने सब साथियों के साथ काम आया और अपना नाम अमर कर गया । इस वीरतापूर्ण कार्य के लिए वह देवताओं की तरह पूजा जाता है और उसके थानक (स्थान) कोलू आदि गांवों में अब तक विद्यमान हैं ।

(मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६७-१८१) ।

दयालदास ने पावू को धांधल का पौत्र लिखा है, परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि कोलू के पास के पावू के थानकों में से दो पर के, वि० सं० १४१५ भाद्रपद सुदि

संतति (४) हिरडक, (५) पोहड़^१, (६) खीपसाव,
(७) आसल और (८) चाचिग^२ ।

दयालदास की ख्यात के अनुसार उसके छः पुत्र—धूहड़, सौंधल, बाहुप, चन्द्रसेन, ऊड और धांधल—हुए^३। बांकीदास ने भी छः पुत्रों के ही नाम दिये हैं^४ ।

टोंड के अनुसार उसके आठ पुत्र हुए—

धूहड़, जोपसी, खम्पसाव, भोपलू, धांधल, जेठमल, बांदर और ऊहड़^५ ।

उपर्युक्त ख्यातों में केवल धूहड़, धांधल और ऊहड़ के नाम पर-स्पर मिल जाते हैं ।

राव आस्थान के विषय में जैसा कि हम आरम्भ में कह आये हैं, ख्यातों में कपोलकल्पित बातें भरी हुई हैं । निश्चयात्मक रूप से हम

आस्थान के सम्बन्ध का
निश्चित हाल

इतना ही कह सकते हैं कि वह वि० सं० १३३०
(ई० सं० १२७३) में अपने पिता का उत्तराधि-
कारी हुआ और वि० सं० १३३० और वि० सं० १३६६
(ई० सं० १२७३ और १३०६) के बीच किसी समय उसकी मृत्यु हुई होगी^६,

११ (ई० सं० १३५८) तथा वि० सं० १५१५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० सं० १४५८) के लेखों में उसे धांधल का पुत्र लिखा है (बंगाल एशियाटिक सोसाइटी का जर्नल; जि० १२, पृ० १०७-८)।

(१) ख्यात में इसके नौ पुत्र होना लिखा है, पर उसमें उनके नाम नहीं दिये हैं ।

(२) ख्यात में इसके छः पुत्र होना और इसके वंशजों का चाचिग राठोड़ कह-लाना लिखा है ।

(३) जि० १, पृ० ४३ ।

(४) ऐतिहासिक बातें: संख्या १५० ।

(५) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३ ।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके देहांत का संवत् १२४८ और दयाल-दास की ख्यात में १२७० दिया है, परन्तु दोनों कपोलकल्पित हैं । एक अन्य ख्यात में उसका मृत्यु संवत् १३४८ दिया है, जो संभवतः ठीक हो, परन्तु उसके साथ की घटना फ़ीरोज़शाह की फ़ौज से उसका लड़कर मरना) विश्वास के योग्य नहीं है ।

क्योंकि वि० सं० १३६६ में धूहड़ का देहांत हुआ जैसा कि उसकी देवली पर के लेख से ज्ञात होता है। उसके समयमें इन राठोड़ों ने खेड़ की जागीर गोहिलों को छल से मारकर हस्तगत की थी^१।

राव धूहड़

मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में धूहड़ की राणी और पुत्रों के नाम देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा है^२। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

‘धूहड़ वि० सं० १२४८ ज्येष्ठ सुदि १३ (ई० सं० ११६१) को गद्दी पर बैठा और वि० सं० १२८५ (ई० सं० १२२८) में चौहानों के साथ के युद्ध में मारा गया^३। उसने अपने जीवन-काल में जोधपुर राज्य की ख्यात का कर्णाटक से चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर नागाणा गांव में स्थापित की, जो बाद में नागाणेची के नाम से प्रसिद्ध हुई^४।’

दयालदास उसके विषय में लिखता है—‘धूहड़ का जन्म वि० सं० १२२४ भाद्रपद वदि १ (ई० सं० ११६७) को हुआ था और वह वैशाख

(१) इस विषय में यह प्रसिद्धि चली आती है कि गोहिलों के मन्त्री आदि ढाभियों ने विश्वासघात कर राठोड़ों को बुलाया और गोहिलों को छल से मरवा दिया। इस घटना से बहुत पूर्व यहां के गोहिलों में से साहार का पुत्र सहजिग (सेजक) गुजरात के सोलंकी राजा (सिद्धराज जयसिंह, वि० सं० ११५० से ११६६) का अंगरक्षक हुआ और पीछे से वह तथा उसके पुत्र सौराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड़) के हाकिम रहे, ऐसा उनके समय के काठियावाड़ से मिले हुए वि० सं० १२०२ और सिंह संवत् ३२ आश्विन वदि १३ (ई० सं० ११४५ ता० १५ अक्टोबर) के शिलालेख से पाया जाता है। उनके वंशज भावनगर, पालीताना, लाठी, वळा और राजपीपला के राजा हैं।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६५।

(३) बांकीदास ने भी धूहड़ का चौहानों के हाथ से मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८२)।

(४) जि० १, पृ० २०।

दयालदास की ख्यात का
कथन

वदि १२ वि० सं० १२७० (ई० स० १२१३) को गद्दी पर बैठा । कुलदेवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाकर स्थापित करने के अनन्तर उसने पड़िहार थिरपाल से वि० सं० १२७२ (ई० स० १२१५) में मंडोवर लिया, परन्तु दो मास बाद ही वह प्रदेश उसके हाथ से जाता रहा । वि० सं० १२८७ (ई० स० १२३०) के आश्विन मास में उसकी मृत्यु हुई^१ ।

धूहड़ के सम्बन्ध में टॉड लिखता है—

‘गद्दी पर बैठते ही उसने कन्नौज जीतने की असफल चेष्टा की । अनन्तर पड़िहारों के हाथ से मंडोवर लेने के प्रयत्न में ही उसकी मृत्यु हो गई^२ ।’

टॉड का कथन

भिन्न-भिन्न ख्यातों आदि में धूहड़ के पुत्रों की संख्या तथा नाम भिन्न-भिन्न लिखे मिलते हैं । जोधपुर राज्य की ख्यात^३ तथा टॉड-कृत “राजस्थान” के अनुसार उसके सात पुत्र—
रायपाल, कीर्तिपाल, बेहड़, पेथड़ (पीतल), जोगापत (जुगेल), डालू और बेगड़—हुए । “तवारीख जागीरदारान राज मारवाड़”^४ नामक पुस्तक में भी सात पुत्रों के नाम दिये हैं, जो इस प्रकार हैं—
रायपाल, बेहड़, पीथल, कीतपाल, ऊनड़, जोगा तथा चन्द्रपाल^५ । मुंह-णोत नैणसी^६ तथा दयालदास^७ ने पांच और बांकीदास^८ ने केवल चार पुत्रों

(१) जि० १, पृ० ५३ ।

(२) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३ ।

(३) जि० १, पृ० २० ।

(४) जि० २, पृ० ६४३ ।

(५) पृ० ६ ।

(६) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में रायपाल, पीथड़, बाघमार, कीरतपाल और लगहथ नाम दिये हैं (जि० २, पृ० ६६ और १६५) ।

(७) दयालदास की ख्यात में रायपाल, कीर्तसेन (कीर्तसेन से कीर्तसेनोत), बंब, पृथ्वीपाल (पृथ्वीपालोत) और बीकमसी (बीकमसी से बीकमसीहोत) नाम दिये हैं ।

(८) ऐतिहासिक बातें; संख्या १५३० ।

के नाम दिये हैं। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली के अनुसार धूहड़ के नौ पुत्र—रायपाल, चन्द्रपाल, शिवपाल, जीवराज, भीमराज, मनोहरदास, मेघराज, सावंतसिंह तथा सूरसिंह—हुए। इनमें से चंद्रपाल के वंशज बीलाड़ा के दीवान हैं^१।

उपर्युक्त वर्णन और संवत् कल्पित हैं। धूहड़ के विषय में हम निश्चयपूर्वक जो कुछ कह सकते हैं, वह यह है कि उसकी मृत्यु निश्चित हाल और मृत्यु वि० सं० १३६६ में पचपदरा हकूमत के तिगड़ी (तिरसिंगड़ी) गांव के पास हुई थी, जैसा कि उक्त गांव के तालाब से मिली हुई उसकी देवली (स्मारक) पर के लेख से पाया जाता है^२। यह बात संभव है कि उसके समय में चक्रेश्वरी की मूर्ति, जो राठोड़ों की कुलदेवी थी, मारवाड़ में लाई गई हो और नागाणा (पचपदरा जिला) में स्थापित करने से नागाणेची कहलाई हो।

राव रायपाल

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल उसकी राणी और पुत्रों का उल्लेख है^३। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

‘अकाल के समय बहुत से मनुष्यों की अन्न इत्यादि से रक्षा करने के कारण रायपाल “महिरेलण” (इन्द्र) नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने परमारों

(१) हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति; पृष्ठ ६-७।

(२) ओं ॥ संवत् (त्) १३६६.....

आस्था [मा] सुत धुहड़.....

(मूल लेख की छाप से)।

इन्डियन ऐन्टिक्वेरी (जि० ४०, पृ० ३०१) में भी इस लेख का उल्लेख है।

ब्रह्मभट्ट नानूराम की ली हुई छाप से ही इस लेख का पता लगा, पर मूल लेख अबतक नहीं मिला है।

(३) जि० २, पृ० १६५।

जोधपुर राज्य की स्थापना का
कथन

का ठिकाना बाड़मेर ५६० गांवों के साथ जीता और यादववंशी राजपूत मांगा को सर्वस्व दे अपना भिलुक (चारण) बनाया । इसी मांगा का बेटा चन्द हुआ, जिसके वंश के रोहड़िया बारहट कहलाये । वि० सं० १३०१ (ई० स० १२४४) में रायपाल का स्वर्गवास हो गया^१ ।

दयालदास लिखता है—'वि० सं० १२४१ माघ वदि ५ (ई० स० ११८४) को रायपाल का जन्म हुआ था और वि० सं० १२८७ आश्विन

सुदि १२ (ई० स० १२३०) को उसे राज्या-

दयालदास का कथन

धिकार प्राप्त हुआ । वह बड़ा दानी और वीर था । उसने बाड़मेर के परमारों को मारकर ५०० गांवों पर अधिकार कर लिया और वि० सं० १२६० (ई० स० ११३३) में मदेवे पर भी उसका अधिकार हो गया । अनन्तर उसने पावूजी को मारने में योग देनेवाले कुंडल के स्वामी को परास्त किया और वि० सं० १२६१ आश्विन सुदि १ (ई० स० १२३४) को ८४ गांवों के साथ उस प्रदेश को भी अपने राज्य में मिला लिया । चंद मंगावत बंदी हुआ, जिसे उसने अपना चारण बनाया । उसके वंशज रोहड़िया बारहट कहलाये । वि० सं० १२६१ (?) चैत्र वदि ४ (ई० स० १२३५) को रायपाल का देहांत हुआ^२ ।

टोंड का कथन है—'धूहड़ के उत्तराधिकारी रायपाल ने मंडोर (मंडोवर) के पड़िहार स्वामी को मारकर अपने पिता की मृत्यु का बदला लिया । कुछ समय तक उक्त प्रदेश पर उसका अधिकार भी रहा^३ ।'

टोंड का कथन

(१) जि० १, पृ० २० । बांकीदास ने उसका चौहानों के हाथ से मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१४) ।

(२) जि० १, पृ० ५३-४ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३ । बांकीदास भी लिखता है कि रायपाल ने पड़िहारों से मंडोर लिया, पर वहां उसका बहुत दिनों तक अधिकार न रहा (ऐतिहासिक बातें; संख्या; १८) ।

ख्यातों आदि में रायपाल के कहीं तेरह^१, कहीं बारह^२, कहीं दस^३, कहीं आठ^४ और कहीं चार^५ पुत्रों के होने का उल्लेख है। इन नामों का परस्पर मिलान करने से भी यह निश्चय नहीं होता कि उसके कितने पुत्र थे और वास्तव में उनके नाम क्या थे। केवल एक पुत्र कान्ह का नाम सब में है, जो उसका ज्येष्ठ पुत्र था।

विभिन्न ख्यातों के अन्तर्गत आई हुई उपरोक्त बातें किसी समकालीन लेखक द्वारा न लिखी होने के कारण अधिकांश में विश्वास के योग्य

(१) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० २१) के अनुसार—

पुत्रों के नाम—१ कान्ह, २ केलण (केलण के थांथी और थांथी के फिटक (फिटक के वंश के फिटक राठोड़ कहाये), ३ सूंडो (इसके सूंडा कहाये), ४ लाखवासी, ५ थांथी, ६ डांगी, ७ मोहण (इसको जैसलमेर का राव पकड़ ले गया और मांगा का बैर लेने के लिए उसका विवाह एक महाजन की पुत्री से कर दिया। इसके वंशज मुंहणोत ओसवाल कहलाये), ८ जाजण, ९ राजो, १० जोगो, ११ रादो (इसके रादा राठोड़ कहाये) और १२ हाथुडियो।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ५४।

पुत्रों के नाम—कन्न, २ केलण (इसके केलणोत कहाये), ३ राजसी (इसके राजसीहोत कहाये), ४ मोहण (इसके मुंहणोत कहाये), ५ महिपाल (इसके महिपालोत कहाये), ६ सिवराज (इसके सिवराजोत कहाये), ७ सोदल (इसके सोदलोत कहाये), ८ बलू (इसके बलूओत कहाये), ९ रामसिंह (इसके रामसिंहोत कहाये) और १० डांगी (इसके डांगी कहाये)।

(४) (१) कान्ह, (२) केलहण, (३) रांदो, (४) सूंडो, (५) मूंपो, (६) वेहड़, (७) महणसी और (८) थांथी तथा इसका पुत्र फिटक हुआ।

बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७२।

(५) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६।

पुत्रों के नाम—१ कान्ह, २ समरांग, ३ लक्ष्मणसिंह और ४ सहनपाल।

ख्यातों के कथन की
समीक्षा

नहीं है। असंदिग्धभाव से हम इतना ही कह सकते हैं कि वि० सं० १३६६ में अपने पिता की मृत्यु होने पर रायपाल उसका उत्तराधिकारी हुआ। पंवारों से रायपाल का बाड़मेर लेना भी निर्मूल बात है, क्योंकि उस समय तो वहां चौहानों का अधिकार था। पंवारों से तो बाड़मेर का इलाका चौहानों ने बहुत पहले ले लिया था जैसा कि इन दोनों वंशों के उधर मिलनेवाले शिलालेखों से पाया जाता है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसका देहांत वि० सं० १३०१ में और दयालदास की ख्यात में वि० सं० १२६१ में होना लिखा है, जो सर्वथा कल्पित है, क्योंकि उसके पिता धूहड़ का देहांत वि० सं० १३६६ (ई० सं० १३०६) में होना उसकी देवली (स्मारक) के लेख से निश्चित है।

राव कन्हपाल

ख्यातों आदि में कन्हपाल के सम्बन्ध में उसके जन्म, सिंहासना-रोहण और मृत्यु के कल्पित संवत्‌ों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार—

जन्म वि० सं० १२६१

राज्य प्राप्ति वि० सं० १३०१

मृत्यु वि० सं० १३८५

(जि० १, पृ० २१) ।

दयालदास की ख्यात के अनुसार—

जन्म वि० सं० १२६२

राज्य प्राप्ति वि० सं० १२६१

मृत्यु वि० सं० १३०३

(जि० १, पृ० ५४) ।

टोड ने इसका और इसके एक पुत्र जालणसी का नाम देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा (राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३) ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार देवड़ी राणी कल्याणदे
संतति (सलखा की पुत्री) के गर्भ से उसके निम्नलिखित
तीन पुत्र हुए^१—

१. भीमकरण^२
२. जालणसी
३. विजयपाल

रान जालणसी

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार तो यही प्रतीत होता है कि भीमकरण कन्हपाल का ज्येष्ठ पुत्र था, पर संभवतः उसके जीवनकाल में ही भीमकरण के मारे जाने के कारण दूसरा पुत्र जालणसी उसका उत्तराधिकारी हुआ। उसके सम्बन्ध में ख्यातों में बहुत कम वर्णन मिलता है। टॉड ने केवल उसका नाम^३ और नैणसी ने राणी तथा पुत्रों के नाम दिये हैं^४। जोधपुर राज्य और दयालदास की ख्यातों में जालणसी के जीवन-काल की कुछ और घटनाओं का उल्लेख मिलता है, परन्तु परस्पर विभिन्न होने के कारण वे भी विश्वास के योग्य नहीं हैं।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—“चांदाणी गांव के एक प्रसिद्धि प्राप्त अमर वृक्ष के फल को सोढों ने बिना आज्ञा के तोड़ा, जिसके

(१) बांकीदास ने भी इन्हीं तीन पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८४)। दयालदास केवल जालणसी का नाम देता है (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ५४)। नैणसी ने भीमकरण का नाम नहीं दिया (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ तथा १६५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह काक नदी (जैसलमेर राज्य में लोदरवा के निकट) की लड़ाई में मारा गया (जि० १, पृ० २१, बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८४)। संभव है कि इसने जैसलमेर पर चढ़ाई की हो और वहीं मारा गया हो।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४३।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ और १६५।

जोधपुर राज्य की
ख्यात का कथन

अपराध में जालणसी ने फ़ौज लेजाकर उनके डेरे इत्यादि लूट लिये और उनके स्वामी गांगा से दंड वसूल किया तथा अन्य ग्रामों से भी दंड लिया, अनन्तर मुलतान^२ से भी चौथ वसूल की^३।”

दयालदास जालणसी के सम्बन्ध में अपनी ख्यात में लिखता है—
“वि० सं० १२६६ पौष वदि ४ (ई० सं० १२४२) को उसका जन्म हुआ और वि० सं० १३०३ भाद्रपद वदि १२ (ई० सं० १२४६) को वह गद्दी पर बैठा। वि० सं० १३२४ (ई० सं० १२६७) में जब महेबे पर नवाब हाजीख़ां ने ४००० फ़ौज के साथ चढ़ाई की तो उस (जालणसी) ने खेड़ से चढ़कर उसका सामना किया और हाजीख़ां को अपने हाथ से मारकर विजय प्राप्त की। वि० सं० १३२७ माघ वदि ५ (ई० सं० १२७०) को उसका देहांत हुआ^४।”

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके तीन राणियां थी, जिनसे उसके तीन पुत्र—छाडा, भाखरसी और डूंगरसी—हुए^५। नैणसी ने केवल उसकी एक राणी और एक पुत्र का नाम दिया है^६। दयालदास के अनुसार उसके चार

(१) ठक़ ख्यात में इन गांवों के नाम इस प्रकार दिये हैं—

कान्हराव, कोहर, मुध, जत्रिहर, दीलाहर, सतेहर, खुडिया, पांचल, बुडकिया तथा कीतल (जि० १, पृ० २२)।

(२) मुलतान से चौथ लेने का उल्लेख बांकीदास ने भी किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८६), पर यह कथन विश्वास के योग्य प्रतीत नहीं होता, क्योंकि उस समय तक राठोड़ों की शक्ति इतनी नहीं बढ़ी थी कि वे मुलतान तक बढ़ते।

(३) जि० १, पृ० २२।

(४) जि० १, पृ० ५४।

(५) जि० १, पृ० २२।

(६) मुंद्दणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ६६ और १६५।

पुत्र—छाड़ा, फिटक, खोखर और सीमलोत—हुए' ।

ख्यातों में दिये हुए जालणसी के जन्म मृत्यु आदि के संवत् कल्पित ही हैं । वि० सं० १३६६ में तो उसका प्रपितामह मरा था, फिर वि० सं० १३२७ में उसका विद्यमान रहना कैसे माना जा सकता है । उसका आस-पास के गांवों से दंड लेना सम्भव हो सकता है । उपर्युक्त हांजीखां कहां का था, यह ख्यात-कार ने नहीं लिखा और न जोधपुर राज्य की ख्यात में ही इस घटना का उल्लेख मिलता है । यदि इस कथन में कुछ भी सत्यता हो तो वह जालोर अथवा नागोर के मुसलमान अफसरों में से कोई हो सकता है । वि० सं० १३६८ (ई० सं० १२०६) में अलाउद्दीन खिलजी ने चौहानों से जालोर विजय कर लिया था और वहां उसकी तरफ से पठान हाकिम रहने लग गये थे । नागोर में भी रायपाल के पूर्व से ही मुसलमानों का अधि-कार हो गया था ।

राव छाड़ा

राव जालणसी की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र छाड़ा उसका उत्तराधिकारी हुआ । मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल उसका नामो-ल्लेख ही मिलता है^२ । टॉड ने उसका नामोल्लेख करने के साथ-साथ इतना और लिखा है कि वह अपने पड़ोसी जैसलमेर के भाटियों के लिए बड़ा कष्टदायक था^३ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—'मृत्यु के समय जालणसी ने अपने पुत्र छाड़ा से कहा था कि सोढ़ों पर हमारा दंड निकलता है, सो दुर्जनसाल सोढ़ा से वसूल करना । छाड़ा ने इसपर चौगुने घोड़े और चौगुना दंड वसूल किया । अनन्तर उसने जैसलमेर के

जोधपुर राज्य की
ख्यात का कथन

(१) जि० १, पृ० ५४ ।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६५ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४ ।

भाटियों से कहलाया कि गढ़ के बाहर गांव बसाया है, अतएव हमें अपनी पुत्री तथा नालबन्धी दो, पर यह बातें भाटियों ने स्वीकार न कीं, तब उसने जैसलमेर पर चढ़ाई कर दी तो उन्होंने अपने यहां की बेटी उसे व्याह दी^१ ।

दयालदास उसके विषय में लिखता है—‘छाड़ा का जन्म वि० सं० १३२० श्रावण सुदि ५ (ई० स० १२६३) को हुआ था और वह वि० सं०

दयालदाम की ख्यात
का कथन

१३२७ माघ सुदि १ (ई० स० १२७०) को राव हुआ । वि० सं० १३४० चैत्र वदि ५ (ई० स० १२८३) को उसने जैसलमेर पर चढ़ाई की । वहां

के रावल जैतसी (तेजराव का पुत्र) ने उसका सामना किया, पर भाटी युद्ध में जम न सके, जिससे छाड़ा की विजय हुई और जैसलमेर नगर की लूट में उसके हाथ बहुत माल अस्वाय लगा । उसी वर्ष उसने उमरकोट पर चढ़ाई की और सोढ़ों को अपना आश्रित बनाया । फिर उसने महेवे का नुकसान करनेवाले भीनमाल के सोनगरों पर चढ़ाई की, पर उसी युद्ध में वि० सं० १३४५ आश्विन वदि ५ (ई० स० १२८८) को वह मारा गया^२ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसकी हुलणी राणी से उसके निम्न लिखित सात पुत्र हुए^३—

संतति

(१) टीड़ा

(२) खोखर^४

(३) वानर

(४) सीमाल

(१) जि० १, पृ० २२ । बांकीदास ने भी राव छाड़ा का सोढ़ा व भाटियों से लड़ना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७८७) ।

(२) जि० १, पृ० ५४-५ ।

(३) जि० १, पृ० २३ ।

(४) इसके वंशज खोखर राठोड़ कहलाये ।

(५) रुद्रपाल

(६) खीपसा

(७) कान्हड़दे

मुंहणोत नैणसी^१ दयालदास^२ तथा टॉड^३ ने केवल एक पुत्र टीड़ा का ही नाम दिया है ।

पहले के राजाओं के समान ही ख्यातों में दिये हुए राव छाड़ा के सम्बन्ध के संवत् भी कल्पित ही हैं । उसका होना हम वि० सं० १४०० के ख्यातों के कथन की जांच

पीछे ही मान सकते हैं, क्योंकि जैसा ऊपर लिखा जा चुका है कि वि० सं० १३६६ में तो धूहड़ मरा था। राव छाड़ा के जैसलमेर पर चढ़ाई करने के सम्बन्ध में जैसलमेर के इतिहास में बिल्कुल विपरीत वर्णन मिलता है । जैसलमेर के इतिहास में रावल चाचिगदेव (प्रथम) के हाल में टॉड लिखता है — “खेड़ में जा बसनेवाले राठोड़ बड़े कष्ट दायक पड़ोसी हो उठे थे । चाचिग ने उन्हें दंड देने के लिए सोढ़ों की सेना की सहायता प्राप्त की और जसल तथा भालोत्रा की ओर अग्रसर हुआ, लेकिन छाड़ा और उसके पुत्र टीड़ा ने एक कन्या का विवाह उसके साथ कर उसका क्रोध शान्त किया” । लक्ष्मीचंद ने अपनी “तवारीख जैसलमेर” में चाचिग के वर्णन में लिखा है—‘सोढ़ों ने उस- (चाचिग) की ताबेदारी में हाजिर होकर अर्ज की कि राठोड़ों ने गोहिलों से खेड़ छीन ली व राव छाड़ा हमसे भी अदावत रखता है, इसपर चाचिग फौरन वहां पहुंचा । राव छाड़ा ने कुंवर तीड़ा की सलाह से फौज खर्च दे, बेटी परणा सुलह कर ली” । “वीरविनोद” में भी जैसलमेर के इतिहास में चाचिगदेव का सोढ़ों की सहायता से छाड़ा से लड़ना और

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६५ ।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ५५ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४ ।

(४) वही; जि० २, पृ० १२०६ ।

(५) पृ० ३२ ।

उसकी पुत्री से विवाह करना लिखा है^१। ऐसी दशा में किसका कथन ठीक है यह निर्णय नहीं किया जा सकता। जैसलमेर की तवारीख में दिया हुआ चाचिंग का समय यदि ठीक माना जाय तो वह छाड़ा का समकालीन नहीं ठहरता। इसी प्रकार उक्त तवारीख के अनुसार राव जैतसी भी उसका समकालीन नहीं होता।

दयालदास की ख्यात का यह कथन कि छाड़ा ने भीनमाल के सोनगरों से लड़ाई की और उसी में मारा गया ठीक नहीं है, क्योंकि उससे बहुत पूर्व उधर मुसलमानों का अधिकार हो गया था।

राव टीडा

राव छाड़ा का देहान्त होने पर टीडा उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—

‘राव टीडा और राव सामन्तसिंह सोनगरा के बीच भीनमाल नामक स्थान में युद्ध हुआ। सोनगरा हार खा कर भागे और टीडा ने उनका पीछा किया सोनगरा राव की राणी सीसोदणी सुवली भी युद्ध में साथ थी। उसके रथ को राठोड़ों ने जा घेरा। टीडा ने आगे आकर रथ को मोड़ने की आज्ञा दी। सीसोदणी के कारण पृछने पर उसने उत्तर दिया कि मैं तुम्हें ले जाकर अपनी राणी बनाऊंगा। सीसोदणी ने कहा कि यह तभी हो सकता है जब तुम मेरे पुत्र को युवराज करो। राव ने इसको मंजूर किया और सीसोदणी को घर लाया। उसके एक पुत्र कान्हड़देव हुआ जो युवराज नियुक्त हुआ। कुछ समय पीछे गुजरात के बादशाह की फौज महेवे पर आई, जिसके साथ भगड़ा करने में टीडा काम आया और उसका एक पुत्र सलखा बन्दी हुआ^२।’

(१) भाग २, प्रकरण १५, पृ० ७२।

(२) जि० २, पृ० ६५।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके सम्बन्ध में लिखा है—

‘राव टीड़ा, जिसका जन्म वि० सं० १३२१ मार्गशीर्ष सुदि ७ (ई० सं० १२६४) को हुआ था, महेवे का स्वामी हुआ । उसने कितने ही समय तक भीनमाल पर राज्य किया और वहां के सोनगरे स्वामी के यहां जबरन विवाह किया । इसके अतिरिक्त उसने सिरौही के स्वामी, लोदरवा के भाटियों तथा सोलंकियों से दंड वसूल किया और बालेचों से अपनी चाकरी कराई । सिवाण के सातलसोम और बादशाह अलाउद्दीन में जब लड़ाई हुई तो उसी में वि० सं० १३५२ ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० सं० १२६५) को टीड़ा मारा गया ।’

जोधपुर राज्य की
ख्यात का कथन

दयालदास की ख्यात में राव टीड़ा के सम्बन्ध में मुंहशोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है । उसमें दिये हुए संवत्तों तथा जोधपुर राज्य की ख्यात के संवत्तों में अन्तर है, परन्तु वे भी उसी प्रकार कल्पित ही हैं । सबली के साथ उसके विवाह करने एवं उसके पुत्र सलखा के बन्दी होने का उसमें भी उल्लेख है, जो जोधपुर राज्य की ख्यात में नहीं है^२ ।

दयालदास की ख्यात
का कथन

टॉड के कथनानुसार अपने पिता के समान टीड़ा भी अपने पड़ोसी भाटियों के लिए कष्टदायक हो गया था, जिससे उन (भाटियों) को खेड़ तक घुसकर लड़ाई करनी पड़ी । टीड़ा ने सोनगरों से भीनमाल लेने के अतिरिक्त देवड़ों और बालेचों से भूमि छीनकर अपने राज्य का विस्तार किया^३ ।

टॉड का कथन

(१) जि० १, पृ० २३-४ । बांकीदास ने भी टीड़ा का सातल की सहायता करने में अलाउद्दीन की सेना के साथ लड़ते हुए मारा जाना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६१६), पर यह कथन कल्पित है, जैसा कि आगे बतलाया जायगा ।

(२) जि० १, पृ० ५५-६ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके तीन पुत्र—त्रिभुवनसी, कान्हड़ और सलखा—हुए^१। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में कान्हड़देव और सलखा के नाम ही मिलते हैं और उसमें त्रिभुवनसी को कान्हड़देव का पुत्र लिखा है^२। टॉड के ग्रन्थ से केवल यह पता चलता है कि उसका उत्तगधिकारी सलखा हुआ^३।

ऊपर आये हुए संवत्‌ों के समान ही ख्यातों के अधिकांश वर्णन निराधार हैं। टीड़ा का सोनगरोँ से भीनमाल लेना विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो वहाँ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। जालोर के सोनगरोँ में सामन्तसिंह नाम का एक राजा अवश्य हुआ था, पर उसका समय वि० सं० १३३६ से १३५५ तक है^४। वह टीड़ा का नहीं, किन्तु आस्थान अथवा उसके पुत्र धूहड़ का समकालीन था। यदि ख्यातों के कथन में कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि सामन्तसिंह नाम का उधर कोई छोटा मोटा सोनगरा जागीरदार रहा होगा, जिससे टीड़ा की लड़ाई हुई हो। सोनगरोँ के हाथ से राज्य चला जाने पर भी उधर उनकी छोटी-छोटी जागीरें रह गई थीं। सिरोही के स्वामी से उसका दंड लेना भी कल्पना मात्र है, क्योंकि उसके समय तक तो सिरोही की स्थापना भी नहीं हुई थी^५। इसी प्रकार

(१) जि० १, पृ० २४। बांकीदास ने भी येही तीन नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १०६३)।

(२) जि० २, पृ० ६५-६।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० १४४।

(४) भीनमाल से सामन्तसिंह के वि० सं० १३३६ से वि० सं० १३४५ तक के लेख मिले हैं (देखो ऊपर पृ० ५२ तथा डॉ० भंडारकर; ए लिस्ट ऑव दि इन्सक्रिप्शन्स ऑव नॉर्डर्न इंडिया; संख्या ६०२ और ६२२)।

(५) पुरानी सिरोही वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०५) में महाराव शिवभाण ने बसाई थी और वर्तमान सिरोही की स्थापना उक्त महाराव के पुत्र सहजमल (सैसमल) ने वि० सं० १४८२ (ई० स० १४२५) वैशाख वदि २ को की थी।

लोदरवा के भाटियों एवं सोलंकियों से दंड लेना भी ख्यातकार की कल्पना ही है। टोंड के कथनानुसार उसने देवड़ों और बालेचों का राज्य भी विजय किया था, पर यह कथन भी निर्मूल है। वे खेड़ से बहुत दूर थे और वहां तक उसकी पहुंच होने में संदेह है। टीड़ा का सिवाणे में अलाउद्दीन के साथ की लड़ाई में मारा जाना भी विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि अलाउद्दीन वि० सं० १२७२ में ही मर गया था। वह तो उसके चौथे पूर्व पुरुष रायपाल का समकालीन था। टीड़ा के समय में मारवाड़ के अधिकांश हिस्से पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। सम्भव है वह किसी दूसरे मुसलमान शासक अथवा अफसर के साथ की लड़ाई में मारा गया हो।

(कान्हड़देव तथा त्रिभुवनसी)

मुहम्मद नैणसी लिखता है—

‘राव टीड़ा के बाद कान्हड़देव पाट बैठे। सलखा को मुसलमानों के हाथ से छुड़ाने के राटोड़ों ने कई प्रयत्न किये, पर कुछ न चली। तब बाहड़ तथा बीजड़ नाम के दो पुरोहित योगी का भेष धरकर गुजरात गये। वहां उन्होंने धीणा सुनाकर बादशाह को प्रसन्न किया और इस प्रकार बदले में सलखा को मुक्त करा लिया। फिर वे उसे लेकर महेवा गये, जहां कान्हड़देव ने उसे जागीर निकाल दी।

‘एक दिन सलखा अपनी जागीर सलखावासी से सामान खरीदने के लिए महेवा गया। एक राठी के सिर पर सामान रखकर जब वह लौट रहा था तो उसे मार्ग में एक स्थान पर चार नाहर (सिंह) एक नाले पर अपना भक्ष्य खाते हुए मिले। उसको देख सलखा पास ही उतर कर बैठ गया

उससे पहले देवड़ों की राजधानी आवू पहाड़ के नीचे चन्द्रावती थी, जो उनके पहले आवू के परमारों की राजधानी थी।

(मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० १६३-४ तथा १६०) ।

और उस राठी ने शकुन का फल पृच्छने के बहाने जाकर राव कान्हड़देव को इसकी सूचना दी तथा कहा कि जो राणी वे चीज़ें खावेगी उसका पुत्र राजा होगा, अतएव आप उन चीज़ों को सलखा सहित मंगवा लीजिये। उसने उसी समय इस कार्य के लिए अपने आदमी रवाना किये, परन्तु इसी बीच राठी के इतनी देर तक न आने के कारण सलखा अपना सामान घोड़े पर रखकर चला गया था, जिससे कान्हड़देव के मनुष्यों को वापिस लौटना पड़ा। अनन्तर राठी ने जाकर सलखा को पूर्वोक्त शकुन का फल बतलाया। दूसरे शकुन जाननेवालों ने भी ऐसी ही बात कही। काल पाकर सलखा के चार पुत्र—माला (मल्लीनाथ), वीरम, जैतमाल और सोमित (शोमित)—हुए।

‘चारह वर्ष की अवस्था में माला कान्हड़देव के पास गया, जिसने उसपर बड़ी कृपा दिखाई और उसे अपने साथ रख लिया। कुछ दिनों बाद उसके विशेष आग्रह करने पर कान्हड़देव ने उसे तीसरा भाग देने की पक्की लिखा पढ़ी कर दी। तब माला तन-मन से राव की सेवा करने लगा और राव ने भी उसे अपना प्रधान बनाया। माला ने अपना अमल अच्छी तरह जमा लिया और राज्य-कार्य भी उत्तमता के साथ चलाने लगा, परन्तु राव के सरदार इस बात को पसंद नहीं करते थे।

‘एक बार दिल्ली के बादशाह ने देश में दंड डाला। महेवा में भी उसके किरोड़ी दंड उगाहने पहुंचे। राव ने अपने सरदारों, भाइयों और पुत्रों को एकत्र कर राय ली, कि क्या करना चाहिये। माला ने कहा कि दंड नहीं देंगे, किरोड़ी को मारेंगे। अन्त में सब को अलग-अलग ले जाकर मारने की राय तय हुई। किरोड़ी को बुलाकर कहा गया कि अपने आदमियों को तुम अलग-अलग गांवों में दंड वसूल करने के लिए भेजो। बादशाही नौकरों में जो सरदार था उसे माला अपने साथ ले गया और दूसरे आदमी पृथक्-पृथक् स्थानों में गये। पांचवां दिन उन्हें मारने के लिए निश्चित हुआ था। दूसरे सब सरदारों ने तो बादशाही नौकरों को नियत समय पर मार दिया, परन्तु माला ने किरोड़ी की खूब खातिर की

और उससे सब हाल कह दिया। किरोड़ी ने कहा कि यदि एक बार सही-सलामत दिल्ली पहुंच गया तो तुझे महेवे का स्वामी बनवा दूंगा। माला ने उससे वचन ले अपने आदमी के साथ उसे दिल्ली पहुंचवा दिया। किरोड़ी ने जाकर बादशाह से सारी बातें अर्ज कीं और कहा कि माला बड़ा योग्य और हुजूर का खैरखाह है। इसपर बादशाह ने माला को अपने पास बुलवाया। माला ने भी बड़े ठाट-बाट से दिल्ली जाकर बादशाह की कदमबोसी की। बादशाह ने उसे रावलाई का टीका दिया। माला कुछ समय तक दिल्ली में ही रहा।

‘इसी बीच इधर कान्हड़देव का देहांत हो गया और उसका पुत्र त्रिभुवनसी उसका उत्तराधिकारी हुआ। तब माला महेवे लौटा। त्रिभुवनसी ने अपने राजपूत एकत्र कर उससे लड़ाई की, पर उसे सफलता न मिली। वह घायल हुआ और उसकी सेना भाग गई। उसका विवाह ईंदा पड़िहारों के यहां हुआ था। ससुरालवाले उसे अपने यहां ले गये और मरहम-पट्टी कराने लगे। माला ने सोचा कि बादशाह ने टीका दिया तो क्या, जब तक त्रिभुवनसी जीता है, राज मेरे हाथ लगने का नहीं। तब उसने त्रिभुवनसी के भाई पद्मसिंह को मिलाकर यह दम दिया कि जो तू त्रिभुवनसी को मार डाले तो तुझे महेवे की गद्दी पर बिठा दूं। राज्य के लोभ में फंसकर पद्मसिंह ने मरहम पर लगाई जानेवाली पट्टियों में विष मिला दिया, जिससे सारे शरीर में विष फैल जाने से त्रिभुवनसी की मृत्यु हो गई। यह हत्या कर जब पद्मसिंह माला के पास गया तो उसने उसे केवल दो गांव देकर टाल दिया। त्रिभुवनसी से राठोड़ों की उदावत^१ शाखा चली^२।’

(१) मारवाड़ में इस समय एक उदावत शाखा विद्यमान है, जिसके रायपुर, नींबाज, रास, लांबिया आदि कई ठिकाने हैं। ये उदावत राव जोधा के पौत्र और राव सूजा के पुत्र उदा के वंशधर हैं। नैयासी ने त्रिभुवनसी के वंश में उदावत शाखा का होना लिखा है। या तो यह कथन गलत है अथवा उसकी ज़िखी हुई उदावत शाखा अब नष्ट हो गई हो।

(२) मुंहणोत नैयासी की ख्यात; जि० २, पृ० ६५-६, ६८-७१।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, जोधपुर राज्य की ख्यात में त्रिभुवनसिंह को कान्हड़देव का पुत्र नहीं वरन् भाई^१ और मल्लीनाथ का जालोर के मुसलमानों की सहायता से कान्हड़देव अन्य ख्यातों आदि के कथन को मार महेवा का राज्य लेना लिखा है^२। दयाल-दास की ख्यात के अनुसार वि० सं० १३७५ मार्गशीर्ष वदि ४ (ई० सं० १३१८) को कान्हड़देव राव हुआ। आगे चलकर उक्त ख्यात में मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है, पर उससे यह स्पष्ट नहीं होता कि त्रिभुवनसी का कान्हड़देव के साथ क्या सम्बन्ध था^३। बांकीदास के अनुसार वह कान्हड़देव का छोटा भाई था और कान्हड़देव को कुंवरपदे में मारकर मल्लीनाथ (माला) ने खेड़ का राज्य लिया था^४। टॉड ने उन दोनों के नाम नहीं दिये हैं। बीकानेर के महाराजा रायसिंह की बृहत् प्रशस्ति तथा रावल जगमाल के नगर गांव से मिले हुए शिलालेख में दी हुई वंश-वली में भी उन दोनों के नाम नहीं हैं। संभव है अनौगस पुत्र होने के कारण उक्त दोनों लेखों में उनके नाम छोड़ दिये गये हों अथवा ख्यातों में दी हुई सबली और उसके पुत्र की कथा ही सारी की सारी कल्पित हो।

राव सलखा

राव सलखा राव टीड़ा का पुत्र था। उसके मुसलमानों के यहां बन्दी होने, अनन्तर पुनर्हित वाहड़ एवं धीजड़-द्वारा छुड़ाये जाने तथा कान्हड़देव-द्वारा उसे सलखावासी गांव जागीर में दिये जाने का उल्लेख ऊपर आ गया है^५।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इतना और लिखा है — 'राव सलखा

-
- (१) देखो ऊपर; पृ० १७८ ।
 - (२) जि० १, पृ० २४ ।
 - (३) जि० १, पृ० ५६-८ ।
 - (४) ऐतिहासिक बातें; संख्या १०६३ ।
 - (५) देखो ऊपर; पृ० १७६ ।

के पुत्र नहीं था। एक दिन वह बन में शिकार के वास्ते गया और दूर जा निकला। साथ के लोग सब पीछे रह गये। जब मुहणोत नैणभी का कथन व्यास लगी तो जल की खोज में इधर उधर फिरने लगा। एक स्थान पर उसने धुआँ निकलते देखा। जत्र वहां पहुँचा तो देखता क्या है कि एक तपस्वी बैठा तप कर रहा है। उसने अपना परिचय उसे देकर जल की याचना की। तपस्वी ने कमंडल की तरफ़ इशारा करके कहा कि इसमें जल है तू भी पीले और अपने घोड़े को भी पिला। सलखा ने ऐसा ही किया, लेकिन फिर भी कमंडल भरा का भरा रहा। तब तो उसने जाना कि यह कोई सिद्ध है। हाथ जोड़ विनती करने लगा कि महाराज आपकी कृपा से और तो सब आनन्द है, पर एक पुत्र नहीं है। योगी ने अपनी भोली में से भस्म का एक गोला और चार सुपारी निकाल कर उससे कहा कि इन्हें राणी को खिलाना, उसके चार पुत्र होंगे। उसने घर पहुँचकर ऐसा ही किया, जिससे उसके चार पुत्र हुए। योगी की आज्ञानुसार उसने ज्येष्ठ पुत्र का नाम मल्लीनाथ रक्खा और उसे योगी के कपड़े पहनाकर युवराज बनाया।^१

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार सलखा एक छोटा ठाकुर था और सिवाणा के गांव गापेड़ी में रहता था, जहां उसके ज्येष्ठ पुत्र मल्लीनाथ का जन्म हुआ^२। दयालदास की ख्यात से इतना और पाया जाता है कि सलखा का जन्म वि० सं० १३६५ (ई० सं० १३०८) में और उसकी मृत्यु वि० सं० १४१४ श्रावण वदि ३ (ई० सं० १३५७) को हुई^३। टॉड के अनुसार उसके वंशज सलखावत अब तक महेवा तथा राड़धरा में बड़ी संख्या में विद्यमान हैं, जो भोमिये हैं^४।

(१) जि० २, पृ० ६७।

(२) जि० १, पृ० २४।

(३) जि० १, पृ० ५६।

(४) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार सलखा के दो राणियां थीं, जिनसे उसके चार पुत्र—मल्लीनाथ, जैतमाल,^१ धीरम^२ तथा

(१) दयालदास की ख्यात के अनुसार माला ने समीयाणा विजयकर अपने भाई जेतमाल को दिया (जि० १, पृ० २८) ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जैतमाल के वंश के जैतमालोत कहलाये । उसके निम्नलिखित छः पुत्र हुए—

१. हापा—इसके वंश के धवेचा कहलाये ।
२. खीवा— ,, राडधरे कहलाये ।
३. जीवा
४. लूँडा
५. बीजड़
६. खेतसी

(जि० १, पृ० २५) ।

बांकीदास के अनुमार जैतमाल के बारह पुत्र हुए, जिनमें से खीवकरण बड़ा प्रतापी हुआ । उसने सांदा को मार राडधरा के अड़तालीस गांव दबाये (ऐतिहासिक बातें; संख्या ११४) ।

(२) धीरम को माला (मल्लीनाथ) ने ७ गांवों के साथ गुदा दिया, जहां वह रहने लगा (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० २८) । माला के नहीं, किन्तु धीरम के वंश में राजपूताने में जोधपुर, बीकानेर तथा किशनगढ़ के राज्य हैं ।

बीकानेर के स्वामी महाराजा रायसिंह के समय की बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल द्वार की बड़ी प्रशस्ति एवं “रायसिंहोत्सव” (वैद्यक ग्रंथ) से भी जोधपुर, बीकानेर और किशनगढ़ राज्यों का धीरम के वंश में होना निश्चित है—

श्रीरायवीरमस्तस्य पुत्रश्चंडप्रतापवान् ।

चामुंडरायस्तत्पुत्रो रणमहस्तदंगजः ।

बीकानेर दुर्ग के सूरजपोल द्वार की प्रशस्ति ।

.....
.....

वीरः श्रीवीरमाख्यस्तदनुसुरसर्ज्जिरडिंडीरगौर-

स्तोकश्लोकस्तनुजोभवदवानिपतिस्तस्य चामुंडरायः ॥ २२ ॥

रायसिंहोत्सव (वैद्यकसार ग्रंथ); पत्र ४ । १ ।

संतति

सोभित^१ एवं एक पुत्री विमली हुई, जिसका विवाह जैसलमेर के रावल घड़सी के साथ हुआ^२। टॉड ने केवल उसके उत्तराधिकारी वीरमदेव का नाम ही दिया है^३।

मुंहणोत नैणसी तथा दयालदास का यह कथन कि सलखा गुजरात के बादशाह के यहां कैद हुआ निर्मूल है, क्योंकि उस समय तक तो गुजरात की बादशाहत कायम भी नहीं हुई थी। गुजरात का ख्वातों आदि के कथन की नाँव खेदार जफरखां मुजफ्फरशाह नाम धारणकर वि० सं० १४५४ (ई० सं० १३६७) में गुजरात का प्रथम स्वतंत्र सुलतान बना। उस समय के आस-पास तो राघ चूड़ा का विद्यमान होना अनुमान किया जा सकता है। सलखा से पूर्व ही मारवाड़ के कई हिस्सों में मुसलमानों का राज्य हो गया था। संभव है उनमें से किसी के हाथ सलखा कैद हुआ हो। वह कान्हड़देव के समय एक मामूली जागीरदार ही रहा।

रावल मल्लीनाथ (माला) का बहुत कुछ वृत्तान्त ऊपर आ गया है^४।

रावल मल्लीनाथ

उसके सिवाय ख्वातों आदि से जो अन्य बातें उसके सम्बंध की ज्ञात होती हैं, वे नीचे दी जाती हैं—

मुंहणोत नैणसी लिखता है—

‘त्रिभुवनसी को मरवाने के बाद माला शुभ मुहूर्त दिखा महेवा में आकर पाट बैठा और अपनी आण दुहाई फेरी। सब राजपूत भी उससे आकर मिल गये और उसकी ठकुगई दिन-दिन बढ़ने लगी। अपने भाई

(१) दयालदास सोभित का वीरम के पास रहना लिखता है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वह हट होकर सिंध चला गया और वहां एक लड़ाई में २५ मनुष्यों के साथ काम आया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५)।

(२) जि० १, पृ० २४। लक्ष्मीचंद लिखित ‘तवारीख जैसलमेर’ के अनुसार सलखा की नहीं, किन्तु मल्लीनाथ तथा उसके पुत्र जगमाल की पुत्रियां उसे ब्याही थीं (पृ० ३६-४०)। मुंहणोत नैणसी ने भी ऐसा ही लिखा है और विमलादे को मल्लीनाथ की पुत्री लिखा है (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ७१)।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४।

(४) देखो ऊपर; पृ० १८०-८१।

जैतमाल को उसने सिंघाड़ा गांव जागीर में दिया । उसके वैमातृज भाई वीरम और सोमित भी महेवा के पास ठिकाना बांधकर रहने लगे। रावल माला ने दिल्ली और मांडू के बादशाहों की फौजों से युद्ध कर उन्हें हराया । वह बड़ा सिद्ध हुआ और जगमाल को उसने अपना युवराज बनाया ।

‘माला के राज्य-समय बादशाही फौज महेवे पर आई । माला ने अपने सरदारों को बुलाकर पूछा कि अव क्या करना चाहिये । उन्होंने उत्तर दिया कि तुकों से युद्ध कर उन्हें जीत लेने की सामर्थ्य तो हमारी नहीं है । हेमा (सीमालोत^१) ने कहा कि रात्रि के समय छापा मारा जाय । औरों की भी यही राय ठहरी । माला की आज्ञा से सरदारों के नाम लिखे गये और उन्हें रात्रि के समय मुसलमानों की सेना पर आक्रमण करने का आदेश हुआ । सेना के महेवे पहुंचने पर जगमाल मालावत, कृपा मालावत, हेमा आदि सरदारों ने मुसलमान अफसरों को मारने का जिम्मा लिया और यह तय हुआ कि मुगल (? मुसलमान) सरदार घरों में रहते हैं सो थानों को तोड़कर घोड़ों को घरों में ले जाकर उनपर हमला किया जाय, पर एक सरदार दूसरे के वनाये मार्ग से न जावे । तदनुसार पहर रात गये दूसरे सवार तो शाही सेना पर भेजे गये और ऊपर लिखे हुए सरदार अफसरों के डेरों पर चले । हेमा ने पहले सेनानायक के तंबू का थंभा तोड़कर उसको मार डाला और उसका टोप उतार लिया । जगमाल तंबू का थंभा तोड़ने में समर्थ न हुआ, जिससे उसने हेमा के वनाये हुए मार्ग से जाकर आक्रमण किया । हेमा ने यह देख लिया । सरदार के मारे जाते ही मुगल सेना भागी, जिसे राठोड़ों ने लूटा । सबेरा होने पर सब सरदार रावल माला के दरबार में उपस्थित हुए । जगमाल बोला कि सेनापति को मैंने मारा है । हेमा से न रहा गया । उसने कहा कि कुछ निशानी बताओ । रावल ने भी यही कहा कि जिसने मारा होगा उसके पास कोई निशानी अवश्य होगी । हेमा ने तुरंत टोप निकालकर सामने रक्खा और जगमाल

(१) सीमाल को दयालदास की ख्यात में जगमाल का पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० ६५) । इस प्रकार हेमा माला का पौत्र होता है ।

से कहा "मैंने मारा सो तुमने ही माग। हम तो तुम्हारे राजपूत हैं। तुम हमारी इज्जत जितनी बढ़ाओ उतना ही अच्छा। मेरे किये हुए मार्ग में तुम घोड़ा लाये और मुर्दे के ऊपर घाव किया, यह तुम्हारी भूल है।" ऐसी बातें सुनकर जगमाल हेमा से नाराज़ हो गया।

'कुछ समय धीतने पर जगमाल ने हेमा से कहा कि तुम अपना घोड़ा हमें दे दो और उसके बदले में दूसरा घोड़ा ले लो। हेमा ने इसे स्वीकार न किया। फिर जगमाल के दृष्ट करने पर भी जब हेमा ने इन्कार ही किया तो जगमाल ने कह दिया कि तुम हमारे चाकर नहीं। इसपर हेमा महेवे का परिन्याग कर घूँघरोट के पहाड़ों में जा रहा और मेवासी (विद्रोही) बनकर महेवे के इलाक़े को उजाड़ने लगा। वहाँ के १४० गांवों में उसकी धाक से धुंवा तक न निकलने पाता था और लोग उसके डर के मारे भागकर जैसलमेर जा बसे। कई साल तक यह उपद्रव बना रहा। जब माला रोगग्रस्त हुआ और उसका शरीर बहुत निर्बल हो गया तो उसने अपने परिवार के लोगों तथा सगदरों आदि को बुलाकर कहा—“इतने दिन तो मैं देश में बैठा था, अब मेरा काल निकट आ गया है। मेरे मरते ही हेमा महेवे के दरवाज़ों पर आ डटेगा और गढ़ की पोल पर छापा मारेगा। है कोई ऐसा राजपूत जो हेमा को मारे।” रावल ने ये शब्द दो-तीन बार कहे, परंतु किसी ने भी ज़बान न खोली। तब कुंभा ने धड़े होकर राजपूतों को ललकारा लेकिन इसपर भी बीड़ा उठाने की किसी

(१) कुंभा मल्लीनाथ का पौत्र और जगमाल का पुत्र था। मुंहणोत नैणसी लिखता है—‘एक बार रावल (मल्लीनाथ) से आज्ञा ले जगमाल, हेमा सीमालोत तथा रावल घड़सी के साथ शिकार खेलने गया। एक दिन वन-विहार करते-करते उन्हें एक साठी (३० पुरुष गहरा) कुंभा नज़र आया। वहाँ केवल एक स्त्री खड़ी थी। उसने लाव (रस्सा) समेट कंधे पर लटकाई, चरस को बांह में डाला और सिर पर पानी का भरा हुआ घड़ा रखकर चली। उन्होंने उसके पास जाकर महेवे का मार्ग पूछा तो उसने वैसे ही हाथ लंबा कर मार्ग बतला दिया। उसका ऐसा बल देखकर सब चकित रह गये। फिर यह पता पाकर कि वह कुमारी है सब उसके साथ हो लिये। बस्ती में पहुँचने पर, जो सोलं-कियों की थी, उन्होंने उसका परिचय पूछकर उसके पिता को बुलवाया और उससे उसका

की हिम्मत न पड़ी। इसपर उस(कुंभा)ने स्वयं हेमा को मारने का बीड़ा उठाया^१। रावल ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और अपनी तलवार तथा कटार

विवाह कुंवर जगमाल के साथ कर देने को कहा। पहले तो वह राजा न हुआ, लेकिन पीछे से उसने उसी दिन शाम को विवाह सम्पन्न करा दिया। तीन-चार दिन सब वहां रहे। सोलहवीं सगर्भा हुई। फिर अपनी स्त्री को वहां पर ही छोड़ जगमाल महेवा लौट गया। कालान्तर से उसी स्त्री के गर्भ से कुंभा का जन्म हुआ, जो बड़ा होने पर अपने दादा के पास आ रहा (मुंहणोत नैणसी की ख्यात: जि० २, पृ० ७२-३)।^१

ऐसा ही वर्णन दयालदास की ख्यात में भी है (जि० १, पृ० ५६-६०)।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में हेमा के मारे जाने का विस्तृत हाल दिया है, जो संक्षेप में नीचे लिखे अनुसार है—

रावल माला की मृत्यु, जगमाल के गद्दी बैठने तथा कुंभा के बीड़ा उठाने की खबर सुन हेमा मन में संकोच कर बैठ रहा तथा ऐसा अवसर ढूंढने लगा कि कुंभा कहीं बाहर जावे तो धावा करे। उधर कुंभा सदा सावधान रहता। काल पाकर हेमा पर कुंभा का आतङ्क जम गया और उसने देश में दौड़ना छोड़ दिया। यह चर्चा सारे देश में फैल गई और कुंभा का प्रताप भी बहुत बढ़ गया। इससे प्रभावित होकर उमरकोट के स्वामी सोदा राव मांडण ने उमरकोट से पचास कोस महेवा की तरफ आकर अपनी कन्या का उससे विवाह किया। यह कार्य गुप्त रीति से ही सम्पन्न हुआ था, पर इसकी खबर अपने गुप्तचरों-द्वारा हेमा को मिल गई। वह तो ऐसा अवसर ढूंढता ही था। उसने महेवा पर आक्रमण कर दिया। पाणिग्रहण होते ही कुंभा ने विदा मांगी। इतने में ही हेमा के महेवे पर चढ़ आने की खबर उसे मिली। लोगों के अनुरोध करने पर घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही अपनी स्त्री का मुख अवलोकन कर वह वहां से रायसिंह (सोदा राव का पुत्र) के साथ चल दिया। सीधे महेवे की ओर न जाकर वे घुघरोट की तरफ अग्रसर हुए। मार्ग में हेमा के घर जाने की खबर उन्हें एक पनिहारिन से मिली। दो कोस तक पैदल आगे बढ़ने पर हेमा से कुंभा की गुठभेड़ हुई। हेमा ने कहा, हम दोनों ही लड़ें। इसपर कुंभा घोड़े से उतर गया। रायसिंह ने मना किया, पर वह न माना और उसने हेमा को वार करने को कहा। हेमा ने कहा कि पहले तू ही वार कर क्योंकि मैं तुझ से बड़ा हूं। कुंभा ने उत्तर दिया कि उमर में भले ही बड़ा हो, पर पद में मैं ही बड़ा हूं। फलतः हेमा ने पहला वार किया, जिससे कुंभा की खोपड़ी कान तक कट गई। फिर कुंभा ने वार कर हेमा के दो टुकड़े कर दिये। उसके गिरते ही कुंभा ने अपनी कटार उसके हृदय में भोंक दी। कुछ ही क्षण बाद उसका प्राण निकल गया। हेमा, जगमाल के वहां पहुंचने पर मरा। कुंभा की स्त्री सोदी उस(कुंभा)के साथ सती हुई। हेमा के पुत्र को जगमाल ने अपने पास रख लिया।

(जि० २, पृ० ७६-८१)।

उसे दीं। इसके कुछ ही समय बाद माला का देहांत हो गया^१।

एक दूसरे स्थल पर उसके जीवनकाल के वृत्तांत में उक्त ख्यात में लिखा है—‘जैसलमेर के स्वामी मूलराज तथा रतनसी शाका करके मरे, तब रतनसी के पुत्र घड़सी, ऊनड़, कान्हड़ तथा भानजा देवड़ा (मेलगदे) मूलराज के पगड़ी-बदल भाई कमालदीन के आश्रय में रहे। उस (कमाल-दीन) ने तथा उसकी स्त्री ने उन्हें बड़े लाड़-प्यार से रक्खा। कपूर मरहटे-द्वारा बादशाह को इस बात का पता लगने पर उसने कमालदीन को बुलाकर उन लड़कों के बारे में पूछा। उसने वहां तो बात बना दी और घर आकर चारों लड़कों को चार घोड़ों पर चढ़ाकर निकाल दिया। वे नागोर में सकरसर आकर ठहरे। बादशाही फ़रमान उन चारों के हुलिये समेत गिरफ्तारी के लिए जगह-जगह पहुंच चुके थे। नागोर के हाकिम ने उन चारों को पकड़ लिया और वह बादशाही हुजूर में खाना हुआ। मार्ग में नमाज़ पढ़ते समय घड़सी ने उसी की तलवार से उसका मस्तक उड़ा दिया और वे उसी के घोड़ों पर चढ़कर निकल भागे। चामू पहुंचकर अपने भाइयों को उसने वहीं छोड़ा और भानजे मेलगदे को, पहुंचाने के लिए वह आवृ गया। वहां से लौटता हुआ वह महेवे में एक माली के घर ठहरा। रावल मल्लीनाथ का पुत्र जगमाल शिकार को जाता हुआ उधर से निकला, तब घड़सी बाहर खड़ा था। उसने जगमाल से जुहार न किया। जगमाल ने पिता को इसकी सूचना दी। रावल ने इसपर उसके वंश आदि का पता लगाकर उसे अपने पास बुलाया और सत्कार-पूर्वक रक्खा तथा जगमाल की पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया। पांच सात महीने वहां रहकर वह बादशाही चाकरी में चला गया^२। रावल घड़सी को जैसलमेर मिला उस समय द्रेग में हड़या पोहण (भाटी) सबल थे। वे रावल की आज्ञा नहीं मानते थे। मालदेव (माला) हड़यों का जमाई था, जिससे वह उन्हीं का पक्ष लेता था। वह जब देवी की

(१) मुंहणोल नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ७१, ७३-६।

(२) वही; जि० २, पृ० ३०६-११।

यात्रा के लिए द्रैग गया तब घड़सी और जगमाल भी उसके साथ थे। घड़सी ने जगमाल से हृदयों के सम्बन्ध में कहा। जगमाल ने उसे सन्तोष दिलाया कि हम इन्हें किसी न किसी तरह अवश्य मारेंगे। एक दिन उसने मल्लीनाथ से कहा कि हम अमुक गांव पर छापा मारेंगे आप सेना को हुक्म दें। फिर जब वह एक दिन सन्ध्या कर रहा था उस समय जगमाल ने उसके पास जाकर राजपूतों को आज्ञा देने के लिए कहा। माला सन्ध्या करते समय बोलता न था। उसने हाथ से इशारा करके आज्ञा दी। तब अपने राजपूतों को साथ ले जगमाल ने हृदया पोहणों को मार डाला।^१

उक्त ख्यात के अनुसार बीरम की मृत्यु हो जाने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र चूंडा भी रावल माला के पास जा रहा था^२, जिसका उल्लेख आगे चूंडा के हाल में किया जायगा।

जोधपुर राज्य की ख्यात में रावल मल्लीनाथ के विषय में लिखा है—‘उसने जालोर के तुर्कों (मुसलमानों) की सहायता से कान्ढड़देव को मारकर महेवा का राज्य लिया और सिद्ध जोगी की दुआ से रावल कहलाया। वह बड़ा प्रतापी हुआ। उसने बहुत सी भूमि अपने अधिकार में की, अनेकों ग्रासियों को मारा और बहुतेरों को अपनी चाकरी में रक्खा। घड़सी के साथ जगमाल को भेज उसने उसका गया हुआ जैसलमेर का राज्य मुसलमानों से पीछा उसे दिला दिया। माला अवतारी व्यक्ति था। वि० सं० १४३१ (ई० सं० १३७८) में वह महेवे और खेड़ का स्वामी हुआ। वह बड़ा शक्तिशाली था। उसने मंडोवर, मेवाड़, सिरोही और सिंध आदि देशों का बड़ा बिगाड़ किया। इसपर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने उसपर फौज भेजी, जिसके तेरह तुंग (फौज की टुकड़ियां) थे। वि० सं० १४३५ (ई० सं० १३७८) में महेवे की हद में लड़ाई हुई, जिसमें मल्लीनाथ की विजय हुई और बादशाह की फौज भाग गई। इस लड़ाई में जैसलमेर का रावल घड़सी

(१) मुहम्मद नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३१४-२।

(२) वही; जि० २, पृ० ८८।

उसकी सहायतार्थ आया था, वह घायल हुआ^१। इस लड़ाई के विषय में नीचे लिखा पद प्रसिद्ध है—

तेरे तुंगा भांजिया माले सलखाणी^२।

दयालदास की ख्यात में मल्लीनाथ के सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी जैसा ही वर्णन दिया है। उससे इतना और पाया जाता है कि ग्यारह सौ गांवीं पर उसका अधिकार था और मुसलमानों के साथ की लड़ाई में रावल घड़सी भी शामिल था^३। टॉड ने जोधपुर राज्य के इतिहास में रावल मल्लीनाथ का हाल नहीं दिया, पर जैसलमेर के इतिहास में उसकी पुत्री विमलादे का विवाह रावल घड़सी के साथ होना लिखा है^४।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके नौ पुत्र^५—(१) जग-माल^६, (२) जगपाल, (३) कूपा^७, (४) मेहा, (५) चूंडराव, (६) अडवाल, (७) उदैसी,

(१) लक्ष्मीचंद-लिखित “तवारीख जैसलमेर” में भी खेड़ पर बादशाह की फौज आने पर रावल घड़सी का रावल मल्लीनाथ की तरफ से लड़कर ज़ख्मी होना लिखा है (पृ० ३६)।

(२) जि० १, पृ० २४-५।

(३) जि० १, पृ० ५६-६५।

(४) जि० २, पृ० ८।

(५) जि० १, पृ० २५। दयालदाम की ख्यात में भी उसके नौ पुत्र होना लिखा है, परन्तु नाम केवल सात पुत्रों के दिये हैं, जिनमें से सीमाल, सहसमल और मेहाजल के नाम जोधपुर राज्य की ख्यात से भिन्न हैं (जि० १, पृ० ६५)।

(६) रावल माला का ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण जगमाल उसकी मृत्यु के बाद महेचे का स्वामी हुआ। उसके वंश के महेचे कहलाये। उसके एक पुत्र वीर कुंभा का नाम और वर्णन ऊपर आ गया है। उसके अन्य पुत्र मंडलीक, रणमल, वैरसी, भारमल और हुंगरसी हुए (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ६५)। मुंहणोत नैणसी कुंभा के अतिरिक्त केवल तीन पुत्रों—मंडलीक, भारमल और रणमल—के नाम देता है (जि० २, पृ० ८१)।

(७) इसके वंश के कोटड़िया कहलाये।

(८) अरडकमल^१ और (९) हरभू—हुण^२ ।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात का यह कथन कि मुगलों से माला की सेना की लड़ाई हुई अथवा जोधपुर राज्य की ख्यात का यह वर्णन कि अलाउद्दीन की फ़ौज से उसकी लड़ाई हुई कल्पित ख्यातों के कथन की जांच है, क्योंकि मुगलों का अमल तो उसके बहुत पीछे हुआ था और अलाउद्दीन उसके बहुत पहले हो गया था । उक्त दोनों ख्यातों का कथन एक ही प्रतीत होता है । यदि उसमें कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि जालोर के अथवा आस-पास के किसी दूसरे मुसलमान अफसर अथवा शासक की सेना की चढ़ाई माला के समय में हुई हो, जिसे उसने हराया हो । इसी प्रकार मेवाड़, सिरौही आदि को उसका उजाड़ना भी विश्वास के योग्य नहीं है । ये राज्य काफ़ी दूर पड़ते थे और उसकी वहां तक पहुंच होना माना नहीं जा सकता । लक्ष्मीचंद्र लिखित “तवारीख जैसलमेर” में रावल घड़सी का समय वि० सं० १३७३-६१ तक दिया है, पर ख्यातों आदि में दिये हुए पहले के संवत् कल्पित होने से उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता । रावल घड़सी का देहांत वि० सं० १४१८ भाटिक संवत् ७३८ मार्गशीर्ष वदि ११ (ई० सं० १३६१ ता० २५ अक्टोबर) को हुआ, ऐसा उसके साथ सती होनेवाली चार राणियों के स्मारक शिला लेखों से निश्चित है^३ ।

(१) इसके वंश के बाहदमेरा कहलाये ।

(२) नगर गांव से मिले हुए वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ७ (ई० सं० १६३० ता० २३ फरवरी) मङ्गलवार के शिलालेख में मालानी के स्वामी माला के वंशजों की उस समय तक की निम्नलिखित वंशावली दी है—

(१) रावल माला, (२) जगमाल, (३) मंडलीक, (४) भोजराज, (५) बीदा, (६) नीसल, (७) वरसिंह, (८) हापा, (९) मेघराज, (१०) मन्न दुर्गोधनराज, (११) तेजसी, (१२) जगमाल तथा (१३) कुंवर भारमल ।

(३) मूल शिलालेखों की छापीं से ।

माला बड़ा पराक्रमी था, इसमें संदेह नहीं। उसने सारा महेवा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया था, जो पीछे से उसके नाम पर मालानी कहलाया और वहां पर उसके वंशजों का अधिकार रहा। उसने रावल पक्षी धारण की और उसके वंशज भी रावल या महारावल कहलाते रहे। जोधपुर का वर्तमान राजवंश मलीनप्रथ के छोटे भाई वीरम के वंश में है, जिसका क्रमानुसार आगे वर्णन किया जायगा।

राव वीरम

मुंइणोत नैणसी लिखता है—‘वीरम महेवे के पास गुढ़ा (ठिकाना) बांध कर रहता था। महेवा में खून कर कोई अपराधी वीरमदेव के गुढ़े में शरण लेता तो वह उसे अपने पास रख लेता। मुंइणोत नैणसी का कथन एक समय जोहिया दल्ला भाइयों से लड़कर गुजरात में चाकरी करने चला गया, जहां रहते समय उसने अपना विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद वह वहां से अपनी स्त्री सहित स्वदेश की तरफ लौटा। मार्ग में महेवे पहुंचकर वह एक कुम्हारी के घर ठहरा और एक नाई को बुलवाकर अपने बाल बनवाये। नाई ने उसके पास अच्छी घोड़ी, सुन्दर स्त्री और बहुतसा धन देखा तो तुरन्त जाकर इसकी खबर जगमाल को दी। अनन्तर जगमाल की आज्ञानुसार उसके गुप्तचर कुम्हारी के घर जाकर सब कुछ देख-भाल आये। कुम्हारी ने इसका पता पा दल्ला से कहा कि तुम पर चूक होनेवाली है। फिर रक्षा का मार्ग पूछे जाने पर उसने उसे वीरम के पास जाने की सलाह दी। तदनुसार दल्ला अविलम्ब स्त्री-सहित वीरम के गुढ़े में जा पहुंचा। पांच-सात दिन तक वीरम ने दल्ला को अपने पास रक्खा और उसकी भले प्रकार पहुनाई की। विदा होते समय दल्ला ने कहा कि वीरम, आज का शुभ दिवस मुझे तुम्हारे प्रताप से मिला है। जो तुम भी कभी मेरे यहां आओगे तो चाकरी में पहुंचूंगा। मैं तुम्हारा राजपूत हूं। वीरम ने कुशलतापूर्वक उसे उसके घर पहुंचवा दिया।

‘माता के पुत्रों और वीरमदेव में सदा झगड़ा होता रहता था, अतएव वह (वीरम) महेधे का परित्याग कर जैसलमेर गया । वहां भी वह ठहर न सका और पीछा आया तथा गांवों को लूटने और धरती का बिगाड़ करने लगा । कुछ दिनों बाद वहां का रहना भी कठिन जान वह जांगल में ऊदा मूलावत के पास पहुंचा । ऊदा ने कहा कि वीरम, मुझमें इतनी सामर्थ्य नहीं, कि तुम्हें अपने पास रख सकूँ, अतएव आगे जाओ । तुमने नागोर को उजाड़ दिया है, यदि उधर का खान आवेगा तो मैं उसे रोक दूंगा । तब वीरमदेव जोहियावाटी में चला गया । पीछे से नागोर के खान ने चढ़ाई कर जांगल को घेर लिया, जिसपर गढ़ के द्वार बंद कर ऊदा भीतर बैठ रहा । खान के कहलाने पर ऊदा उससे मिलने गया, जहां वह बन्दी कर लिया गया । खान ने उससे वीरम का पता पूछा, पर उसने बताने से इनकार कर दिया । इसपर उसकी माता से पुछवाया गया, पर वह भी डिगी नहीं । दोनों की दृढ़ता से प्रसन्न होकर खान ने ऊदा को मुक्त कर दिया और वीरम का अपराध भी क्षमा कर दिया ।

‘वीरम के जोहियों के पास पहुंचने पर उन्होंने उसका बड़ा आदर-स्तकार किया और दाण में उसका विस्वा (भाग) नियत कर दिया । तब वीरम के कामदार कभी-कभी साग-का-सारा दाण उगाहने लगे । यदि कोई नाहर वीरम की एक बकरी मारे तो यह कहकर कि नाहर जोहियों का है वे बदले में ११ बकरियां ले लेते थे । एक बार ऐसा हुआ कि आभोरिया भाटी बुकण को, जो जोहियों का मामा व बादशाह का साला था और अपने भाई सहित दिल्ली में रहता था, बादशाह ने मुसलमान बनाना चाहा । इसपर वह भागकर जोहियों के पास जा रहा । उसके पास बादशाह के घर का बहुत सा माल और वस्त्राभूषण आदि थे । गोठ जीमने के बहाने उसके घर जाकर वीरम ने उसे मार डाला और उसका माल-असबाब तथा घोड़े आदि ले लिये । इससे जोहियों के मन में उसकी तरफ से शंका हो गई । इसके पांच-सात दिन बाद ही वीरम ने ढोल बनाने के लिए एक फरास का पेड़ कटवा डाला । इसकी पुकार भी जोहियों के पास पहुंची

पर वे चुपपी साध गये। एक दिन दल्ला जोहिये को ही मारने का विचार कर वीरम ने उसे बुलाया। दल्ला खरसल (एक प्रकार की छोटी हलकी बैल गाड़ी) पर बैठकर आया, जिसके एक घोड़ा और एक बैल जुता हुआ था। वीरम की स्त्री मांगलियाणी ने दल्ला को अपना भाई बनाया था। चूक का पता लगते ही उसने दल्ला को इसका इशारा कर दिया। इसपर जंगल जाने का बहाना कर दल्ला खरसल पर चढ़कर घर की तरफ चल दिया। कुछ दूर पहुंचकर खरसल को तो उसने छोड़ दिया और घोड़े पर सवार होकर घर पहुंचा। वीरम जब राजपूतों सहित वहां पहुंचा उस समय दल्ला जा चुका था। दूसरे दिन ही जोहियों ने एकत्र होकर वीरम की गायों को घेरा। इसकी खबर मिलने पर वीरम ने जाकर उनसे लड़ाई की। वीरम और दयाल^१ परस्पर भिड़े। वीरम ने उसे मार तो लिया पर जीता वह भी न बचा और खेत रहा। वीरम के साथी गांव बड़ेरण से उसकी ठकुराणी (भटियाणी) को लेकर निकले। धाय को अपने एक वर्ष के पुत्र चूंडा को आलहा चारण के पास पहुंचाने का आदेश दे वह राणी मांगलियाणी सहित सती हो गई^२।

जोधपुर राज्य की ख्यात में वीरम के सम्बन्ध में लिखा है—‘वीरम और जगमाल मालावत में बनी नहीं, जिनसे वीरम खेड़ जाकर रहा। मल्लीनाथ भिरडकोट में रहता था। एक बार अकाल पड़ने पर साहचांण का स्वामी जोहिया दला (दल्ला) अपने परिवार को साथ लेकर महेवे गया, जहां मल्लीनाथ ने उसके रहने का प्रबन्ध कर दिया। दला को वीरम की राणी मांगलियाणी ने अपना राखी-बन्ध भाई बनाया। कुछ समय बाद उस (दला) के भाई मट्टू के यहां एक बड़ी सुंदर बछेरी पैदा हुई। मल्लीनाथ ने उसे लेना चाहा, पर मट्टू ने इनकार कर दिया। जगमाल ने गोठ के बहाने जोहियों को मारने का विचार किया, परंतु इसकी खबर एक मालिन के द्वारा दला को मिल गई, जिससे जोहिये अपना

(१) यह जोहिया दल्ला का भाई था। कहीं देपालदे नाम भी मिलता है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८२-७।

माल-असबाब लेकर वहां से निकल गये और खेड़ में धीरम के पास पहुंचे। इसपर जगमाल ने खेड़ पर चढ़ाई की। मल्लीनाथ को जब इसकी खबर मिली तो वह खेड़ जाकर जगमाल को लौटा लाया। अनन्तर स्वयं धीरम जोहियों को साहचाण पहुंचा आया। उसके लौटते समय वह बछेरी दल्ला ने धीरम को दे दी। मार्ग में धीरम ने आसायचों को मारकर कितने ही गांवों के साथ सेतरावा पर कब्जा कर लिया और अपने पुत्रों में से देवराज, जयसिंह और बीजा को वहां रक्खा। उसके खेड़ पहुंचते ही जगमाल ने उसपर मंडोवर के तुकों की सहायता से चढ़ाई की। उनके सिंघाणे पहुंचने की खबर मिलते ही धीरम अपने परिवार सहित निकल गया। सांखली राणी को पूगल पहुंचाकर उसने लाडलू से मोहिल माणिकराव के घोड़े छीने और गांव डांवरे में मोहिलों से लड़कर उन्हें परास्त किया। वहां से आगे बढ़ने पर उसने सिंध के बादशाह की तरफ से दिल्ली के बादशाह के पास तीस ऊंटों पर जाते हुए पेशकशी के रुपये वि० सं० १४३४ (ई० स० १३७७) में लूट लिये। मंडोवर से मुसलमानी फौज के चढ़ आने पर वह जांगलू की तरफ चला। सांखले ऊदा व भीम आकर उसकी तरफ से मुसलमानों से लड़े और उसे जांगलू ले गये। वहां बादशाह की फौज के पहुंचने पर कई दिन तो उसके साथ लड़ाई हुई, पर पीछे से खबर मिलने पर जोहिया देपालदे और मट्टू उसे गढ़ से निकालकर जोहियाघाटी में ले गये तथा बारह गांवों के साथ गांव लखवेरा एवं ऊल्लुगं आदि उसे देकर अपने पास रक्खा। वहां रहते समय उसने जोहियों के साथ बड़ा घुरा व्यवहार करना आरंभ किया। दला के कितने ही आदमियों को मारने और लूटने के अतिरिक्त उसने विवाह करने के बहाने जाकर भाटी बुकरण को, जो दल्ला के भाई देपाल का साला था, मार डाला। अनन्तर उसने ढोल वनवाने के लिए एक फरास का पेड़ कटवा डाला। इसकी फरियाद होने पर देपाल, मट्टू आदि दस हजार जोहिये धीरम पर चढ़ गये। दला ने आकर उन्हें मना किया, पर वे माने नहीं। तब उसने उनसे कहा कि इस प्रकार आक्रमण करना कलंक का कारण होगा, अतएव हम उसकी गायें घेर लें, धीरम स्वयं आकर हमसे

लड़ेगा। तदनुसार जोहियों ने लखवेरा की गाँवें घेर लीं। इसपर वीरम ने जाकर उनसे लड़ाई की, जिसमें वि० सं० १४४० कार्तिक वदि ५ (ई० स० १३८३ ता० १७ अक्टोबर) को वह मारा गया। इस लड़ाई में जोहिया देपाल भी काम आया^१।

दयालदास की ख्यात में प्रायः मुंहणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन है। उसमें संवत् विशेष दिये हुए हैं और वीरम का चूंडराव को मारने एवं सिंहाणकोट विजय करने में जोहियों की सहायता देना लिखा है^२।

टॉड ने उसके सम्बन्ध में केवल इतना लिखा है कि उसने उत्तर के जोहियों से लड़ाई की और उसी में मारा गया^३।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वीरम के चार राणियां थीं, जिनसे उसके नीचे लिखे पांच पुत्र हुए^४—

देवराज^५, जयसिंह, बीजा, चूंडा और गोमादे^६।
राणियां तथा संतति

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी चार राणियों

(१) जि० १, पृ० २६-८। बांकीदास के अनुसार भी वीरम जोहियों के साथ की लड़ाई में मारा गया (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६१)।

(२) जि० १, पृ० ६५-७१।

(३) जि० २, पृ० ६४४।

(४) जि० १, पृ० २८।

(५) इसके वंश के देवराजोत कहलाये। इसके निम्नलिखित छः पुत्र हुए—

(१) राजो।

(२) चाहबदेव—इसके वंश के चाहबदेवोत कहलाये।

(३) मोकल।

(४) खीवकरण।

(५) मेहराज।

(६) दुरजणसाल।

(६) मुंहणोत नैणसी ने इसे चंदन आसराव (रणमजोत) की पुत्री का पुत्र (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८७) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में गांव

और पांच पुत्रों के नाम दिये हैं, पर उनमें जोधपुर राज्य की ख्यात के

कुंडल की भटियाणी राणी का पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० २८) । इसके वंश के गोगाद राठोड़ कहलाये । मुंहणोत नैणसी की ख्यात में इसके सम्बन्ध में लिखा है—

‘गोगादेव थलवट में रहता था । वहां दुष्काल पड़ने पर उसका चाकर तेजा भी अन्य लोगों के समान वहां से चला गया था, परन्तु वर्षा होने पर वह पीछा लौटा । मार्ग में वह मीतासर में ठहरा, जहां के तालाब में बैठकर नहाने के कारण वहां के मोहिल (चौहानों की शाखा) स्वामी ने उसे मारा, जिससे उसकी पीठ चिर गई । गोगादेव को जब इसका पता लगा तो उसने साथ एकत्र कर मोहिलों पर चढ़ाई की । उस दिन वहां बहुतसी बरातें आई थीं । लोगों ने समझा कि यह भी कोई बरात है । द्वादशी के दिन प्रातःकाल ही गोगादेव ने मोहिल राणा माणकराव पर चढ़ाई की । राणा भाग गया, दूसरे कई मोहिल मारे गये । २७ बरातों को लूटकर गोगादेव ने अपने राजपूत का बैर लिया । अनन्तर बढ़ा होने पर साथ इकट्ठाकर अपने पिता का बैर लेने के लिए उसने जोहियों पर चढ़ाई की । इस बात की सूचना मिलने ही जोहिये भी युद्ध के लिए उपस्थित हुए । गोगादेव अपना एक गुस्चर वहां पर ही छोड़ उस समय बीस कोस पीछा लौट गया । जोहियों ने समझा कि गोगादेव चला गया अतएव वे भी अपने स्थान को लौट गये । फिर अपने गुस्चर-द्वारा दह्ला और उसके पुत्र धीरदेव के रहने के स्थान का पता पाकर वह अपने गुस् स्थान से निकला । धीरदेव उन दिनों पूगल के राव राणगदे भाटी के यहां विवाह करने गया था और उसके पलंग पर उसकी पुत्री सोती थी । गोगादेव ने पहुंचते ही दह्ला पर हाथ सात किया और उसे काट डाला । ऊदा ने धीरदेव के धोखे में उसकी पुत्री को मार डाला । दह्ला के भतीजे हांसू ने पडाइये नाम के घोड़े पर पूगल जाकर इस घटना की खबर धीरदेव को दी, जिसपर वह उसी समय वहां से चल पड़ा । राणगदे भी उसके साथ हो लिया । गोगादेव पदरोला के पास ठहरा हुआ था और उसके घोड़े खुले हुए चर रहे थे । भाटियों और जोहियों ने उन्हें पकड़ लिया । इसपर दोनों दलों में युद्ध हुआ । गोगादेव घावों से पूर होकर पड़ा । उसकी दोनों जांघें कट गईं । उसका पुत्र ऊदा भी पास ही गिरा । इतने में राणगदे उधर आया । गोगादे ने उसे युद्ध के लिए ललकारा, पर वह गाली देता हुआ चला गया । फिर धीरदेव भी उधर आया । गोगादेव की ललकार सुनकर वह घूम पड़ा और गोगादेव की तलवार खाकर वहीं गिर पड़ा । धीरदेव ने कहा कि हमारा बैर तो मिट गया, क्योंकि हम दोनों ने एक दूसरे को मार डाला है । गोगादेव ने चिन्ताकर कहा कि राठोड़ों और जोहियों का बैर तो समाप्त हो गया, पर भाटियों से बदला लेना शेष है, क्योंकि राणगदे ने मुझे गाली दी है (जि० २, पृ० ६६-६) । उक्त ख्यात से यह भी पता चलता है कि योगी गोरखनाथ ने रणक्षेत्र

विपरीत जयसिंह के स्थान में सत्ता नाम दिया है^१। दयालदास की ख्यात में आठ पुत्रों के नाम दिये हैं^२। बांकीदास ने जोधपुर राज्य की ख्यात के समान ही पांच पुत्रों के नाम दिये हैं^३। टॉड-कृत “राजस्थान” में उसके उत्तराधिकारी चूंडा और एक दूसरे पुत्र बीजा के नाम ही मिलते हैं^४।

ख्यातों आदि में राव वीरम का वृत्तान्त लगभग एकसा मिलता है। नागोर और मंडोवर की तरफ़ उसके समय तक मुसलमानों का अधिकार हो गया था। उसका सेतरावा आदि पर अधिकार करना संभव माना जा सकता है।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार वह जोहियों से लड़ने में वि० सं० १४४० कार्तिक वदि ५ (ई० सं० १३८३ ता० १७ अक्टोबर) को मारा गया। उसकी मृत्यु की यही तिथि बीकानेर के गजनेर गांव के एक चबूतरे पर लगी हुई देवली के लेख में भी दर्ज है^५। वीरम के चौथे वंशधर

में जाकर गोगादेव की जाँचें जोड़ दीं और वह उसे अपना शिष्य बनाकर ले गया (जि० २, पृ० ६६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से भी पाया जाता है कि वीरम के वैर में गोगादेव ने गांव साहंचाण जाकर जोहिया दल्ला को मारा। उक्त ख्यात के अनुसार धीरेदेव दल्ला के भाई मदू का पुत्र था, जिसने गांव लछूसर में जाकर गोगादेव को मारा। इस लड़ाई में वह स्वयं भी काम आया (जि० १, पृ० २८)। दयालदास की ख्यात में भी कहीं-कहीं कुछ अन्तर के साथ गोगादेव का ऊपर जैसा ही विस्तृत हाल दिया है। उससे पाया जाता है कि राव चूंडा ने अपने दूसरे भाइयों को जागीरें दी थीं, जहां वे रहते थे और दल्ला पर चढ़ाई करने में उसने भी गोगादे को सहायता दी थी (जि० १, पृ० ८०-८२)।

(१) जि० २, पृ० ८७।

(२) (१) चांडा, (२) गोगादे, (३) देवराज, (४) जयसिंह, (५) बीजा, (६) नरपत, (७) हम्मीर और (८) नारायण (जि० १, पृ० ७१)।

(३) ऐतिहासिक बातें; संख्या ६६०।

(४) जि० २, पृ० ६४४।

(५) संवत् १४४० काती वदि ५ राज श्री सलखाजी तत्पुत्र राज श्री वीरमजी.....जोइया सुं हुई काम आया.....

(मूल लेख से)।

राव रणमल की मृत्यु वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) के पूर्व किसी वर्ष हुई, जैसा कि आगे बतलाया जायगा। इसको दृष्टि में रखते हुए भी वीरम की मृत्यु की ऊपर आई हुई तिथि गलत नहीं प्रतीत होती। उसका जोहियों के हाथ से मारा जाना सब ख्यातों में पाया जाता है, जिसपर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है।

राव चूंडा (चामुंडराय)

वीरम का उत्तराधिकारी उसका पुत्र चूंडा^१ हुआ। मुंहणोत नैणसी लिखता है—

‘धाय चूंडा को’ लेकर कालाऊ गांव में आलहा
मुंहणोत नैणसी की ख्यात का कथन चारण के यहां पहुंची और उसकी माता के अन्तिम
आदेशानुसार उसने लालन-पालन के लिए बालक
को उसे सौंप दिया और स्वयं भी वहीं उसके साथ रहने लगी। आठ-नव वर्ष का होने पर चारण उसे अच्छे वस्त्र पहना, शस्त्रों से सुसज्जित कर और घोड़े पर सवार करा रावल मल्लीनाथ के पास ले गया, जिसने उसे अपने पास रख लिया। फिर उसकी चाकरी से प्रसन्न होकर माला ने उसे गुजरात की तरफ अपनी सीमा की चौकसी करने के लिए नियत किया और सिरोपाव आदि देकर ईंदा पड़िहार सिखरा के साथ उसे विदा किया। काले के थाने पर रहकर उसने अच्छा प्रबन्ध किया। एक बार सौदागर

यह लेख बीकानेर के महाराजा कर्णसिंह के राज्यसमय का वि० सं० १७१३ वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १६२६ ता० १६ अप्रैल) का है और इसमें राव सलखा से लगाकर उदयभाण तक महाजन के स्वामियों की नीचे लिखी वंशावली दी है—

(१) सलखा, (२) वीरम, (३) चूंडा, (४) रणमल, (५) जोधा, (६) बीका, (७) लूणकरण, (८) रबसिंह, (९) अर्जुन, (१०) जसवंत, (११) देवीदास, (१२) उदयभाण ।

(१) दयालदास की ख्यात में इसे वीरम का ज्येष्ठ पुत्र लिखा है (जि० १, पृ० ७१)। मुंहणोत नैणसी भी इसका नाम सर्वप्रथम देता है, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका नाम चौथा लिखा है (जि० १, पृ० २८)।

घोड़े लेकर उधर से निकले। चूंडा ने उनके सब घोड़े छीनकर अपने राजपूतों को बांट दिये और एक अपनी सवारी को रक्खा। सौदागरों ने दिल्ली (?) जाकर पुकार मचाई। इसपर बादशाह ने घोड़े वापस दिलवाने के लिए अपने आदमी को भेजा। उसके ताकीद करने पर माला ने चूंडा से घोड़े मंगवाये तो उसने जवाब दिया कि घोड़े तो मैंने बांट दिये; यह एक घोड़ा मैंने अपनी सवारी के लिए रक्खा है। इसे ले जाओ। लाचार माला को उन घोड़ों का मूल्य देना पड़ा, पर इस घटना के कारण उसने चूंडा को अपने राज्य से निकाल दिया। तब चूंडा ईदावाटी में जाकर ईदों के पास रहा और वहां साथ एकत्र करने लगा। इसके कुछ दिनों पीछे उसने डीडण्णा (? डीडवाणा) गांव लूट लिया।

‘इसके पूर्व ही तुकों ने पड़िहारों से मंडोवर छीन लिया था। वहां के सरदार ने सब गांवों से घास की दो-दो गाड़ियां मंगवाने का हुक्म दिया। जब ईदों के पास भी घास भिजवाने की ताकीद आई तो उन्होंने चूंडा से मिलकर मंडोवर लेने की सलाह की। घास की गाड़ियां भरवाकर उनमें चार-चार हथियारबन्द राजपूत छिपा दिये गये। एक हांकनेवाला और एक पीछे चलनेवाला रक्खा गया। पिछले पहर इनकी गाड़ियां मंडोवर के गढ़ के बाहर पहुंचीं। जब ये भीतर जाने लगीं तो वहां के मुसलमान द्वारपाल ने यह देखने के लिए कि घास के नीचे कुछ कपट तो नहीं है अपना बर्छा घास के अन्दर डाला। बर्छे की नोक एक राजपूत के जा लगी, पर उसने तुरंत उसे कपड़े से पोंछ डाला, क्योंकि यदि उसपर लोह का चिह्न रह जाता तो सारा भेद खुल जाता। दरबान ने गाड़ियां भरी देख भीतर जाने दीं। तब तक अंधेरा हो गया था। गाड़ियां भीतर पहुंचने पर छिपे हुए राजपूत बाहर निकले और दरवाजा बन्द कर तुकों पर दूट पड़े। सब को काटकर उन्होंने चूंडा की दुहाई फेर दी और मंडोवर लेने के अनन्तर इलाक़े से भी तुकों को खदेड़कर निकाल दिया। जब रावल माला ने सुना कि चूंडा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया है तब वह भी वहां आया और उसने चूंडा की प्रशंसा की। उसी दिन ज्योतिपियों ने चूंडा का

अभिषेक कर दिया और वह मंडोवर का राब कहलाने लगा । मंडोवर के बाद चूंडा ने और भी बहुतसी भूमि अपने अधिकार में की और उसका प्रताप दिन-दिन बढ़ता गया । उन दिनों नागोर में खोखर^१ राज करता था, अपने राजपूतों से सलाहकर, चूंडा ने एक दिन नागोर पर चढ़ाई की और खोखर को मारकर वहाँ अपना अधिकार स्थापित किया । अपने पुत्र सत्ता को मंडोवर में रखकर चूंडा स्वयं नागोर में ही रहने लगा ।

कुछ ही समय बाद चूंडा के एक दूसरे पुत्र अरडकमल ने अपने पिता का इशारा पाकर गोगादेव को गाली देने के वर में राणागदे के पुत्र सादा (सादूल) को मार डाला^२ । इसके बदले में राब राणागदे ने सांखला

(१) खोखर कौन था यह निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता । ख्यातों से इसका परिचय नहीं मिलता । “मिराते सिकन्दरी” में नागोर के सूवेदार का नाम जलालखां खोखर दिया है, जिसकी जगह हि० स० ८०६ (वि० सं० १४६० = ई० स० १४०३) में शम्सखां नियत हुआ था (आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत उर्दू पुस्तक का गुजराती अनुवाद; पृ० १८ । बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ८३) ।

(२) इसका विस्तृत हाल मुहणोत नैणसी की ख्यात में दिया है, जो संक्षेप में इस प्रकार है—

‘एक दिन अरडकमल चूंडावत ने भैंसे पर लोह किया । एक ही हाथ में भैंसे के दो टुक हो गये, तब सरदारों ने उसकी बढ़ी प्रशंसा की । राव चूंडा बोला, क्या अच्छा हुआ ? अच्छा तो तब हो, जब ऐसा घाव राव राणागदे अथवा कुंवर सादा (सादूल) पर किया जाय । मुझे भाटी (राणागदे) खटकता है । उसने गोगादेव को जो गाली दी वह निरन्तर मेरे हृदय में साल रही है । अरडकमल ने पिता के इस कथन को मन में धर लिया और स्थल-स्थल पर राणागदे या सादा का पता पाने के लिए अपने भेदिये नियुक्त कर दिये । उस समय छापरा द्रोणपुर में मोहिल राज करते थे । वहाँ के स्वामी ने अपनी कन्या के विवाह के नारियल सादूल के पास भेजे । उसके पिता ने तो राठोड़ों के भय से यह सम्बन्ध स्वीकार न किया, परन्तु सादूल इस विवाह के लिए तैयार हो गया । छापरा पहुँचकर उसने माणकदेवी के साथ विवाह किया । अनन्तर ओरींठ गाँव में उसके दो विवाह और हुए । मोहिलों की राय थी कि सादूल पहले ही चला जाय और पीछे से उसके विश्वासपात्र व्यक्ति के साथ उसकी दुलहिन को भेज दिया जाय, पर सादूल इसपर राज़ी न हुआ । त्याग आदि बांटकर वह सपत्नीक चला । राठोड़ों के भेदिये ने मोहिलों के य । सादूल के विवाह होने की खबर अरडकमल को दी । वह तुरन्त नागोर से चढ़ा ।

मेहराज को मारा । मेहराज के भानजे राखसिया सोमा ने राव चूंडा के पास जाकर पुकार की और कहा कि यदि आप भाटी से मेरे मामा का बैर लेवें तो मैं आपको अपनी कन्या व्याह कर एक सौ घोड़े दहेज में दूंगा । राव चूंडा ने तुरंत चढ़ाई की और पूगल के पास जाकर राणगदे को मारा

लायां के मगरे (पहाड़ी) के पास उसने सादूल को जा घेरा और कहा—“बड़े सरदार ज.वो मत में बड़ी दूर से तुम्हारे वास्ते आया हूं ।” तब ढाढी बोला—“उदै मोर करै पलाई, मोरै जाई पर सादो न जाई ।” राजपूतों ने अपने-अपने शस्त्र संभाले । युद्ध हुआ । कई आदमी मारे गये । अरदकमल ने घोड़े से उतर कर मोर (सादूल का अश्व) पर एक हाथ ऐसा मारा कि उसके चारों पांव कट गये । साथ ही उसने सादूल का भी काम तमाम कर दिया । मोहिलाणी ने अपना एक हाथ काटकर सादूल के साथ जलाया और आप पूगल जा अपने सास समुर के दर्शन करने के अनन्तर सती हो गई । अरदकमल ने भी नागोर आकर पिता के चरणों में सिर नवाया । राव चूंडा ने उसके इस कार्य से प्रसन्न होकर डीडवाणें का पट्टा उसके नाम कर दिया (जि० २, पृ० ६२ तथा ६६-१०२) ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तो इसका उल्लेख नहीं है, परन्तु दयालदास की ख्यात में लगभग ऊपर जैसा ही वर्णन है (जि० १, पृ० ७७-८०) । टॉड के अनुसार मोहिलों के सरदार माणिक की पुत्री का विवाह पहले अरदकमल के साथ निश्चय हुआ था, पर राणगदेव भाटी के पुत्र सादू के गांव ओरींठ में रहते समय माणिक की पुत्री उसके प्रेम में श्रावद्ध हो गई । माणिक ने भी अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया । जब वह अपनी स्त्री के साथ लौट रहा था तब अरदकमल ने सांगवला मेहराज तथा ४००० राठोड़ों के साथ मार्ग में उसे घेर उससे लड़ाई कर उसे मार डाला । यह लड़ाई वि० सं० १४६२ (ई० स० १४०६) में हुई । उसकी स्त्री ने अपना एक हाथ काटकर मोहिलों के चारण को दिया और स्वयं सती हो गई । माणिक ने उसकी स्मृति में कूरमदेसर (कोड़म-देसर) नाम का तालाब बनवाया । मरते मरते सादू ने अरदकमल को भी धायल किया था, जिससे छः मास बाद उसका भी देहांत हो गया (राजस्थान जि० २, पृ० ७३-७४) ।

टॉड ने मोहिल स्वामी की पुत्री का नाम और उसकी स्मृति में कूरमदेसर (कोड़म-देसर) तालाब बनवाये जाने के विषय में गलती खाई है । कोड़मदे तो जोधाकी माता का नाम था, जिसकी स्मृति में ब्रीकानेर राज्य का कोड़मदेसर नाम का तालाब है, ऐसा उसके पास के लगे लेख से स्पष्ट है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २१७-८) ।

और उसका माल लूटकर नागोर ले गया ।

‘राव की मोहिल राणी के पुत्र होने पर उसने उसे घूटी न दी । यह खबर मिलने पर राव ने जाकर उससे इसका कारण पूछा । राणी ने कहा कि रणमल (राव चूंडा के ज्येष्ठ पुत्र) को निकालो तो घूटी दूं । राव ने रणमल को बुलाकर कहा कि बेटा तू तो सपूत है, पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है । रणमल बोला—“यह राज्य कान्हा (मोहिल राणी का पुत्र) को दीजिये । मुझे इससे कुछ काम नहीं है ।” ऐसा कह, पिता के चरण छूकर वह वहां से निकला और सोजत जा रहा ।’

आगे चलकर मुंहणोत नैणसी ने इस सम्बन्ध में दूसरा मत दिया है, जो इस प्रकार है—

‘भाटी राव राणगदे को जब राव चूंडा ने मारा तो उसके पुत्रों ने भाटियों को इकट्ठा किया और फिर मुलतान के बादशाही सूबेदार के पास गया । वहां अपने बाप का बैर लेने के लिए उसने मुसलमान धर्म ग्रहण कर लिया और मुलतान से मुसलमानों की सहायता ले नागोर आया । उस वक्त राव चूंडा ने अपने पुत्र रणमल को कहा कि तू बाहर कहीं चला जा, क्योंकि तू तेजस्वी है और मेरा बैर ले सकेगा । जो राजपूत तेरे साथ जाते हैं उनको सदा प्रसन्न रखना । मैंने कान्हा को टीका देना कहा है सो इसको काहुजीरे खेजड़े लेजाकर तिलक किया जायगा । इसी बीच राणी मोहिलाणी ने रसोड़े का प्रबन्ध अपने हाथ में लेकर राजपूतों की खातिरदारी में बहुत कमी कर दी । बारह मन घृत प्रति दिन के स्थान में केवल पांच मन खर्च होने लगा । इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूत अप्रसन्न रहने लगे और उनमें से बहुत से रणमल के साथ चले गये । जब नागोर पर भाटी व तुर्क चढ़ आये तो राव चूंडा मुक्काबिले के वास्ते गढ़ से बाहर निकला । लड़ाई होने पर सात आदमियों सहित चूंडा खेन रहा ।’

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ८७-८३ ।

(२) वही; जि० २, पृ० ८३-४ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव चूंडा के विषय में लिखा है—
 'जोहियावाटी में राव वीरम की मृत्यु होने पर चूंडा की माता मांगलियाणी
 चूंडा को लेकर कालाऊ गांव के चारण आल्हा
 जोधपुर राज्य की ख्यात
 का कथन बारहठ के पास गई और वहां ही गुप्त रूप से
 निवास करने लगी । कुछ समय पश्चात् जब
 आल्हा को यह ज्ञात हुआ कि चूंडा रावल मल्लीनाथ का भतीजा है तो वह
 उसे वस्त्र और शस्त्रादि से सुसज्जित कर रावल के पास ले गया, जिसने
 अपने प्रियपात्र एक नार्ई की सिफारिश पर उसे जोधपुर से आठ कोस
 दूर सालोड़ी गांव में भेज दिया । वहां चूंडा का प्रताप बहुत बढ़ा और
 उसके पास घोड़ों और राजपूतों का अच्छा जमाव हो गया । इसकी खबर
 मिलने पर राव ने भावे (नार्ई) से कहा और स्वयं भी वास्तविकता का
 ज्ञान करने के लिए सालोड़ी गया, पर भावे ने उसके जाने का समाचार
 पहले ही चूंडा के पास भिजवा दिया था, जिससे वहां पहुंचने पर मल्लीनाथ
 ने किसी प्रकार का भी जमाव न देखा । चूंडा चावंडा (चःमुंडा) माता
 का भक्त था । उसकी कृपा से उसे धन और घोड़ों की प्राप्ति हुई । उन
 दिनों मंडोवर नागौर के अधीन था और वहां तुर्कों का थाना था, जो वहां

आगे चलकर उसी ख्यात में भाटियों के वृत्तान्त में इस सम्बन्ध में निम्नलिखित
 वर्णन भी मिलता है—

'राव राणगदे के निःसन्तान मारे जाने पर उसकी स्त्री ने रावल केलण से कह-
 लाया कि जो तू मुझको घर में रखे तो मैं गढ़ (पूगल का) तुझको दूं । केलण स्वीकार-
 सूचक उत्तर देकर पूगल गया और वहां पाट बैठकर उसने अपने अच्छे व्यवहार से सब-
 को प्रसन्न कर लिया । फिर राणी ने उसे उसकी प्रतिज्ञा का स्मरण दिलाया तो उसने
 कहा कि ऐसी बात कभी हुई नहीं, मैं कैसे कर सकता हूं । हां, राव का बैर मैं लूंगा ।
 राणी ने भी कहा कि मेरा अभिप्राय भी बैर लेने से ही था । इस प्रकार पूगल पर अपना
 अधिकार कर केलण ने मुलतान के सुलेमानखान की सहायता से नागौर पर चढ़ाई की
 और चूंडा को मरवा डाला (जि० २; पृ० ३५८) ।'

(१) कविराजा श्यामलदास-कृत "वीरविनोद" में भी उसका मल्लीनाथ-द्वारा
 सालोड़ी गांव में ही नियुक्त किया जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८०३) ।

पर बसनेवाले ईदा राजपूतों को बड़ा तंग करते थे। एक बार जब ईदों से घास मंगवाई गई तो वे घास से भरी घैलगाड़ियों के भीतर अपने राजपूतों को बैठाकर ले गये और सूबेदार के गाड़ियां देखने के लिए बाहर आते ही मुसलमानों पर टूट पड़े तथा उन्हें मारकर उन्होंने मंडोवर पर अधिकार कर लिया। पीछे ईदा रायधवल तथा ऊदा ने अपने भाई-बन्धुओं से कहा कि मंडोवर का गढ़ अपने पास अधिक समय तक रहेगा नहीं, अतएव इसे सालोड़ी के थाने पर रहनेवाले माला के भतीजे, वीरम के पुत्र चूंडा को दे दिया जाय। सब ही ईदा राजपूतों ने यह बात मान ली। तब ईदा रायधवल ने अपनी पुत्री का दिवाह चूंडा के साथ कर मंडोवर उसे दे दिया। इस संबंध में यह सोरठा अब तक प्रसिद्ध है—

यह इन्दारो पाड़, कमधज कदे न बीसरे ।

चूंडो चंवरी चाड़, दियो मंडोवर दायजे ॥

‘मंडोवर प्राप्त हो जाने पर चूंडा ने वहां रहनेवाले सिंधल, कोटेचा, मांगलिया, आसायच आदि राजपूतों को निकालने के बजाय उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। अनंतर अपनी फौज तैयार कर उसने नागोर के शासक खानज़ादा पर चढ़ाई की। खानज़ादा भाग गया, जिससे नागोर पर चूंडा का अधिकार हो गया। फिर उसे ही उसने स्थाई रूप से अपना निवासस्थान बना लिया। अनन्तर उसने सांभर तथा डीडवाणे पर अधिकार किया तथा और भी बहुत से भगड़े किये। पटानों के पास से नागोर लेने के कारण वह राव की उपाधि से प्रसिद्ध हुआ। मोहिलों की बहुत सी भूमि पर अधिकार करने के कारण मोहिल आसराव माणिकरावोत ने उसे अपनी पुत्री व्याह दी। चूंडा अपने राजपूतों की बड़ी खातिरदारी करता था, जिससे उसके रसोड़े का खर्च बहुत बढ़ा हुआ था। उसके वृद्ध होने पर रसोड़े का प्रबंध मोहिलाणी राणी ने अपने हाथ में ले लिया, जिसने क्रमशः खर्च इतना घटा दिया कि राजपूत अप्रसन्न होकर उसका साथ छोड़ने

लगे । उसका साथ कम होने की खबर मिलते ही केलण भाटी मुलतान के शासक सलेमखां को नागोर पर चढ़ा लाया^१ । इस अवसर पर उसके बचे हुए राजपूतों ने उसे निकल जाने की मलाह दी, परन्तु चूंडा ने उनकी राय न मानी । उसने अपने पुत्रों को बुलाकर निकल जाने का आदेश दिया और रणमल को अपने पास बुलाकर कहा—‘मोहिलाणी के पुत्र कान्हा को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का वचन दो तो मुझे सुख हो ।’ रणमल ने उसी समय अपने हाथ से कान्हा को टीका देने का वचन दिया और अन्य कुंवरो के साथ नागोर से निकल गया । नागोर में लड़ाई होने पर चूंडा अपने एक हजार राजपूतों के साथ काम आया^२ ।

दयालदास की ख्यात के अनुसार राव चूंडा का जन्म वि० सं० १४०१ भाद्रपद सुदि ५ (ई० स० १३४४) को हुआ था । वि० सं० १४६२

दयालदास की ख्यात का
कथन

माघ वदि ५ (ई० स० १४०६) को उसने मंडोवर तथा वि० सं० १४६५ भाद्रपद सुदि १५ (ई० स० १४०८) को नागोर पर अधिकार किया । वि० सं०

१४७१ में उसने रणगदे भाटी को मारा तथा वि० सं० १४७५ वैशाख वदि १ (ई० स० १४१८) को वह केलण और मुलतान के नवाब के साथ लड़ाई करता हुआ मारा गया । इन घटनाओं के वर्णन उक्त ख्यात में कहीं नैणसी की ख्यात और नहीं जोधपुर राज्य की ख्यात जैसे ही हैं, नामों में अवश्य कहीं-कहीं विभिन्नता पाई जाती है । उक्त ख्यात से इतना और पाया जाता है कि चूंडा के मारे जाने पर सत्ता ने मंडोवर और कान्हा ने जांगलू में सैन्य का संगठन किया । नागोर में मुहम्मद फीरोज़ का अमल हुआ । कुछ समय बाद नवाब मुलतान को लौट गया और केलण

(१) बांकीदास के अनुसार केलण भाटी के साथ लखी जंगल का स्वामी जलाल खोखर चढ़कर चूंडा पर गया था (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६२ तथा १६१८) । कविराजा श्यामलदास ने सिंध के मुसलमानों का भाटियों के साथ चढ़कर आना लिखा है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०३) ।

(२) जि० १, पृ० २८-३२ ।

पूगल गया। चूंडा ने चांडासर बसाया था, जहां रणमल की माता रहती थी, जो चूंडा के साथ सती हुई^१।

टॉड के अनुसार राव वीरम के उत्तराधिकारी राव चूंडा का राठोड़ों के इतिहास में प्रमुख स्थान है। उसने समस्त राठोड़ों का संगठन किया

टॉड का कथन

और पड़िहार राजा को मारकर मंडोर पर अपनी ध्वजा फहराई। इसके बाद उसने सफलतापूर्वक नागोर के शाही सैन्य पर आक्रमण किया। अनन्तर उसने दक्षिण की तरफ बढ़कर गोड़वाड़ की राजधानी नाडोल में अपनी फौज रक्खी। वि० सं० १८६५ (ई० सं० १८०८) में वह मारा गया^२। जोधपुर राज्य के इतिहास के अन्तर्गत टॉड ने उसकी मृत्यु के विषय में केवल इतना ही उल्लेख किया है, पर एक दूसरे स्थल पर इसका विस्तृत वर्णन है, जो इस प्रकार है—

‘मंडोर के शासक का सामना करने की सामर्थ्य न होने के कारण राणिगदेव के बच्चे हुए दोनों पुत्र—ताना और मेरा—मुल्तान के बादशाह खिज़रखां के पास गये और धर्म परिवर्तन कर तथा बादशाह को प्रसन्न कर वहां से सहायक सेना ले चूंडा के विरुद्ध अग्रसर हुए, जिसने उन्हीं दिनों नागोर भी अपने राज्य में मिला लिया था। इस कार्य में जैसलमेर के रावल का तृतीय पुत्र केलण भी उनके शामिल हो गया, जिसने चूंडा को छल से मारने की सलाह दी। उसने चूंडा को लिखा कि पारस्परिक बैर मिटाने के लिए हम अपनी कन्या का तुम्हारे साथ विवाह करने को प्रस्तुत हैं। यदि इसमें संदेह की संभावना हो तो हम राजकुमारी को, अपने सम्मान और शीति गिवाज के विरुद्ध, नागोर तक भेजने को तैयार हैं। चूंडा भी इसके लिए तैयार हो गया। फलतः पचास बन्द रथ निर्माण किये गये, जिनमें बजाय दुलहिन और उसकी दासियों के पूगल के वीर व्यक्ति छिपाये गये। जिनके आगे-आगे घोड़े तथा सातसौ ऊंटों पर

(१) जि० १, पृ० ७१-८४।

(२) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४४। कविराजा श्यामलदास ने भी चूंडा की मृत्यु का समय वि० सं० १४६५ ही दिया है (वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०१)।

सवार राजपूत थे और पीछे भी इसी प्रकार सैनिक रक्खे गये थे। बादशाह की एक हजार सवार सेना पीछे की तरफ कुछ दूरी पर चल रही थी। चूँडा उनके स्वागत के लिए नागौर से चला, पर रथों के निकट पहुँचते ही उसे कुछ सन्देह हुआ, जिससे वह पीछा लौटा। यह देख ऊंटों और रथों से उतरकर शत्रु चूँडा पर दूट पड़े। इस आकस्मिक आक्रमण के कारण नागौर के फाटक के निकट पहुँचते-पहुँचते वह मारा गया^१।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके निम्नलिखित चौदह पुत्र और एक पुत्री हुई^२—रणमल, सत्ता, रणधीर^३, भीष, भरड़कमल^४,
 संतति पुंना, बीजा, कान्हा^५, अज, शिवराज, लुम्भा, रामदेव,
 सहस्रमल^६, रावत तथा हंसाबाई^७। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में भी चौदह पुत्रों और एक पुत्री के नाम दिये हैं, पर उसमें लाला, सुरताण और बाधा के नाम भिन्न हैं। इनके अतिरिक्त उसमें उसकी पांच राणियों—सांखली सूरमदे, गहलोताणी तारादे, भटियाणी लाडां, मोहिलाणी सोना तथा ईंदी केसर—के नाम भी मिलते हैं^८। कविराजा श्यामलदास भी जोधपुर राज्य की ख्यात जैसे ही उसके पुत्रों के नाम देता है^९। टॉड ने

(१) राजस्थान; जि० २, पृ० ७३४।

(२) जि० १, पृ० ३२-३।

(३) इसके वंश के रणधीरोत कहलाये।

(४) इसके वंश के भरड़कमलोत कहलाये।

(५) इसके वंश के कान्हावत कहलाये।

(६) इसके वंश के सहस्रमलोत कहलाये।

(७) इसका विवाह चित्तोड़ के महाराणा लक्ष्मिह (झाखा) के साथ हुआ था, जिससे मोकल का जन्म हुआ। दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि यह विवाह चूँडा के जीवनकाल में हुआ था (जि० १, पृ० ७२-६), परन्तु मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार यह विवाह रणमल के चित्तोड़ में जा रहने पर उसने किया था (जि० १, पृ० २४)।

(८) जि० २, पृ० ६०।

(९) बीरविनोद; भाग २, पृ० ८०४।

भी चौदह पुत्रों के ही नाम दिये हैं, पर उनमें दो एक नाम जोधपुर राज्य की ख्यात से भिन्न हैं^१ ।

जैसा हम स्थल-स्थल पर ऊपर लिख आये हैं, जोधपुर के पहले के राजाओं से संबंध रखनेवाले ख्यातों के वृत्तान्त और संवत् आदि अधिकांश कल्पित ही हैं । विभिन्न ख्यातों में एक ही व्यक्ति के भिन्न-भिन्न वृत्तान्त मिलते हैं । मुंहणोत नैणसी की ख्यात में तो कहीं-कहीं एक ही घटना के एक से अधिक भिन्न वृत्तान्त दिये हैं । चूंडा के संबंध का भी जो हाल ख्यातों आदि में मिलता है, वह कल्पित सा ही है । यदि मुंहणोत नैणसी वीरम की मृत्यु के समय चूंडा को केवल एक वर्ष का लिखता है, तो किसी ख्यात के अनुसार वह उस समय छः वर्ष और किसी के अनुसार इससे भी अधिक अवस्था का था । जहां मुंहणोत नैणसी उसका स्वयं ईदों के साथ जाकर मंडोवर लेना लिखता है, वहां जोधपुर राज्य की ख्यात एवं "वीरविनोद" आदि से पाया जाता है कि ईदों ने स्वयं मंडोवर विजयकर बाद में उसकी समुचित रूप से रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण वह प्रदेश दहेज में चूंडा को दे दिया । मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार मल्लीनाथ ने उसे काछे के थाने पर नियुक्त किया था, पर जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन है कि वह उसकी तरफ से सालोड़ी गांव में रहा था । यही दशा ख्यातों में दिये हुए उसके मृत्युसंबंधी वर्णन की भी है । ऐसी दशा में निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है कि कौनसा वृत्तान्त सही है और कौनसा गलत ।

चूंडा का जन्म कब हुआ और अपने पिता की मृत्यु के समय उसकी अवस्था कितनी थी, यह कहना कठिन है । मंडोवर पर चूंडा का अधिकार हो गया था इसमें संदेह नहीं, पर वह उसे कैसे मिला था यह विवादास्पद है । प्रायः सभी ख्यातों में उसके नागौर विजय करने की बात लिखी है, पर इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता । नागौर पर मुसलमानों का अधिकार मुहम्मद तुगलक के समय से ही था, जिसका एक लेख नागौर से

मिला है^१। अनन्तर दिल्ली की बादशाहत कमज़ोर होने पर गुजरात का सूबेदार ज़फ़रखां हि० स० ७६८ (वि० सं० १४५३ = ई० स० १३६६) में गुजरात का स्वतंत्र सुलतान बना और उसने अपना नाम मुज़फ़्फ़रशाह रक्खा। उसका एक भाई शम्सखां दंदानी था। मुज़फ़्फ़र अपने भाई को ही अपना राज्य-पाट सौंप देना चाहता था, पर उसके इनकार करने के कारण उसने बाद में जलाल खोखर को नागोर से हटाकर शम्सखां को वहां का हाकिम नियुक्त किया। शम्सखां के पीछे उसका पुत्र फ़ीरोज़ नागोर का शासक हुआ^२, जिसे राणा मोकल ने हराया^३। “मिरातेसिकंदरी” से भी खोखर के बाद क्रमशः शम्सखां और उसके पुत्र फ़ीरोज़ का नागोर का शासक होना पाया जाता है^४। इससे स्पष्ट है कि उधर चूड़ा के राज्यकाल में लगातार मुसलमानों का ही अधिकार बना रहा था, अतएव उसके वहां अधिकार करने का ख्यातों का कथन माननीय नहीं कहा जा सकता। ऐसी दशा में उसके नागोर में मारे जाने का ख्यातों का वर्णन भी ठीक नहीं प्रतीत होता। चूड़ा-द्वारा निर्वासित किये जाने पर रणमल महाराणा लाखा की सेवा में चला गया था, जिसके पुत्र मोकल ने नागोर विजय कर उसको दिया^५। दयालदास की ख्यात में उसकी मृत्यु वि० सं० १४७५ (ई० स० १४१८) तथा टॉड एवं श्यामलदास ने वि० सं० १४६५ (ई० स० १४०८) में लिखी है, पर जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, ख्यातों आदि में दिये हुए ये

(१) कनिंगहम; आर्कियालॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया; जि० २३, पृ० ६४। एपिग्राफ़िया इंडो-मोस्लेमिका; ई० स० १६०६-१०, संख्या १०४८, पृ० ११४।

(२) बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ८२-३ तथा १२१।

(३) एपिग्राफ़िया इंडिका; जि० २, पृ० ४१७। भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० १२०, श्लोक ४४। शृंगी अषि नामक स्थान का वि० सं० १४८५ का शिलालेख; श्लोक १४ (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५८५)।

(४) आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत गुजराती अनुवाद; पृ० १८ तथा ६१।

(५) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६३७। उक्त पुस्तक में महाराणा का नाम लाखा दिया है, जो ठीक नहीं है। उसका नाम मोकल होना चाहिये।

संघर्ष विश्वसनीय नहीं कहे जा सकते। चूड़ा की मृत्यु का निश्चित समय अब तक अंधकार में ही है।

“मिराते सिकन्दरी” में एक स्थल पर लिखा है—‘हि० सं० ७६८ (वि० सं० १४५२-५३ = ई० सं० १३९६) में ज़फ़रखां को यह ख़बर मिली कि मांडू के हिन्दू वहां बसनेवाले मुसलमानों पर जुल्म करते हैं। इसपर अमीरों की सम्मति से उसने अपनी फ़ौज के साथ मांडू पर चढ़ाई की। मांडू का राजा डरकर क़िले में घुस गया। खान ने क़िले पर घेरा डाला। क़िला बहुत मज़बूत होने से खान को देर लगी और घेरा एक वर्ष कुछ मास तक लगा रहा। अन्त में मांडू का राजा डरकर उसकी शरण आया और उसने इक़रार किया कि भविष्य में मैं मुसलमानों को दुःख न दूंगा और उचित ख़िराज देता रहूंगा। वहां से ज़फ़रखां ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत के लिए अजमेर और वहां से सांभर तथा डीडवाणा गया। फिर वह गुजरात होता हुआ पाटण को लौट गया।’

यह कथन अतिशयोक्ति से खाली नहीं है, परंतु यह घटना राव चूड़ा के समय की है और मंडोवर की चढ़ाई से सम्बन्ध रखती है। यहां पर “मांडू” के स्थान पर “मंडोवर” पाठ होना चाहिये। फ़ारसी वर्णमाला की अपूर्णता के कारण स्थानों के नाम पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों में शुद्ध नहीं मिलते, जिससे उनमें स्थानों के नामों में बहुत कुछ गड़बड़ पाई जाती है। मण्डल (काठियावाड़ में), मांडलगढ़ (मेवाड़ में), मांडू (मांडवगढ़, मालवे में) और मंडोवर (मंडोर, मारवाड़ में) के नामों में इससे बहुत-कुछ भ्रम हो गया है। ज़फ़रखां का मांडू से अजमेर जाना भी इसी बात की पुष्टि करता है कि वह स्थान मंडोर होना चाहिये। मांडू पर तो उस समय मुसलमानों का ही अमल था और वहां का शासक दिलावरखां (अमीशाह) था।

राव चूड़ा का एक ताम्रपत्र वि० सं० १४५२ माघ वदि अमावास्या (ई० सं० १३९६) का मिला है, जिसमें पुरोहित ब्राह्मण जगरूप

(१) आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत गुजराती अनुवाद; पृ० १३। बेबे-कृत “हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात” में यह घटना हि० सं० ७६९ में दी है (पृ० ७७-८)।

राजगुरु को सूर्यग्रहण के अवसर पर गांव जैतपुर में २००० बीघा ज़मीन देने का उल्लेख है^१। यह ताम्रपत्र शैली आदि के विचार से सही प्रतीत नहीं होता, क्योंकि इसमें चूंडा के पहले “श्री श्री १०८” और सबसे ऊपर “स्वी” लिखा है। राजाओं के नाम के साथ इस प्रकार ताम्रपत्रादि में अनेक “श्री” लगाने की शैली नैणसी के समय तक राजपूताने में प्रचलित हुई हो ऐसा पाया नहीं जाता। उस वर्ष अथवा उसके एक वर्ष पूर्व कोई भी सूर्य ग्रहण नहीं पड़ा था। इस ताम्रपत्र के अन्तिम भाग में “दसगत” (दस्तखत) मूता दुगमल : के लिखा है। उस समय तक इस फ़ारसी शब्द का राजपूताने की एतदों में प्रवेश नहीं हुआ था। उसके समय का वि० सं० १४७८ का ति० सुदि १५ (ई० सं० १४२१ ता० ६ नवम्बर) रविवार का एक दूसरा ताम्रपत्र भी प्रकाशित हुआ है^२, जो बिलकुल ही अशुद्ध महाजनी लिपि में लिखा हुआ और कृत्रिम है। पहले ताम्रपत्र के ऊपर “सही” लिखा है, जो इसमें नहीं है। एक राजा के समय के दो ताम्रपत्रों में ऐसी विभिन्नता राजपूताने में कहीं पाई नहीं जाती।

राव कान्हा

राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ। मुंह-
खोत नैणसी की ख्यात से उसके सम्बन्ध में केवल इतना पाया जाता है कि
अपने पिता के मारे जाने पर रणमल ने नागोर से
जाकर उसे टीका दिया और आप सोजत में रहने
का^३। एक दूसरे स्थल पर लिखा है कि राव चूंडा
को मारने में देवराज का हाथ होने के कारण कान्हा ने जांगलू जाकर
कई सांखलों को मारा। इस विषय का यह दोहा भी उसमें दिया हुआ है—

सधर हुआ भड़ सांखला, ग्यो भाजै काभाल ।

वीर रतन ऊदौ विजो, बछो नै पुनपालें ॥

(१) सुमेर लाइब्रेरी (जोधपुर) की रिपोर्ट; ई० सं० १९३३, पृ० ५ ।

(२) वही; ई० सं० १९३२, पृ० ८ ।

(३) जि० २, पृ० १०५ ।

(४) जि० १, पृ० २४३ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके विषय में लिखा है—'राव रणमल ने मंडोवर जाकर कान्हा को टीका दिया और आप चित्तोड़ के राणा मोकल के पास गया, जो उसका भानजा लगता था। उसने उसे गांव धराला जागीर में दिया। जिन दिनों मंडोवर में कान्हा का राज्य था, उन दिनों जांगलू में माणकराव सांखले का पुत्र पुण्यपाल राज्य करता था। उनमें आपस में शत्रुता हो जाने पर राव कान्हा ससैन्य जांगलू पर गया। जब सांखलों को इसकी खबर लगी तो उन्होंने रणमल से सहायता की प्रार्थना की। इसपर रणमल अपनी सेना सहित सारंडा जाकर ठहरा। उधर युद्ध के बढ़ने पर सांखलों ने उसे शीघ्रतापूर्वक आने को कहलाया। वह जाने की तैयारी कर ही रहा था कि त्रिभुवनसी के पुत्र ऊदा (राठोड़) ने उससे कहा कि आप ढील करें तो अच्छा हो, क्योंकि अगर कान्हा मारा गया तो आपको ही भूमि मिलेगी और यदि सांखला मारा गया तो जांगलू आपके कब्जे में आ जायगा। यह सुनकर रणमल सारंडा में ही ठहरा रहा। फलस्वरूप कान्हा की विजय हुई और माणकराव सांखले के चारों पुत्र मारे गये। सांखला धरसिंह (आपमलोत) वहां से निकला। उसे रोकने का साधल जेता ने प्रयत्न किया, पर वह मारा गया। इसके कुछ ही समय बाद पेट में शूल की बीमारी होने से कान्हा का देहान्त हो गया।'

दयालदास की ख्यात में एक स्थान पर तो लिखा है कि राव चूंडा ने कान्हा को नागोर की गद्दी दी,^१ पर आगे चलकर लिखा है कि मंडोवर की गद्दी पर सत्ता बैठा और जांगलू का राज्य कान्हा को मिला^३। वि० सं० १४७५ फाल्गुन सुदि

(१) जि० १, पृ० ३३-४। ख्यात में लिखा है कि करणीजी ने इसे आप दिया था, जिससे पेट में दर्द होने के कारण इसका देहांत हुआ।

(२) जि० १, पृ० ८३।

(३) जि० १, पृ० ८५।

१४ (ई० स० १४१६) को कान्हा का देहांत हुआ^१ । “वीरविनोद” में केवल इतना लिखा है कि राव चूंडा के बाद उसके छोटे बेटे कान्हा के गद्दी पर बैठ जाने से बड़ा रणमल नाराज़ होकर चित्तोड़ महाराणा मोकल के पास चला गया । कान्हा ने जांगलू के सांखला पर विजय पाई और फिर मर गया^२ । टॉड ने चूंडा के बाद कान्हा और सत्ता के नाम छोड़ दिये हैं तथा रणमल का गद्दी बैठना लिखा है^३ ।

राव चूंडा का उत्तराधिकारी उसका छोटा पुत्र कान्हा हुआ, पर उसके सम्बंध में ख्यातों आदि में जो वृत्तान्त मिलते हैं वे बहुत थोड़े हैं और उनमें परस्पर अन्तर भी बहुत है । इसलिए ख्यातों आदि के कथन की जांच उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता । कई ख्यातों का यह कथन कि रणमल महाराणा मोकल के पास जा रहा था ठीक नहीं है । वह तो महाराणा लाखा के समय में ही चित्तोड़ चला गया था, जैसा आगे रणमल के वृत्तान्त में लिखा जायगा । दयालदास का यह कथन कि नागौर अथवा जांगलू का राज्य कान्हा को मिला सर्वथा अमाननीय है, क्योंकि नागौर पर तो मुसलमानों का ही अधिकार था, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है और जांगलू में राव जोधा के समय भी सांखलों का ही राज्य बना रहा था, जिनको जोधा के पुत्र बीका ने जीता । संभव है कि कान्हा का सांखलों से युद्ध हुआ हो, पर उसके परिणाम के विषय में हम किसी अन्य प्रमाण के अभाव में जोधपुर राज्य की ख्यात के कथन को अन्तिम नहीं मान सकते । वह कितने दिनों तक गद्दी पर रहा यह कहना कठिन है, क्योंकि मुंदणोत नैणसी अथवा जोधपुर राज्य की ख्यातों से इस विषय पर कुछ भी प्रकाश नहीं पड़ता । दयालदास की ख्यात के अनुसार उसने लगभग ग्यारह महीने ही राज्य किया था ।

(१) जि० १, पृ० ८६ ।

(२) भाग २, पृ० ८०४ ।

(३) राजस्थान; जि० २, पृ० ६४-५ ।

राव सत्ता

मुंहणेत नैणसी की ख्यात में राव सत्ता के विषय में कई मत मिलते हैं। एक स्थान पर लिखा है—‘उसे पेहर की जागीर राव चूंडा ने पहले से ही दी थी। रणमल और उसके पुत्र जोधा ने नर्बद मुंहणेत नैणसी की ख्यात का कथन (सत्ता का पुत्र) से युद्ध किया। तीर लगने से नर्बद की एक आंख फूट गई और उसके बहुतसे राजपूत मारे गये। राव रणमल ने मंडोवर ली। राव सत्ता को आंखों से दिखता नहीं था, इसलिए राव रणमल ने उसे गढ़ में ही रहने दिया और जब वह उससे गढ़ में मिलने गया तो उसने अपने पुत्रों को उसके पांव लगाया। जब जोधा उसके चरण छूने गया तो उसने पूछा कि यह कौन है? यह जानकर कि वह जोधा है सत्ता ने कहा कि टीका इसको ही देना यह धरती रखेगा। रणमल ने भी ऐसा ही किया।’

उसी ख्यात में एक दूसरे स्थल पर लिखा है—‘राव चूंडा काम आया तब टीका रणमल को देते थे कि रणधीर चूंडावत दरबार में आया। सत्ता वहां बैठा हुआ था। रणधीर ने उससे कहा—“सत्ता कुछ देवो तो टीका तुम्हें देवें।” सत्ता ने कहा—“टीका रणमल का है जो मुझे दिलाओ तो भूमि का आधा भाग तुम्हें देऊं।” तब रणधीर ने दरबार में जाकर सत्ता को गद्दी पर बिठा दिया और रणमल को कहा कि तुम पट्टा लो, पर उसने यह स्वीकार न किया और राणा मोकल के पास जा रहा। राणा ने उसकी सहायता की और मंडोर पर चढ़ आया। सत्ता भी सम्मुख लड़ने को आया। रणधीर नागौर जाकर वहां के खान को सहायतार्थ लाया। सीमा पर युद्ध हुआ। रणमल तो खान से भिड़ा और सत्ता व रणधीर राणा के सम्मुख हुए। राणा भागा और नागोरी खान को रणमल ने पराजित कर भगाया। सत्ता और रणमल दोनों की फौजवालों ने कहा कि विजय रणमल की हुई है। दोनों भाई परस्पर मिले। तदनन्तर रणमल पीछा राणा के पास

गया और सत्ता मंडोवर जा रहा^१ ।

एक दूसरे स्थल पर लिखा है—

‘सत्ता के पुत्र का नाम नर्बद और रणधीर के पुत्र का नाम नापा था । सत्ता आंखों से बेकार हो गया था, इसलिए राज-काज उसका पुत्र नर्बद करता था । उसे रणधीर का आधा भाग लेना बुरा लगता था, अतएव उसने एक दासी को लोभ देकर उस(रणधीर)के पुत्र को विष दिलवाया, जिससे वह मर गया । अनन्तर उसने रणधीर को मारने के लिए सैन्य एकत्र करना प्रारम्भ किया । इसका किसी प्रकार पता लग जाने पर रणधीर मेवाड़ में महाराणा के पास गया और उसे साथ ले सत्ता पर चढ़ा । नर्बद ने उनका सामना किया, पर धायल होकर हारा । उसकी एक आंख फूट गई थी । महाराणा उसको उठाकर अपने साथ ले गया और रणमल को उसने मंडोवर की गद्दी पर बिठाकर टीका दिया । सत्ता भी राणा के पास जा रहा और वहीं उसका देहांत हुआ^२ ।’

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव सत्ता के विषय में लिखा है—

‘कान्हा की मृत्यु होने पर उसका भाई सत्ता गद्दी पर बैठा । सत्ता दारु बहुत पीता था, जिससे राज्य-कार्य उसका भाई रणधीर चलाता था । सत्ता का पुत्र नर्बद बड़ा पराक्रमी हुआ । उससे रणधीर से बनी नहीं । तब रणधीर ने मारवाड़ का परित्याग कर धणुला में राव रणमल के पास जाकर उससे कहा कि चूंडा ने कान्हा को राज्य दिया था, उसपर सत्ता का क्या अधिकार है ? आप चलकर सत्ता से मंडोवर ले लें । इसपर अपनी सेना एकत्र कर तथा राणा की फौज साथ ले रणमल मंडोवर पहुंचा । सत्ता को इसकी खबर मिलने पर वह तो निकल गया, पर नर्बद ने सम्मुख आकर मंडोवर से दो कोस की दूरी पर युद्ध किया । नर्बद धायल हुआ तथा रणमल की विजय हुई । रणधीर के कहने से उसने महाराणा की फौज

जोधपुर राज्य की ख्यात
का कथन

(१) मुहसोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १११-२ तथा ११४ ।

(२) वही; जि० २, पृ० ११२-१४ ।

को वहां से ही बिदा कर दिया। नर्बद को महाराणा के सैनिक चित्तोड़ ले गये, जहां महाराणा ने उसे अपने पास रख लिया। उस समय मेवाड़ की गद्दी पर महाराणा मोकल था और उसका कुंवर कुंभा था^१।

दयालदास की ख्यात में लगभग मुहंणोत नैणसी की ख्यात जैसा ही वर्णन दिया है^२। उससे इतना विशेष पाया जाता है कि रणमल को करणीजी की कृपा से जांगलू का राज्य प्राप्त हो गया था और वि० सं० १४८७ ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० सं० १४३०) को उसका मंडोवर पर अधिकार

अन्य ख्यातों आदि के
कथन

हो गया। उसकी मंडोवर पर चढ़ाई होने पर सत्ता पीपाड़ जा रहा था, जहां से वह महाराणा के पास चित्तोड़ गया^३। बांकीदास ने कान्हा के विषय में तो कुछ नहीं लिखा है, पर सत्ता के विषय में वह लिखता है कि वह चूंडा का उत्तराधिकारी हुआ। वह 'अत्यधिक मद्यपान करता था, जिससे राज्य-कार्य उसका भाई रणधीर चलाता था'। "धीरविनोद" के अनुसार कान्हा के पश्चात् रणधीर आदि भाइयों ने सत्ता को मंडोवर का मालिक बनाया, जिसपर महाराणा मोकल से सहायता प्राप्तकर रणमल चढ़ आया। सत्ता के पुत्र नर्बद से रणमल का मुक्ताबिला होने पर नर्बद ज़ख्मी हुआ और रणमल ने फ़तह पाकर मंडोवर पर क़ब्ज़ा कर लिया। नर्बद महाराणा मोकल के पास आया, जिसको उसने एक लाख रुपये का कायलाणे का पट्टा दिया, जो अब जोरपुर के पास है^४।

कान्हा का उत्तराधिकारी उसका भाई सत्ता हुआ यह प्रायः सभी

(१) जि० १, पृ० ३४-५।

(२) जि० १, पृ० ८६-६२।

(३) जि० १, पृ० ८६ तथा ६२।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६८।

(५) नर्बद के विस्तृत हाल के जियू देजो मेरा; राजपूताने का इतिहास, जि० १, पृ० ५०४ टिप्पण्य २।

(६) भाग २, पृ० ८०४।

ख्यातों में मिलता है। मुंहणोट नैणसी का यह कथन कि रणमल की सहा-
 यता को जाकर राणा मोकल रणधीर से हारकर
 भागा और रणमल अन्त में युद्ध में विजयी होकर
 भी सत्ता से केवल मिलकर वापस लौट गया,
 केवल कल्पना ही है। मेवाड़ की शक्ति ऐसी गई-गुज़री न थी कि राणा
 को हार खाकर भागना पड़ता। फिर मंडोवर तक चढ़कर रणमल का
 वापस चित्तोड़ लौट जाना भी मानने योग्य नहीं है। मुंहणोट नैणसी की
 ख्यात में कान्हा और सत्ता के विषय में विभिन्न स्थलों पर परस्पर विरोधी
 बातें लिखी हुई होने से, यह कहना कठिन है कि उनमें से कौनसी ठीक है
 और कौनसी गलत। सत्ता का राज्य कब से कब तक रहा, यह मुंहणोट
 नैणसी अथवा जोधपुर राज्य की ख्यातों से पाया नहीं जाता। दयालदास
 की ख्यात के संवत्‌ों पर विचार करने से तो यही ज्ञात होता है कि लगभग
 बारह वर्ष तक उसका राज्य रहा था, पर अन्य संघत्‌ों के समान
 ही ये संवत्‌ भी कल्पित ही हैं और इनपर भरोसा नहीं किया जा
 सकता।

राव रणमल

मुंहणोट नैणसी की ख्यात में राव रणमल के प्रारंभिक वृत्तान्त
 के सम्बन्ध में अलग-अलग मत मिलते हैं। एक जगह लिखा है कि राव
 चूँडा के सरदार रणमल को टूँडाड़ की तरफ ले
 गये। रणमल ने पिता की आज्ञानुसार साथ के सब
 राजपूतों को राज़ी कर लिया। केलण भाटी उसके
 पीछे लगा। एक गांव में पहुँचने पर वहाँ की स्त्रियों के अपने सम्बन्ध में
 व्यंगपूर्ण शब्द सुनकर वह अपने साथियों सहित पीछा फिरा। सिखरा ने
 बादशाही निशान छीन लिया। मुसल और भाटी भागे और रणमल नागोर
 में आकर पाट बैठा^१।

एक दूसरे स्थान पर उसी ख्यात में लिखा है कि जब राव रणमल बिदा हुआ तो अच्छे-अच्छे राजपूत अर्थात् सिखरा, उगमणोत ईदा, ऊदा त्रिभुवनसीहोत, राठोड़ कालो टिवाणो आदि उसके साथ हो लिये । मार्ग से कुछ सरदारों के लौट जाने पर पांच सौ सवारों के साथ रणमल नाडोल के गांव धणले में जाकर ठहरा, जहां सोनगरे (चौहान) राज्य करते थे । वहां कुछ दिनों रहकर वह चित्तोड़ के राणा लाखा के पास चला गया^१ । इसके आगे ही यह लिखा मिलता है कि पिता के मारे जाने पर रणमल ने नागोर जाकर कान्हा को गद्दी पर बिठाया और आप सोजत में रहने लगा । भाटियों से वैर होने के कारण वहां रहते समय वह उनका इलाका लूटने लगा । तब उन्होंने चारण भुजा संदायच को उसके पास भेजा, जिसके यश-गान करने से प्रसन्न होकर उसने भाटियों का बिगाड़ करना छोड़ दिया । भाटियों ने अपनी कन्या उसे व्याह दी, जिससे राव जोधा का जन्म हुआ^२ ।

राव रणमल की बहिन हंसवाई का विवाह महाराणा लाखा के साथ होने^३ और पीछे से महाराणा मोकल की सहायता से उसके मंडोवर

(१) जि० २, पृ० १०२-४ । आगे चलकर एक स्थल पर मुंहणोत नैणसी ने उसके नाडोल पर अधिकार करने की बात लिखी है, जो इस प्रकार है—

‘रणमल का वैभव देखकर सोनगरों के भले आदमियों ने नागोर जाकर कहा कि राठोड़ काम का नहीं है, तुम पर चूक करेगा, इसलिए अपने यहां इसका विवाह कर दो । तब उन्होंने लोला सोनगर की पुत्री का उसके साथ विवाह कर दिया । फिर भी जब उन्हें रणमल का उद्देश्य बुरा ही दीख पड़ा तो उन्होंने उसपर चूक करने का विचार किया । इसकी खबर लग जाने पर रणमल की सास और स्त्री ने उसे वहां से निकाल दिया । अपने स्थान पर पहुंचकर उसने सोनगरों से शत्रुता चलाई और अक्सर पाकर आशापुरी के देहर में जाकर, जहां सोनगरों गोठ करने जाया करते थे, उन्हें मार डाला और अखावे के कुएं में डाल दिया । उनका इलाका लेने के अनन्तर वह राणा मोकल के पास गया और वहीं रहने लगा (जि० २, पृ० ११५) ।

(२) जि० २, पृ० १०५ ।

(३) इस विवाह के सम्बन्ध के विलुप्त वृत्तान्त के लिए देखो मेरा राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५७७-७८ ।

पर अधिकार करने का उल्लेख ऊपर आ गया है^१। उसके सम्बन्ध की उक्त ख्यात में दी हुई अन्य घटनायें नीचे लिखे अनुसार हैं—

‘एक दिन राव रणमल सभा में बैठा अपने सरदारों से कह रहा था कि बहुत दिनों से चित्तोड़ की तरफ से कोई खबर नहीं आई, इसका क्या कारण है ? थोड़े ही दिन पीछे एक आदमी चित्तोड़ से पत्र लेकर आया और उसने खबर दी कि मोकल मारा गया। राव इससे बड़ा विस्मित और शोकातुर हुआ और उसने उसी समय मोकल का बैर लेने की प्रतिज्ञा की तथा सैन्य चित्तोड़ पहुंचा। मोकल के घातक भागकर पई के पहाड़ों में चले गये और वहां घाटा बांधकर रहने लगे। रणमल ने वहां घेरा डाला और छः महीने तक वहां रहकर उसे सर करने के कई उपाय किये, परन्तु सफलता न मिली। वहां मेर लोग रहते थे। सीसोदियों ने उन्हें वहां से निकाल दिया था। उनमें से एक मेर ने राव से मिलकर कहा कि यदि दीवाण की खातिरी का परवाना मिल जावे तो मैं पहाड़ सर करा दूं। राव रणमल ने परवाना करा दिया। तब उस मेर ने उसको सैन्य सहित पहाड़ों में ले जाकर चाचा व मेरा के घरों पर खड़ा कर दिया^२। रणमल के कई साथी तो चाचा के घर पर चढ़े और राव आप चढ़कर महपा (पंवार) पर गया। उसकी यह प्रतिज्ञा थी कि जहां स्त्री-पुरुष दोनों एक घर में हों उसके भीतर न जाता था, अतएव उसने बाहर ही से महपा को बाहर आने के लिए ललकारा। वह तो शब्द सुनते ही भयभीत हो स्त्री के भेष में निकल

(१) देखो ऊपर; पृ० २०६ रिप्पण ७ तथा पृ० २१७।

(२) इस विषय का उक्त ख्यात में एक दूसरे स्थल पर दूसरे रूप से वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

एक भील के बाप को रणमल ने मारा था। वह भील चाचा व महपा का सहायक बन गया, जिसके कारण रणमल पहाड़ों पर विजय न प्राप्त कर सका। अन्त में एक दिन वह उस भील के घर जा पहुंचा और उसकी मां को बहन कहकर पुकारा। तब उसने अपने पुत्रों का क्रोध शांत कर उन्हें उसका सहायक बना दिया। उन्हीं की सहायता से पहाड़ों के भीतर पहुंचने में वह समर्थ हुआ।

जि० २, पृ० ११७-१८।

भागा। यह पता पाकर रणमल वहां से लौट गया। उसने चाचा व मेरा को मारकर और भी कई सीसोदियों को मारा। अनन्तर उसने चित्तोड़ जाकर राणा कुंभा को गद्दी बैठाया और अन्य बारी सरदारों को मेवाड़ से निकालकर देश में सुख-शान्ति की स्थापना की।

‘महपा पंवार पई के पहाड़ों से भागकर मांडू के बादशाह महमूद के पास जा रहा। जब राणा कुंभा ने बादशाह पर चढ़ाई की तब राव रणमल भी उसके साथ था और उसने ही बादशाह को मारा’। उसके मांडू पहुंचने पर महपा घोड़े पर चढ़े-चढ़े ही गढ़ से नीचे कूद गया। घोड़ा तो पृथ्वी पर पड़ते ही मर गया और महपा भागकर गुजरात के बादशाह के पास पहुंचा। जब वहां भी बचाव की कोई सूरत न देखी तो वह चित्तोड़ ही की तरफ चला। वहां राज तो राणा करता था, परन्तु राज का सारा काम रणमल के हाथ में था। गुप्त रूप से रात्रि के समय नगर में प्रवेशकर महपा वहां रहनेवाली अपनी एक पत्नी के पास जा रहा। फिर राणा के पास उपस्थित होकर उसने राठोड़ों की तरफ से उसके मन में शंका उत्पन्न करा दी^१। तब तो राणा को भी भय हुआ और उसने रणमल पर चूक करने

(१) बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६)।

(२) एक दूसरे स्थल पर उक्त ख्यात में लिखा है कि महपा के भागकर मांडू के बादशाह के पास जाने की खबर राणा एवं रणमल को होने पर उन्होंने बादशाह पर दबाव डालकर कहलाया कि हमारे चोर को भेज दो। इसपर बादशाह ने महपा से कह दिया कि हम तुम्हको नहीं रख सकते। तब महपा वहां से कूदकर निकल गया (भाग २, पृ० ११८)।

(३) एक दूसरे स्थल पर उक्त ख्यात में लिखा है कि एक दिन राणा कुंभा सोया हुआ था और एका चाचावत पैर दाब रहा था, उसकी आंखों से आंसू की बूंदें निकलकर राणा के पैरों पर गिरें। राणा की आंख खुली। एका को रोते हुए देखकर उसने जब इसका कारण पूछा तो उसने उत्तर दिया कि अब देश सीसोदियों के हाथ से निकल जायगा और उसे राठोड़ लेंगे। राणा ने पूछा कि क्या तुम रणमल को मार सकते हो। उसने उत्तर दिया कि यदि दीवाण का हाथ हमारे सिर पर रहे तो हम ऐसा कर सकते हैं। महाराणा की आज्ञा मिलने पर उसने महपा पंवार से मिलकर वह कार्य पूरा किया (जि० २, पृ० १०८-६)।

का विचार किया। किसी प्रकार इसकी खबर एक डोम को लग जाने पर उसने इसकी सूचना रणमल को दी, पर उसको विश्वास न हुआ तो भी उस समय से वह अपने पुत्रों को तलहटी में ही रखने लगा। अक्सर पाकर एक दिन चूक हुआ। राव जिस पलंग पर सोया हुआ था उसी के साथ वह बांध दिया गया और सत्रह मनुष्य उसे मारने के लिए आये। उनमें से सोलह को तो राव ने मार डाला, पर महपा भागकर बच गया। रणमल भी मारा गया^१ और उसके पुत्र जोधा, सीहा, नापा आदि जो तलहटी में थे खबर पाते ही भाग निकले। उनको एकड़ने के लिए फ़ौज भेजी गई, जिसने आड़ावळा (अर्थली) के पहाड़ के पास उन्हें जा लिया। वहां युद्ध होने पर गठोड़ों के कई सरदार और मारे गये, पर जोधा सकुशल मंडोवर पहुंच गया^२।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव कान्हा को राज्याधिकार प्रदान करने के बाद तुरन्त ही रणमल अपने भानजे राणा मोकल के पास चित्तोड़ चला गया, जिसने उसे ४०-५० गांवों के साथ धणला की जागीर दी, जहां वह रहने लगा^३। सत्ता के राज्य समय महाराणा की सेना की सहायता से रणमल के मंडोवर पर अधिकार करने का उल्लेख ऊपर आ गया है। महाराणा मोकल के मारे जाने^४, उसके वर में रणमल का चाचा मेरा

(१) बांकीदास ने नरैव सत्तावत का चूंडा लाखावत के शामिल हो रणमल पर चूक करना लिखा है (ऐतिहासिक बातें, संख्या १६०.),।

(२) जि० २, पृ० १०६-८, ११०-११ और ११८-१९।

(३) जि० १, पृ० ३३।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में एक दूसरे स्थल पर यह भी लिखा है कि गागरोन के खींची अचलसिंह पर मालवे के खिलजी बादशाह की चढ़ाई होने पर महाराणा मोकल उससे लड़ने के लिए चित्तोड़ से रवाना हुआ। ईडर का सांवलदास भी आकर उससे मिला। सीपोदिया चाचा भी राणा के साथ आया। उसका सांवलदास से मेळ होने के कारण उसे राणा पर चूक होने का सारा भेद ज्ञात था। कुंभा को तो उसने निकाल दिया, पर राणा मोकल ने उसके कथन पर विश्वास न किया और वहां से तीसरी मंजिल पर मारा गया (जि० १ पृ० ३०)।

को मारने, कुम्भा की चित्तोड़ की गद्दी पर बैठाने तथा बाद में धोखे से स्वयं मारे जाने का उक्त ख्यात का वर्णन लगभग मुंहणोत नैणसी जैसा ही है। उसमें मोकल के मारे जाने का समय वि० सं० १४६५ (ई० सं० १४३८) और रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १५०० का आघाट (ई० सं० १४४३) दिया है^१। उसके सम्बन्ध की अन्य बातें जो उक्त ख्यात से पाई जाती हैं वे इस प्रकार हैं—

‘उसने राव चूड़ा के बैर में बहुत से भाटियों को मारा और ४१ बार जैसलमेर पर चढ़ाई की, जिससे उन्होंने अपनी पुत्री का उसके साथ विवाह करना स्वीकार किया^२। भाबर में युद्ध कर उसने कचरा सींधल, जेतारण में तोगा सींधल, वगड़ी में चरडां सींधल तथा सोजत में नाढ़ा सींधल को मारा। अनन्तर उसने केलण भाटी को मारकर वीकमपुरं को लूटा और मेवों से वि० सं० १४८५ (ई० सं० १४२८) में जालोर लिया। गया की यात्रा के समय उसने वहां बहुत सा दान-पुण्य किया। दिल्ली के बादशाह फ़ीरोज़ के मारवाड़ पर चढ़ाई करने पर उसने युद्ध कर उसे हराया। बादशाह मुहम्मद के राणा मोकल पर चढ़ाई करने पर उसने उसके लौटते समय उसे भी मारा^३।’

दयालदास की ख्यात का राव रणमल का वृत्तान्त अधिकांश मुंह-
णोत नैणसी की ख्यात जैसा ही है। किसी किसी घटना का वर्णन जोधपुर
राज्य की ख्यात से मिलता-जुलता है। जैसलमेर
पर चढ़ाई होने का उल्लेख उसमें भी है और वहां के
रावल का नाम लक्ष्मण दिया है। उक्त ख्यात के
अनुसार रणमल ने वि० सं० १४६५ (ई० सं० १४३८) में नागोर के नवाब
फ़ीरोज़ तथा उसके भाई को मारा, अनन्तर वि० सं० १४६६ आश्विन सुदि

(१) जि० १, पृ० ३५-३६। बांकीदास ने रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १५०० चैत्र वदि ६ (ई० सं० १४४३) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१३)।

(२) बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१२)।

(३) जि० १, पृ० ३६-७।

७ (ई० स० १४३६) को वह स्वयं एका चाचावत, महारा आदि द्वारा धोखे से मारा गया^१ ।

सोनगरी से रणमल के लड़ाई करने, मोकल के वर में चाचा तथा मेरा को मारने और फिर स्वयं धोखे से मारे जाने का उल्लेख कविराजा श्यामलदास-कृत "वीरविनोद" में भी है। उसमें अन्तिम घटना का समय जोधपुर राज्य की ख्यात के समान वि० सं० १५०० (ई० स० १४४३) ही दिया है। उससे यह भी पाया जाता है कि उसने मांडू के बादशाह महमूद को गिरफ्तार कर महाराणा के हवाले किया तथा कुंभा के काका महाराणा लाखा के पुत्र राघवदेव को मारा^२ ।

टॉड के अनुसार रणमल भीमकाय और धीर व्यक्ति था, जिसकी बहिन के साथ विवाह करने पर महाराणा लाखा ने उसे चालीस गांवों के साथ धणला जागीर में दिया। मेवाड़ की सेना के साथ एक पुत्री अजमेर के सूबेदार के पास ले जाने के बहाने उसने वहां पहुंचकर उसपर मेवाड़ का अधिकार स्थापित किया। उसने गया की यात्रा की तथा अपने राज्य भर में निश्चित वज्रन के बाँट जारी किये। उसकी मृत्यु के विषय में टॉड लिखता है कि मेवाड़ की गद्दी हस्तगत करने का प्रयत्न करने के कारण उसे उचित ही दंड मिला^३ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उसके चौबीस पुत्र हुए—
(१) जोधा, (२) अखैराज^४, (३) कांधल^५, (४) चांपा^६, (५) लखा^७,

(१) जि० १, पृ० ६०-१०५ ।

(२) भाग २, पृ० ८०५ ।

(३) जि० २, पृ० ६४६ ।

(४) जि० २, पृ० ३७-८ ।

(५) उक्त ख्यात के अनुसार इसके दो पुत्र मेहराज तथा पंचायण हुए। मेहराज के पुत्र कृपा के वंशज कृपावत तथा पंचायण के पुत्र जेता के वंश के जेतावत कहलाये ।

टॉड के अनुसार अखैराज के सात पुत्र हुए (राजस्थान; जि० २, पृ० ६४६) ।

(६) इसके वंश के कांधलोट कहलाये। इसका वृत्तान्त बथास्थान आगे आवेगा ।

(७) इसके वंश के चांपावत कहलाये ।

(८) इसके वंश के लखावत कहलाये, जो इस समय बीकानेर में हैं ।

संतति

(६) भाखर^१, (७) डूंगरसी^२, (८) जेतमाल^३,
 (९) मंडल^४, (१०) पाता^५, (११) रूपा^६, (१२)
 कर्ण^७, (१३) सांडा^८, (१४) मांडण^९, (१५) नाथी^{१०}, (१६) ऊर्दा^{११}, (१७)
 वेरी^{१२}, (१८) हापा, (१९) अड़वाल, (२०) सावर, (२१) जगमाल,
 (२२) सगता, (२३) गोइन्द और (२४) करमचन्द ।

मुंहणोत नैणसी की ख्यात में केवल जोधा का ही नाम मिलता है ।
 ऊपर सीहा और नापा के नाम आये हैं, पर वे दूसरी ख्यातों में नहीं मिलते ।
 दयालदास की ख्यात^{१३}, बीरबिनोर्द तथा टॉड-कृत 'राजस्थान' में भी कुछ
 हेर-फेर के साथ रणमल के चौबीस पुत्रों के ही नाम दिये हैं ।

(१) इसका पुत्र बाला हुआ, जिसके वंशज बालावत कहलाये ।

(२) इसके वंशवाले डूंगरोत कहलाये, जो भाद्राजून में रहे ।

(३) इसका पुत्र भोजराज हुआ, जिसके वंश के भोजराजोत कहलाये ।
 भोजराज को राव जोधा ने पालासणी दिया । पालासणी के तालाब पर का जोगी का
 आसन भोजराज का बनवाया हुआ है ।

(४) इसके वंश के मंडलावत कहलाये । इसे राव जोधा ने सारुंडा दिया था ।

(५) इसके वंश के पातावत कहलाये ।

(६) इसके वंश के रूपावत कहलाये ।

(७) इसके वंश के कर्णोत कहलाये । इन्हें राव जोधा ने चवां का पट्टा दिया ।

(८) इसके वंश के सांडावत कहलाये ।

(९) इसके वंश के मांडणोत कहलाये ।

(१०) इसके वंश के नाथूओत कहलाये । ये बीकानेर में नाथूसर आदि गांवों
 में हैं ।

(११) इसके वंश के ऊर्दावत कहलाये । ये बीकानेर में भी ऊर्दासर आदि
 गांवों में हैं ।

(१२) इसके वंश के वेरावत कहलाये ।

(१३) जि० १, पृ० १०५ ।

(१४) आग २, पृ० ८०५-६ ।

(१५) जि० २, पृ० १४६-७ ।

मुंहणोत नैणसी के ये कथन कि रणमल चूड़ा की मृत्यु के पश्चात् सोजत अथवा नागोर में रहा, माननीय नहीं कहे जा सकते । यह तो अपने पिता के जीवनकाल में ही उसकी इच्छा-
 ख्यातों आदि के कथन की जांच
 नुसार मारवाड़ का परित्याग कर चित्तोड़ के राणा लाखा के पास जा रहा था और बहुत समय तक वहीं रहा । नागोर तो उन दिनों गुजरात के सुलतानों के अधिकार में था, जिनकी तरफ से वहां मुसलमान शासक रहते थे; अतएव नागोर में उसके रहने की बात मानी नहीं जा सकती ।

उसकी भाटियों के साथ लड़ाई होने का उल्लेख प्रायः प्रत्येक ख्यात में मिलता है । कई ख्यातों में तो उसका ४१ बार भाटियों से लड़ना लिखा है, पर यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है और इसका उल्लेख जैसलमेर की तवारीख में नहीं है । यदि ख्यातों के इस कथन में कुछ भी सत्यता हो तो यही मानना पड़ेगा कि भाटियों के साथ रणमल की लड़ाई उसके मंडोवर पर अधिकार करने के बाद हुई होगी ।

मांडू के सुलतान के संबंध में ख्यातों आदि का यह कथन कि जब उसने चित्तोड़ पर चढ़ाई की उस समय वह रणमल के हाथ से मारा गया कपोलकल्पना ही है । जोधपुर राज्य की ख्यात में महाराणा का नाम मोकल दिया है । यह कथन ठीक नहीं है । वस्तुतः महपा पंचार के मांडू के सुलतान के पास जाने की खबर पाने पर महाराणा कुंभा ने सुलतान पर चढ़ाई की थी । इस चढ़ाई और उसमें राणा के विजयी होने का उल्लेख उसके राणपुर के शिलालेख^१ तथा कुंभलगढ़ की प्रशस्ति^२ में है । “वीर-विनोद” में इस लड़ाई का समय वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) दिया है और उस समय रणमल का भी उसमें विद्यमान होना तथा उसका सुलतान को गिरफ्तार करना लिखा है^३ । यह ठीक नहीं है, क्योंकि रणमल

(१) राणपुर का जैनमंदिर का शिलालेख; पंक्ति १७-१८ । भावनगर इन्स्टीट्यूट; पृ० ११४ ।

(२) कुंभलगढ़ की प्रशस्ति; श्लोक २६८-७० ।

(३) भाग १, पृ० ३१६-२० ।

तो उक्त संवत् के पूर्व ही मारा गया था, जैसा कि आगे बतलाया जायगा । महमूद वि० सं० १४६३ (ई० सं० १४३६) में अपने स्वामी मुहम्मद (राजनीखा) को मारकर मालवे का सुलतान बन गया था और वह वि० सं० १५३१ (ई० सं० १४७४) तक विद्यमान था । यदि ऊपर आई हुई लड़ाई में रणमल का भी साथ रहना माना जाय, तो यही मानना पड़ेगा कि वह वि० सं० १४६३ और १४६६ के बीच किसी समय हुई होगी, पर उसमें महमूद रणमल या किसी अन्य व्यक्ति के हाथ से मारा नहीं गया ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जब दिल्ली के बादशाह फ़ीरोज़ ने मारवाड़ पर चढ़ाई की तो रणमल ने उसे हराया । यह कथन भी निराधार है । फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ नाम का दिल्ली का बादशाह तो वि० सं० १४०८ से १४४५ (ई० सं० १३५१ से १३८८) तक दिल्ली का शासक रहा था, अतएव वह रणमल का समकालीन नहीं था । इस नाम का नागोर का शासक अवश्य हुआ था और वह रणमल का समकालीन भी था, पर उसकी कभी कोई चढ़ाई मंडोर पर हुई हो ऐसा पाया नहीं जाता । इस संबंध में दयालदास का यह लिखना भी कि रणमल ने फ़ीरोज़ और उसके भाई मुहम्मद को अपने पिता के वंश में मारा^१ निरी कल्पना ही है । फ़ीरोज़ तो हि० सं० ८५५ (वि० सं० १५०८ = ई० सं० १४५१) में, रणमल की मृत्यु के लगभग तेरह वर्ष बाद, मरा था^२, अतएव उसका रणमल के हाथ से मारा जाना कैसे संभव हो सकता है ।

टॉड का यह कथन कि रणमल ने मेवाड़ की सेना ले जाकर अजमेर पर राणा का अधिकार स्थापित किया, संभवतः राणा लाखा के राज्यकाल से संबंध रखता हो जिसके समय में वह वहां ही रहता था ।

चित्तोड़ में रणमल के धोखे से मारे जाने का वृत्तान्त जोधपुर के इतिहास से संबंध रखनेवाली प्रायः सब ही ख्यातों में मिलता है, पर उनसे

(१) जि० १, पृ० १०१-२ ।

(२) मिराते सिकन्दरी (आत्माराम मोतीराम दीवानजी-कृत अनुवाद); पृ० ६१ । बेले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० १४८ ।

इसके कारण पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ता । बात वस्तुतः यह थी कि मेवाड़ में रणमल का प्रभाव बढ़ गया था, जो सीसोदिये सरदारों को खटकने लगा था । फिर जब उसने महाराणा कुंभा के चाचा राघवदेव को छल से मरवा डाला, तबसे इन दोनों वंशों के बीच वैर उत्पन्न हो गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्त में रणमल चित्तोड़ में मारा गया^१ । ख्यातों में कहीं रणमल के मारे जाने का समय वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) और कहीं वि० सं० १५०० (ई० सं० १४७३) दिया है, पर ये संवत् भी ऊपर आये हुए ख्यातों के अन्य संवत्तों के समान ही कल्पित हैं । रणमल की मृत्यु के पश्चात् ही महाराणा कुंभा ने मंडोवर पर अधिकार कर लिया था । वि० सं० १४६६ (ई० सं० १४३६) के उसके राणपुर के शिलालेख में मंडोवर-विजय का स्पष्ट उल्लेख है^२ । अतएव रणमल का मारा जाना हम उक्त संवत् के पूर्व ही मान सकते हैं ।

जो ख्यातें इस समय उपलब्ध हैं, वे बहुत प्राचीन नहीं हैं । सबसे पुरानी ख्यात मुंहणोत नैणसी की है, जो वि० सं० १७०५ (ई० सं० १६४८) और १७२५ (ई० सं० १६६८) के बीच लिखी गई थी । दूसरी पांचवें अध्याय का सिंहावलोकन ख्यातें तो उससे बहुत पीछे की बनी हैं । ख्यातों के लिखे जाने के समय से अधिक से अधिक सौ वर्ष पूर्व तक के उनमें आये हुए इतिहास को हम कुछ अंशों में प्रामाणिक मान सकते हैं, लेकिन उससे पहले के वृत्तान्त अधिकांश कल्पित ही हैं । उनमें दिये हुए वृत्तान्तों का परस्पर एक दूसरी ख्यात से बहुधा मिलान भी नहीं होता । यदि एक ख्यात लेखक एक घटना का एक प्रकार से वर्णन करता है तो दूसरा उसी

(१) विस्तृत वृत्तान्त के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ५६४-५ तथा ५६६-६०२ ।

(२) राणपुर का जैनमन्दिर का शिलालेख; भावनगर इन्स्क्रिप्शन्स; पृ० ११४ । आर्कैयोलॉजिकल सर्वे ऑफ् इंडिया (एन्वुअल रिपोर्ट); ई० सं० १६०७-८; पृ० २१४-५ ।

घटना का बिल्कुल भिन्न वर्णन करता है। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में तो एक ही घटना के कई वृत्तान्त मिलते हैं। सच बात तो यह है कि वास्तविक इतिहास के ज्ञान के अभाव में ख्यात लेखकों ने जैसा कुछ भी सुना वैसा ही अपनी ख्यातों में दर्ज कर दिया। परिणाम यह हुआ कि उनके वृत्तान्तों में ऐतिहासिक सत्य का स्थान औपन्यासिक कल्पना ने ले लिया। साथ ही अपने देश या राज्य की गौरव-वृद्धि करने की लालसा से प्रेरित होकर ख्यात लेखक अनेक प्रकार की भूठी और असंभव कल्पनाएं करने तथा उन्हें अपनी ख्यात में स्थान देने से भी बाज़ न आये। यही कारण है कि हमें ख्यातों में स्थान-स्थान पर घटनाओं के रूप बदले हुए और वर्णन अतिशयोक्ति एवं आत्मश्लाघा से पूर्ण मिलते हैं।

पहले विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों की रुचि नहीं थी। केवल राजाओं, उनकी राणियों, कुंवों एवं कुंवरीयों के नाम ही बहुधा संग्रहों में लिखे जाया करते थे। इन नामों के संग्रह बहियों के रूप में अब भी मिलते हैं, पर उनमें दिये हुए सभी नाम ठीक हों, ऐसा देखने में नहीं आया। भिन्न-भिन्न संग्रहों में एक ही राजा के कुंवों आदि के नामों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। ऐसी दशा में वे भी ख्यातों के समान ही वास्तविक इतिहास के लिए प्रामाणिक नहीं ठहरते। पीछे से विस्तृत इतिहास लिखने की ओर लोगों की रुचि का मुकाब होने पर उन्होंने पहले के नामों के साथ जगह-जगह कल्पित वृत्तान्त बढ़ा दिये। यहां तक ही नहीं, बल्कि जो कुछ भी उन्होंने सुना था अथवा जो भी उन्हें ज्ञात था, वह सब भी, अप्रासंगिकता की ओर दृष्टिपात न करते हुए, उन वृत्तान्तों में भर देना वे न भूले। फल यह हुआ कि ख्यातों में दिये हुए प्रारम्भिक वृत्तान्त ऊट-पटांग बातों का अच्छा-खासा संग्रह बन गये। ख्यात-लेखकों का ज्ञान कितना कम था, यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि राव सीढ़ा की राणी पार्वती और उससे बहुत पीछे होनेवाले राव रणमल की राणी कोइमदे (राव जोधा की माता) एवं जोधा की पुत्री शृंगारदेवी के नाम तक उन्हें ज्ञात न थे। जहां ख्यातों में राणियों और सन्तति का विस्तृत हाल मिलता है,

वहाँ इन नामों का न होना ख्यातों की प्रामाणिकता के विषय में गहरा सन्देह उत्पन्न कराता है।

यही हाल ख्यातों में दिये हुए संवत्‌ों का भी है। जब वास्तविक इतिहास से ही ख्यात-लेखक अनभिज्ञ थे तो भला सही संवत् वे कहां से लाते ? यही कारण है कि पूर्व के राजाओं का कल्पित वृत्तान्त देने के समान ही उन्होंने जगद-जगद उनके जन्म, गद्दीनशीनी, मृत्यु आदि के संबंध के कल्पित संवत्‌ धर दिये। राव सीदा और राव धूहड़ के स्मारक लेखों के मिल जाने से अब इस विषय में ज़रा भी सन्देह नहीं रह जाता कि राव जोधा से पहले के जोधपुर के राजाओं के ख्यातों में दिये हुए संवत्‌ पूर्णतया कल्पित हैं। भिन्न-भिन्न ख्यातों में दिये हुए एक ही घटना के संवत्‌ों में भी बड़ा अन्तर पाया जाता है, जैसा कि ऊपर आये हुए राव सीदा से लगाकर राव रणमल तक के वृत्तान्तों में बतलाया गया है। वस्तुतः पहले के ठीक-ठीक संवत्‌ ख्यात-लेखकों को ज्ञात न थे, जिससे उन्होंने मनगढ़न्त संवत्‌ों का अपने ग्रन्थों में समावेश कर दिया, जो वास्तविक इतिहास के लिए सर्वथा निरुपयोगी हैं।

जोधपुर राज्य के इन पहले के राजाओं के संवत्‌ों की अप्रामाणिकता उस समय और भी स्पष्ट हो जाती है, जब हम निश्चित ज्ञात संवत्‌ों के सहारे उनका औसत राज्यकाल निकालने हैं। वि० सं० १३३० में राव सीदा का देहांत हुआ था, यह अब सच इतिहासवेत्ता मानने लगे हैं। राव रणमल की मृत्यु हम वि० सं० १४६५ से पीछे नहीं मान सकते, क्योंकि वि० सं० १४६६ से पूर्व महाराणा कुंभा ने मंडोयर ले लिया था, जैसा उक्त संवत्‌ की राणपुर की प्रशस्ति से निश्चित है। यदि हम राव आसथान से लगाकर राव रणमल तक जोधपुर के सीलह राजाओं का औसत राज्य समय निकालें तो वह केवल दस वर्ष आता है। इस थोड़ी अवधि को इतिहास स्वीकार नहीं कर सकता, क्योंकि किसी भी राज वंश के सोलह या उससे एक-दो कम राजाओं का निश्चित समय के आधार पर निकाला हुआ औसत राज्यसमय इससे बहुत अधिक आता है। उदाहरणार्थ—

- (१) महाराणा रत्नसिंह से लगाकर महाराणा हम्मीरसिंह तक उदयपुर के १६ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग १५^३/_४ वर्ष ।
- (२) राव कल्याणसिंह से लगाकर महाराजा डूंगरसिंह तक बीकानेर के १६ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २१ वर्ष ।
- (३) महाराजा मानसिंह (प्रथम) से लगाकर महाराजा माधोसिंह (द्वितीय) तक जयपुर के १४ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २४ वर्ष ।
- (४) रावराजा भोज से लगाकर रावराजा रघुवीरसिंह तक बूंदी के ११ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग ३१ वर्ष ।
- (५) बादशाह अकबर से लगाकर बहादुरशाह (द्वितीय) तक १६ मुगल शासकों का औसत राज्यसमय लगभग १६ वर्ष ।

स्वयं जोधपुर के पीछे के राजाओं का औसत राज्यसमय पहले के राजाओं से कहीं अधिक आता है । महाराजा सूरसिंह से लगाकर महाराजा सुमेरसिंह तक जोधपुर के पीछे के १४ राजाओं का औसत राज्यसमय लगभग २३ वर्ष होता है । ऐसी दशा में यही मानना पड़ेगा कि या तो जोधपुर के राव धूहड़ से लगाकर राव रणमल तक के १६ नामों में कुछ नाम भाटों ने कृत्रिम धर दिये या यह कहना पड़ेगा कि एक भाई का वंश समाप्त होने पर पीछे से जब दूसरे भाई का वंश गद्दी पर आया तो भाटों ने दूसरी शाखा के पूर्वजों के नाम भी पहली शाखा वालों के साथ जोड़ दिये । उदयपुर राज्य के इतिहास में ऐसा होने का उदाहरण मिलता है । रावल रणसिंह (कर्णसिंह) से दो शाखाएं फटीं—बड़ी चित्तोड़ की रावल शाखा और छोटी सीसोदे की राणा शाखा । रावल शाखा की समाप्ति वि० सं० १३६० (ई० सं० १३०३) में रावल रत्नसिंह के साथ हुई, जिसका उत्तराधिकारी सीसोदे की शाखा का हम्मीरसिंह हुआ । भाटों ने रत्नसिंह के पीछे हम्मीरसिंह तक के उसके पूर्वपुरुषों के १३ नाम भी शामिल कर दिये । यह अशुद्धि प्राचीन शिलालेखों तथा पुस्तकों आदि से ही ठीक हो सकी ।

ख्यातों में बहुधा कई स्थलों पर कल्पित वृत्तान्तों की पुष्टि में कवितायें भी मिलती हैं, परन्तु वे समकालीन लेखकों की रचनायें न होकर बहुत पीछे की बनी हुई प्रतीत होती हैं। अधिकांश में तो उनके रचयिताओं के नाम का भी पता नहीं चलता। ऐसी दशा में वे भी वास्तविक इतिहास के लिए न तो प्रामाणिक हैं और न उपयोगी ही।

इन सब बातों पर दृष्टि रखते हुए तो हमें यही कहने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि राव सीहा से लगाकर राव रणमल तक का जोधपुर राज्य का वास्तविक इतिहास अब तक अन्धकार में ही है। उनमें से दो—राव सीहा और राव धूदड़—के मृत्यु के संवत्‌ों को छोड़कर अन्य किसी भी राजा के जन्म, राज्यारोहण, मृत्यु आदि के ठीक संवत् और स्थान बात नहीं हुए हैं और न उनके समय के शिलालेख, प्रशस्तियाँ, पुस्तकें आदि ही मिली हैं। जो दो स्मारक लेख मिले हैं, उनको दूढ़ निकालने का श्रेय, जैसा हम ऊपर लिख आये हैं, ब्रह्मभट्ट नानूगाम को है। वर्तमान जोधपुर के राजवंश के मूलपुरुष राव सीहा और उसके पौत्र राव धूदड़ के स्मारकों का मिल जाना ही यह सिद्ध करता है कि उनके यहां स्मारक बनाने की रीति प्रारम्भ से ही चली आती है। अतएव उनके पीछे के राजाओं के स्मारक भी कहीं न कहीं अवश्य निद्यमान होने चाहिये। आवश्यकता है ऐसे लगनशील सच्चे इतिहासप्रेमी व्यक्ति की जो मारवाड़ के गांव-गांव में उनकी तलाश करे। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक हमें जोधा से पूर्व के जोधपुर के राजाओं के इतिहास के लिए ख्यातों का ही आश्रय लेना पड़ेगा। परस्पर विभिन्न और अधिकांश कल्पनामूलक होने के कारण ख्यातों के वर्णन भरोसे के लायक नहीं हैं, जिसकी ओर हमने स्थान-स्थान पर ऊपर संकेत किया है। अन्य साधनों के अभाव में हमें ऊपर आये हुए जोधपुर के १७ राजाओं के वृत्तान्त के लिए ख्यातों का ही आश्रय लेना पड़ा है। उनका वृत्तान्त हमने ख्यातों में जैसा कुछ भी लिखा पाया वह ऊपर ज्यों का त्यों संग्रह कर दिया है। विशादास्पद तथा संदिग्ध विषयों पर यथास्थान टिप्पणों एवं प्रत्येक राजा के वृत्तान्त के अन्त में दिये हुए “ख्यातों के कथन

की जांच" शीर्षक के अन्तर्गत हमने यथासंभव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। इससे अधिक, जब तक और शोध न हो जाय, लिखना संसम्भव है और यदि बिना प्रमाण कुछ लिखा भी जाय तो वह व्यर्थों के समान ही निराधार एवं काल्पनिक होगा।

छठा अध्याय राव जोधा से राव गांगा तक

राव जोधा

राव जोधा का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १४७२ (चैत्रादि १४७३)
वैशाख वदि (? सुदि) ४ (ई० सं० १४१६ ता० १ अप्रैल) बुधवार^१ को
जोधा का मेवाड़ से भागना हुआ था^२ । अपने पिता के मारे जाने के समय वह
तथा चूड़ा का मंडोवर अपने अन्य भाइयों सहित तलहटी में था । राव
पर अधिकार करना रणमल पर चूक होते ही एक डोम ने किले की
दीवार पर चढ़कर उच्च स्वर से यह दोहा गाया—

चूड़ा अजमल आविया, मांडू हूं धक आग ।
जोधा रणमल मारिया, भाग सके तो भागें ॥

(१) खन्डू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में वैशाख वदि ४ बुधवार ही दिया है और उसके साथ में सूर्य का मेष के छः अंश पर होना लिखा है । श्रावणादि अथवा चैत्रादि वर्ष मानने से वैशाख वदि ४ को बुधवार नहीं आता । जोधपुर राज्य में वर्ष का आरम्भ श्रावण से होता है । इसको दृष्टि में रखते हुए वैशाख वदि ४ को मङ्गलवार और उस दिन सूर्य का मीन के सत्रह अंश पर होना पाया जाता है । सूर्य मेष के छः अंश पर वैशाख सुदि ४ को आया था और उस दिन बुधवार भी था । अतएव जोधा की जन्म-तिथि में सुदि के स्थान में वदि लिख दिया गया हो, यही मानना पड़ेगा ।

(२) दयालदास की ख्यात में भी चंडू के जन्मपत्रियों के संग्रह के समान ही वैशाख वदि ४ बुधवार दिया है (जि० १, पृ० १०६), पर यह ठीक नहीं है (देखो ऊपर टि० १) । “वीरविनोद” में चतुर्थी के स्थान में चतुर्दशी तिथि है (भाग २, पृ० ८०६) तथा टॉड ने जोधा का जन्म वि० सं० १४८४ के वैशाख मास में माना है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६४७), पर इन दोनों के कथन शक्य हैं । कोई-कोई अखैराज को जोधा से बड़ा मानते हैं, जो भ्रम ही है ।

(३) मेवाड़ में यह पूरा दोहा इसी तरह प्रसिद्ध है । ख्यातों में इसके अंतिम दो शरण ही मिलते हैं । किसी किसी ख्यात में एक ढोली का सहनाई में उपशुक्र दोहे का पिछला शरण गाकर सुनाना लिखा है (दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० १०५) ।

ये शब्द सुनते ही तलहटीवालों ने जान लिया कि राव रणमल मारा गया और जोधा अपने भाइयों आदि सहित मारवाड़ की तरफ भागा। राठोड़ भीम चूड़ावत को शराब के नशे में बेहोश पड़े रहने के कारण उसने वहीं छोड़ दिया। उस समय जोधा के पास सात सौ सवार थे। चूड़ा ने उसका सैन्य सहित पीछा किया। चित्तोड़ से कपासण जाते हुए मार्ग में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई, जहां दोनों तरफ के बहुत से आदमी काम आये। इसके बाद कई स्थानों पर और कई लड़ाइयां हुई, पर अन्त में बचे हुए सात सवारों सहित जोधा मारवाड़ पहुंच गया^३। तब चूड़ा ने मारवाड़ में प्रवेश कर मंडोवर पर अधिकार कर लिया। फिर अपने पुत्रों—कुन्तल, मांजा, सूया—तथा भाला विक्रमादित्य एवं हिंगुलू आहाड़ा आदि को वहां के प्रबन्ध के लिए छोड़कर वह स्वयं चित्तोड़ लौट गया^४। जोधा निराश होकर वर्तमान बीकानेर से दस कोस दूर काहनी (कावनी) गांव में जा रहा^५। मंडोवर के राज्य पर महाराणा का अधिकार हो गया और जगह-जगह उसकी तरफ से थाने क़ायम कर दिये गये^६।

एक मास तक जोधा काहनी गांव^७ में ठहरकर फिर मंडोवर लेने

(१) यह राव रणमल के चित्तोड़ में रहते समय ही महाराणा कुंभा के बुलाने पर चित्तोड़ आ गया था (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६००-१)।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात से पाया जाता है कि मांडल पहुंचने पर जोधा की कांधल से भेंट हुई। वहीं पर जोधा ने उसे रावताई का टीका दिया (जि० २, पृ० १०६)। दयालदास की ख्यात में भी इसका उल्लेख है (जि० १, पृ० १०६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४०। उक्त ख्यात के अनुसार इन्हीं लड़ाइयों में से एक में बरजांग भीमोत) घायल होकर सीसोदियों के हाथ में पड़ गया था।

(४) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२२।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४१।

(६) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६०२।

(७) दयालदास की ख्यात से पाया जाता है कि महाराणा के आदेशानुसार उसके आश्रय में रहनेवाले सत्ता के पुत्र नर्यद ने कई बार जोधा से युद्ध किया, पर उसे सफलता नहीं मिली (जि० १, पृ० १०६-७)। इस कथन में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है, क्योंकि अन्य ख्यातों आदि में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

की कोशिश करने लगा। कई बार उसने मंडोवर पर आक्रमण किया, परन्तु प्रत्येक बार हारकर ही भागना पड़ा। एक दिन मंडोवर-प्राप्ति का प्रयत्न करते-करते मंडोवर से भागता हुआ, भूख से व्याकुल होकर वह एक जाट के घर में ठहरा, जिसकी स्त्री ने थाली भर गरम 'घाट' (मोठ और बाजरे की खिचड़ी) उसके सामने लाकर रख दी। जोधा ने तुरंत उस थाली के बीच में हाथ डाल दिया, जिससे वह जल गया। यह देखकर उस स्त्री ने कहा—“तू तो जोधा जैसा ही निर्वुद्धि दीख पड़ता है।” इसपर उसने पूछा—“बाई, जोधा निर्वुद्धि कैसे है ?” उसने उत्तर में कहा—“जोध्या निकट की भूमि पर तो अपना अधिकार जमाता नहीं और एकदम मंडोवर पर जाता है, जिससे अपने घोड़े और राजपूत मरवाकर उसे प्रत्येक बार निराश होकर भागना पड़ता है। इसीसे मैं उसको निर्वुद्धि कहती हूँ। तू भी वैसा ही है, क्योंकि किनारे से तो खाता नहीं और एकदम बीच की गरम घाट पर हाथ डालता है।” इस घटना से शिक्षा पाकर जोधा ने मंडोवर लेना छोड़कर सबसे पहले अपने निकट की भूमि पर अधिकार करना ठाना, क्योंकि पहले कई वर्षों तक उद्योग करने पर भी मंडोवर लेने में उसे सफलता न हुई थी।

जोध्या की यह दशा देखकर महाराणा की दादी हंसबाई ने एक दिन कुंभा को अपने पास बुलाकर कहा—“मेरे चित्तोड़ व्याहे जाने में राठोड़ों का सब प्रकार नुकसान ही हुआ है। रणमल ने मोकल को मारनेवाले चाचा और मेरा को मारा, मुसलमानों को हराया और मेवाड़ का नाम ऊंचा किया, परन्तु अन्त में वह भी मरवाया गया और आज उसी का पुत्र जोधा निस्सहाय होकर मरभूमि में मारा-मारा फिरता है।” इसपर महाराणा ने कहा कि “मैं प्रकट रूप से तो चूंडा के विरुद्ध जोधा को कोई सहायता नहीं दे सकता, क्योंकि रणमल ने उसके भाई राघवदेव को मरवाया था। आप जोधा को लिख दें कि वह मंडोवर पर अपना अधिकार

कर ले, मैं इस बात से नाराज़ न होऊंगा।" तदनन्तर हंसबाई ने आशिया चारण झूला को जोधा के पास यह सन्देश देने के लिए भेजा। वह चारण उसे दूंदता हुआ मारवाड़ की थलियों के गांव भाडंग और पड़ावे के जंगलों में पहुंचा, जहां जोधा अपने कुछ साथियों सहित बाजरे के सिट्टों से अपनी खुशान्त कर रहा था। चारण ने उसे पहचानकर हंसबाई का सन्देश सुनाया।

इस कथन से उसे कुछ आशा बंधी, परन्तु उसके पास घोड़े न होने से वह सेत्रावा के रावत लूणा (लूणकरण) के पास गया, जिससे उसने कहा कि मेरे पास राजपूत तो हैं, परन्तु घोड़े मर गये हैं। आपके पास ५०० घोड़े हैं, उनमें से २०० मुझे दे दें। उसने उत्तर दिया कि मैं राणा का आश्रित हूं, इसलिए यदि मैं तुम्हें घोड़े दूंगा तो राणा मेरी जागीर छीन लेगा। इसपर वह लूणा की स्त्री भटियाणी (अपनी मौसी) के पास गया। जोधा को उदास देखकर उसने उसकी उदासी का कारण पूछा, तो उस (जोधा) ने कहा कि मैंने रावतजी से घोड़े मांगे थे, पर उन्होंने दिये नहीं। इसपर भटियाणी ने कहा कि चिन्ता मत कर मैं तुम्हें घोड़े दिलाती हूं। फिर उसने अपने पति को बुलाकर कहा कि अमुक आभूषण तो शास्त्राने में रख दो। जब रावत तो शास्त्राने में गया तो उसकी स्त्री ने किवाड़ बन्द कर बाहर से ताला लगा दिया और जोधा के साथ अपनी एक दासी भेजकर अस्तबल-बालों से कहलाया कि रावतजी का हुक्म है कि जोधा को सामान सहित घोड़े दे दो। जोधा वहां से १४० घोड़े लेकर रवाना हो गया। कुछ देर बाद भटियाणी ने अपने पति को ताला खोलकर बाहर निकाला। रावत अपनी ठकुराणी और कामदारों पर बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने घोड़ों के चरवादारों को पिटवाया, परन्तु गये हुए घोड़े पीछे न मिल सके। उधर हरबू

(१) वीरविनोद; भाग १, पृ० ३२३-४।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४२-३। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १२६-३०। बांकीदास ने भी जोधा को रावत लूणा से घोड़े मिलना लिखा है (ऐतिहासिक बानें: संख्या १५६)।

(हरभम्) सांखला' भी, जो एक सिद्ध माना जाता था, जोधा का सहायक हो गया'।

इस प्रकार घोड़े पाकर सबसे पहले जोधा ने महाराणा के सबसे प्रबल चौकड़ी के थाने पर हमला किया, जहां भाटी वणवीर, राणा बीसल-
 देव, रावल दूदा आदि राणा के राजपूत अफसर
 जोधा का चौकड़ी, कोसाणा तथा
 सोजत पर अधिकार होना मारे गये और उनके घोड़े आदि जोधा के हाथ
 लगे। वहां से कोसाणे को जीतकर जोधा मंडोवर
 पर पहुंचा जहां लड़ाई हुई, जिसमें राणा के कई आदमी मारे गये और
 वि० सं० १५१० (ई० सं० १४५३) में वहां पर जोधा का अधिकार हो
 गया। इसके बाद जोधा ने सोजत पर भी अधिकार कर लिया^३।

जोधपुर राज्य की ख्यात में यह भी लिखा मिलता है कि मंडोवर
 लेने की खबर पाकर राणा कुंभा बड़ी सेना के साथ जोधा पर चढ़ा और
 पाली में आ ठहरा। इधर से जोधा भी लड़ने को
 जोधा पर राणा कुंभा की
 चढ़ाई खला, परन्तु घोड़े दुबले और थोड़े होने से ५०००
 बैलगाड़ियों में २०००० राठोड़ों को बिठलाकर वह

(१) जांगलू के सांखला राणा राजसी के दूसरे पुत्र राणा अभा के पौत्र मह-
 राज का पुत्र। यह बड़ा वीर व्यक्ति था और राजपूताने में सिद्ध माना जाता है।

(२) मुंहयोत नैयसी (जि० २, पृ० १२६) तथा जोधपुर राज्य की ख्यात
 (जि० १, पृ० ४२) में जोधा का हरवू से मिलने का उल्लेख है। उक्त ख्यातों के अनु-
 सार यह घटना सेनावा के रावल से घोड़े लेने के पूर्व हुई थी। दयालदास की ख्यात में
 भी कुछ अन्तर के साथ ऐसा ही लिखा है (जि० १, पृ० १०७-८)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४३-४। दयालदास की ख्यात में
 पहले मंडोवर लेकर तब चौकड़ी पर जोधा का आक्रमण करना लिखा है। इसके अनन्तर
 उसने सोजत विजय किया, जहां उक्त ख्यात के अनुसार वह दो वर्ष तक रहा। मेड़ते
 और अजमेर की तरफ जोधा ने कांधल को भेजा, जिसने मैहंदे में रहनेवाली राणा की
 सेना को परास्त करके भगाया (जि० १, पृ० १०८-९)। बांकीदास ने भी चौकड़ी तथा
 बीसला से राणा के थाने हटाकर जोधा का सोजत लेना लिखा है (ऐतिहासिक बातें;
 संख्या ८०३)। कर्नल टॉड ने सोजत पर जोधा के अधिकार करने का समय वि० सं०
 १५११ (ई० सं० १४५४) दिया है (राजस्थान; जि० १, पृ० १४७)।

पाली की ओर अग्रसर हुआ। जोधा के नक्कारे की आवाज़ सुनते ही राणा अपने सैन्य सहित बिना लड़े ही भाग गया। फिर जोधा ने मेवाड़ पर हमलाकर चित्तोड़ के किछाड़ जला दिये, जिसपर राणा ने आपस में सम्मोता करके जोधा को सोजत दिया और दोनों राज्यों के बीच की सीमा नियत कर दी।

परन्तु उपर्युक्त कथन आत्मश्लाघा, खुशामद एवं अतिशयोक्ति से परिपूर्ण है। कहां तो महाराणा कुंभा, जिसने मालवे और गुजरात के सुलतानों को कई बार परास्त किया था, जिसने दिल्ली के सुलतान का कुछ प्रदेश छीन लिया था, जिसने राजपूताने का अधिकांश तथा मालवे एवं गुजरात राज्यों के कुछ भाग अपने राज्य में मिला लिये थे और जो अपने समय का सबसे प्रबल हिन्दू राजा था और कहां एक छोटे से इलाके का स्वामी जोधा, जिसने कुंभा के इशारे से ही मंडोवर लिया था। राजपूताने के राज्यों की ख्यातों में आत्मश्लाघापूर्ण पेसी झूठी बातें भरी पड़ी हैं, इसीसे हम उनको इतिहास के लिए बहुधा निरूपयोगी समझते हैं। महाराणा ने दूसरी बार मारवाड़ पर चढ़ाई की ही नहीं। हां, पीछे से जोधा ने अपनी पुत्री शृङ्गारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ किया, जिससे अनुमान होता है कि जोधा ने मेवाड़वालों के साथ का बैर अपनी पुत्री व्याह कर मिटाया हो, जैसा कि राजपूतों में प्राचीन प्रथा है। जोधपुर राज्य की ख्यात में न तो इस विवाह का उल्लेख है और न जोधा की पुत्री शृङ्गारदेवी का नाम मिलता है, जिसका कारण यही है कि वह ख्यात वि० सं० १८०० से भी पीछे की बनी हुई होने से उसमें पुराना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४४-५। दयालदास की ख्यात में भी लगभग ऐसा ही वर्णन है (जि० १, पृ० १०६)। आगे चलकर उसमें जोधपुर बसने के बाद जोधा का नापा सांखले के लिखने पर एक बार फिर मेवाड़ पर चढ़ाई करना और वहां दो सरदारों के द्वन्द्व-युद्ध-द्वारा उसका निर्याय होना लिखा है (जि० १, पृ० १११-२)। मुंहशोत नैयसी की ख्यात में यही घटना जोधपुर बसने के पूर्व लिखी है (जि० २, पृ० १३०-३१), पर आत्मश्लाघा से पूर्ण होने के कारण ख्यातों के ये कथन माननीय नहीं कहे जा सकते।

वृत्तान्त भाटों की ख्यातों या सुनी-सुनाई बातों के आधार पर लिखा गया है, जो अधिकांश में अविश्वसनीय हैं। शृंगारदेवी ने चित्तोड़ से अनुमान १२ मील उत्तर के घोसुंडी गांव में वि० सं० १५६१ (ई० स० १५०४) में एक बावली बनवाई थी, जिसकी संस्कृत प्रशस्ति में, जो अब तक विद्यमान है, उसका जोधा की पुत्री होने तथा रायमल के साथ विवाह आदि का विस्तृत वृत्तान्त है' ।

(आध्यादि) वि० सं० १५१५ (जैत्रादि १५१६) ज्येष्ठ सुदि ११ (ई० स० १४५६ ता० १२ मई) शनिवार^१ को जोधा ने चिड़ियाटूंक पहाड़ी पर नये गढ़ की नींव रखी। इस गढ़ की नींव में राजिया नामक भांड़ी ज़िंदा ही गड़ा था। गढ़ के नीचे अपने नाम पर जोधा ने नया नगर जोधपुर बसाया और मंडोवर के स्थान पर उसे अपनी राजधानी बनाया^२ ।

कुछ समय पीछे राव जोधा ने प्रयाग, काशी और गया^३ की यात्रा

(१) जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बङ्गाल; जि० ५५, भाग १, पृ० ७६-८२ ।

(२) अधिकांश ख्यातों में यही संवत् मिलता है। केवल एक पुराने वंशावली के पत्र में वि० सं० १५१४ दिया हुआ है ।

(३) मुहम्मद नैयसी की ख्यात; जि० २, पृ० १३१ । जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४६ । दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० १०६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६ ।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव जोधा जिस समय गया-यात्रा के लिए रवाना हुआ, उस समय कन्नोज का स्वामी कान्हू था, जो आगरे में बादशाह की सेवा में रहता था। आगरे में राव का डेरा होने पर राजा कान्हू उससे आकर मिला। उसने उसका अच्छा स्वागत किया और ये दोनों भाई शामिल रहे। उससे परामर्श कर जोधा उसके साथ बादशाह के पास उपस्थित हुआ, जिसने उस (जोधा) के प्रार्थना करने पर गया के यात्रियों पर लगनेवाला कर माफ़ कर दिया। वहां से विदा होते समय बादशाह ने उसे गया के मार्ग में पड़नेवाली मोमियों की दो गड़ियां तोड़ने का आदेश किया, जिसकी पूर्ति जोधा ने गया से लौटते समय की (जि० १, पृ० ४५-६) । आगे चलकर

की। इसका उल्लेख उसकी पुत्री शृङ्गारदेवी की घोसुंडी गांव में बनवाई हुई बावड़ी पर के वि० सं० १५६१ (ई० सं० १५०४) के लेख में आया है^१, एवं उसकी प्रयाग और गया की यात्रा का उल्लेख बीटू सूजारचित "जैतसी रो छन्द" नामक पुस्तक में भी है^२। घोसुंडी के लेख से यह भी पता

उसी ख्यात में लिखा है कि पीछे से जब दिल्ली के बादशाह बहलोलखान लोदी ने मारवाड़ पर चढ़ाई की तब जोधा ने उससे लड़ाई कर उसे भगा दिया (जि० १, पृ० ४६)। राव जोधाने प्रयाग और काशी के साथ साथ गया की यात्रा अवश्य की थी, पर ख्यात का तत्सम्बन्धी वर्णन कपोल-कल्पना ही है। कन्नौज पर तो उन दिनों मुसलमानों का राज्य था (देखो इम्पीरियल गैज़टियर ऑफ़ इंडिया; जि० १४, पृ० ३११), अतएव कान्हू का वहां का स्वामी होना कैसे माना जा सकता है। बहलोलखान लोदी उस समय दिल्ली का शासक अवश्य था पर उसने मारवाड़ पर चढ़ाई की हो ऐसा पाया नहीं जाता। जोधपुर राज्य की ख्यात के इन वर्णनों की सुहृणांत नैणसी आदि की ख्यातों से भी पुष्टि नहीं होती।

(१) ... श्रीयोधक्षितिपतिरुग्रः (रुग्रखन्ना) खड्गधारानिर्घातप्रहृत-

पठाणपरशीकः ॥ ५ ॥

पूर्वानताप्सीत (२) गयया विमुक्तया

काश्यां सुवर्णैर्विमुलैर्विपश्चितः ॥

वितीर्य कन्याविधिवत्तुताप यो

यो (५) यात्रप्रयागे मरुमेदिनीपतिः ॥ ६ ॥

राव जोधा की पुत्री शृङ्गारदेवी की बनवाई हुई घोसुंडी (मेवाड़) की बावड़ी की प्रशस्ति (जर्नल ऑफ़ दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ़ बंगाल; जि० ५५, भाग १, ई० सं० १८८६, पृष्ठ ८०)।

(२) पुत्रे जाग्रे कउँण गुण

वाजइ तूर अनन्त ।

मात गया तटि पिएडडउ

दियइ भुवन्त भुवन्त ॥ ३१ ॥

चलता है कि आगे चलकर जोधा का मुसलमानों से भी युद्ध हुआ। नैणसी के कथनानुसार एक युद्ध उसे दिल्ली के लोदी बादशाह बहलोल (खि० सं० १५०८ से १५३६=ई० सं० १४५१ से १४८६) के अफसर सारंगखां से करना पड़ा था, जिसका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे।

इसके थोड़े समय पीछे ही उसके कुंवर बीका ने अपने चाचा कांधल और सांखला नापा आदि को साथ ले ससैन्य जांगलू की तरफ प्रस्थान किया। फिर क्रमशः उधर के इलाकों पर अधिकार कर उसने बीकानेर के स्वतंत्र राज्य की नींव डाली। इसका सविस्तर हाल आगे बीकानेर राज्य के इतिहास में राव बीका के वृत्तांत में लिखा जायगा।

खि० सं० १५२५ (ई० सं० १४६८) में एक दिन कुंभा का राज्य-लोभी ज्येष्ठ पुत्र ऊदा (उदयसिंह) अपने पिता मद्दाराणा कुंभा को कटार से मारकर मेवाड़ का स्वामी बन गया, परन्तु उसके इस दुष्ट कार्य से बड़े-बड़े सरदार उसके विरोधी हो गये और उस पितृघाती का राज्यच्युत करने का उद्योग करने लगे। ऊदा ने यह स्थिति देख अपना पक्ष सबल करने के लिए पड़ोसियों को अपना सहायक बनाना निश्चय किया और वह उन्हें भूमि देने लगा। ऐसा कहा जाता है कि राव जोधा को भी उसने अजमेर और सांभर के इलाके दिये थे।

छन्द पाधड़ी

जोध रा जोध जस राति जांगि

पुन करण गया पुहतउ प्रियांगि ।

सन्मान करिय करि पिएड सारि

तरपणइ पितर सन्तोखि तारि ॥ ३२ ॥

बीठू सूजा: राव जैतसीरो छन्द ।

इस ग्रन्थ की रचना खि० सं० १५६२ (ई० सं० १५३५) के लगभग हुई थी।

नैणसी का कथन है कि राव जोधा की एक पुत्री राजबाई का विवाह छापर-द्रोणपुर के स्वामी मोहिल अजीतसिंह से हुआ था । एक बार जब वह अपनी सुसगल मंडोवर आया हुआ था तो राव जोधा ने मोहिलों की भूमि हस्तगत करने का विचार किया, परन्तु प्रबल अजीतसिंह

जोधा का छापर द्रोणपुर
पर अधिकार

के रहते वह प्रदेश हाथ नहीं आ सकता था । तब राव ने अजीत (अपने जामाता) को मार डालने का विचार किया । राव की राणी भटियाणी (अजीत की सास) को अपने पति के प्रयत्न का पता लग गया और उसने इसकी सूचना अजीत के प्रधानों को दे दी । प्रधान जानते थे कि अजीत यों भागना पसन्द न करेगा, अतएव उससे यह कहलाया गया कि छापर से समाचार आया है कि यादवों ने राणा बछुराज (सांगावत) पर आक्रमण कर दिया है, जिससे उसने उम् (अजीत) को सहायता के लिए बुलाया है । यह सुनते ही अजीत ने तुरंत वहां से प्रस्थान किया । राव जोधा को जब इसका पता लगा तो वह समझ गया कि अजीत पर की जानेवाली चूक का भेद खुल गया और उसने अजीत का पीछा किया । द्रोणपुर से तीन कोस दूर गणोड़ा गांव में दोनों तरफ की फौजों का सामना हुआ । प्रधानों ने अजीत से सारा हाल सच-सच कह दिया, तब तो वह उनपर बहुत बिगड़ा । फिर उसने साथियों समेत राव जोधा का मुक्काबिला किया, पर अपने ४५ राजपूतों सहित वह काम आया । उसी दिन से राठोड़ों तथा मोहिलों में वैर बंध गया । इस घटना के एक वर्ष पीछे राव जोधा ने सेना इकट्ठी कर फिर मोहिलों पर चढ़ाई की । इस बार राणा बछुराज १६५ साथियों समेत मारा गया और राव जोधा की विजय हुई, परन्तु बोधाराव का पुत्र मेघा वहां से निकल भागा और छापर के इलाके पर राव जोधा का अमल हो जाने पर छापा मार-मार कर उसे तंग करने लगा । राव जोधा ने जान लिया कि जब तक मेघा जीवित है वसुधा बसने की नहीं, अतएव दो मास बाद द्रोणपुर छोड़कर वह मंडोर चला गया । उसके पीठ फेरते ही मेघा छापर ोणपुर में आ जमा । कुछ वर्षों बाद उसका देहान्त हो जाने पर उस प्रदेश

में फिर अराजकता फैल गई। मोहिल आपस में लड़ने लगे, जिससे उनका बल क्षीण होता गया। राव जोधा ने यह अच्छा अवसर जान उनपर फिर चढ़ाई कर दी। मेवा का उत्तराधिकारी राणा वैरसल तथा उसका छोटा भाई नरबद बिना युद्ध किये ही भाग गये। वे कुछ दिन तो फ़तहपुर, भूजणू और भटनेर में रहे, परन्तु पीछे से मेवाड़ में राणा कुंभा के पास चले गये। एक अर्से तक वहां रहने के बाद स्वयं भूमि वापस ले सकने में अपने आपको असमर्थ देख नरबद और राठोड़ बाघा (कांथल का पुत्र) किसी सबल की शरण लेने के लिए दिल्ली के लोदी (बदलोल) बादशाह के पास चले गये, जिसने सारंगखां पठान को पांच हज़ार सवार देकर उनकी कुमक पर भेजा। सारंगखां को साथ लिए नरबद व बाघा भूजणू के पास पहुंचे, जहां राणा वैरसल भी उनसे आ मिला। छः हज़ार सेना के साथ राव जोधा भी सम्मुख आया और दोनों ओर युद्ध के आयोजन होने लगे। उस वक्त राव ने बाघा राठोड़ को गुप्त रीति से अपने पास बुलाया और कहा—“शाश्वत भतीजे! मोहिलों के वास्ते तू अपने भाइयों पर तलवार उठाकर भौजाइयों और स्त्रियों को कैद करावेगा।” यह सुनकर बाघा के मन में भी विचार हुआ कि उसका कार्य अनुचित है और वह जोधा का मददगार हो गया। फिर युद्ध कर राव ने मोहिलों और पठानों को हराकर भगा दिया। इस युद्ध में सारंगखां ५५५ पठानों के साथ मारा गया और वैरसल मेवाड़ में भाग गया तथा नरबद फ़तहपुर के पास पड़ा रहा। वि० सं० १५३२ (ई० सं० १४७५) में द्रोणपुर में राव जोधा का जमाव हो गया और वहां अपने पुत्र जोगा को छोड़ वह स्वयं मंडोधर लौट गया, परन्तु सीधे-सादे जोगा से वहां का इलाक़ा न संभला, अतएव राव जोधा ने उसे बुला लिया और उसके स्थान पर अपने दूसरे पुत्र बीदा को भेज दिया, जिसने

(१) नैणसी ने वि० सं० १५३२ (ई० सं० १४७५) में राव जोधा का छापरा द्रोणपुर पर अमल होना लिखा है। वि० सं० १५२५ (ई० सं० १४६८) में ही कुंभा मारा गया था। ऐसी दशा में वैरसल और नरबद का कुंभा के पास जाकर रहना असम्भव है, क्योंकि वह तो पहले ही मर चुका था।

वहां का प्रबंध बड़ी उत्तमता के साथ किया' ।

इसके विपरीत दयालदास ने अपनी ख्यात में इस घटना का एक-दम भिन्न वर्णन दिया है, जिसका आशय नीचे दिया जाता है—

'जोध्या ने छ्वापर द्रोणपुर का इलाक़ा बरसल (बैरसल) से लेकर वहां का अधिकार पहले जोगा को दिया था, पर उसके ठीक तरह से राज्य न कर सकने के कारण उसे वहां से हटाकर बाद में बीदा को वहां का स्वामी बनाया, जिसने बड़ी उत्तमता से साग प्रबन्ध कर मोहिलों को अपने अधीन किया । बरसल अपना राज्य खोकर अपने भाई नरबद को साथ ले दिल्ली के बादशाह (सुलतान बहलोल लोदी) के पास चला गया । उस समय उसके साथ कांधल का पुत्र बाघा भी था । बहुत दिनों बाद जब बादशाह उनकी सेवा से प्रसन्न हुआ, तो उसने बरसल का इलाक़ा उसे वापस दिलाने के लिए हिसार के सूबेदार सारंगखां को फ़ौज देकर उसके साथ कर दिया । जब वह फ़ौज द्रोणपुर पहुंची तो बीदा ने उसका सामना करना उचित न समझा, अतएव बरसल से सुलह कर वह अपने भाई बीका के पास बीकानेर चला गया । छ्वापर द्रोणपुर पर बरसल का अधिकार हो गया । बीदा के बीकानेर पहुंचने पर बीका ने अपने पिता (जोध्या) से कहलवाया कि यदि आप सहायता दें तो फिर बीदा को द्रोणपुर का इलाक़ा दिला दें । जोध्या ने एक बार राणी हाड़ी के कहने से बीदा से लाडणू मांगा था, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया था । इस कारण बीदा से अप्रसन्न रहने से जोध्या ने बीका की प्रार्थना पर ध्यान न दिया । तब बीका स्वयं सैन्य एकत्र कर कांधल, मांडल आदि के साथ बरसल पर गया । इस अवसर पर जोहिये आदि भी उसकी सहायतार्थ साथ थे । देशणोक में करणीजी के दर्शन कर बीका द्रोणपुर की ओर अग्रसर हुआ तथा वहां से चार कोस की दूरी पर उसकी फ़ौज के डेरे हुए । सारंगखां उन दिनों वहीं था । एक दिन बाघा को, जो बरसल का सहायक था,

(१) मुहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १६२-६ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४३ ।

एकान्त में बुलाकर बीका ने उसे उपालम्भ देते हुए कहा—“कांका कांधल तो ऐसे हुए, जिन्होंने जाटों का राज्य नष्ट कर एक नया इलाका कायम किया और तू (कांधल का पुत्र) मोहिलों के बदले में मेरे ऊपर ही चढ़कर आया है। ऐसा करना तेरे लिए उचित नहीं।” तब तो वह भी बीका का मददगार बन गया और उसने बचन दिया कि वह मोहिलों को पंदल आक्रमण करने की सलाह देगा, जिनकी दाँई ओर सारंगखां की सेना रहेगी। ऐसी दशा में उन्हें पगाजित करना कठिन न होगा। दूसरे दिन युद्ध में ऐसा ही हुआ। फलतः मोहित तथा तुरक भाग खड़े हुए। नरबद तथा बरसल मारे गये और बीका की विजय हुई। कुछ दिनों वहाँ रहने के उपरान्त बीका ने छापरा द्रोणपुर का अधिकार बीदा को सौंप दिया और स्वयं बीकानेर लौट गया।^१

उपर्युक्त दोनों अवतरणों में से सारंगखां सम्बन्धी दयालदास का कथन ही अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है, क्योंकि आगे चलकर मुंहणो नैणसी ने स्वयं अपने उपर्युक्त कथन का खांडन कर दिया है वहाँ वह लिखता है कि बीका के कदलवाने पर, कांधल को मारने के वैर में राव जोधा ने सारंगखां पर चढ़ाई करके उसे मारा था। उस अवसर पर बीका भी ससैन्य जोधा के साथ था और सेना की दिगोल में था^२। इससे स्पष्ट है कि सारंगखां इसके बादवाली दूसरी लड़ाई में मारा गया था। साथ ही राव बीका द्वारा बीदा को पुनः छापरा द्रोणपुर का राज्य दिलाया जाना ही अधिक युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस इलाके का अब भी मारवाड़ राज्य के अन्तर्गत न होकर बीकानेर के अधीन होना इसका प्रमाण है। प्रारम्भ से ही बीकानेर के राजवराने के साथ मैत्री सम्बन्ध रहने से बीदावन बाद में उन्हीं के अधीन हो गये। जोधपुर राज्य की ख्यात में

(१) जि० २, पृ० ४ : मुंशी देवीप्रसाद के “राव बीकाजी का जीवनचरित्र” (पृ० १२-१७) और पाउलेट के “नैजेरियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट” (पृ० १८) में भी ऐसा ही वर्णन दिया है।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०१।

उपर्युक्त घटना का उल्लेख नहीं है। यदि ख्यातकारों ने मुंहणोत नैणसी की ख्यात भी देखली हो तो उन्हें इस सम्बन्ध की थोड़ी-बहुत बातें अवश्य ज्ञात हो जातीं। आगे की कुछ घटनाएं भी जोधपुर राज्य की ख्यात में नहीं हैं, परन्तु उनका विस्तृत विवरण हमें दयालदास की ख्यात में मिलता है। अन्य ख्यातों आदि से उनकी पुष्टि होने के कारण उनकी सत्यता में सन्देह नहीं किया जा सकता। अतएव उनका उल्लेख हम यहां कर देना आवश्यक समझते हैं।

राव जोधा का भाई कांधल भी बीका के साथ चला गया था। उसने हिसार के पास रहते समय जब वहां (हिसार में) लूट-मार शुरू की तो सारंगखां ने उसका अवरोध किया। इसपर कांधल अपने राजपूतों सहित राजासर (परगना सारण) चला गया और वहां से चढ़कर हिसार में आया और वहां खूब लूट-मार कर फिर वापस चला गया। उस समय उसके तीन पुत्र—राजसो नींवा तथा सूरु—साथ थे और बाघा चाचाबाद में एवं अरड़कमल बीकानेर में था। जब सारंगखां ने उसपर चढ़ाई की तो उस (कांधल) ने उसका सामना किया। लड़ाई चल रही थी उस समय अचानक कांधल के घोड़े का तंग आदि टूट गये जिससे उसने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि मेरे तंग सुधार लेने तक तुम सब शत्रु का सामना करो। परन्तु इससे पूर्व कि वह तंग आदि ठीक कर अपने घोड़े पर पुनः सवार हो सके, सारंगखां ने प्रबल आक्रमण कर उसकी सारी सेना को तितर-बितर कर दिया। कांधल ने अपने पास बचे हुए राजपूतों के साथ बीकानेर तक शत्रु का सामना किया, पर उनकी संख्या बहुत अधिक होने से अंत में २३ मनुष्यों को मारकर वह अपने साथियों सहित भाग गया।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० २८-३०। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० २०५-६। बीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८। मैड; राजस्थान; जि० २, पृ० ११३२।

बीका ने जब कांथल के मारे जाने का समाचार सुना तो उसने उसी समय सारंगखां से वैर लेने की प्रतिज्ञा की और अपनी सेना को युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दी। इसकी सूचना कोठारी चौथमल ने जोधपुर जाकर राव जोधा को भी दी। जोधा ने मेड़ता से दूदा और वगसिंह को भी बुला लिया तथा सेना सहित बीका की सहायता को चला। बीकानेर से बीका भी चल चुका था। द्रोणपुर में पिता-पुत्र एकत्र हो गये, जहां से दोनों फौजें सम्मिलित होकर आगे बढ़ीं। सारंगखां भी अपनी फौज लेकर सामने आया तथा गांव भांस (भांसला) में दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ, जिसमें सारंगखां की सेना के पैर उखड़ गये और वह बीका के पुत्र नरा के हाथ से मारा गया।

दयालदास ने इस लड़ाई का समय वि० सं० १५४६ पौष वदि ५ (ई० सं० १४८६) दिया है, जो ठीक नहीं है। यह घटना इसके पूर्व की होनी चाहिये, क्योंकि इससे पहले ही जोधा का देहांत हो गया था।

(१) दयालदास की ख्यात: जि० २, पत्र ५ । मुंशी देवीप्रसाद: राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३०-३१ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ८ ।

मुहम्मद नैयसी की ख्यात में इस घटना का जो वर्णन दिया है वह नीचे लिखे अनुसार है—

‘फिर कांथल सारंगखां से युद्ध कर काम आया। यह खबर राव बीका ने सुनी तो वह सारंगखां पर चढ़ाई करने को तैयार हुआ, परन्तु नापा (नरपाल) सांखले ने कहा कि राव जोधा को यह खबर देकर चढ़ाई करना उचित है । (नापा राव जोधा के पास गया और सारा हाल कहा) तब जोधा बोला कि कांथल का वैर मैं लूंगा । वह बड़ी सेना सहित चढ़ आया । राव बीका हिरोल में रहा, गांव भांसले में लड़ाई हुई । सारंगखां और उसके बहुतसे साथी मारे गये (जि० २, पृ० २०६) ।’

ऊपर ब्रैकेट में दिया हुआ नापा का नाम संदिग्ध है। संभव है यह खबर लेजाने-वाला कोठारी चौथमल रहा हो, जैसा कि दयालदास ने लिखा है। सारंगखां किसके

वहाँ से लौटते हुए फिर राठोड़ सेना के द्रोणपुर में डेरे हुए। उस समय राव जोधा ने बीका को अपने पास बुलाकर कहा—“बीका तू सपूत है अतएव तुझ से एक वचन मांगता हूँ ?” बीका ने उत्तर दिया—“कहिये, आप मेरे पिता हैं अतएव आपकी आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।” जोधा ने कहा—“एक तो लाडलूँ मुझे दे दे और दूसरे अब तूने अपने बाहुबल से अपने लिए नया राज्य स्थापित कर लिया है, इसलिए अपने भाइयों से जोधपुर के राज्य के लिए दावा न करना।” बीका ने इन बातों को स्वीकार करते हुए कहा—“मेरी भी यह प्रार्थना है कि तर्क, छत्र आदि राज्यचिह्न तथा आपकी ढाल-तरवार मुझे मिलनी चाहिये, क्योंकि मैं बड़ा हूँ।” जोधा ने इन सब वस्तुओं को जोधपुर पहुँचकर भेज देने का वचन दिया। अनन्तर दोनों ने अपने-अपने राज्य की ओर प्रस्थान किया।

(आवणादि) वि० सं० १५४५ (चैत्रादि १५४६) वैशाख सुदि ५ (ई०

स० १४८६ ता० ६ अप्रैल) को जोधपुर में ही राव

राव जोधा की मृत्यु

जोध्या का स्वर्गवास हो गया।

हाथ से मारा गया यह नैणसी ने नहीं लिखा है। ऐसी दशा में नरा द्वारा उसका मारा जाना मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५ । मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-३३ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६ ।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६ । जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ४६), बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बाने” (संख्या ७६४) तथा टॉड-कृत “राज-स्थान” (जि० २, पृ० ६५१) में भी यही संवत् दिया है। दयालदास की ख्यात में राव जोधा की मृत्यु का संवत् वि० सं० १५४७ (ई० स० १४६०) दिया है (जि० २, पत्र ५) । मुंशी देवीप्रसाद (राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५) तथा पाउलेट (गैज़ेटियर ऑव दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६) ने भी यही संवत् दिया है। इस अन्तर का तब तक ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सकता जब तक राव जोधा का स्मारक-लेख न मिल जावे।

ख्यातों आदि में कहीं जोधा के १६^१, कहीं १७^२ तथा कहीं १४^३ पुत्र होने के उल्लेख मिलते हैं^४। इनके अतिरिक्त उसके कई पुत्रियां भी हुई थीं^५।

उसकी एक पुत्री राजबाई का नाम ऊपर आ गया है। दूसरी शृंगारदेवी थी, जिसका विवाह महाराणा

कुंभा के पुत्र रायमल से हुआ था^६, परन्तु उसका नाम किसी भी ख्यात में नहीं मिलता। यदि घोडुंडी गांव की बड़ी प्रशस्ति न मिलती तो उसके होने का हमें पता भी न चलता। ऐसी दशा में ख्यातों के इन नामों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। फिर भी यह कहा जा सकता है कि जोधा के कम से कम सत्रह पुत्र थे, जिनके नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—हाड़ी राणी जसमादे से—

(१) नींवा (सबसे बड़ा) —यह कुंवरपदे में ही मर गया^७।

(२) सातल — इसने पोकरण और फलोदी के पास के प्रदेश पर अधिकार कर सातलमेर नामक नगर बसाया। वरसिंह के मरने पर इसने मेड़ते पर भी अधिकार कर लिया था^८। और यह जोधा के बाद गद्दी पर बैठा।

(१) मुंशी देवीप्रसाद द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४६-७। दयालदास की ख्यात; जि० १, पृ० ११६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६।

(३) टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६५०। राठोड़ों की वंशावली के प्राचीन पत्रे।

(४) जोधा से जोधा राठोड़ों की शाखा चली। इस शाखा के ३० ठिकाने इस समय मारवाड़ में ही विद्यमान हैं, जिनमें से मुख्य भाद्राजूण, खेरवा, लाडनूं, दुगोली, गोराऊ, नींबी और सेवा आदि हैं।

(५) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(६) जर्नल ऑफ् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल; जि० ४६, भाग १, पृ० ६६।

(७) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। राठोड़ों की वंशावली के प्राचीन पत्रे।

(८) बांकीदास; ऐतिहासिक वार्ते; संख्या ६२२ तथा ८०४।

(३) सूजा—सातल का उत्तराधिकारी हुआ ।

२—भटियाणी राणी पूरां से—

(१) कर्मसी—इसके वंशवाले कर्मसीहोत कहलाये । इसने खींवसर बसाया । जोधा ने इसे नादसर दिया था और कांधल को भी साथ भेजा था^१ । इसका एक विवाह मांगलिया भोज हमीरोत की पुत्री से हुआ था, जिससे पांच पुत्र—उदयकरण, पंचायण, धनराज, नारायण तथा पीथूराव—हुए । कर्मसी भूमियों से युद्ध करते समय लूणकरण के साथ नारनोल में मारा गया^२ ।

(२) रायपाल—इसके वंशवाले रायपालोत कहलाये । इसने आसोप आवाद किया^३ ।

(३) वणवीर—इसके वंश के वणवीरोत कहलाये ।

(४) जसवन्त (जसूत) ।

(५) कूंपा ।

(६) चांदराव ।

३—सांखली राणी नौरंगदे से—

(१) बीका—इसके वंशवाले बीका कहलाये, जो अब तक बीकानेर राज्य के स्वामी हैं । वि० सं० १५४५ (ई० सं० १४८८) में इसने अपने नाम पर बीकानेर नगर बसाया^४ । जोधा का छोटा भाई कांधल भी इसके साथ था । इसके वंश का सविस्तर वर्णन आगे बीकानेर के इतिहास में किया जायगा ।

(१) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली ।

(२) विशेष वृत्तान्त के लिए देखो बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ११८, १४६, १४७, ११६७, ११६८ तथा ११६६ ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली । टेसिटोरी ने इसका नाहरसर में निवास करना लिखा है (जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल; (ई० सं० १६१६, पृ० ७१) ।

- (२) बीदा—इसके वंशवाले बीदावत कहलाये, जो बीकानेर राज्य में हैं।
छापर द्रोणपुर को जीतकर वहां का अधिकार पहले जोधा ने
जोगा को सौंपा था, परन्तु उसको अयोग्य देखकर बाद में उसने
बीदा को वहां का अधिकारी बना दिया^१। इसके पुत्र उदयकरण,
हीरा और खलसी हुए^२।

४—हूलणी राणी जमना से—

- (१) जोगा—छापर द्रोणपुर का इलाका विजयकर वहां का अधिकार
पहले राव जोधा ने इसी को दिया था।
(२) भारमल—इसके वंशवाले भारमलोत कहलाये^३। राव जोधा ने
इसे बीलाड़ा दिया^४।

५—सोनगरी राणी चंपा से—

- (१) दूदा—वि० सं० १५६६ (ई० सं० १४८६) में इसने मेड़ते में
अपना ठिकाना बांधा और इसीसे इसके वंशज मेड़तिया कहलाये^५।
पिता के इशारे से इसने केवल थोड़े से साथियों को साथ ले
नरसिंह साँधल के पुत्र को जा घेरा और उसे अकेले द्वंद्वयुद्ध में
मारकर राठोड़ों का पुराना वैर लिया^६। इसने देश में बिगाड़ करने-
वाले अजमेर के सूबेदार लिरियाखां को मारा^७। इसके एक पुत्र

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १६५।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। बांकीदास ने इसके
७ पुत्र होना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४४)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। टेसिटोरी ने इसका
कोडणा में रहना लिखा है (जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल; ई०
सं० १६१६, पृ० ७१)।

(५) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(६) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १३१-३। दयालदास की
ख्यात; जि० १, पृ० १११-१२।

(७) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२३।

धीरमदे का पुत्र चांदा हुआ, जिसके वंशज चांदावत कहलाये^१।
दूदा के अन्य चार पुत्र—रतनसी, रायमल, रायसल और पंचा-
यण—हुए^२।

- (२) वरसिंह—इसके वंशवाले वरसिंहोत कहलाये। इसका एक पुत्र जेता हुआ^३। बांकीदास लिखता है—‘इसे और दूदा को राव जोधा ने शामिल में मेड़ता दिया था। वरसिंह ने पीछे से दूदा को मेड़ते से बाहर निकाल दिया, तब वह बीकानेर चला गया। एक बार वरसिंह ने दुष्काल पड़ने पर बादशाही शहर सांभर में लूट-मार की, जिसपर वह अजमेर में क्रोध कर लिया गया। बाद में बीकानेर से आकर दूदा तथा बीका ने इसे मुक्त कराया। वरसिंह की मृत्यु होने पर सातल ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया और दूदा भी वहीं आ गया। फिर उसने आधी भूमि वरसिंह के पुत्र सीदा को दे दी^४।’

६—बाघेली राणी बीना से—

- (१) सामन्तसिंह—इसने खैरावा पर अधिकार किया^५।

- (२) सिधराज—राव जोधा ने इसे दुनाड़ा दिया^६।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; सं० १००४।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२०, ६२१ तथा ६२२।

वर्तमान समय में मेड़तियों के अनेक ठिकाने हैं, जिनमें मुख्य चाणोद, कुचामण, जावला, घाणेरवा, वूडमू, रीयां, मींडा, मीठड़ी, बड़, बेरी, पांचवा, पांचोटा, सरगोट, सबलपुर, सुमेल, रेण, लूणवा, बोरावड़, मंगलाना, बसन आदि हैं।

(५) जर्नेल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; न्यू सीरीज़, जि० १५ (ई० स० १८१६); पृ० ७१।

(६) वही; पृ० ७१। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली।

राव जोधा के उपर्युक्त सत्रह पुत्रों में नींबा सबसे बड़ा था, यह तो अधिकांश ख्यातों आदि से सिद्ध है, परन्तु नींबा के बाद कौनसा पुत्र बड़ा था, यह विवादप्रस्त विषय है।

अकबर के ३८ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५० = ई० सं० १५७३) में लाहोर में रहते समय जयसोम-द्वारा रचे हुए 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' में लिखा है—“दूसरी महागणी जसमादेवी के तीन लड़के— नींबा, सूजा और सातल नाम के— थे और वह राजा का जीवन-सर्वस्व थी : जब दैवयोग से नींबा नाम के पुत्र की कथा ही यात्री रह गई (अर्थात् वह मर गया) तब जसमादेवी ने— जिसे स्त्रीत्वभाव से अपनी सौतों के प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ— यह होनहार ही है, ऐसा सोचकर एकांत में विक्रम नाम के अपनी सौत के पुत्र की अनुपस्थिति में राजा को अपने पुत्र के विषय की कुछ रोचक कथा कही। तब राजा ने पत्नी के कण्ठ से मोहित होकर अपने बेटे विक्रम (बीका) को जांगलदेश में निकाल देने की इच्छा से अपने पास बुलाकर यह कहा— “हे पुत्र ! बाप के राज्य को बेटा भोगे इसमें कोई अचरज की बात नहीं, परन्तु जो नया राज्य प्राप्त करे वही बेटों में मुख्य गिना जाता है। पृथ्वी पर कठिनता से वश में आनेवाला जांगल नामक देश है; तू साहसी है इसलिए तुझे मैंने इस काम में (अर्थात् उसे वश करने में) नियुक्त किया है।”

(१) श्रीजैनचंद्रसुगुरां राज्ये विजयिनि विपक्षत्रलजयिनि ।

क्रमतो नृपविक्रमतः खभूतरसशशि (१६५०) मिते वर्षे ॥ ५२६ ॥

साहश्रीमदकब्बरराज्यदिनादखिललोकसुखहेतोः ।

अष्टत्रिंशे संवति लाभकृते लाभपुरनगरे ॥ ५२७ ॥

श्रीजयसोमैर्विहिता धीसखवंश्यावली गुणोर्वचसा ।

श्लोकैः प्राथमकल्पिकमतिवैभवहेतवे मृदुभिः ॥ ५३० ॥

कर्मचंद्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यं ।

(२) नींबासूजासातलनामसुतत्रययुता महाराज्ञी ।

जसमादेवीनाम्नी राज्ञो जीवस्य सर्वस्वं ॥ ११० ॥

उपर्युक्त अवतरण से तो यही पाया जाता है कि नींबा के बाद बीका बड़ा था, परन्तु उसने असीम पितृभक्ति-वश, पिता के वाक्यों से प्रभावित होकर नवीन राज्य स्थापित करने का दृढ़ विचार कर लिया और अपने हितचिन्तकों एवं नापा सांखला की सम्मतिके अनुसार पिता के जीवनकाल ही में जांगल देश की तरफ जाकर निज बाहुबल से शीघ्र ही अपने वंशजों के लिए बीकानेर के बृहत् राज्य की स्थापना कर ली। यह काव्य सब ख्यातों से पुराना होने के कारण इसके कथन की उद्घा नही की जा सकती।

जोधा की मृत्यु पर सांतल गद्दी पर बैठा, जिसकी अब तक कोई भी जन्म-पत्री नहीं मिली है। अतएव उसके जन्मसंवत् के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। सांतल के उत्तराधिकारी सूजा का जन्मसंवत्, जोधपुर से मिलनेवाली जन्मपत्रियों में १४६६ तथा बीका का १४६७ (ई० स० १८४०) दिया है। इस हिसाब से सूजा, बीका से लग-भग एक वर्ष बड़ा होता है, परन्तु इसके विपरीत बीकानेर से मिलनेवाले जन्मपत्र में बीका का जन्म वि० स० १४६४ (ई० स० १४३८) में होना लिखा मिलना है^१। इस हिसाब से सूजा, बीका से एक वर्ष छोटा होजाता है।

नींबाख्ये संजाते देवनियांगात्सुते कथाशेषे ।

जातिस्वभावदाषाज्जातामर्षा सपत्नीपु ॥ १११ ॥

विक्रमनामसपत्नीसुतेऽसति स्वात्मजं कथां रम्यां ।

भार्वति विभाव्यात्मनि विजने राजानमाचष्टे ॥ ११२ ॥

(त्रिभिः कुलकं)

ततो निजात्मजं जायामायया मोहितोऽधिपः ।

विक्रमं जांगले मोक्तुं समाहूयेदमुक्त्वान् ॥ ११३ ॥

पित्र्यं राज्यं सुतो भुंक्ते किं चित्रं तत्र नंदन ।

नवं राज्यं य आदत्ते स धत्ते सुतधुर्यतां ॥ ११४ ॥

तेन देशोस्ति दुःसाधो जांगलो जगतीतलो ।

त्वं साहसीति कृत्येऽस्मिन्नियुक्तोऽसि मयाधुना ॥ ११५ ॥

(१) दयाबदास की ख्यात; जि० २, पत्र १ ।

इन जन्मपत्रियों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण, कौनसी विश्वसनीय है यह कहना कठिन है। टेसिटोरी को जोधपुर की एक दूसरी ख्यात में सूजा का जन्म संवत् १४६६ (ई० स० १४४२) में होना प्राप्त हुआ है^१। यदि यह ठीक हो तो यही सिद्ध होता है कि बीका हर हालत में सूजा से बड़ा था।

टेसिटोरी को फलोथी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि जोधा की मृत्यु पर टीका जोगा को देते थे, पर उसके यह कहने पर कि मेरे बाल सुखालेने तक ठहर जाओ, लोगों ने टीका सातल को दे दिया^२। इस कथन से तो यही बात होता है कि सातल भी वास्तविक उत्तराधिकारी न था, परन्तु जोगा को मन्दबुद्धि देख टीका सातल को दे दिया गया। बीका की अनुपस्थिति में ऐसा हो जाना कोई आश्चर्य की बात भी नहीं थी। फिर अधिकांश ख्यातों से यह भी पता चलता है कि जोधा ने पूजनीक चीजें देने का वादा कर बीका से जोधपुर के राज्य पर दावा न करने का वचन ले लिया था^३।

बीका सातल से बड़ा न रहा हो अथवा उसने पिता को वचन दिया था इस कारण से सातल के गद्दी पर बैठने पर उसने कोई हस्तक्षेप न किया, परन्तु जब सूजा ने सातल की मृत्यु पर जोधपुर की गद्दी अपने हाथ में करली तब तो बीका ने ससैन्य उसपर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का उल्लेख जोधपुर तथा बीकानेर की ख्यातों में मिलता है।

(१) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० १५ (ई० स० १८१६); पृ० ७६।

(२) वही; जि० १५ (ई० स० १८१६); पृ० ७२ तथा टिप्पण ५।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३१-३। पाउलेट; गैज़टियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना पर परदा डालने का प्रयत्न किया गया है। राव जोधा, सातल तथा सूजा के प्रसंग में कहीं भी इस घटना का उल्लेख नहीं है, किन्तु वरजांग भीमावत के प्रसंग में सातल की मृत्यु के बाद सूजा के मारवाड़ की गद्दी पर बैठने पर बीका का जोधपुर पर चढ़ आना लिखा है (जि० १, पृ० ५६)। इस घटना का विस्तृत वृत्तान्त आगे सूजा के हाल में दिया जायगा।

कविराजा बांकीदास^१, कविराजा श्यामलदास^२, रामनाथ रत्नू^३, सिंढायच दयालदास^४, मुंशी देवीप्रसाद^५, कैप्टेन पाउलेट^६ प्रभृति लेखकों ने बीका की इस चढ़ाई का अपने ग्रन्थों में उल्लेख करने के साथ ही उसे बड़ा होने के कारण जोधपुर के राज्य का वास्तविक हकदार माना है। उक्त ख्यातों आदि के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि बीका, कम से कम सूजा से अवश्य बड़ा था, जिससे तहत, चमर, भुंजाई की देग आदि पूजनीक वस्तुएं उसे ही प्राप्त हुईं।

ख्यातों आदि में प्रायः कुंवरो के नाम राणियों के नामों के साथ दिये रहते हैं, अतएव उनके आधार पर पुत्रों के छोटे-बड़े होने का निर्णय करना कठिन प्रतीत होता है।

राव जोधा वीर और साहसी होने के साथ ही असाधारण धैर्यवान् व्यक्ति था। वह जल्दी घबराता नहीं था। असाधारण परिस्थिति में पिता के मारे जाने पर भी वह घबराया नहीं, वरन् पीछा करनेवाले मेवाड़ के सैन्य का वीरतापूर्वक सामना करता हुआ चित्तोड़ से निकल गया। फिर मंडोवर आदि पर मेवाड़ का अधिकार हो जाने पर उसे वहाँ तक जंगलों में रहना पड़ा। वह समय उसके लिए बड़े संकट का था, पर वह एक क्षण के लिए भी निराश न हुआ और धैर्य के साथ राज्य-प्राप्ति का सतत प्रयत्न करता रहा। उधर महाराणा कुंभा की दादी हंसवाई ने, जो जोधा की बुआ लगती थी, महाराणा से उसकी सिफ़ारिश की, जिसपर उसने मंडोवर की तरफ़ से ध्यान हटा लिया। फलतः कुछ ही समय बाद अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाकर जोधा

राव जोधा का चित्र

(१) ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ४८०।

(३) इतिहास राजस्थान; पृ० १५३-४।

(४) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५-६।

(५) राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५-६।

(६) गैज़टियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

ने अपने गये हुए पैतृक राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया । इसके बाद ही उसने जोधपुर के दुर्ग तथा नगर की स्थापना की । राव जोधा की एक पुत्री शृंगारदेवी का विवाह महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के साथ हुआ था, जो संभवतः मेवाड़वालों से मेल करने के लिए ही किया गया हो ।

राव जोधा से पूर्व जोधपुर के नरेशों में चूड़ा और रणमल भी वीर हुए थे, पर उन्होंने राज्य का प्रसार अथवा उसकी नींव दृढ़ करने की ओर जैसा चाहिये वैसा ध्यान नहीं दिया । रणमल ने तो अपना सारा समय मेवाड़ में ही बिताया था । राज्य प्राप्त करते ही जोधा ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया और राज्य की स्थिति दृढ़ करने के साथ ही उसको बहुत बढ़ाया । उसके पुत्र भी बड़े पराक्रमी हुए और उन्होंने भी राठोड़-राज्य की उन्नति करने में पूरा-पूरा हाथ बंटाय़ा । वस्तुतः हम राव जोधा को ही जोधपुर का पहला प्रतापी राजा कह सकते हैं ।

राव सातल

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है राव जोधा के ज्येष्ठ पुत्र नौबा का देहांत अपने पिता की जीवन दशा में ही हो चुका था और बीका ने अपने लिए जांगल देश में स्वतंत्र बड़ा राज्य कायम करके
गढ़ानर्यानी
जोधपुर राज्य से स्वतः त्याग दिया था; अतएव जोधा की मृत्यु होने पर (श्रावणादि वि० सं० १५४५^१ (ई० सं० १४८६) में सातल उसका उत्तराधिकारी हुआ^२ ।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में उसके गद्दी पर बैठने का समय वि० सं० १५१६ (ई० सं० १४६२) दिया है (जि० २, पृ० १६६), जो ठीक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि उस समय तो उसका पिता राव जोधा विद्यमान था ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६ । टोमिटोरी को फलोधी से मिली हुई एक ख्यात में लिखा है कि टीका पहले जोगा को देते थे, परन्तु वह उस समय स्नान करके आया था, जिसमें उसने बाल सुखा लेने तक ठहर जाने को कहा । उसके इस आचरण से अप्रसन्न होकर सरदारों ने टीका सातल को दे दिया (देखो ऊपर पृष्ठ २५७) । टीका ने इसका गद्दी पर बैठना ही नहीं

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ दिनों बाद ही पोकरण से दो कोस की दूरी पर उसने एक गढ़ का निर्माण कराया और अपने नाम पर उसका नाम सातलमेर रक्खा^१।

एक प्राचीन गीत प्राप्त हुआ है, जिससे पता चलता है कि राव सातल ने, सिंहासनारूढ़ होने के बाद, जैसलमेर के रावल देवीदास (देव-बीकानेर पर चढ़ाई राज), पूगल के राव शेखा तथा नागोर के खान की सहायता प्राप्तकर बीकानेर पर चढ़ाई की, परन्तु इस कार्य में उसे सफलता न मिली^२।

लिखा है। वह राव जोधा के बाद सूजा का राजा होना और उसका सातलमेर की रक्षा करते हुए मारा जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २; पृ० ६५२), परन्तु सातल का राजा होना निर्विवाद है।

राव सातल के फलोधी परगने से मिले हुए एक लेख का उल्लेख टेसिटोरी ने किया है, जो वि० सं० १५१५ भाद्रपद सुदि ११ (ई० स० १४५८) का है। उसमें जोधा को महाराय और सातल को राय लिखा है (जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१६, पृ० १०८)। इस लेख के अनुसार तो यही मानना पड़ेगा कि राव जोधा ने सातल को अपने जीवनकाल में फलोधी की जागीर दी होगी।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८०४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में ही आगे चलकर लिखा है कि राव सातल ने अपने छोटे भाई सूजा के पुत्र नरा को गोद लिया था, जिसने पोकरण को अपने अधिकार में करने के बाद वहां सातल के नाम पर सातलमेर गढ़ बसाया (जि० १, पृ० ६२-३)। “वीरविनोद” (भाग २, पृ० ८०७) में सातल के छोटे भाई के गद्दी पर बैठने के बाद सातलमेर का आबाद होना लिखा है। इन ख्यातों आदि में इसी प्रकार स्थल-स्थल पर विरोधां बातें लिखी हैं, जिससे सत्यासत्य का निर्णय करना कठिन है।

(२) जर्नल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; ई० स० १६१७, पृ० २३५।

इस गीत के समय तथा रचयिता के नाम का पता नहीं चलता, जिससे इसकी सत्यता में सन्देह है। साथ ही इस घटना का उल्लेख भी दूसरी ख्यातों में नहीं मिलता। यदि इस कथन में सत्यता हो तो आगे चलकर सूजा के राज्यकाल में राव बीका के जोधपुर पर चढ़ाई करने का यह भी एक कारण कहा जा सकता है।

राव सातल का छोटा भाई वरसिंह मेड़ता में रहता था। उसने वहां से चढ़कर सांभर को लूटा। इसपर अजमेर का सूबेदार मल्लूखों^१, सिरिया-खों^२ और मीर घड़ला को साथ ले ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई की। तब वरसिंह और दूदा दोनों भाई भागकर जोधपुर में राव सातल के पास चले गये। पीछे-पीछे मुसलमानी सेना भी आई और जोधपुर की भूमि में लूट-मारकर पीपाड़ से तीजलियों^३ को पकड़ ले गई तथा उसके कोसाणों में डेरें डुप^४। राव सातल भी चुप न बैठा रहा। वरसिंह, दूदा, सूजा^५, वरजांग (भीमोत) आदि के साथ ससैन्य कोसाणों पहुंचकर उसने रात्रि के समय मुसलमानी सेना पर आक्रमण कर दिया। दूदा ने सिरियाखों की ओर बढ़कर उसका हाथी छीन लिया और सातल ने बड़ी वीरता से लड़कर

(१) मांडू के सुलतान (नासिरशाह खिलजी) की तरफ का अजमेर का हाकिम। वि० सं० १५६२ (ई० सं० १५०५) में राणा रायमल के पुत्र पृथ्वीराज ने अजमेर पर आक्रमण कर इसे मार डाला (दीवान बहादुर हरबिलास सारडा; अजमेर; पृ० १५७)। तारागढ़ की पहाड़ी के नीचे मल्लूखों का बनवाया हुआ तालाब अब भी विद्यमान है, जो मलूसर के नाम से प्रसिद्ध है।

(२) यह भी मांडू के सुलतान का कोई अरुसर रहा होगा।

(३) गनगोर (गौरी) के व्रतवाली स्त्रियां। ये होली के दूसरे दिन से ही गनगोर का व्रत आरम्भ कर देती हैं और प्रति दिन पूजा के लिए उद्यान आदि से फूल, दूध, जल आदि लाने को गाती हुई जाती और आती हैं। चैत्र सुदि ३ और उसके दो तीन दिन बाद तक गनगोर को वे बाहर किसी नियत स्थान पर लेजाती हैं, जहां बड़ा मेला लगता है। राजपूताने में स्त्रियों का यह त्योहार बड़ा प्रसिद्ध है।

(४) यह घटना चैत्र वदि १ से लगाकर चैत्र सुदि ३ के बीच किसी दिन होनी चाहिये।

(५) इस स्थल पर तो नहीं, परन्तु आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात में सूजा के वृत्तान्त में उसका भी कोसाणा की लड़ाई में शामिल रहना लिखा है (जि० १, पृ० ४८)।

मीर घड़ला' को मारा तथा तीजणियों को मुक्त करा दिया। इस लड़ाई में मुसलमानों के साथ की कुछ "उड़दा बेगणियों" (उर्दू बेगमों) को घरजांग ने कैद कर लिया, पर बाद में सातल की इच्छानुसार उसने उनके सर मुंडवाकर उन्हें छोड़ दिया। इस लड़ाई में सातल भी बहुत घायल हो गया था, जिससे वह भी जीवित न बचा^३। इस लड़ाई का (श्रावणादि) वि० सं० १५४८ (चैत्रादि १५४९) चैत्र सुदि ३ (ई० सं० १७६२ ता० १ मार्च) को होना माना जाता है^४।

(१) मुसलमानी सेना के साथ का अक्रमर । मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में इसे सिन्ध का एक अमीर लिखा है। इसके मारे जाने के उपलक्ष में मारवाड़ में चैत्र वदि अष्टमी से एक बड़ा मेला लगता है, जो चैत्र सुदि ३ तक रहता है। कुंभकार के यहां से उस दिन स्त्रियां एक बहुतसे छेदों वाला घड़ा लाती हैं, जिसके बीच में जलता हुआ दीपक रहता है। उस घड़े से मीर घड़ला का बोध किया जाता है और उसमें बने हुए छिट्रों से उसके शरीर में लगे हुए बाणों के धावों का। उसे लेकर प्रति दिन स्त्रियां घड़ला का गीत गाती हुईं नगर भर में घूमती हैं। चैत्र सुदि ३ को यह मेला समाप्त होता है, जिस दिन वह घड़ा नष्ट किया जाता है।

(२) मुसलमान अक्रमर लड़ाई पर जाने समय अपनी स्त्रियों को साथ नहीं ले जाते थे, किन्तु इस अवसर पर स्वर्गीय हुई श्वसूरत बाँदियां उनके साथ अवश्य रहती थीं। उन्हें ही "उर्दू बेगम" कहते थे, जिसको मारवाड़ी ख्यात लेखकों ने "उड़दा बेगणियां" कर दिया है। जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई के समय तीन हजार ऐसी स्त्रियों का मुसलमानी सेना के साथ होना लिखा है, जो केवल कपोलकल्पना ही है। कुछ ऐसी स्त्रियां उक्त सेना के साथ अवश्य रही होंगी।

(३) बांकीदास-कृत "ऐतिहासिक बातें" में भी राव सातल का इसी लड़ाई में मारा जाना लिखा है (संख्या ७६५)।

टॉड लिखता है कि सातल 'सहराई' के खानों के साथ लड़ता हुआ उसे मारकर मारा गया (राजस्थान: जि० २, पृ० ६५०), पर टॉड का यह कथन अस्पष्ट होने के साथ ही विश्वसनीय नहीं है।

(४) जयपुर से मिली हुई राठोड़ों की एक ख्यात में सातल का वि० सं० १७६० (ई० सं० १७०३) तक राज्य करना लिखा है, जो विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। बांकीदास के अनुसार उसने केवल तीन वर्ष तक ही राज्य किया था (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६६)।

कोसाणे के तालाब के निकट, जहां सातल का अंतिम-संस्कार किया गया था, उसकी स्मारक छतरी अद्य तक विद्यमान है^१।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सातल के सात राणियां होना और उन सब का ही उसके साथ सती होना लिखा है^२। उसकी एक राणी का नाम

राणियां तथा मन्ति

फूला था, जो भाट्टी वंश की थी। उसने फूलेलाव

तालाब निर्माण कराया था। दूसरी राणी हर्खशाई

की पूजा नागणेची के साथ की जाती है।

सातल के कोई पुत्र न था।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४७-८ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६-७ ।

बांकीदास ने राव सातल के राज्य-समय से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना इस प्रकार लिखी है—

‘वरसिंह की मृत्यु होने पर जोधपुर से राव सातल के भेजे हुए मनुष्यों ने मेड़ते पर अधिकार कर लिया। वरसिंह का पुत्र सीहा बड़ा कपूत था जिससे वरसिंह की ठकुराणी ने बीकानेर से दूदा को बुलवाया जिसने आकर अजमेर के सूबेदार सिरिया-खां के आदमियों को मेड़ते से निकाल दिया। तब से आधा मेड़ता दूदा ने लिया और आधा सीहा (वरसिंहोत) के पास रहा। सिरियाखां ने जब अजमेर से आकर देश का बिगाड़ करना शुरू किया तो दूदा ने अजमेर के पास लड़ाई करके उसका हाथी छीना और खां को मार लिया (ऐतिहासिक बातें; संख्या ६२२-३)।’

वरसिंह की मृत्यु के बाद सातल के मेड़ते पर अधिकार करने की उपर्युक्त बात विश्वासयोग्य प्रतीत नहीं होती, क्योंकि वरसिंह की मृत्यु पर सातल के आदमियों का मेड़ते पर अधिकार करना और बाद में दूदा का जाकर सिरियाखां के आदमियों को निकालना परस्पर विरोधी बातें हैं। संभव है यहां सातल का नाम ग़लती से आ गया हो, जो अनुमानतः सिरियाखां होना चाहिये। दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र ६) के अनुसार वरसिंह की मृत्यु सूजा के राज्यकाल में हुई थी। इससे यह कहा जा सकता है कि यह घटना सातल के समय में नहीं, किन्तु सूजा के राज्यकाल में हुई होगी।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ४८ ।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सातल के आठ राणियां होना लिखा है।

राव सूजा

राव सूजा का जन्म वि० सं० १४६६ भाद्रपद षदि ८ (ई० स० १४३६ ता० २ अगस्त) को हुआ था^१ । राव सातल के निःसन्तान मारे जाने पर जन्म तथा गर्हानशीनी वह जोधपुर राज्य का स्वामी हुआ^२ ।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि राव बीका की सारंगखाँ पर चढ़ाई होने के समय राव जोधा भी उसकी सहायतार्थ गया था और वहाँ से लौटते समय द्रोणपुर में डेरे होने पर उसने राव बीका की जोधपुर पर चढ़ाई उस(बीका)को पूजनीक चीजें देने का वचन दिया था । सूजा के गद्दी पर बैठने का समाचार मिलते ही बीका ने राज्यचिह्न आदि पूजनीक चीजें लाने के लिए पड़िहार बेला को उसके पास भेजा, परन्तु सूजा के पूजनीक चीजें देने से इनकार करने पर,

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जिल्द १, पृ० २८ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७३ । चंदू के यहाँ के जन्मपत्रियों के संग्रह में तिथि तो यही दी है, पर उसदिन गुरुवार होना लिखा है, जो ठीक नहीं है । उसदिन रविवार था । कुंडली के अनुसार ही रविवार के दिन सूर्य और चन्द्रमा की स्थिति थी । टेसिरोरी को एक ख्यात में सूजा का जन्म संवत् १४६६ (ई० स० १४४२) मिला है [जर्नेल ऑव् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव् बंगाल; जि० १२ (ई० स० १६१६), पृ० ७६] । इस विभिन्नता को देखते हुए हम विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है, पर जैसा ऊपर कहा जा चुका है, सूजा बीका से छोटा था ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २८ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ८०७ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें, संख्या ८०८ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव सूजा के पुत्र नरा को राव सातल ने गोद लिया था, लेकिन उसने अपनी माता के कहने से गद्दी पर बैठने का अपना हक त्याग दिया (जि० १, पृ० ६२-३) । उसी ख्यात में लिखा है कि नरा ने अपने माई उदा के एक छद्मी मार दी, जिससे उसके पिता ने उसे फलोधी देकर अलग कर दिया (जि० १ पृ० ६२) ।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सातल का सूजा के ज्येष्ठ पुत्र बाबा को गोद लेना लिखा है ।

अपने सरदारों से सलाह करने के उपरान्त बीका ने फ़ौज एकत्र कर जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। इस अवसर पर द्रोणपुर से बीदा ३००० फ़ौज लेकर उसकी सहायता को आया और कांधल के पुत्र अरङ्कमल (साहिबे का), राजसी (राजासर का) और वणीर (चाचाबाद का) भी अपनी-अपनी सेना के साथ आये। इनके अतिरिक्त भाटी और जोहिये आदि भी बीका के साथ थे। इस बड़ी सेना के साथ वह देशलोक होता हुआ जोधपुर पहुँचा। सूजा ने स्वयं गढ़ के भीतर रहकर कुछ सेना उसका सामना करने के लिए भेजी, परन्तु वह अधिक देर तक बीका की फ़ौज के सामने ठहर न सकी। फिर तो बीकानेर की सेना ने शहर को लूटा और जोधपुर के गढ़ को घेर लिया। दस दिन में ही पानी की कमी होजाने के कारण जब गढ़ के भीतर के लोग घबड़ाने लगे तो सूजा की माता हाड़ी जसमादे के कहलाने पर बीका ने अपने मुसाहिबों को गढ़ में सन्धि की शर्तें तय करने के लिए भेजा, लेकिन कुछ तय न हो सका, जिससे दो दिन बाद सूजा के कहने से उसकी माता (जसमादे) ने स्वयं बीका के पास जाकर कहा—“तूने तो अब नया राज्य स्थापित कर लिया है। अपने छोटे भाइयों को रक्खेगा तो वे रहेंगे।” बीका ने उत्तर दिया—“माजी, मैं तो केवल पूजनीक चीज़ें चाहता हूँ।” इसपर जसमादे ने पूजनीक चीज़ें देकर उससे सुलह

(१) क्यातों आदि में इन पूजनीक चीज़ों के ये नाम मिलते हैं—

(१) राव जोधा की ढाल-तरवार (२) तफ़्त (३) चंबर (४) कुत्र (५) ढाल-तरवार सांखले हरभू की बी दुई (६) कटार (७) हिरयगर्भ लक्ष्मीनारायण की मूर्ति (८) अट्टारह हाथोंवाली नागणेची की मूर्ति (९) करंड (१०) भंवर ढोल (११) वैरिशाल मगारा (१२) दलसिंगार घोड़ा और (१३) भुंजाई की देग।

किसी-किसी क्यात में पूरे नाम दिये हैं। परन्तु किसी-किसी (उदाहरणार्थ— बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११) में कुछ नाम देकर आगे इत्यादि लिखकर छोड़ दिया है। इनमें से अधिकांश चीज़ें अर्थात् तफ़्त, ढाल, तरवार, कटार, कुत्र, चमर आदि बीकानेर के जिले के एक कमरे में रक्खी हुई हैं, जिनका दशहरे (विजयादशमी) के दिन बीकानेर-नरेश स्वयं पूजन करते हैं।

करली, जिन्हें लेकर वह बीकानेर लौट गया' ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में बीका की इस चढ़ाई का उल्लेख तक नहीं किया है, परन्तु प्रसंगवशात् वरजांग (भीमोत) के हाल में बीका का सूजा के समय में जोधपुर पर चढ़ आना माना है^१ ।

उन दिनों मेड़ते पर सूजा के भाई दूदा तथा वरसिंह का अमल था। वरसिंह इधर-उधर बहुत लूट-मार किया करता था। एक बार उसने फिर

वरसिंह को अजमेर की कैद से
छुड़ाने के लिए सूजा का जाना

सांभर को लूटा तथा अजमेर की भूमि का बहुतसा
नुक़सान किया। अजमेर के सूबेदार मल्लूखां ने
अपने आप को उससे लड़ने में असमर्थ पाकर, उसे

लालच देकर अजमेर बुलाया और गिरफ़्तार कर लिया। इस ख़बर के मिलने पर मेड़ता के प्रबन्ध के लिए अपने पुत्र वीरम को रखकर दूदा बीकानेर गया, जहां पहुंचकर उसने यह घटना बीका को कह सुनाई। बीका ने कहा — “तू मेड़ता जाकर फ़ौज एकत्र कर, मैं आता हूं।” दूदा के जाने पर बीका ने इसकी ख़बर सूजा के पास भेजी और स्वयं सेना लेकर रीयां पहुंचा, जहां दूदा अपनी फ़ौज सहित उससे मिल गया। जोधपुर से चलकर सूजा ने कोसाणे में डेरा किया। अजमेर का सूबेदार इन विशाल सेनाओं का आना सुनते ही डर गया और उसने वरसिंह को छोड़कर सुलह कर ली। अनन्तर दूदा तो वरसिंह को साथ लेकर मेड़ते और बीका बीकानेर चला गया। सूजा सुलह का हाल सुनकर कोसाणे से जोधपुर लौट गया। कहते हैं कि वरसिंह को खाने में ज़हर दे दिया गया था, जिससे मेड़ता लौटने के कुछ मास बाद उसका देहान्त हो गया^३ ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ५। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३५-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७। कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या २६११। रामनाथ रत्नू; इतिहास राजस्थान; पृ० १५४। पाउलेंट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० ६।

(२) जिल्द १, पृ० ५६।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र ६। मुंशी देवीप्रसाद; राव बीकाजी का जीवनचरित्र; पृ० ३६-४१। कविराजा बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; सं० ६२१।

राव सूजा ने अपने छोटे पुत्रों में से नरा को फलोधी जागीर में दी थी। उन दिनों पोकरण का स्वामी खींवा (क्षेमराज) था। उसके इलाके नरा का मारा जाना तथा सूजा का खींवा आदि का दगन करना से बाहर रहते समय नरा ने छल करके पोकरण पर अधिकार कर लिया। निराश खींवा किसी प्रकार अपने दिन व्यतीत करने लगा। जब उसका पुत्र लंका बड़ा हुआ तो पोकरण के राठोड़ उसकी अध्यक्षता में देश में उत्पात करने लगे। एक बार वे पोकरण के पशु छीन ले गये। नरा छुड़ाने को चढ़ा, जिसपर बड़ी लड़ाई हुई। लंका ने अपने ऊपर आक्रमण करने-

वीरविनोद; भाग २, पृ० ४७६। पाउलेट; गैज़टियर ऑफ़ दि बीकानेर स्टेट; पृ० १०।

जोधपुर राज्य की रियासत में इस घटना का भी उल्लेख नहीं है।

(१) इस सम्बन्ध में सुंहणोत नैयासी की रियासत में जो वर्णन दिया है, उसका सारांश नीचे दिया जाता है—

‘वैगटी के स्वामी हरभू सांखला मेहराजोत की कन्या का विवाह जैसलमेर के भाटी कलिकर्ण के साथ हुआ था जिसके नवतन (मूल) में एक पुत्री हुई, जिसे उसने वन में छोड़ दिया। हरभू ने फलोधी से लौटते समय जब उसको मार्ग में पड़े देखा तो उठा लिया और धाय रखकर उसका पालन-पोषण किया। जब वह बड़ी हुई तो शिकार के निमित्त उस तरफ़ आये हुए सूजा के साथ हरभू ने उसका विवाह कर दिया। उसके दो पुत्र बाघा और नरा हुए, जिनमें से नरा को सूजा ने सिंहासनारूढ़ होने पर फलोधी की जागीर दी, जहाँ वह अपनी माता राणी लक्ष्मी के साथ रहने लगा। एक बार पहले कुमारिकावस्था में राठोड़ खींवा के पास उसकी शादी का पैगाम जाने पर उसने अस्वीकार कर दिया था, जिससे राणी लक्ष्मी के हृदय में उस बात का ध्यान बना हुआ था। उसकी याद दिलाये जाने पर नरा ने बाद में पोकरण पर अधिकार करने का निश्चय किया। इस कार्य की पूर्ति के लिए उसने अपने पुरोहित को सिखा-पढ़ाकर उधर भेजा, जो नरा से नाराज़ होने का भाव दिखाकर वहाँ रहने लगा। एक दिन खींवा के पोकरण से बाहर जाने पर, वह पुरोहित दरबान का कटार सुधरवाने के बहाने से बाहर गया और इसकी सूचना पास उहरे हुए नरा को दे आया। अमरकोट ब्याहने जाने का बहाना कर राठोड़ रात्रि के समय आगे बढ़े। इसी बीच पुरोहित ने द्वारपाल को बाहर बुलाकर उसी कटार से मार डाला। फिर तो राठोड़ नगर में घुस गये और वहाँ नरा के नाम की दुहाई फिरवादी (जि० २, पृ० १३७-४२)।’

वाले नरा का सिर, तलवार के एक ही हाथ में, धड़ से अलग कर दिया' । उसकी मृत्यु का समाचार मिलने पर उसकी स्त्रियां उसके शव के साथ सती हुईं । नरा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र गोयन्द (गोविन्द) हुआ, पर पिता की भांति धीर और चतुर न होने के कारण उससे ठीक प्रबन्ध न हो सका, जिससे नित्य लड़ाइयां होने लगीं । तब राव सूजा ने गोयन्द और स्त्रीवा को बुलाकर उन्हें आधी-आधी भूमि बांट दी और जहां नरा का मस्तक पड़ा था वहीं सीमा बांध दी, जो आज तक चली आती है । गोविंद के दो पुत्र जैतमाल और हम्मीर थे । हम्मीर को फलोधी का शासन मिला और जैतमाल को सातलमेर का^१ ।

राव सूजा के शासनकाल में जैतारण आदि के सिंधियों^२ ने उपद्रव किया, तब उधर जोधपुर की सेना भेजी गई, जिसने उनका दमन कर वहां सिंधियों को दबाना सुव्यवस्था की । जैतारण का परगना राव सूजा के पुत्र उदा को मिला था^३ ।

वि० सं० १५७१ भाद्रपद सुदि १४ (ई० स० १५१४ ता० ३ सितम्बर) को राव सूजा के ज्येष्ठ पुत्र बावा का देहांत हो गया^४ । राव सूजा भी इसके

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में नरा के मारे जाने का समय वि० सं० १५५१ (चैत्रादि १५५२) चैत्र वदि ५ (ई० स० १४९६ ता० ४ मार्च) दिया है (जि० २, पृ० १४४) ।

(२) वही: जि० २, पृ० १३७-४४ । जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६२-३ ।

(३) जोधपुर के राव आस्थान का एक पुत्र जोप (जोपा) था, जिसके एक पुत्र सीधल के वंश के सीधल राठोड़ कहलाये । अब उनके पास कोई बड़ी जागीर नहीं रह गई है और वे गोदवाड़ प्रान्त में भोमियों की हालत में हैं ।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५६ । जोधपुर के सरदारों के इतिहास में उदा को जैतारण का अधिकार मिलने और उसके वंशवालों का वहां से अधिकार हटने का विस्तृत वृत्तान्त दिया है । उसमें लिखा है कि उसे वहां का अधिकार गूढ़ बावा के आशीर्वाद से मिला था और उसने जैतारण अपने मौसा को मारकर लिया था (जि० २, पृ० ७२-३) ।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ५६ । बांकीदास; ऐतिहासिक कालें; संख्या ८०६ । वीरत्रिभुद; भाग २, पृ० ८०७ ।

राव सूजा की मृत्यु बाद अधिक दिनों तक जीवित न रहा । वि० सं० १५७२ कार्तिक वदि ६ (ई० सं० १५१५ ता० २ अक्टोबर) को उसका भी स्वर्गवास हो गया^१ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में राव सूजा की चार^२ राणियों के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके निम्नलिखित नौ पुत्र होना लिखा है^३—

(१) भाटी जीवा (उरजनोत) की पुत्री^४
राणियाँ तथा संतति लक्ष्मी (दूसरा नाम सारंगदे) से बाघा^५ और नरा;

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ५८ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७३ । वीरविनोद: भाग २, पृ० ८०७ ।

टॉड ने इसका पीपाड़ से कुमारी बियों को पकड़ लेजानेवाले पठानों के साथ की लड़ाई में मारा जाना लिखा है (राजस्थान: जि० २, पृ० ६५२), परन्तु यह उसका भ्रम है, क्योंकि यह घटना वास्तव में राव सांतल के समय में हुई थी, जिसका उस- (टॉड) ने गद्दी बैठना भी नहीं माना है । यही कारण है कि उसने सूजा का २७ वर्ष राज्य करना लिख दिया है । इस अवधि में से तीन वर्ष तो राव जोधा के बाद राव सांतल का राज्य रहा था ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में सूजा के सात राणियाँ होना लिखा है ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ५६ । वीरविनोद: भाग २, पृ० ८०७ ।

बांकीदास ने ८ पुत्र (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७४), मुंशी देवीप्रसाद ने ११ पुत्र और ३ पुत्रियाँ (राठोड़ों की वंशावली) तथा टॉड ने केवल ५ पुत्र (राजस्थान: जि० २, पृ० ६५२) होना लिखा है । कहीं-कहीं पुत्रों की संख्या दस भी मिलती है ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद ने इसे भाटी केहर कलकर्णोत की पुत्री लिखा है । मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार भी यह केहर (कलकर्णोत) की पुत्री थी (देखो ऊपर पृ० २६७ टि० १) ।

(५) चंडू के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में इसका जन्म वि० सं० १५१४ पौष वदि ३० (ई० सं० १४५७ ता० १६ दिसम्बर) को मूल नक्षत्र में होना लिखा है । जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ५६) तथा वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०७) में वैशाख वदि ३० दिया है, जो ठीक नहीं है, क्योंकि जोधपुर राज्य के संवत् आषाढ़ादि होने से वि० सं० १५१५ वैशाख वदि ३० को मूल नक्षत्र नहीं, किन्तु अश्विनी था । चंडू के यहां की कुंडली में चन्द्रमा की स्थिति धन राशि पर बतलाई है, जिससे उस दिन

- (२) चौहान राव तेजसिंह के पुत्र की पुत्री से शोखा^१ और देवीदास;^२
 (३) राणा पातू की पुत्री मांगलियाणी सरखंगदे से ऊदा^३, प्रयाग^४ और
 सांगा तथा (४) सांखली राणी सहोदरा से पृथ्वीराव और नापा ।

राव गांगा

राव गांगा का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १५४० (चैत्रादि १५४१)
 वैशाख सुदि ११ (ई० सं० १४८४ ता० ६ मई) गुरुवार को हुआ था^५ । वह
 सूजा के स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र बाधा का दूसरा पुत्र था,
 जन्म तथा गद्दीनरानी परन्तु सूजा की मृत्यु होने पर, राज्य के सरदारों ने

मूल नक्षत्र का होना सिद्ध होता है । अतएव चंद्र का दिया हुआ मास ही शुद्ध है ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इसकी चार राणियों से वीरमदे, गांगा, सींधल, भींव, खेतसी और प्रतापसी नामक पुत्र तथा सात पुत्रियां हुईं (जि० १, पृ० ६०-१) । मुंशी देवीप्रसाद ने इसकी पांच राणियों से सात पुत्रियों के अतिरिक्त सात पुत्र होना लिखा है (राठोड़ों की वंशावली) । बांकीदास ने केवल पांच पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७७ । खेतसी के स्थान पर जैतसी नाम दिया है) ।

(१) बांकीदास लिखता है कि शोखा सूजावत के वंश के राठोड़ मुसलमान हुए । हाड़ोती में नाहरगढ़ का स्वामी नवाब कहलाता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३४०) ।

(२) बांकीदास के अनुसार इसके दो पुत्र अचल और हरराज हुए (ऐतिहासिक बातें; संख्या २६७५) ।

(३) जोधपुर राज्य के वर्तमान उदावतों की शाखा इसी से प्रारम्भ हुई है । इनके प्रमुख ठिकानों का उल्लेख ऊपर आ गया है (देखो पृ० १८१ टि० १) ।

(४) इसे जैतारण के अन्तर्गत गांव देवली मिला था ।

(५) चंद्र के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह । जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७ ।

मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में एकादशी के स्थान में दशमी तिथि दी है, परन्तु यह भूल है, क्योंकि चंद्र के यहां के जन्मपत्रियों के संग्रह में भी एकादशी ही दी है ।

उसके बड़े भाई वीरम के जीवित रहते हुए भी उसके स्थान पर गांगा को ही वि० सं० १५७२ मार्गशीर्ष सुदि ३ (ई० सं० १५१५ ता० ८ नवम्बर) गुरुवार को जोधपुर के राज्यसिंहासन पर बैठाया^१। इस सम्बन्ध में मुंहणोत नैणसी लिखता है—

‘कितनेक बड़े ठाकुर जोधपुर आये। उनमें से कुछ तो मुंहता रायमल के यहां ठहरे और अन्य दरिखाने में बैठे। इतने में वर्षा आ गई। तब उन ठाकुरों ने वीरमदेव की माता सीसोदणी^२ को कहलाया कि बरसात के कारण हम यहां रुक गये हैं, सो भोजनादि का प्रबन्ध करा दीजिये। राणी ने उत्तर दिया कि चक्रमे ओढ़कर डेरे पधारो, यहां आपको कौन जिमावेगा। फिर ठाकुरों ने गांगा की माता के पास खबर भेजी, तो उसने कहलाया कि आप दरिखाने में ठहरें, आपकी सेवा की जायगी। उसने भोजन बनवाकर उनको जिमाया, जिससे वे बहुत प्रसन्न हुए। उसने अपनी धाय को भेजकर यह भी पुछवाया कि और जो कुछ चाहिये सो पहुंचाया जावे। ठाकुरों ने कहलाया कि सब आनन्द है और यह भी सन्देशा भेजा कि आपके कुंवर गांगा को जोधपुर की मुबारकबादी देते हैं। राणी ने आशीष भेजी और कहलाया कि जोधपुर का राज्य देना तुम्हारे ही हाथ में है। राव सूजा का देहांत हुआ और टीका देने का समय आया तब इन ठाकुरों ने गांगा को तिलक दिया और वीरमदेव को गढ़ से नीचे उतारा। उतरते हुए मार्ग में रायमल मुंहता मिला। उसने कहा कि यह तो पाटवी (ज्येष्ठ) कुंवर है, इसको गढ़ से क्यों उतारते हो? वह उसको पीछा ले गया। तब सब सरदारों ने मिलकर उसको सोजत का स्वामी बनाया^३।’

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०७-८। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली। मुंहणोत नैणसी की ख्यात (जि० २, पृ० १६६) तथा टॉड-कृत ‘राजस्थान’ (जि० २, पृ० १६३) में भी गांगा का वि० सं० १५७२ में गद्दी बैठना लिखा है।

(२) दयालदास की ख्यात (जि० २, पृ० १२) में भी सीसोदणी ही लिखा है, परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में देवकी दिया है (जि० १, पृ० ६२)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४।

इसी समय के आस-पास राठोड़ों की सेना ने जाकर जालोर को घेर लिया। उन दिनों वहां का शासक मलिक अलीशेरखां था। चार रोज़ तक विपक्षी दलों में भीषण युद्ध होता रहा। दोनों दलों ने कई बार एक दूसरे पर आक्रमण किया, पर अन्त में विजय मलिक अलीशेरखां की ही रही और राठोड़ों को हारकर लौटना पड़ा।

राठोड़ों की जालोर पर
असफल चढ़ाई

हि० स० ६२६ (वि० सं० १५७७ = ई० स० १५२०) में महाराणा सांगा ने ईंडर के राजा रायमल का वहां पुनः अधिकार कराने के लिए, गुजरात के सुलतान मुज़फ्फरशाह की तरफ़ के ईंडर के हाकिम निज़ामुल्मुल्क (मलिकहुसेन बहमनी) पर सैन्य चढ़ाई की। इस अवसर पर महाराणा ने वागड़िया डूंगरसिंह (वालावत) को राव गांगा के पास से सहायता लाने के लिए भेजा। उसके छः मास तक जोधपुर में रहने के बाद राव गांगा स्वयं उसके साथ गया और महाराणा के शामिल होकर ईंडर की लड़ाई में लड़ा। अहमदनगर में इस सेना का गुजरात के सुलतान से सामना होने पर सुलतान हारकर भाग गया और गांगा तथा सांगा की फ़तह हुई।

ऊपर आया हुआ जोधपुर राज्य की ख्यात का कथन निर्मूल है। न तो महाराणा ने इस अवसर पर जोधपुर से सहायता मंगवाई थी और न गांगा ही इस लड़ाई में शामिल हुआ था। साथ ही इस

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी प्रायः ऊपर जैसा ही वृत्तान्त दिया है। उसमें राव सूजा की बीमारी के समय पंचायण (अखैराजोत), सगता (चांपावत) आदि ठाकुरों का जोधपुर जाना और धीरम की माता के दुर्घटन से अप्रसन्न होकर सूजा की मृत्यु होने पर गांगा को टीका देना लिखा है (जि० १, पृ० ६१-२)।

टीका जैता ने अपने हाथ से दिया था। तब से बगड़ी का सरदार ही जोधपुर के राजाओं को अपने हाथ से टीका लगाता एवं तलवार बांधता है।

(१) सैयद गुलाब मियां; तारीख़ पालनपुर (उर्दू); पृ० १०४।

(२) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६६१।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६।

लड़ाई में सुलतान स्वयं उपस्थित न था। यह तो उसके हाकिम निज़ामुल-मुल्क के साथ हुई थी'।

बाबर कई बार भारतवर्ष पर अधिकार करने के लिए सीमा तक आया, परन्तु वह हरबार काबुल लौट गया। हि० स० ६३० (वि० सं० बाबर के साथ की लड़ाई में १५८१ = ई० स० १५२४) में पंजाब के हाकिम महाराणा सांगा की दौलतखां लोदी ने भारत के कमज़ोर सुलतान इब्राहीम लोदी (दिल्ली के तख्त के स्वामी) से विद्रोह कर बाबर को हिन्दुस्तान में बुलाया। इसपर वह गम्खरों के देश में होता हुआ लाहोर के पास आ पहुँचा और उधर का कुछ प्रदेश जीतकर उसने वहाँ दिलावरखां को नियत किया। इसके बाद वह काबुल को लौट गया। उसके जाते ही इब्राहीम लोदी ने फिर विजित प्रदेश पर अधिकार कर लिया, जिसकी सूचना मिलने पर बाबर ने पाँचवीं बार भारतवर्ष में आने का निश्चय किया। ता० १ सफ़र हि० स० ६३२ (मार्गशीर्ष सुदि ३ वि० सं० १५८२ = ता० १७ नवम्बर ई० स० १५२५) को १२००० सेना के साथ प्रस्थान कर मार्ग में कई लड़ाइयां लड़ता हुआ वह पानीपत के मैदान में आ पहुँचा, जहाँ ता० ८ रज्जब हि० स० ६३२ (वैशाख सुदि ८ वि० सं० १५८३ = ता० २० अप्रैल ई० स० १५२६) शुक्रवार को उसका इब्राहीम लोदी से युद्ध हुआ। इस लड़ाई में इब्राहीम लोदी मारा गया और बाबर का दिल्ली पर अधिकार हो गया। इसके कुछ दिनों बाद ही उसने आगरा भी जीत लिया।

दिल्ली का तख्त हाथ में आ जाने पर भी एक ओर से बाबर को भय बना हुआ था। महाराणा सांगा की बढ़ती हुई शक्ति उसके लिए चिन्ता का विषय थी। उधर महाराणा भी जान गया था कि अब इब्राहीम लोदी से प्रबल शत्रु आ गया है। अतएव उसने धीरे-धीरे अपनी शक्ति को बढ़ाना शुरू किया। सैनिक और राजनैतिक दृष्टि से बयाना बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। वह था तो महाराणा के ही अधिकार में, पर उसने उसे अपनी तरफ़

से निज़ामख़ां को दे रक्खा था। बाबर ने जब बयाना पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी तो उस (निज़ामख़ां) ने दोआब में बड़ा परगना लेकर वह स्थान बाबर के अधीन कर दिया। फिर इसी तरह बाबर ने धौलपुर और ग्वालियर के क़िलों पर भी अधिकार किया। इसी बीच अफ़ग़ानों ने जब अपने हाथ से शासन की बाग-डोर खिसकती देखी तो वे भी महाराणा के साथ मिल गये। तदनन्तर महाराणा ने खंडार को जीतकर बयाना फिर अपने अधीन कर लिया। उसकी इस विजय के समाचार से मुग़लों की निराशा बहुत बढ़ी, परन्तु बाबर हताश न हुआ। वह सेना लेकर महाराणा का सामना करने के लिए रवाना हुआ। पर कई बार अपने अफ़सरों के महाराणा-द्वारा पराजित होने का समाचार सुनकर वह भी विचलित हो उठा और उसने सन्धि करने का उद्योग किया, लेकिन वह इसमें कृतकार्य न हुआ। फलस्वरूप ता० १३ जमादिउस्सानी हि० स० ९३३ (चैत्र सुदि १४ वि० सं० १५८४ = ता० १७ मार्च ई० स० १५२७) को सवेरे ६½ बजे महाराणा और बाबर की सेनाओं का मुक़ाबिला हुआ। इस लड़ाई में अन्य राजाओं और सरदारों के अतिरिक्त मेड़ते के रायमल और रत्नसिंह भी महाराणा की सेना में शामिल थे, जिनको राव गांगा ने अपनी तरफ़ से सेना के साथ भेजा था। भीषण लड़ाई के बाद इस युद्ध में महाराणा की पराजय हुई और उसके अनेक सरदार तथा मेड़ते के रायमल और रत्नसिंह काम आये।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि सरदारों ने धीरम को सोजत की जागीर दिला दी थी, जहाँ वह रहता था। उसके साथ उसका स्वामिभक्त मुंहता रायमल का मारा कर्मचारी मुंहता रायमल भी गया था, जो उसका जाना और गांगा का सारा काम संभालता था। वह वास्तविक हक़दार सोजत पर अधिकार होना धीरम को गद्दी दिलाने के पक्ष में था और इसीलिए जब राव गांगा सोजत पट्टे का एक गांव लूटता तो वह बदले में जोधपुर के दो गांव लूट लेता था। इस तरह दोनों भाइयों में विरोध चलता रहा।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६७५-६२।

(२) मुंहयोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४४-५।

जैता' जोधपुर का, और कूपा' सोजत का चाकर था। जैता की बसी बगड़ी राव वीरम के विभाग में आई। उसे राव वीरम ने अपना सेना-पति बनाया और बगड़ी उसके बहाल रखी। वह भी सोजत का हितेच्छु था। गांगा ने उसको कहा कि तुम बगड़ी छोड़कर वीलाड़े आ रहो। तब उसने बगड़ी में रहनेवाले अपने धायभाई को अपनी बसी (कुटुम्ब और राजपूतों-सहित रहने का स्थान) वीलाड़े ले जाने के लिए लिखा, परन्तु उस(धायभाई) ने ऐसा न किया। अनन्तर वीरम और गांगा के सैनिकों में युद्ध हुआ, जिसमें वीरम की जीत हुई और गांगा के सैनिक भाग निकले^३। इसका कारण यह ज्ञात होने पर कि जैता के अधिकार में बगड़ी रहने से यह पराजय हुई है। गांगा ने जैता को बुलाकर उपालम्भ दिया। इसके बारे में जब जैता ने फिर अपने धायभाई को लिखा तो उसने रायमल को मारने का निश्चय किया। वह इसी उद्देश्य से सोजत जाकर रायमल से मिला। उसके साथ दरवार को जाते समय उसने मार्ग में उसपर तलवार चलाई, परन्तु वह ठीक लगी नहीं और घूमकर रायमल ने ही तलवार के एक बार में उस(धायभाई) का काम तमाम कर दिया^४।

फिर राव गांगा ने जैता की मारफ़्त बातकर कूपा को अपनी ओर मिला लिया और उसकी सलाह के अनुसार दो-दो चार-चार गांव सोजत के प्रतिवर्ष दबाने के इरादे से धौलहरे में थाना स्थापित कर वहां अपने कई

(१) राव रणमल के पुत्र अखैराज के पौत्र पंचायण का पुत्र, जिसके वंश के जैतावत राठोड़ कहलाते हैं।

(२) राव रणमल के पौत्र मेहराज का पुत्र, जिसके वंश के कूपावत राठोड़ कहलाते हैं।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४५। जोधपुर राज्य की ख्यात में जोधपुर के नरेशों के हारने आदि की बात जगह-जगह या तो उड़ा दी गई है, या उसका उल्लेख किसी दूसरे प्रकार से किया गया है। गांगा की सेना की इस पराजय का उसमें हाल नहीं दिया है, परन्तु मुंहणोत नैणसी ने अपनी ख्यात में इसका स्पष्ट उल्लेख किया है।

(४) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४५-६।

प्रमुख सरदारों को सेना सहित रक्खा; पर रायमल ने उनपर चढ़ाई कर सारी सेना को मार डाला और उनके घोड़े छीनकर वीरम के हवाले कर दिये^१। इसके बाद उसने इतनी उत्तमता से सोजत का प्रबन्ध किया कि दो वर्ष तक राव गांगा संभल न सका^२। इसी बीच हरदास ऊहड़^३ राव गांगा का साथ छोड़कर^४ रायमल से जा मिलता, जिसे वीरम ने अपना घोड़ा चढ़ने के लिए दिया। एक बार जब वह (हरदास) एक युद्ध में लड़ रहा था, उसका घोड़ा घायल हो गया और वह स्वयं घावों से पूर्ण युद्ध-क्षेत्र से लाया गया। वीरम अपना घोड़ा न देखकर उससे बड़ा नाराज़ हुआ, जिसपर वह उसका साथ छोड़ नागौर में सरखेलखां के पास जा रहा। इधर शेखा (सूजा का पुत्र) ने वीरम की माता के पास जाकर उनके शामिल होने की इच्छा प्रकट की^५। रायमल इसके विरुद्ध था, पर उसकी

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जब वीरम के अच्छे-अच्छे राजपूत गांगा के पक्ष में हो गये तो मुंहता रायमल ने धौलहरे पर चढ़ाई की, जहां राव गांगा के घोड़े रहते थे, लेकिन घोड़े उसके हाथ लगे नहीं; (जि० १, पृ० ६५) परन्तु नैणसी का घोड़े हाथ लगने का कथन अधिक विश्वास योग्य है।

(२) मुंहयोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४६-७।

(३) मुंहयोत नैणसी ने इसे मोकलोत लिखा है (जि० २, १४६)।

(४) इसके राव गांगा का साथ छोड़ने के विषय में मुंहयोत नैणसी की ख्यात में लिखा है—‘हरदास ऊहड़ मोकलोत के २७ गांवों सहित कोठया पट्टे में था। वह लकड़-चाकरी (प्रतिवर्ष राज्य में नियत परिमाण में ईंधन पहुंचाना) नहीं करता, केवल आकर मुजरा कर जाता था, इसीलिए कुंवर मालदेव उससे अप्रसन्न रहता था। उसने कोठया भांण को दिया। तीन वर्ष तक तो भांण के चाकरी करते रहने के समय हरदास ने पट्टे की आय खाई, पर जब पीछे से स्पष्ट रूप से अपने से पट्टा उतर जाने की खबर मिली तो वह सोजत में वीरमदेव के पास चला गया (जि० २, पृ० १४६)।’

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव गांगा ने एक बार शेखा (सूजावत) की गोठ की थी। दोनों अपने साथियों सहित जब मरने में खेल रहे थे, तो दो दल बनाकर एक दूसरे पर पानी के छिंटे मारने लगे। खेल ही खेल में कड़ासुनी आरम्भ हो गई और बात यहां तक बढ़ गई कि शेखा अप्रसन्न होकर पीपाड़ चला गया और वहां से उसने अपने भाई देवीदास को नागौर भेजकर दोस्तखां को बुलाया

सम्मति की परवा न कर जब वीरम की माता ने शेखा को अपने शामिल कर लिया तो उसे बड़ा क्षोभ हुआ और उसने राव गांगा को कहलाया—“अब तुम आओ तो हुंडी सिकरेगी, वीरम के पास धरती न जायेगी। मैं काम आऊंगा और धरती तुमको दूंगा।” तब राव गांगा और कुंवर मालदेव दोनों कटक जोड़कर सोजत गये। वीरम के साथ लड़ाई होने पर रायमल लड़ता हुआ मारा गया और सोजत पर राव गांगा का अधिकार हो गया।

इसके बाद शेखा हरदास ऊहड़ को अपने साथ पीपाड़ ले गया, जहाँ दोनों में रात-रात भर तक एकान्त में बैठकर जोधपुर हस्तगत करने के सम्बन्ध में मंत्रणा होती। राव गांगा ने, जिसका राव गांगा और शेखा की लड़ाई

पक्ष बहुत बलवान था, व्यर्थ के रक्तपात से बचने के लिए कहलाया कि जितनी धरती में करड (वास विशेष) हो वह तुम ले लो और जितनी में भुरट पैदा हो वह हमारी रहे। शेखा की इच्छा तो भूमि का इस भांति विभाग कर सुलह कर लेने की थी, परन्तु हरदास ने

(जि० १, पृ० ६३)। उक्त ख्यात में शेखा का वीरमदेव के शामिल होने का उल्लेख नहीं है, परन्तु अधिक संभव तो यही है कि शेखा अप्रसन्न होकर गांगा के विरोधी वीरम के शामिल हो गया हो।

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १४७-८।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि (श्रावणादि) वि० सं० १५८८ (सैत्रादि १५८६ = ई० स० १५३१) चैत्र सुदि ११ को गांगा कुंवर मालदेव के साथ क़ौज लेकर सोजत पर गया था, जिसके साथ की लड़ाई में मेहता रायमल मारा गया (जि० १, पृ० ६२)। बांकीदास ने भी ऐसा ही लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१४), परन्तु ख्यातों आदि में दिये हुए संवत् विश्वास के योग्य नहीं माने जा सकते। घटनाक्रम पर दृष्टिपात करते हुए तो यह घटना शेखा के साथ की लड़ाई से पहले की होनी चाहिये। आगे चल कर उसी ख्यात में लिखा है कि वीरम की सहायता के लिए महाराणा सांगा ने जाकर गांव सारण में डेरा किया था; परन्तु राव गांगा का सैन्यबल देखकर वह वहाँ से ही पीछे लौट गया (जि० १, पृ० ६६)। इस कथन की पुष्टि में एक गीत भी दिया है, परन्तु आत्मरलाचा की भावना से लिखा हुआ यह सारा का सारा कथन निर्मूल है। ऐसे अनेक गीत तो ख्यातों में पीछे से बनाकर भर दिये गये हैं। महाराणा सांगा तो वि० सं० १५८४ (ई० स० १५२८) में ही मर गया था।

इसे स्वीकार न किया। यह समाचार पाकर राव गांगा ने सेना एकत्रित की और बीकानेर से राव जैतसी को भी सहायता के लिए बुलाया^१। उधर शेखा तथा हरदास नागोर के सरखेलखां और उसके पुत्र दौलतखां को सहायतार्थ ले आये, जिनके साथ उन्होंने बेराही (विराई) गांव में डेरे किये। गांधाणी गांव में गांगा के डेरे हुए, जहां बीकानेर का राव जैतसी भी उससे मिल गया। राव गांगा ने शेखा से फिर कहलाया कि जहां अभी आप ठहरे हैं, वहां ही अपनी सीमा निर्धारित करके युद्ध बन्द करें, परन्तु शेखा ने उसके कथन पर ध्यान न दिया और कहलाया—“काका के बैठे जब तक भतीजा राज्य करे तब तक मुझे नींद आने की नहीं। मैंने खेत बुहारने की सेवकाई की है, अब अपना युद्ध ही हो।” दूसरे दिन विगोधी दलों की मुठभेड़ होने पर भी जब गांगा तथा उसके साथी भागे नहीं तो खाननेशेखा से कहा—“तुम तो कहते थे कि वे भाग जावेंगे।” शेखा ने उत्तर दिया—“खां साहब, जोधपुर है, योही तो कैसे भाग जावें।” खान के हृदय में उसी समय सन्देह ने घर कर लिया कि कहीं चूक न हो। इतने ही में राव गांगा ने एक तीर मारा, जिससे खान के हाथी का महावत घायल होकर गिर पड़ा। दूसरा तीर हाथी के लगा और वह भाग निकला^२। दौलतखां ने भी पीठ दिखाई और उसके साथ ही सारी यवन-सेना भी भाग निकली। शेखा अपने ७०० सवारों सहित लड़ता हुआ घायल होकर गिर पड़ा और हरदास इसी लड़ाई में काम आया। राव गांगा ने जब घायल शेखा को देखा तो उससे पृच्छा कि धरती किसकी रही। राव जैतसी ने उसपर छत्र कराया,

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बीकानेर का राव जैतसी नागाणा यात्रा करने के लिए आया हुआ था। लड़ाई के समय वह भी गांगा की तरफ शामिल हो गया (जि० १, पृ० ६४)। यह कथन विश्वसनीय नहीं माना जा सकता। वास्तविक बात तो यह है कि उसे राव गांगा ने सहायतार्थ बुलाया था और उसके आवेदन पर ही वह युद्ध में ससैन्य शामिल हुआ। नैणसी और दयालदास दोनों की ख्यातें इस कथन की पुष्टि करती हैं।

(२) दयालदास की ख्यात (जि० २, पत्र १३) के अनुसार बीकानेरी सेना के साथ के रतनसी ने हाथी के बरछी मारी थी।

जल पिलाया, और अमल खिलाया। तब शेखा ने आंख खोलकर पूछा—
“तू कौन है ?” राव जैतसी ने इसपर उसे अपना परिचय कराया। शेखा
ने कहा—“रावजी, मैंने तुम्हारे क्या बिगाड़ा था, जो यह चढ़ाई की। हम
काका-भतीजे तो धरती के वास्ते लड़ते थे। अब जो मेरी गति हुई, वही
तुम्हारी भी होगी।” इतना कहने के साथ ही उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।
उसका अंतिम संस्कार करने के उपरान्त गांगा तथा जैतसी अपने डेरों में
गये। वहां से विदा होकर जैतसी बीकानेर लौट गया^१।

दौलतख़ां के भागे हुए हाथी का नाम दरियाजोश था। मुंहणोत
नैणसी की ख्यात में लिखा है—‘वह हाथी भागता-भागता मेड़ते पहुंचा, जहां
मेड़तियों ने उसे पकड़ लिया और द्वार छोटा होने
से उसको तोड़कर उसे भांतर ले गये। राव गांगा
और कुंवर मालदेव ने जब सुना कि खान का हाथी वीरमदेव (दूदावत)
के पास मेड़ते गया तो उसने उसको पीछा मंगवाया, परन्तु मेड़तियों ने दिया
नहीं। वीरमदेव के बहुत समझाने-बुझाने पर उन्होंने कहा कि कुंवर जी
हमारे यहां अतिथि होकर आवें तो उनकी मेहमानदारी कर हाथी देंगे। इसपर

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात: जि० २, पृ० १४६-४७ । दयालदास की
ख्यात: जि० २, पत्र ११-३ । मुंशी देवीप्रसाद: राव जैतसीजी का जीवन चरित्र; पृ०
३४-७० ।

रौड का कथन भिन्न है। वह लिखता है—‘शेखा ने जोधपुर के हज़ के लिए
लड़ने का निश्चय किया और नागौर से राठोड़ों को निकालनेवाले दौलतख़ां लोदी को
एतदर्थ सहायता के लिए बुलाया। दौलतख़ां ने आकर पहले मेल कराने का प्रयत्न किया,
परन्तु गांगा ने स्वीकार न किया। फलतः लड़ाई हुई, जिसमें शेखा मारा गया और खान
हारकर भाग गया (राजस्थान: जि० २, पृ० ६४३)। “वीरविनोद” के अनुसार
शेखा इस लड़ाई में मारा नहीं गया, बल्कि भागकर चित्तोड़ चला गया और बाद में
गुजराती बहादुरशाह की लड़ाई में मारा गया (भाग २, पृ० ८०८), पर मुंहणोत
नैणसी ने भी उसका इसी लड़ाई में मारा जाना लिखा है, अतएव “वीरविनोद” का
उपर्युक्त कथन माननीय नहीं कहा जा सकता।

वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०८) एवं जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ०
६४) में इस लड़ाई का समय वि० सं० १८५६ (ई० स० १७६६) दिया है।

मालदेव मेड़ते गया। उससे जीमने के लिए कहने पर उसने कहा पहले हाथी दो तो जीमोंगे। रायमल दूदावत ने उसका हठ देखकर कहा—“कुंवरजी, ऐसे ही हठीले बालक हमारे भी हैं। सो हाथी नहीं देसकते, आप पधारो।” मालदेव यह उत्तर पाकर क्रोधित हुआ और मेड़ते की भूमि में मूली बोने की प्रतिज्ञा कर जोधपुर लौट गया। राव गांगा ने यह बात सुनकर वीरमदेव को कहलाया—“तुमने क्या किया? जब तक मैं बैठा हूँ तब तक तो तुम मेड़ता के स्वामी हो, परन्तु जिस दिन मैंने आंख बन्द की कि मालदेव तुम को दुःख देगा, इसलिए हाथी उसको दे देना ही उचित है।” तब वीरमदेव ने दो घोड़े तो राव गांगा के वास्ते और वह हाथी मालदेव के लिए भिजवाया। हाथी ज़रूमी तो पहले से ही था, मार्ग में मर गया। यह समाचार सुनकर राव ने कहा कि हमारी धरती में आकर मरा सो हमारे पहुँच गया, पर मालदेव ने यह बात स्वीकार नहीं की। उसने कहा—“आपके आ गया। मेरे नहीं आया, जब ले सकूंगा ले लूंगा।” उसके मन में यह बात ऐसी चुभी कि गद्दी बैठने पर उसने मेड़तियों को इतना तंग किया कि उन्हें अपना ठिकाना छोड़कर भागना पड़ा, जैसा कि आगे बतलाया जायगा।

गांगा स्वभाव का बड़ा नम्र और सुशील था। वह राज्य-वृद्धि के लिए भी प्रयत्नशील नहीं रहा करता था। उसकी मृत्यु के समय उसके अधिकार में केवल जोधपुर और सोजत के दो पर-
 राव गांगा की मृत्यु
 गने ही रह गये थे। उसका पुत्र मालदेव इसके विपरीत उग्र स्वभाव का और उष्माभिलाषी था। इसीलिए ऊपर से वैसी कोई बात दृष्टिगोचर न होने पर भी वह मन ही मन अपने पिता से विरोध

(१) मुंहयोट नैयासी की ख्यात; जि० २, पृ० १५२-४। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि दौलतख़ां के भागे हुए हाथी के मेड़ता पहुँचने पर वीरमदेव ने उसे पकड़ लिया। पीछे-पीछे मालदेव भी गया और उसने हाथी वापस मांगा, पर वीरमदेव ने उसे वापस न देकर दौलतख़ां को लौटा दिया, जिससे कुंवर मालदेव और वीरम के बीच विरोध उत्पन्न हो गया (जि० १, पृ० ६५)। दौलतख़ां को हाथी लौटाने की बात मानी नहीं जा सकती, जब कि अन्य ख्यातों में भी उस हाथी का मालदेव के पास भेजे जाने का मार्ग में मर जाना पाया जाता है।

रखता था। राव गांगा अफ़ीम बहुत खाया करता था। एक दिन जब वह नशे की पिनक में ऊपर की मंज़िल के झरोखे में बैठा हुआ था, मालदेव ने पीछे से जाकर उसे उठाकर नीचे फेंक दिया, जिससे उसकी जीवन-लीला उसी समय समाप्त हो गई। उस समय उसके पास भांण (तिवरी का स्वामी), पुण्डित मूला और जोगी सुखनाथ (सोमनाथ) थे। पहले-पहल मालदेव ने भांण पर वार किया, फिर दूसरा हाथ मूला पर चलाया। इसी बीच समय पाकर जोगी सुखनाथ जान बचाकर भाग गया^१। यह घटना (श्रावणदि) वि० सं० १५८८ (चैत्रादि १५८६) ज्येष्ठ सुदि ५ (ई० स० १५३२ ता० ६ मई) को हुई^२।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। जयपुर से मिली हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११६-७। मुंशी देवीप्रसाद के यहां से आई हुई मूंदियाब की ख्यात; पृ० ३४ [चूक का समय वि० सं० १५८८ कार्तिक वदि १ (ई० स० १५३१ ता० २७ सितम्बर) दिया है]। मुंशी देवीप्रसाद के यहां से आई हुई राठोड़ों की एक ख्यात; पृ० १६ (इस घटना का समय कार्तिक सुदि १ दिया है)। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में भी मालदेव का अपने पिता गांगा को झरोखे में से गिराकर मारना लिखा है (इस पुस्तक में इस घटना का समय ज्येष्ठ वदि १ दिया है)।

इस विषय का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है, जो मूंदियाब की ख्यात में भी दिया है—

भांण पेलीं भरड़ियो, पड़यो मूले पर हाथ ।

गोखां गांग गुड़ावियो, भाज गयो सुखनाथ ॥

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि कहीं ऐसा भी मिलता है कि मालदेव ने अफ़ीम के नशे में पिनक लेते हुए अपने पिता को झरोखे से गिराकर मार डाला (जि० १, पृ० ६३)।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या; ८१०। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६३। जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११७। जिन ख्यातों आदि में भिन्न समय दिया है, उनका उल्लेख ऊपर टिप्पण (१) में आ चुका है। ख्यातों आदि में संवत्तों में परस्पर विभिन्नता होने के कारण यह कहना कठिन है कि उनमें से कौनसी तिथि विश्वसनीय है।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव गांगा के नौ राणियां थीं, जिनसे उसके निम्नलिखित पुत्र तथा पुत्रियां हुईं —

विवाह तथा सन्तति

१—सांखली गंगादे ।

२—सीसोदणी उत्तमदे—यह राणा सांगा की पुत्री थी । इसका पीहर का नाम पद्मावती था । जोधपुर का पद्मसर तालाब इसी का बनवाया हुआ है^१ ।

३—देवढी माणिकदे—यह सिरोही के राव जगमाल की पुत्री थी । इससे तीन पुत्र^३ और एक पुत्री हुई—

(१) मालदेव ।

(२) मानसिंह—इसकी जागीर में काकाणी था ।

(३) वैरसल (वैरिशाल) ।

(४) सोनबाई—इसका विवाह जैसलमेर के रावल लूणकरण से हुआ था^४ ।

४—भटियाणी फूलांबाई—इससे एक पुत्री हुई—

(१) राजकुंवरबाई—यह चित्तोड़ के राणा विक्रमादित्य को ब्याही गई थी^५ ।

५—भटियाणी लाडबाई—इससे एक पुत्र हुआ—

(१) किशनसिंह ।

६—कछवाही चंद्रावलबाई ।

(१) जि० १, पृ० ६७ । “वीरविनोद” में भी इन्हीं छः पुत्रों के नाम दिये हैं (भाग २, पृ० ८०८) ।

(२) बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” नामक ग्रन्थ से भी इसकी पुष्टि होती है (संख्या ८१५) ।

(३) बांकीदास ने इससे केवल तीन पुत्र ही होना लिखा है, जिनके नाम ख्यात के अनुसार ही हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८१७) ।

(४) बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” में भी इसका उल्लेख है (संख्या ८१८) ।

(५) वही; संख्या ८१८ ।

७—सोनगरी सबीराबाई—इससे एक पुत्री हुई—

(१) चम्पाबाई—इसका विवाह सिरोही के देवड़ा रायसिंह के साथ हुआ ।

८—देवड़ी जेवंतां—इससे दो पुत्र हुए—

(१) सादूल (शार्दूल)

(२) कान्ह—इसकी जागीर माणकलाव में थी ।

९—भाली प्रेमदे ।

सातवां अध्याय

राव मालदेव और राव चन्द्रसेन

राव मालदेव

राव मालदेव का जन्म वि० सं० १५६८ पौष वदि १ (ई० सं० १५११ ता० ५ दिसम्बर) शुक्रवार को हुआ था^१। अपने पिता को मारकर (श्राव-
जन्म तथा गद्दीनशीनी णादि) वि० सं० १५८८ (चैत्रादि १५८६) आषाढ
वदि २ (ई० सं० १५३२ ता० २१ मई) को वह
जोधपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठा^२। उस समय उसके अधिकार में केवल
दो परगने—जोधपुर और सोजत—थे। गांगा की सरलता से लाभ उठाकर
उसके राज्य-काल में ही सरदारों ने अपना बल बढ़ा लिया था और उनमें
से अधिकांश स्वतंत्र से हो गये थे।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। बांकीदास; ऐतिहासिक
बातें; संख्या ८२०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। चंडू के यहां से मिला हुआ
जन्म-पत्रियों का संग्रह। मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में पौष
वदि १४ दिया है।

(२) जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात; पृ० ११८।

जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० ६८); वीरविनोद (भाग २, पृ० ८०८)
तथा ऐतिहासिक बातें (संख्या ८२०) में वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ दिया
है। जोधपुर राज्य की ख्यात में दिये हुए पहले के राजाओं के संवत् श्रावणादि होने से
गांगा की मृत्यु वि० सं० १५८६ में माननी पड़ती है (देखो ऊपर पृ० २८१)। इस
दृष्टि से वि० सं० १५८८ श्रावण सुदि १५ को मालदेव का गद्दी बैठना अशुद्ध ठहरता
है। यदि गांगा के मारे जाने का संवत् चैत्रादि ही मानें तो उसकी मृत्यु और गांगा
के गद्दी बैठने के बीच दो मास और दस दिन का अन्तर पड़ता है। राठोड़ों में बहुधा
बारह दिन बाद गद्दी बैठने की प्रथा पाई जाती है। इस दृष्टि से यह अन्तर अधिक
ठहरता है। जयपुर से आई हुई ख्यात में मालदेव का गांगा की मृत्यु के बारह दिन
बाद ही गद्दी बैठना माना है, जो ठीक प्रतीत होता है।

राजपूताने का इतिहास



राव मालदेव

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि मालदेव का स्वभाव अपने पिता के स्वभाव से विपरीत था। वह वीर होने के साथ ही उच्चाभिलाषी भी था। गद्दी पर बैठते ही उसने राज्य प्रसार की ओर ध्यान दिया। सर्वप्रथम उसने भाद्राजूण के सींघल स्वामी वीरा पर चढ़ाई की और उसे मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। फिर उसने वह जागीर अपने पुत्र रत्न-सिंह के नाम कर दी^१।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि दरियाजोश हाथी के कारण मालदेव और मेड़ता के स्वामी वीरमदेव के बीच विरोध उत्पन्न हो गया था, जिससे मालदेव का वीरमदेव को मेड़त से निष्काशना और अजमेर पर भी अधिकार करना मालदेव उसे सज़ा देना चाहता था। अजमेर मुसलमानों के हाथ में चले जाने पर^२ एक बार जब वहां का हाकिम किसी कारणवश बाहर चला गया, तब वीरम ने अपनी सेना भेजकर उस (अजमेर) पर क़ब्ज़ा कर लिया^३। इसकी ख़बर मिलने पर मालदेव ने उससे कहलाया कि अजमेर मुझे दे दो, पर वीरम ने इसपर कोई ध्यान न दिया। इसपर मालदेव ने सेना भेजकर वीरम

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; सं० ८२०) तथा टॉड (राजस्थान; जि० २, पृ० १५४) ने वि० सं० १५१६ (ई० स० १५३६) में भाद्राजूण लेना लिखा है।

(२) वि० सं० १५९० (ई० स० १५३३) में गुजरात के बहादुरशाह ने शमशेरुलमुल्क को ससैन्य भेजकर अजमेर पर क़ब्ज़ा कर लिया था (दीवान बहादुर हरबिलास सारदा; अजमेर; पृ० १५७ और बेल्ले; हिस्ट्री ऑफ़ गुजरात; पृ० ३७३)। ख्यात में इसके विपरीत वहां मुग़लों का थाना होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(३) सारदा-रचित “अजमेर” (पृ० १५७) में लिखा है कि बहादुरशाह का अजमेर पर केवल दो बरस तक क़ब्ज़ा रहा, जिसके बाद वीरम ने वहां अधिकार कर लिया। इस हिसाब से वीरम का वहां वि० सं० १५१२ (ई० स० १५३५) में अधिकार हुआ होगा, पर जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का वि० सं० १५१८ (ई० स० १५४१) में होना लिखा है (जि० १, पृ० ६८), जो ठीक नहीं कहा जा सकता।

को मेड़ते से बाहर निकाल दिया^१। वीरम अजमेर जाकर वहाँ से मेड़ते का बिगाड़ करने लगा। उन्हीं दिनों सहसा (तेजसिंहोत वरसिंहोत) राव के पास आ रहा, जिसे उसने रीयां की जागीर दे दी^२। कूपा, राणा (अखैरा-जोत) और भादा (पंचायणोत) रिड़ के थाने पर रहते थे। एक दिन अचानक वीरम ने रीयां पर चढ़ाई कर दी। कूपा, राणा और भादा रीयां जाकर सहसा के शामिल हुए^३। इस लड़ाई में वीरम के बहुतसे आदमी मारे गये और स्वयं वह भी बुरी तरह घायल हुआ, जिसे मेड़तिये लेकर निकल गये। इसपर मालदेव की सेना ने अजमेर जाकर वीरम को वहाँ से भी निकाल दिया और इस प्रकार मालदेव का अधिकार अजमेर पर भी स्थापित हो गया^४। वीरम वहाँ से भागकर क्रमशः बौली और

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६०) में भी वीरमदेव का मेड़ते से निकाला जाना लिखा है।

(२) मुंहणोत नैथसी की ख्यात (जि० २, पृ० १२२) तथा बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या १११६) में भी इसका उल्लेख है।

(३) बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या १११७) में भी इसका उल्लेख है।

(४) दी० व० हरबिलास सारदा ने वि० सं० १२१२ (ई० स० १२१२) में मालदेव का अजमेर पर कब्ज़ा होना और वहाँ वि० सं० १६०० (ई० स० १२४३) तक उसका अधिकार रहना लिखा है (अजमेर; पृ० १२७)।

मुंहणोत नैथसी की ख्यात से पाया जाता है कि पहले जैता, कूपा तथा राव अखैराज (सोनगरा) वीरम को अजमेर से निकालने में समर्थ न हुए। इस लड़ाई में वीरम का सहायक रायसल बुरी तरह घायल हुआ था और उसके मारे जाने की भी अप्रवाह थी। मालदेव ने पुरोहित मूला को इसका ठीक-ठीक निश्चय करने के लिए भेजा। वीरम ने उसकी बातों में आकर घायल रायसल के पास उसे भेज दिया। पुरोहित ने रायसल के जीवित रहने की खबर मालदेव को लाकर दी, पर इसी बीच जोर पड़ने के कारण रायसल के घाव फिर फट गये, जिससे वह मर गया। यह खबर मिलने पर मालदेव ने फिर सेना भेजी, जिसने वीरम को अजमेर से निकाल दिया (जि० २, पृ० १२६-७)।

घाटसू गया, जहां भी पीछा किया जाने पर वह इधर-उधर फिरता हुआ शेरशाह सूरे के पास चला गया^१। इधर मालदेव का प्रभुत्व क्रमशः बढ़ता ही गया।

वि० सं० १५६२ माघ वदि २ (ई० स० १५३६ ता० १० जनवरी) को उसने नागोर के खान पर चढ़ाई की और उसे मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। इस अवसर पर उसकी सेना का मुसलमानों से नागोर लेना संचालन कूपा के हाथ में था। जोधपुर की तरफ से वीरम (मांगलियोत) वहां का हाकिम नियत किया गया^२।

(श्रावणादि) वि० सं० १५६४^३ (चैत्रादि १५६५) आषाढ वदि ८

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८-६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२२-३। “वीरविनोद” में भी वीरम के शेरशाह के पास जाने का उल्लेख है (भाग २, पृ० ८०६)।

मुंहयोत नैणसी यह भी लिखता है—‘वीरम भागकर कछवाहा रायसल्ल शेखावत के पास गया। उसने बारह मास तक वीरम को बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने पास रक्खा। वहां से चलकर वीरम ने बॉली, बणहटा और बरवाड़ा लिया तथा वह वहां रहने लगा। मालदेव ने फिर उसपर फ़ौज भेजी जो मौजाबाद आई, तब उसने कहा कि अब की बार मैं काम आऊंगा। खेमा मुंहता ने कहा कि खेत (मृत्यु) की ठौर तो निश्चित करो। दोनों सवार होकर चले। मुंहता आगे बढ़ा हुआ चला गया। उसने कहा, जो मरना ही है तो मेबते में ही कड़ाई कर न मरें? पराई धरती में क्यों मरें? खेमा ने वीरमदेव को ले जाकर मल्लारणे के मुसलमान थानेदार से मिलाया और उसके द्वारा वे रणथंभोर के क़िलेदार से मिले। क़िलेदार वीरम को पादशाह (शेरशाह सूरे) के हज़ूर में ले गया, जो उसके साथ मेहरबानी से पेश आया (जि० २, पृ० १५७)।’

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०। टोंड (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५४) वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में मालदेव का नागोर लेना लिखता है।

मुंहयोत नैणसी ने भी एक स्थल पर (जि० २, पृ० १५५) राव मालदेव का नागोर में रहना लिखा है, जिससे सिद्ध है कि उस (मालदेव) ने नागोर पर अधिकार कर लिया था।

(३) “वीरविनोद” में वि० सं० १५६५ (ई० स० १५३८) दिया है (भाग १, पृ० ८०६)।

(ई० स० १५३८ ता० २० जून) को गव ने सिवाणे पर सेना भेजी, जिसने वहां के स्वामी राठोड़ डूंगरसी (जैतमालोत) को निकालकर सिवाणा को अर्पण करना वहां जोधपुर राज्य का अधिकार स्थापित किया। जोधपुर की तरफ से मांगलिया देवा (भादावत) वहां का किलेदार नियत किया गया।

इसी समय के आस-पास बलोचों द्वारा निकाले हुए जालोर के स्वामी सिकंदरखां ने राव मालदेव के पास जाकर उससे सहायता चाही।

जालोर के सिकंदरखां को
कैद करना

मालदेव ने उसका आदरसत्कार तो बहुत किया और दुनाड़ा की जागीर भी उसके नाम करदी, पर उसका मन साफ़ न था, जिससे उसने उसे मारने का षड्यंत्र किया। इसका पता सिकंदरखां और उसके साथियों को ठीक समय पर लग जाने से वे वहां से भाग निकले। राठोड़ों ने उनका पीछा कर दुनाड़े में सिकंदरखां को कैद कर लिया। पर दूसरे पठान वहां से निकलकर चित्तोड़ के महाराणा के आश्रय में चले गये। कैद में रहते समय ही सिकंदरखां की मृत्यु हो गई।

इतिहास-प्रसिद्ध महाराणा संग्रामसिंह के बाद रत्नसिंह (दूसरा) और उसके बाद विक्रमादित्य चित्तोड़ राज्य का स्वामी हुआ, जिसे मारकर

महाराणा उदयसिंह और
सोनगों, राठोड़ों आदि
की सहायता

महाराणा रायमल के सुप्रसिद्ध कुंवर पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र वणवीर चित्तोड़ के सिंहासन पर बैठ गया। उसने राज्य के दूसरे हकदार बालक उदयसिंह को भी मारने का प्रयत्न किया, परन्तु स्वामिभक्त धाय पन्ना उसके स्थान में अपने पुत्र की आहुति देकर उदयसिंह को सुरक्षित स्थान

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०। टॉड वि० सं० १५६६ (ई० स० १५३६) में मालदेव का सिवाणा लेना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५४), जो ठीक नहीं है, क्योंकि वि० सं० १५६४ (चैत्रादि १५६५) आषाढ वदि ८ का एक लेख सिवाणे के दूसरे फटक पर लगा हुआ मिला है, जिसमें इस विजय का उल्लेख है।

(२) सैयद गुलाब मियां; तारीख पालनपुर (उर्दू); पृ० ११३-४।

कुंभलमेर में ले गई। सरदार वणवीर के इस अपकृत्य से अप्रसन्न तो थे ही, जब उन्हें उदयसिंह के जीवित होने का पता चला तो वे स्पष्टरूप से वणवीर के विरोधी बन गये और उदयसिंह को सिंहासनारूढ़ कराने का प्रयत्न करने लगे। कुंभलमेर में जाकर उन्होंने उदयसिंह को मेवाड़ का स्वामी माना और राजगद्दी पर बिठलाकर नज़राना किया। इस घटना का वि० सं० १५६४ (ई० सं० १५३७) में होना माना जाता है। फिर सरदारों ने सोनगरे अखैराज (रणधीरोत) की पुत्री से उसका विवाह कराया। अनन्तर उदयसिंह ने शेष सरदारों को परवाने भेजकर बुलवाया। परवाने पाते ही बहुत से सरदार और आस-पास के राजा उसकी सहायतार्थ जा पहुंचे। उधर मारवाड़ की तरफ़ से उसका श्वसुर अखैराज सोनगरा, कूपा महाराजोत आदि राठोड़ सरदारों को भी अपने साथ ले गया। इस बड़ी सेना के साथ उदयसिंह ने माहोली (मावली) नामक गांव में वणवीर को परास्त कर चित्तोड़ पर चढ़ाई की, जहां थोड़ी लड़ाई के बाद उसका अधिकार हो गया। इस प्रकार वि० सं० १५६७ (ई० सं० १५४०) में उदयसिंह अपने सारे पैतृक राज्य का स्वामी बना।

इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘वि० सं० १५६० (ई० सं० १५३३) में राव मालदेव ने राठोड़ जैता, कूपा आदि सरदारों को मेवाड़ के उदयसिंह की सहायतार्थ भेजा, जिन्होंने वणवीर को निकालकर उस (उदयसिंह) को चित्तोड़ के सिंहासन पर बैठाया। इसके बदले में महाराणा ने वसन्तराय नाम का एक हाथी और चार लाख पीरोज़े (फ़ीरोज़े) पेशकशी के मालदेव के पास भेजे।’

जोधपुर राज्य की ख्यात का ऊपर आया हुआ सारा कथन आत्म-श्लाघा से पूर्ण होने के साथ ही कल्पित है, क्योंकि वि० सं० १५६० में तो महाराणा बिक्रमादित्य विद्यमान था। पीरोज़े और हाथी भेजने की पुष्टि भी अन्य किसी ख्यात से नहीं होती। मुंहणोत नैणसी इस घटना को इस

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७०६-१६।

(२) जि० १, पृ० ६८।

प्रकार लिखता है—

‘जब बणवीर ने कुम्भलगढ़ आन घेरा तब उस(उदयसिंह)ने सोनगरे अखैराज (अपने श्वसुर) को कहलाया कि हमारे पर आपत्ति आई है, सहायता के निमित्त आओ। वह कूपा महाराजोत, राणा अखैराजोत, भद्दा कन्ह पंचायणोत और राजसी भैरवदासोत आदि मारवाड़ के सरदारों का बहुत सा साथ लेकर गया।’

वस्तुतः यह घटना लगभग वि० सं० १५६७ (ई० सं० १५४०) की है। उस समय बणवीर पर उदयसिंह की चढ़ाई होने पर सोनगरा अखैराज तथा कूपा महाराजोत उदयसिंह के श्वसुर होने के कारण उसकी सहाय-
तार्थ गये होंगे। निकट सम्बंधी होने के कारण उनका ऐसा करना उचित ही था।

भाला सज्जा का पुत्र जैतसिंह किसी कारण से उदयपुर की जागीर का परित्याग कर जोधपुर के राव मालदेव के पास चला आया, जिसने उसे खैरवा का पट्टा दिया। जैतसिंह ने अपनी पुत्री मालदेव का कुम्भलगढ़ पर सेना भेजना स्वरूपदेवी का विवाह मालदेव से कर दिया। एक दिन मालदेव अपनी ससुराल (खैरवा) गया, जहां स्वरूपदेवी की छोटी बहिन को अत्यन्त रूपवती देख उसने उसके साथ भी विवाह करने के लिए जैतसिंह से आग्रह किया, परन्तु जब उसने साफ़ इनकार कर दिया, तब मालदेव ने कहा कि मैं बलात् विवाह कर लूंगा। इस प्रकार अधिक दबाने पर उसने कहा कि मैं अभी तो विवाह नहीं कर सकता, दो महीने बाद कर दूंगा। राव मालदेव के जोधपुर लौट जाने पर उसने महाराणा उदयसिंह के पास एक पत्र भेजकर अपनी पुत्री से विवाह करने के लिए कहलाया। महाराणा के स्वीकार करने पर जैतसिंह अपनी छोटी पुत्री और अन्य घरवालों को लेकर कुम्भलगढ़ के पास मुढ़ा नाम के गांव में जा रहा। स्वरूपदेवी ने, जो उस समय खैरवा में थी,

(१) मुंहणोत नैयसी की ख्यात; जि० १, पृ० ५६।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; महाराणा श्री उदयसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ८४।

अपनी बहिन को विदा करते समय दहेज में गहने देने चाहे, परन्तु जल्दी में गहनों के डिब्बे के बदले राठोड़ों की कुलदेवी 'नागणेची' की मूर्तिवाला डिब्बा दे दिया। उधर महाराणा ने भी कुंभलगढ़ से उसी गांव में पहुंचकर उससे विवाह कर लिया। जब वह डिब्बा खोला गया तो उसमें 'नागणेची' की मूर्ति निकली, जिसको महाराणा ने पूजन में रक्खा^२ और तभी से उसको साल में दो बार (भाद्रपद सुदि ७ और माघ सुदि ७ को) विशेष रूप से पूजने का रिवाज चला आता है^३।

इस घटना का पता चलने पर राव मालदेव ने राठोड़ पंचायण (कर्मसीहोत) तथा राठोड़ बीदा (भारमलोत बालावत) आदि अपने कई प्रतिष्ठित सरदारों के साथ कुंभलगढ़ विजय करने के लिए बड़ी सेना भेजी। महाराणा ने भी मुक़्तबला करने के लिए सेना भेजी। युद्ध में दोनों तरफ़ के कई सरदार मारे गये तथा मालदेव की सेना को सफलता न मिली^४।

(१) कर्नेल टॉड ने लिखा है कि राव मालदेव की सगाई की हुई भाला सरदार की कन्या को महाराणा कुंभा ले आया था (राजस्थान; जि० १, पृ० ३३८), पर आगे चलकर मालदेव के वर्णन में इसका कोई उल्लेख नहीं है। टॉड का यह कथन विश्वसनीय नहीं है, क्योंकि मालदेव का जन्म महाराणा कुंभा के देहान्त से ४३ वर्ष पीछे हुआ था और भाला अज्जा व सज्जा महाराणा रायमल के समय (वि० सं० १५६३ = ई० सं० १५०६) में मेवाड़ में आये थे (मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ६२३)। ऐसी दशा में कुंभा का मालदेव की सगाई की हुई कन्या, सज्जा के पुत्र जैतसिंह की पुत्री, को लाना कैसे संभव हो सकता है?

इस घटना का जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १५६६ (ई० सं० १५४०) में होना लिखा है (जि० १, पृ० १०८-९), जो विश्वास के योग्य नहीं है क्योंकि उस समय तक तो महाराणा उदयसिंह मेवाड़ का राज्य प्राप्त करने के लिए लड़ रहा था। अतएव यह घटना उक्त संवत् से कुछ पीछे की होनी चाहिए।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० ६७-८।

(३) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७१६-८।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ६८।

इसके थोड़े दिनों बाद ही उच्चाभिलाषी मालदेव ने राज्य-विस्तार की इच्छा से प्रेरित होकर कूपा की अध्यक्षता में एक बड़ी सेना बीकानेर की तरफ़ रवाना की^१। जयसोम के 'कर्मचन्द्रवंशोत्कीर्तनकं काव्यम्' से, जो सब ख्यातों से पुराना है, पाया जाता है कि इस चढ़ाई की खबर मिलने पर बीकानेर के राव जैतसी (जैतसिंह) ने अपने मंत्री (नगराज) से सलाह कर उसे शेरशाह के पास से सहायता लाने के लिए भेजा^२। अपनी अनुपस्थिति में शत्रु की चढ़ाई के डर से मंत्री ने (राजकुमार) कल्याण सहित सब राज-परिवार को सारस्वत (सिरसा) नगर में छोड़ दिया था। मालदेव के मरुस्थल (बीकानेर का राज्य) लेने के लिए आने पर जैतसी मुक्ताबिले को गया, पर मारा गया। तब जांगल देश पर अधिकार कर मालदेव जोधपुर लौट गया^३। यह लड़ाई साढेवा (सोढवा) नामक गांव में हुई थी।

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस लड़ाई का वि० सं० १५६८ चैत्र वदि ५ (ई० सं० १५७२ ता० ६ मार्च) को होना लिखा है^४। इस लड़ाई में

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ६६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जैतसी के मारे जाने और बीकानेर पर मालदेव का अधिकार हो जाने के बाद कल्याणमल वीरमदेव के साथ मिलकर शेरशाह को मालदेव के खिलाफ़ चढ़ा लाया (जि० १, पृ० ६६)। कविराजा श्यामलदास के 'वीरविनोद' (भाग २, पृ० ८०६) और बांकीदास के 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थ (संख्या ७६१) में भी कल्याणमल का स्वयं शेरशाह के पास जाना लिखा है। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि कल्याणमल का भाई भीम इस कार्य के लिए दिल्ली गया था। पीछे से वीरम भी वहां पहुंच गया और दोनों शेरशाह के साथ लौटे (जि० २, पत्र १७-२०), परन्तु इस सम्बन्ध में जयसोम का कथन ही अधिक विश्वसनीय है।

(३) श्लोक २०५-१८। जयसोम के कथन से पाया जाता है कि मालदेव स्वयं सेना के साथ था।

(४) बांकीदास ने भी यही समय दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२१), परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि बीकानेर के राव जैतसी की स्मारक छमरी के लेख से

जोधपुर की तरफ़ के भी कई सरदार काम आये। मालदेव का गढ़, नगर तथा बीकानेर के लगभग आधे राज्य पर अधिकार हो गया^१। चैत्र वदि १२ को राव मालदेव स्वयं बीकानेर गया, जहां पहुँचकर उसने कृपा को डीङ्-वाणा की जागीर के अतिरिक्त फ़तहपुर तथा भूभरण भी दिये^२।

शेरशाह, जिसका असली नाम फ़रीद था, हिसार का रहनेवाला था। उसका पिता हसन, सूर खानदान का अफ़ग़ान था, जिसको जौनपुर के हाकिम जमालखां ने ससराम और टांडे के

शेरशाह का दिल्ली के सिंहासन पर बैठना

ज़िले ५०० सवारों से नौकरी करने के एवज़ में दिये थे। फ़रीद कुछ समय तक बिहार के स्वामी

मुहम्मद लोहानी की सेवा में रहा और एक शेर को मारने पर उसका नाम शेरखां रक्खा गया। वीर प्रकृति का पुरुष होने के कारण उसकी शक्ति दिन-दिन बढ़ती गई। उसने ता० ६ सफ़र हिजरी सन् ९४६ (वि० सं० १५६६ आषाढ शुक्ला द्वितीय १० = ई० स० १५३६ ता० २६ जून) को बादशाह हुमायूँ को चौसा (बिहार) नामक स्थान में परास्त किया और दूसरी बार हिजरी सन् ९४७ ता० १० मोहर्रम (वि० सं० १५६७ ज्येष्ठ सुदि १२ = ई० स० १५४० ता० १७ मई) को उसे कन्नौज में हराकर आगरे, लाहौर आदि की तरफ़ उसका पीछा किया, जिससे हुमायूँ सिंध की तरफ़

उभका वि० सं० १५६८ फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १५४२ ता० २६ फ़रवरी) को मारा जाना पाया जाता है—

अथास्मिन् शुभसंवत्सरे.....१५६८ वर्षे शाके १४६३ प्रवर्त्तमाने मासोत्तमेमासे फाल्गुनमासे शुभे शुक्लपक्षे तिथौ एकादश्यांरावजी लूणकरणजी तत् पुत्रः रावजी श्रीजैतसिंहजी वर्मा.....परमधाम मुक्तिपदं प्राप्तः ।

(१) दयालदास की ख्यात; जि० २, पन्ना १५-६ । मुंशी देवीप्रसाद; राव जैतसीजी का जीवन चरित्र; पृ० ८५ ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२१ । बीरबिनोद; भाग २, पृ० ४८३ ।

भाग गया। इस प्रकार हुमायूँ पर विजय प्राप्तकर शेरखाँ उसके राज्य का स्वामी बना और शेरशाह नाम धारणकर हि० स० ६४८ ता० ७ शबवाल (वि० सं० १५६८ माघ सुदि ८ = ई० स० १५४२ ता० २४ जनवरी) को दिल्ली के सिंहासन पर बैठा^१।

मालदेव ने हुमायूँ की हार का समाचार सुनकर उसके भक्तर में रहते समय उसके पास इस आशय के पत्र भेजे कि मैं तुम्हारी सहायता करने को तैयार हूँ^२। हुमायूँ भक्तर की सीमा पर हि० स० ६४७ ता० २८ रमजान (वि० सं० १५६७ फाल्गुन)
 हुमायूँ का मालदेव की तरफ से निराश होकर जाना
 यदि द्वितीय १४=ई० स० १५४१ ता० २६ जनवरी) को पहुँचा था और वहाँ जमादिउल्लाखीर (सितम्बर) तक रहा था^३। इसी बीच शेरशाह को फ़ौज के साथ बंगाल के हाकिम के विरुद्ध जाना पड़ा था^४। संभवतः इसी अवसर पर मालदेव ने उससे लिखा पढ़ी की होगी, परन्तु हुमायूँ ने उस समय इस विषय पर कोई ध्यान न दिया, क्योंकि उसे ठट्ठा के शासक शाहहुसेन अर्धुन की सहायता से, गुजरात (पंजाब का) विजय करने की आशा थी। इस सम्बन्ध में उसने शाहहुसेन को लिखा भी, पर वह छः मास तक टालटूल करता रहा^५। उधर से निराश होने पर वह (हुमायूँ) सात मास तक शेवान के क़िले को घेरे रहा, परन्तु उसका भी कोई लाभदायक परिणाम न निकला। भक्तर लौटने पर उसने वहाँ के द्वार भी अपने लिए बन्द पाये, क्योंकि यादगार नासिर मिर्ज़ा भी उसका विरोधी बनकर शाहहुसेन से मिल गया था^६। तब हुमायूँ ने मालदेव की

(१) बील; ओरिएण्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८०।

(२) तबक़ात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २०५। इलियट्. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० २११।

(३) अबुलक़ज़ल; अकबरनामा -- बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३६२ और ३६६।

(४) क़ानूंगो; शेरशाह; पृ० २६६।

(५) तबक़ात-इ-अकबरी -- इलियट्. हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ५, पृ० २०७।

(६) क़ानूंगो; शेरशाह; पृ० २६८-९।

सहायता से लाभ उठाने का विचार किया और हि० स० ६४६ ता० २१ मोहर्रम (वि० सं० १५६६। ज्येष्ठ वदि ८ = ई० स० १५४२ ता० ७ मई) को वह उच्च पहुंचा, जहां से ता० १८ रबीउल्अव्वल (ता० २ जुलाई) को उसने मारवाड़ की तरफ प्रस्थान किया । दिलावर (भावलपुर, पंजाब) और हासलपुर होता हुआ ता० १७ रबीउल्आखीर (ता० ३१ जुलाई) को वह बीकानेर से १२ कोस पर पहुंचा । बादशाह के नौकरों को मालदेव की तरफ से खटका था, जिसके विषय में उन्होंने उससे निवेदन किया । इसपर बादशाह ने मीर समन्दर को मालदेव के पास भेजा, जिसने लौटकर निवेदन किया कि मालदेव ऊपर से शुद्ध भाव ज़रूर प्रकट करता है, पर उसका मन साफ़ नहीं है । जब शाही फौज मालदेव के राज्य की सीमा के पास पहुंची, उस समय नागोर का सनकाई (सांगा), जो मालदेव का बड़ा विश्वासपात्र था, बादशाह के डेरों के पास अच्छे हीरे खरीदने के बहाने से पहुंचा । उसके आचरण से शंकित होकर बादशाह ने कहला दिया कि ऐसे हीरे खरीदकर हस्तगत नहीं किये जा सकते, परन्तु तलवार के बल से अथवा बादशाहों की कृपा से प्राप्त होते हैं । इस घटना से बादशाह और भी सतर्क हो गया और उसने मीर समन्दर की सतर्कता की प्रशंसा की । अनन्तर उस (हुमायूँ) ने रायमल सोनी को मालदेव के पास भेजा ताकि वह उधर की ठीक-ठीक खबर बादशाह को भेजे । उससे कहा गया कि यदि वहां लिखने का अवसर न मिले तो निश्चित इशारों के अनुसार उसपर भेद प्रकट किया जाय । इशारे के सम्बन्ध में यह तय हुआ कि यदि मालदेव के मन में सच्चाई हो तो सन्देशवाहक आकर उसकी पांचों अंगुलियां एक साथ पकड़ ले और यदि धोखा हो तो केवल कनिष्ठिका पकड़े । फिर फलोधी पहुंचकर उसने वहां से अत्काखां को भी मालदेव के पास भेजा । उसने बादशाह के आगमन की सूचना मालदेव को दी,

(१) अबुलक़ास; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३०१-२।
मुंशी बेबीप्रसाद; हुमायूँनामा; पृ० ६९-६।

परन्तु मालदेव स्वयं उसके स्वागत को न गया। उसने कुछ आदमियों के हाथ कुछ उपहार आदि उसकी सेवा में भेज दिये। इसके बाद बादशाह जोगी तालाब पर पहुँचा, जहाँ रहते समय रायमल सोनी के पास से सन्देश-वाहक ने आकर उसकी कनिष्ठिका पकड़ी, जिससे उसे मालदेव के कपट का पूरा विश्वास हो गया।

निजामुद्दीन लिखता है—‘जब हुमायूँ भागकर मालदेव के राज्य में आया तब उसने शम्सुद्दीन अत्काखाँ को जोधपुर भेजा और स्वयं उसके लौटने की राह देखता हुआ मालदेव के राज्य की सीमा पर ठहर गया। जब मालदेव को हुमायूँ की कमजोरी और शेरशाह से मुक्ताबिला करने योग्य सेना का उसके पास न होना ज्ञात हुआ तो उसे भय हुआ, क्योंकि उसके पास स्वयं शेरशाह से लड़ने योग्य सेना का अभाव था। इसी बीच शेरशाह ने एक दूत भेजकर उसे बड़ी-बड़ी आशाएं दिलाई, जिससे मालदेव ने संभव हो सका तो हुमायूँ को पकड़कर उसके पास भेज देने का वादा कर लिया। नागौर और उसके आस-पास के स्थल पर शेरशाह का अधिकार स्थापित हो चुका था, अतएव मालदेव को यह आशंका थी कि कहीं रुष्ट होकर वह हुमायूँ के विरुद्ध होने से एक बड़ी सेना उसके राज्य में न भेज दे। बादशाह (हुमायूँ) को उसके बदल जाने का पता न लग जाय, इसलिए उसने अत्काखाँ को रोक रक्खा और उसे लौटने की आज्ञा न दी। लेकिन अत्काखाँ उसके मन का भेद लेकर बिना उसकी आज्ञा प्राप्त किये ही लौट गया। बादशाह (हुमायूँ) के कुतुबखाने के एक अध्यक्ष ने, जो उसकी पराजय के समय से मालदेव के पास आ रहा था, इन्हीं दिनों उसके पास मालदेव के विश्वासघात का हाल लिख भेजा और

(१) जौहर; तजकिरतुल् वाकियात—स्टिवर्ट कृत अनुवाद; पृ० ३६-८। गुल-बदन बेगम-कृत ‘हुमायूँनामे’ से पाया जाता है कि मालदेव ने हुमायूँ से यह भी कहलाया कि मैं तुम्हें बीकानेर देता हूँ (मिसेज़ बेवरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; पृ० १२४)।

(२) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३०३। मुंशी देवीप्रसाद; हुमायूँनामा; पृ० ६१।

शीघ्रातिशीघ्र उसे उस (मालदेव) के राज्य से बाहर चले जाने को लिखा। अत्कालां ने भी इस विषय में ज़ोरदार शब्दों में बादशाह से कहा। इसपर हुमायूँ ने तुरन्त अमरकोट की तरफ़ प्रस्थान किया^१।

मालदेव उस समय शेरशाह को अप्रसन्न करने के लिए तैयार नहीं था, अतएव हुमायूँ के अमरकोट की तरफ़ जाने का पता पाते ही उसने अपनी सेना के कुछ आदमी उसके पीछे रवाना कर दिये। निज़ामुद्दीन लिखता है—‘मार्ग में दो हिन्दू, जो गुप्तचर थे’, गिरफ़्तार करके हुमायूँ के सामने लाये गये। उनसे सवाल किये गये और यह आह्ला दी गई कि रहस्य का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए उनमें से एक को मृत्युदंड दिया जाय, परन्तु इसी समय उन्होंने अपने आपको बंधन-मुक्त कर लिया और अपने पास खड़े हुए दो व्यक्तियों के खंजर छीनकर वे अपने क़ैद करनेवालों पर दूट पड़े और उनमें से कई को मारकर खुद भी मारे गये। इस लड़ाई में बादशाह (हुमायूँ) का घोड़ा भी मारा गया। इसपर तरदीबेग से कुछ घोड़े और ऊंट मांगे गये, परन्तु उसने देने से इनकार कर दिया। तब बादशाह (हुमायूँ) एक ऊंट पर सवार होकर चला। नदीम कोका को यह गवारा न हुआ। उसने अपनी मां को, जो घोड़े पर थी, नीचे उतारकर वह घोड़ा बादशाह (हुमायूँ) को दे दिया और अपनी मां को उसके ऊंट पर सवार करा दिया।

‘रेंतीले प्रदेश में चलने और जल के अभाव के कारण रास्ता धीरे-धीरे तय हो रहा था तथा प्रतिक्षण मालदेव (की सेना) के आने की खबर मिलती थी। इसपर बादशाह (हुमायूँ) ने मुनीमख़ां को थोड़े सैनिकों

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट्; हिरटी ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २११-२। गुलबदन बेगम; हुमायूँनामा—मिसेज़ वेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४ (कुतुबख़ाने के अभ्युक्त का नाम मुल्ला सुफ़्फ़ था)।

(२) गुलबदन बेगम; हुमायूँनामा—मिसेज़ वेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४।

के साथ पीछे चलने के लिए कहा ताकि वह शत्रु-सेना के दिखाई पड़ते ही उससे लड़े। रात होने पर मुनीमखां और उसके साथ के सैनिक मार्ग भूल गये। सुबह होने पर शत्रु-सेना दिखाई पड़ी। उस समय शेख अलीबेग, इरबेश कोका आदि कुल मिलाकर बाईस आदमी पीछे रह गये थे। जब एक छोटे पहाड़ी रास्ते से शत्रु-सेना गुज़र रही थी तब उन्होंने उसपर आक्रमण कर दिया। शेख के पहले ही तीर से शत्रु-सेना का अध्यक्ष मारा गया तथा और भी कई आदमियों के काम आते ही शत्रु की बड़ी सेना मुसलमानों के थोड़े से सैनिकों के आगे भाग गई।^१

जौहर लिखता है कि शत्रु-सेना में ५००-५०० की तीन टुकड़ियां थीं। शेख अली सात सवारों के साथ उनका सामना करने के लिए गया। निकट पहुंचने पर उन्होंने तीरों की वर्षा की। ईश्वर की कृपा से तीर लगते ही दो सवार नीचे गिरे, जिसपर सारी सेना भाग गई और बादशाह (हुमायूं) की विजय हुई^२।

“हुमायूंनामे”^३ और “अकबरनामे”^४ में भी इस घटना का लगभग जौहर के जैसा ही वर्णन दिया है, परन्तु फ़ारसी तवारीखों के उपर्युक्त कथन अतिशयोक्ति-पूर्ण होने के कारण विश्वसनीय नहीं माने जा सकते। सात अथवा बाईस मुसलमान सवारों का डेढ़ हजार अथवा एक बड़ी कट्टर राठोड़ सेना को हराकर भगा देना एक असंभव सी कल्पना है। वास्तविक बात तो यह प्रतीत होती है कि मालदेव का उद्देश्य हुमायूं को गिरफ्तार

(१) तबक़ात-इ-अक़बरी—इलियट्: हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ५, पृ० २१२-३। गुलबदन बेगम; हुमायूंनामा—मिसेज़ बेवरिज-कृत अनुवाद; पृ० १५४-६।

मान्टट्यूअर्ट एल्फिन्टन ने हुमायूं का पीछा करनेवाली सेना के अध्यक्ष को मालदेव का पुत्र लिखा है (हिस्ट्री ऑव् इंडिया; पृ० ४४२), परन्तु उसकी धारणा निर्मूल है क्योंकि अन्य फ़ारसी तवारीखों में कहीं ऐसा लिखा नहीं मिलता।

(२) तज़किरानुल वाज़ेयात; पृ० ४०-१। वही; स्टिवर्ट-कृत अनुवाद; पृ० ३६।

(३) मुंशी देवीप्रसाद-लिखित; पृ० ७०-७३।

(४) अमुल-क़ल-लिखित—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३७३-४।

करके शेरशाह के इस्तेमाल करने का कभी न था। वह तो शेरशाह के कोप से बचने के लिए हुमायूँ को केवल अपने राज्य की सीमा से बाहर निकाल देना चाहता था। संभव है शेरशाह को दिखाने के लिए ही उसने अपने कुछ सैनिक हुमायूँ के अमरकोट की ओर प्रस्थान करने पर उसके पीछे भेजे हों। मालदेव अपने समय का बड़ा प्रबल, बुद्धिमान और नीतिकुशल शासक था। वह यदि चाहता तो हुमायूँ का अपने राज्य से निकलना बहुत कठिन कर सकता था। वह तो हुमायूँ को सहायता प्रदान कर कुछ लाभ उठाना चाहता था, पर हुमायूँ के समय पर न पहुँचने तथा उसकी मन्शा का शेरशाह को आभास मिल जाने के कारण उसका सारा मन्सूबा ख़ाक में मिल गया। “अकबरनामे” में एक स्थल पर लिखा है—‘कुछ लोग ऐसा भी कहते थे कि पहले मालदेव की भावना हुमायूँ के प्रति शुद्ध थी और वह उसकी सेवा भी करना चाहता था। बाद में या तो हुमायूँ की सेना की बुरी दशा और अल्प संख्या देखकर अथवा शेरशाह के झूठे वादों एवं बढ़ती हुई शक्ति के कारण मालदेव बदल गया। या संभवतः इसका कारण शेरशाह का भय हो। जो भी हो वह हुमायूँ का विरोधी हो गया था। लोगों का बहुमत फिर भी इसी ओर था कि प्रारम्भ से अन्त तक मालदेव का सहायता का वचन देना और इस सम्बन्ध में बादशाह (हुमायूँ) को लिखना कपटपूर्ण था।’ यह कथन भी ठीक नहीं प्रतीत होता। हुमायूँ के पास सेना के न होने और शेरशाह की बढ़ती हुई शक्ति के कारण ही बुद्धिमान मालदेव ने समयानुसार अपनी नीति में परिवर्तन अवश्य किया था, परन्तु यह कहना कि उसने आरम्भ से लेकर अन्त तक कपट से काम लिया, कभी ठीक नहीं माना जा सकता। इसमें अधिक दोष हुमायूँ का ही था। जिस समय मालदेव ने उसे बुलाया वह उसके बहुत पीछे पहुँचा। उस समय तक शेरशाह बंगाल से लौट चुका था और उसकी सारी शक्तियाँ केन्द्रित हो गई थीं। फिर मालदेव के पास अकेले शेरशाह का सामना करने के लिए पर्याप्त सेना न थी। उसे हुमायूँ के साथ भी काफ़ी

फ़ौज होने की आशा थी, जो ठीक न निकली। ऐसी परिस्थिति में वह शेरशाह का विरोधी बनकर हानि ही अधिक उठाता। वह हुमायूँ का कैद होना भी नहीं चाहता था, अतएव उसने ऐसी युक्ति से उसे अपने राज्य से बाहर कर दिया, जिससे शेरशाह को ज़रा भी सन्देह न हुआ।

इस प्रकार मालदेव पर शेरशाह की चढ़ाई कुछ समय के लिए रुक गई, परन्तु शेरशाह के दिल में उसकी तरफ़ से खटका बना ही रहा। इधर

मालदेव की महत्वाकांक्षा में भी कमी न आई थी।
 शेरशाह को यह भी भय बना रहता था कि कहीं
 सब राजपूत एकत्र होकर कोई बख़्सेड़ा न करें।

राजपूताने में उस समय मालदेव भी बड़ा बलवान था। अतएव इन दो प्रबल शक्तियों में कभी न कभी युद्ध अवश्यंभावी था। ऐसे में बीकानेर का मन्त्री नगराज शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उसने उससे मालदेव के विरुद्ध अपने स्वामी की सहायता के लिए चलने की प्रार्थना की। ऐसे ही मेड़ते के स्वामी वीरम ने भी उसके पास पहुँचकर उससे सहायता की याचना की। फलतः एक विशाल फ़ौज के साथ हि० स० १५० (ई० स० १५४४ = वि० स० १६००) में शेरशाह ने आगरे^२ से मालदेव के विरुद्ध प्रस्थान

(१) फ़रिस्ता (बिगज़-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२२) उसकी सेना की संख्या ८०००० लिखता है। अन्व्यासर्वां लिखता है कि इम् चढ़ाई में शेरशाह के पास इतनी बड़ी सेना थी कि अच्छे से अच्छे हिसाबी के लिए भी उसका गिनना असंभव था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक साथ नहीं देखी जाती थी (तारीख़-इ-शेरशाही—इलिबट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४)।

(२) कालिकारंजन कानूंगो, एम० ए० उसका दिल्ली से प्रस्थान करना मानता है (शेरशाह; पृ० ३२२)। अधिकांश ख्यातों में भी ऐसा ही लिखा मिलता है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६। दयालदान की ख्यात; जि० २, पृ० १६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८०६ आदि), परन्तु कानूंगो स्वयं लिखता है कि निश्चित प्रमाण के अभाव में यह कहना कठिन है कि शेरशाह किस मार्ग से मारवाड़ में आया। फ़ारसी तवारीख़ें इस विषय में एक मत हैं और प्रायः सब में शेरशाह का आगरे से प्रस्थान करना लिखा है (देखो; बिगज़; फ़रिस्ता; जि० २, पृ० १२१)। अन्व्यासर्वां,

किया'। सिरसा से चलकर बीकानेर का राव कल्याणमल भी मार्ग में उसकी सेना के साथ हो लिया^१।

शेरशाह की सेना मार्ग में जहां भी ठहरती, वहां चारों ओर रक्षा के लिए खाइयां खोदी जाती थीं^२। अब्बासखां लिखता है—'एक दिन उसकी सेना का पड़ाव रेतिले मैदान में हुआ, जहां प्रयत्न करने पर भी, रेत की अधिकता के कारण खाई न खोदी जा सकी। शेरशाह इस सम्बन्ध में बड़ा चिन्तित हुआ। उस समय उसके पोते महमूदखां ने सम्मति दी कि सेना की रक्षा के लिए रेत से भरवाकर बोरियों की आड़ कर दी जाय तो अच्छा होगा। शेरशाह को यह सलाह पसंद आई और इसके लिए उसने महमूदखां की प्रशंसा की। फिर उसने आज्ञा दी कि रेत से भरकर बोरियां सेना के चारों ओर जमा दो'^३।

फरिश्ता लिखता है—'इस प्रकार मार्ग में अपनी सेना की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करता हुआ वह नागौर और अजमेर के राजा (मालदेव) के

तारीख-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४ आदि)। लगभग उसी समय की लिखी हुई होने के कारण इनके कथन की अवहेलना नहीं की जा सकती। मुंशी देवीप्रसाद भी उसका आगे से प्रस्थान करना लिखता है (राव मालदेवजी का जीवनचरित्र; पृ० ३)।

(१) जिग्ज़; फरिश्ता; जि० २, पृ० १२१। अब्बासखां; तारीख-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०४।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६। मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६२।

(३) जिग्ज़; फरिश्ता; जि० २, पृ० १२१। अब्बासखां; तारीख-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०६। तबक़ात-इ-अकबरी (फ़ारसी); पृ० २३१।

(४) तारीख-इ-शेरशाही—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ४, पृ० ४०६।

राज्य में पहुँचा'। इधर से मालदेव भी एक बड़ी सेना^१ लेकर शेरशाह के मुक़ाबले को गया। एक मास तक दोनों सेनाएं एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं, परन्तु युद्ध न हुआ^२। शेरशाह वहाँ से लौट जाना ही अच्छा समझता था, परन्तु सुरक्षित स्थान के परित्याग करने का साहस करना बिपत्तिजनक था। उधर शत्रु-सेना की स्थिति इतनी अच्छी थी, कि उसपर आक्रमण करना भी खतरनाक था। इस कठिन समय में शेरशाह को एक उपाय सूझा। मालदेव के साथ के सरदारों में से अनेक को मालदेव ने तलवार के बल से आधीन बनाया था, अतएव शेरशाह ने हिन्दुओं की (मारवाड़ी) भाषा में उन सरदारों की तरफ़ से अपने नाम इस आशय के जाली पत्र लिखवाये—“राजा के अधीनस्थ बन जाने के कारण हम उसके साथ आ तो गये हैं, परन्तु गुप्त रूप से हमारा उससे वैर-भाव ही बना है। यदि आप हमारा अधिकार पुनः हमें दिला दें तो हम आपकी सेवा करने और आपकी अधीनता स्वीकार करने के लिए प्रस्तुत हैं^३।” इन पत्रों के

(१) “तबक़ात-इ-अकबरी” (फ़ारसी; पृ० २३२) में शेरशाह का इसी प्रकार अजमेर के पास पहुँचना लिखा है। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि मालदेव जब अपनी सेना सहित अजमेर पहुँचा, उस समय शेरशाह अजमेर के पास पहुँच गया था (जि० १, पृ० ७०)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में उसके साथ ८०००० सेना होना लिखा है (जि० १, पृ० ७०)। अल्बदायूनी ने इस सेना की संख्या ५०००० दी है (मुंतज़-मुत्तवारीख़; जि० १, पृ० ४७७)। “फ़रिस्ता” (गिज़-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२१) में भी यही संख्या दी है।

(३) “तबक़ात-इ-अकबरी” (फ़ारसी; पृ० २३२) में भी ऐसा ही लिखा है।

(४) अन्बासख़ा के अनुसार पत्रों का आशय इस प्रकार था—‘बादशाह को चिन्तित होने और सन्देह करने की आवश्यकता नहीं। युद्ध के समय हम मालदेव को आपके सपुर्दे कर देंगे (तारीख़-इ-शेरशाही—इज़िपट्; हिस्ट्री ऑफ़ इरिया; जि० ४, पृ० ४०५)।’ बदायूनी लिखता है कि पत्रों में लिखा गया कि बादशाह को युद्ध के समय स्वयं सैन्य परिचालन करने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि हम इस शर्त पर कि हमें अमुक-अमुक जागीरें दी जावें, मालदेव को स्वयं पकड़कर आपके सपुर्दे

एक सिरे पर शेरशाह ने फ़ारसी भाषा में लिखवाया—“भय न करो, प्रयत्न करते रहो और विश्वास रखो कि तुम्हारी आशाएं पूरी की जायेंगी।” फिर इनमें से कुछ पत्र उसने जान-बूझकर ऐसे स्थान में डलवा दिये जहां मालदेव की नज़र उनपर पड़ गई। मालदेव ने उसी दिन शत्रु पर आक्रमण करने का निश्चय किया था, परन्तु इन पत्रों के पाते ही उसे अपने सरदारों की तरफ़ से आशंका हो गई और वह लड़ाई करने में आना-कानी करने लगा। उधर उसके सरदार उससे युद्ध के लिए आग्रह करने लगे। इससे

कर देने को तैयार हैं (मुंतख़बुल्लवारीख़—रैकिंग-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८)। उपर्युक्त दोनों लेखकों के अनुसार ऐसे पत्र लिखवाकर गुप्तरूप से मालदेव की ज़ाबानी में डलवाये गये, जिन्हें पाकर मालदेव अपने सरदारों की ओर से शंका हो उठा। ऐसे एकतरफ़ा पत्र देखकर मालदेव जैसा बुद्धिमान व्यक्ति धोखे में आ जाय इसपर विश्वास नहीं किया जा सकता। इस सम्बन्ध में क्रूरिता का ही कथन अधिक विश्वास-योग्य है। ऐसे पत्र और उनपर लिखे हुए शेरशाह के आश्वासन को पढ़कर ही मालदेव ने उनकी सत्यता पर पूर्ण विश्वास कर लिया होगा।

(१) भिन्न-भिन्न कथाओं में इस घटना का भिन्न-भिन्न प्रकार से उल्लेख किया गया है। मुंहपोत नैणसी लिखता है—‘वीरम जाकर सूर बादशाह को मालदेव पर चढ़ा लाया। राव भी अस्सी हज़ार सवार लेकर मुज़ाबले को आया। वहां वीरम ने एक तरकीब की—कूपा के डेरे पर बीस हज़ार रुपये भिजवाये और कहलाया, हमें कम्बल मंगवा देना और बीस ही हज़ार जैता के पास भेजकर कहा, सिरौही की तलवारें भेज देना। फिर उसने राव मालदेव को सूचना दी कि जैता और कूपा बादशाह से मिल गये हैं, वे तुमको एकड़कर हज़ूर में भेज देंगे। इसका प्रमाण यह है कि उनके डेरों पर रुपयों की थैलियां भरी देखना तो जान लेना कि उन्होंने मतलब बनाया है। राव मालदेव के मन में वीरम के वाक्यों से शंका उत्पन्न हो गई। उसने ख़बर कराई कि बात सच है या नहीं। जब अपने उमरावों के डेरों पर थैलियां पाईं तो उसके मन में भय उत्पन्न हो गया (जि० २, पृ० १२७-८)।’

जोधपुर राज्य की ख़्यात का कथन है—‘बादशाह ने मालदेव से कहलाया कि एक आदमी आप भेजें और एक मैं, इस प्रकार द्वन्द्व-युद्ध हो। मालदेव ने बीदा भारमलोत का नाम लिखवाकर भेज दिया। वीरमदेव ने बादशाह से कहा कि उससे युद्ध करने योग्य आपके पास कोई योद्धा नहीं है, मैं ही जाऊं; पर वीरमदेव को उसने जाने न दिया। तब वीरमदेव ने क्रोध कर ठाड़ों के भीतर रुक़े रखवाकर राठोड़ों में भिजवाये

उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया। इस घटना के चौथे दिन उसने अपनी सेना को पीछे हटने की आज्ञा दी^१। कुंभा^२ (कुंपा) को शेरशाह और इस प्रकार जैता, कुंपा आदि राजपूतों के प्रति राव के मन में अविश्वास उत्पन्न कराया (जि० १, पृ० ७०-१) ।^१

दयालदास का वर्णन मुंहयोत नैणसी जैसा ही है (जि० २, पत्र १६) ।

मुंशी देवीप्रसाद ने “राव मालदेवजी का चरित्र” नामक पुस्तक में जो लिखा है उसका सारांश यह है—‘शेरशाह मालदेव का ज़ोर देखकर बहुत घबराया और पीछा जाने लगा, मगर मेढ़ते के राव वीरम ने कहा कि आप ज़रा ठहरें मैं रावजी (मालदेव) को बातों से भगा दूंगा। फिर बादशाह के मुंशी से १०० हुकमनामे रावजी के सरदारों के नाम लिखाकर ढालों की गदियों में सिलवा दिये और एक-एक ढाल एक-एक व्योपारी के हाथ उस सरदार के पास, जिसके नाम का हुकम उसमें बन्द था, भेजकर कहा कि जिस मोल में वे लें देकर आना। इसके साथ ही १००००० मोहरें बादशाह के सिक्के की रावजी के बाज़ार में भेजकर जिस भाव पर बिक सकीं बिकवादीं। फिर रात के समय राव के पास जाकर कहा कि आपके सरदार आपसे बदलकर बादशाह से मिल गये हैं। इसका प्रमाण उनकी ढालों की गदियां चीरने पर आपको मिलेगा। दूसरे दिन सरदारों के पास नई ढालें देखीं तो मालदेव को भी शक हुआ। गदियां उधड़वाईं तो उनमें एक-एक हुकमनामा फ़ारसी में लिखा हुआ इस मज़मून का निकला कि एक हजार मुहरें तुम्हारे पास भेजी जाती हैं अब तुम अपने इक्क़रार के अनुसार राव को पकड़ कर हाज़िर करो। यह पता लगते ही राव के कान खड़े हो गये। फिर बादशाह के नाम की बहुतसी मोहरों का सरदारों के पास होना भी पता लगा। इसपर उसका सन्देह और भी दृढ़ हो गया और वह रात के समय मारवाड़ की तरफ़ चल दिया (पृ० ३-४) ।^१

“वीरविनोद” में केवल ढालों के बिकवाये जाने का उल्लेख है (भाग २, पृ० ८१०)।

ख्यातों आदि में दिये हुए उपर्युक्त सभी वर्णन कल्पित हैं। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता का कथन ही विश्वासयोग्य माना जा सकता है। अपने बाहुबल एवं चातुर्य से भारत के सिंहासन पर अधिकार करनेवाला शेरशाह अपने आश्रित की राय पर चले यह कल्पना से दूर की बात है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सन्देह उत्पन्न करनेवाले पत्रों के मिलने के पूर्व ही मालदेव क्रमशः पीछे हटने लगा था (जि० १, पृ० ७०), परन्तु यह बात विश्वासयोग्य नहीं प्रतीत होती, क्योंकि ऐसा करने का कारण क्या था, इसका उक्त ख्यात से पता नहीं चलता।

(२) बर्हमाका की अपूर्यता के कारण फ़ारसी तबारीज़ों में पुरुषों और

की चाल का पता लगने पर उसने मालदेव को उसकी गलती सुझाने की चेष्टा की, परन्तु जब उसका सन्देह किसी प्रकार मिटता न देखा तो उसने कहा—“सबे राजपूतों में ऐसा विश्वासघात पहले कभी नहीं सुना गया। मैं राजपूतों की प्रतिष्ठा पर लगाये गये इस कलंक को अपने रक्त से धोऊंगा, अथवा शेरशाह को अपने धोड़े से सैनिकों की सहायता से ही पराजित करूंगा।” मालदेव के हृदय में तो सन्देह ने पूरा-पूरा घर कर लिया था। उसने कृपा की बात पर कोई ध्यान न दिया और पीछे हटने लगा। इसपर वीर कृपा कुछ सरदारों और दस-बारह हजार सैनिकों के साथ शेरशाह पर आक्रमण करने के लिए चला, परन्तु रात्रि के समय वे मार्ग भूल गये, जिससे सबेरा होने पर उनकी शत्रु-सेना से मुठभेड़ हुई।

स्थानों के नाम ठीक-ठीक न तो लिखे ही जाते हैं और न पढ़े ही, जिससे अनेक अनुवाद-कर्त्ताओं ने गलती से जैता के स्थान में जया और कृपा के स्थान में कूभा, कम्हैया, अथवा गोपा नाम दे दिया है। अल्बदायूनी ने भी फ़रिश्ता की भांति केवल कृपा का नाम दिया है (सुतप्रवृत्तवारीख—रैकिंग-कृत अनुवाद; जिब्द १, पृ० ४७८), परन्तु जैता और कृपा दोनों ही राठोड़ सेना के साथ थे और इसी लड़ाई में मारे गये थे।

(१) जोधपुर राज्य की रियासत (जि० १, पृ० ७०) तथा अन्य रियासतों आदि में लिखा है कि गिर्री पहुँचने पर जैता तथा कृपा ने कहा कि यहाँ तक की भूमि तो राव की अपनी जीती हुई है, आगे राव रिडमल (रणमल) और जोधा की ली हुई भूमि है सो हमारे बाप-दादों की है। यहाँ से हम पीछे नहीं हटेंगे और लड़कर मर मिटेंगे। घपटों में यह घटना संदेहात्मक पत्रों के डलवाये जाने से पहले दी है, जो उस समय ठीक नहीं जंचती। वास्तव में कृपा ने, मालदेव को उसकी गलती सुझाने के प्रयत्न में निष्फल होकर ही, लड़कर मर मिटने की बात कही होगी। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता में दिया हुआ कृपा का कथन अमाननीय नहीं कहा जा सकता।

(२) कानूंगो के अनुसार यह लड़ाई मेरठ में हुई (शेरशाह; पृ० ३२३), परन्तु उसका यह कथन सर्वथा निर्मूल है। फ़ारसी तवारीखों में यह लड़ाई कहाँ हुई यह नहीं लिखा है। “तबकात-इ-अकबरी” (फ़ारसी; पृ० २३२) में शेरशाह की सेना का अजमेर के पास पहुँचना और वहाँ मालदेव की सेना के सामने एक मास तक पड़े रहना लिखा है। फ़रिश्ता के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह लड़ाई अजमेर से कुछ दूर पर ही हुई होगी। रियासतों में जैता, कृपा आदि का गिर्री से सम्बन्ध

शेरशाह ने अपनी अस्सी हज़ार सेना के साथ उनपर हमला किया, पर राठोड़ वीरों ने मुसलमानों पर इतना प्रबल आक्रमण किया कि कई बार उन्हें पीछे हटना पड़ा और उनमें घबराहट फैल गई। इसी समय जलालखां जलघानी सहायक सेना के साथ पहुंच गया। राठोड़ों की सैनिक शक्ति कम तो पहले से ही थी ऐसी दशा में वे क्षिन्न-भिन्न हो गये। शेरशाह को इस लड़ाई में विजय की आशा बिल्कुल जाती रही थी,

सहित चखना और रात्रि में मार्ग भूल जाने के कारण सवेरे समेल की नदी के पास शेरशाह की सेना से युद्ध होना लिखा है (मुंहणोत नैणसी की कथात; जि० २, पृ० १२८-९। जोधपुर राज्य की कथात; जि० १, पृ० ७१। मुंशी देवीप्रसाद; राव माखदेवजी का जीवनचरित्र; पृ० ६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७६१)। गिर्री अजमेर से सोलह कोस दक्षिण पश्चिम में जोधपुर के जैतारण परगने में है और उससे केवल कुछ ही कोस की दूरी पर उसी परगने में समेल है, जहां यह लड़ाई हुई होगी। इस विषय में सभी कथाओं के एक मत होने के कारण उनके कथन की अवहेलना नहीं की जा सकती। एक प्राचीन दोहे से गिर्री में जैता, कूपा आदि का रुकना और मर मिटने का उद्गार निरन्तर करना पाया जाता है—

गिर्री तोरे गार में लंबी घधी खजूर ।

जैते कूपे आखिया सग नेडो घर दर ॥

(१) अभ्यासप्रां लिखता है—‘शेरशाह की सेना का एक हिस्सा भाग चला था और एक अक्रान्त ने उसके पास जाकर उसे भला-बुरा कहते हुए उसके देश की भाषा में कहा कि भागो क्योंकि शत्रु तुम्हारी सेना को क्षिन्न-भिन्न कर रहे हैं (तारीख-इ-शेरशाही—इस्तिख्त; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ४, पृ० ४०५) ।’ इससे निश्चित है कि थोड़ी सी ही राठोड़-सेना ने कुछ देर के लिए मुसलमानी सेना के चरके बुझा दिये थे। क्रिस्ता के कथनानुसार जलालखां जलघानी के आ जाने से ही मुसलमान बटकर राठोड़ों को मार सके।

(२) जोधपुर राज्य की कथात में इस घटना का समय वि० सं० १६०० पौष सुदि ११ (ई० स० १५४४ ता० ५ जनवरी) दिया है (जि० १, पृ० ७१)। “वीविनोड” में भी यही समय दिया है (भाग २, पृ० ८१०)। कानूंगो वि० सं० १६०० के फाल्गुन (ई० स० १५४४ मार्च) मास में यह लड़ाई होना लिखता है (शेरशाह; पृ० ३२६)। बांकीदास ने वि० संवत् १६०० पौष वदि ५ (ई० स० १५४३ ता० १६ दिसंबर) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२०)।

जिससे उसकी समाप्ति होने पर उसने कहा—‘एक मुट्ठी ज्वार (? बाजरा) के दानों के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता’ ।’

अल्बदायूनी लिखता है—‘प्रातःकाल होने पर शेरशाह की सेना के दृष्टिगोचर होते ही राठोड़ सैनिक अपने घोड़ों पर से उतर पड़े और बरछे तथा तलवारें हाथ में लेकर पठानों की सेना पर दूट पड़े। ऐसी दशा में उसने हाथियों की सेना को आगे बढ़ाकर शत्रुओं को रौंद डालने की आज्ञा दी। हाथियों के पीछे से गोलेदाजों और तीरंदाजों ने गोलों और तीरों की वर्षा की, जिससे सबके सब राठोड़ खेत रहे, पर एक भी मुसलमान इस लड़ाई में काम न आया’ ।’

यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होने से विश्वासयोग्य नहीं है। इतनी बड़ी लड़ाई में एक भी मुसलमान काम न आया हो यह असंभव है। इस सम्बन्ध में फ़रिश्ता का ऊपर आया हुआ कथन ही अधिक माननीय है। अम्बासख़ां का मत ऊपर (पृ० ३०६ टि० १ में) दिया जा चुका है। “तारीख-इ-दाऊदी” से भी पाया जाता है कि इस लड़ाई में

जोधपुर राज्य की रण्यत के अनुसार इस लड़ाई में निम्न क्लित प्रमुख सरदार काम आये—

जैता पंचायथोत (बगड़ी); कृष्ण मेहराजोत (आसोपवालों का पूर्वज); उदयसिंह जैतावत; खीवा उदावत (रायपुरवालों का पूर्वज); पंचायण करमसीहोत (खीवसरवालों का पूर्वज); जैतसी उदावत; जोगा अखैराजोत; सुरताण गांगावत; पत्ता कान्हावत; वैरसी राणावत; बीदा भारमजोत; रायमल अखैराजोत; आदा पंचायथोत; भोजराज पंचायथोत; हरदास खंगारोत; सोनगरा भोजराज अखैराजोत; सोनगरा अखैराज रणधीरोत; भाटी मेरा अचखावत; भाटी केशव आपमल हमीरोत; भाटी सूर पालावत; सोदा माथा देसावत; उदक बीरा खखावत; सांखला डूंगरसी भामावत; देवदा अखैराज बनावत; मांगलिया हेमा नींबावत आदि ।

(जि० १, पृ० ७१-२) ।

“बीरविनोद” में भी लगभग ये ही नाम दिये हैं (भाग २, पृ० ८११) ।

(१) जिज्ञा; फ़रिश्ता; जि० २, पृ० १२१-३ ।

(२) मुंजबुत्तवारीख—रैकिंग-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ४७८-६ ।

बहुत से पठान मारे गये थे' । निज़ामुद्दीन भी ऐसा ही कहता है ।

वहां से शेरशाह ने अपनी सेना के दो भाग कर दिये । एक भाग तो उसने ख्वासखां और ईसाखां नियाज़ी आदि की अध्यक्षता में जोधपुर की ओर रवाना किया और दूसरे भाग के साथ वह स्वयं अजमेर गया, जहां उसका आसानी से अधिकार हो गया^१ । फिर वह भी जोधपुर की तरफ़ अग्रसर हुआ । मालदेव उसका आगमन सुनते ही वहां से भागकर सिवाना के पहाड़ी क़िले में चला गया^२ । थोड़ी लड़ाई के बाद जोधपुर

शेरशाह का जोधपुर पर
अधिकार करना

(१) (फ़ारसी); पृ० २३८ ।

(२) मुंहग्योत नैणसी ने एक स्थल पर लिखा है कि शंकर (भैरवदास जैसावत का पौत्र) मालदेव की तरफ़ से अजमेर का क़िलेदार था । सूर बादशाह आया तब वह लड़ाई कर मारा गया (जि० २, पृ० ४१२ और ४१५) । वांकीदाम (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२६) ने भी इसका उल्लेख किया है । कानूंगो लिखता है कि अजमेर के बाद शेरशाह आबू गया (शेरशाह; पृ० ३३०), पर उसका यह कथन ठीक नहीं है । जोधपुर के स्थान में शेरशाह का इतनी दूर आबू पर जाना युक्तिसंगत नहीं माना जा सकता । वह अजमेर से सीधा जोधपुर गया होगा ।

(३) कानूंगो; शेरशाह; पृ० ३३१ । किसी ख्यात में उसका पीपलोद की पहाड़ी में और किसी में घूंघरोट की पहाड़ी में भाग जाना लिखा है ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इस अवसर पर मालदेव के साथ निम्न-लिखित सरदार गये थे—

राठोड़ जैसा भैरवदासोत चांपावत; राठोड़ महेश बड़सीयोत; राठोड़ जैतली बाघावत; कलौधी का स्वामी राव राम तथा पोकरण का स्वामी जैतमाछ ।

(जि० १, पृ० ७२) ।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार जोधपुर की लड़ाई में कई सरदार मारे गये, जिनमें से प्रमुख के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

राठोड़ निलोकसी वरजांगोत; राठोड़ अचला शिवराजोत; भाटी भोजा जोधावत; भाटी नाथू मालावत; राठोड़ सिंघण खेतसिंहोत; राठोड़ राणा वीरमोत आदि ।

(जि० १, पृ० ७२-३) ।

पर भी शेरशाह का अधिकार हो गया। एक वर्ष से अधिक जोधपुर शेरशाह के अधीन रहा^१। इस बीच किले के भीतर एक मसजिद बनी और गोल का रास्ता आदि भी बना^२। शेरशाह ने धीरे-धीरे मेड़ता और कल्याणमल को बीकानेर का राज्य सौंपा^३।

इसके कुछ दिनों बाद शेरशाह की कालिंजर पर चढ़ाई हुई, जिसमें एक आकस्मिक घटना के हो जाने से उसका देहांत हो गया। उसने युद्ध के समय कुछ हुक्के (तोप के गोले) मंगवाये और उनमें पत्ती लगाकर किले के भीतर फेंकने की आज्ञा दी। दुर्भाग्य से एक हुक्के में जब पत्ती लगाकर फेंका गया तब वह दीवार से टकराकर अन्य हुक्कों के बीच गिर पड़ा, जिससे सबके सब एक साथ जल पड़े। वहां पर उपस्थित अन्य मनुष्य तो बच गये, पर शेरशाह बुरी तरह घायल हुआ, जिससे हि० सं० १५२ ता० १० रबीउल-अव्वल (वि० सं० १६०२ ज्येष्ठ सुदि ११ = ई० सं० १५४५ ता० २२ मई) को उसका देहांत हो गया^४।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में शेरशाह का जोधपुर में एक वर्ष तक रहना लिखा है (जि० १, पृ० ७३) ; दयालदास की ख्यात में उसका वहां ४ मास रहना लिखा है (जि० २, पत्र १६) ; बांकीदास उसका वहां जोधपुर राज्य की ख्यात के समान एक वर्ष ही रहना लिखता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२७) । ऐसे ही अन्य ख्यातों में इस विषय में विभिन्न मत हैं। फारसी तवारीखों में इस सम्बन्ध में कुछ भी लिखा नहीं मिलता। बादशाह का जोधपुर पर एक वर्ष से अधिक समय तक अधिकार रहा था, संभवतः इसी के आधार पर ख्यातकारों ने उसका वहां एक वर्ष अथवा ४ महीना रहना लिख दिया है।

(२) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८२७-८। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७३।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७२। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र १६-२०।

(४) कानूंगो; शेरशाह; पृ० ३३८-४१। “तारीख-ह-शेरशाही” में भी वही तारीख दी है (इजिप्ट; हिस्ट्री ऑफ इंडिया; जि० ४, पृ० ४०६), पर इसके विपरीत

राव मालदेव भी शांत न बैठा था। अपने गये हुए राज्य को पीछा हस्तगत करने के लिए वह अक्सर की ताक में था। शेरशाह की मृत्यु का समाचार मिलते ही वह मुसलमानों के थानों पर हमला करने लगा। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘शेरशाह जोधपुर से जाते समय भांगेसर के थाने पर अपने सवार रख गया था। उस (शेरशाह) के मरने पर मालदेव ने (पहाड़ों से) बाहर आकर उनको मार डाला। अनन्तर उसने वि० सं० १६०२ (ई० सं० १५४५) में जोधपुर पर भी कब्जा कर लिया’।

राव मालदेव का प्रेम अपनी भाली राणी स्वरूपदे पर विशेष था। इस कारण उसका ज्येष्ठ पुत्र राम स्वरूपदे के पुत्रों—उदयसिंह तथा चन्द्र-सेन—से ईर्ष्या रखता था। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘वि० सं० १६०४ (ई० सं० १५४७) में राव मालदेव रोग-ग्रस्त हुआ और जब उसका काट से नीचे उतरना भी कठिन हो गया तो ऐसी परिस्थिति से लाभ उठाकर राम ने राव को क्रैद करने और स्वयं गद्दी पर बैठने का विचार किया। एतदर्थ उसने पृथ्वीराज (जैतावत) को अपने शामिल रहने के लिए कह-लाया, परन्तु उसने इस अधर्म के कार्य में साथ देने से इनकार कर दिया।

फ़रिस्ता (मिर्ज़ा-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १२४), बीक (ओरिएण्टल बायोग्राफ़िकल डिक्शनरी; पृ० ३८१) तथा कविराजा श्यामजदास (वीरविनोद; भाग २, पृ० १३८) ने शेरशाह की मृत्यु ता० १२ रबीउलअव्वल को मानी है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७३-४। बांकीदास; ऐतिहासिक कालें; संख्या ८२८ और १५१०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८११-२। मुहम्मद नैणसी की ख्यात में भी राव मालदेव का भांगेसर के थाने पर सैन्य भेजना लिखा है। उस समय उक्त ख्यात के अनुसार (जैतावत) जोधा का पुत्र रामा और (जैतावत) बणवीर के पुत्र तेजसी और बीसा भी उस सेना के साथ थे (जि० २, पृ० ४०० और ४११-३०)।

इसके कुछ दिनों बाद ही राम ने मंडोवर में गोठ की, जिसकी सूचना पृथ्वीराज ने राव के प्रधान जैसा (भैरुंदासोत) को दे दी और उस (राम) की गुप्त अभिसन्धि का सारा हाल भी उससे कह दिया । जैसा ने सारा हाल राव से निवेदन किया, जिसने पृथ्वीराज से बहुत प्रसन्न होकर उसे आश्वासन दी कि गढ़ के द्वार पर चौकसी करो और राम को गढ़ में प्रवेश न करने दो । अनन्तर उसने अपनी राणी लाछलदे कछवाही को उसी समय तलहटी में भिजवा दिया । राम जब गढ़ के पास पहुंचा तो वह फाटक पर ही रोक दिया गया । पिता से पुछवाने पर मालदेव ने उससे कहलाया कि तुम अपने साथियों को लेकर गूंदोच चले जाओ । राव की भटियाणी राणी उमादे अपने स्वामी से रुष्ट रहती थी और उसने राम को गोद लिया था, जिससे राम के साथ वह भी गूंदोच चली गई । कुछ दिनों गूंदोच में रहने के बाद राम अपने श्वसुर महाराणा उदयासिंह के पास चला गया, जिसने उसे कई गांवों के साथ केलवा जागीर में दे दिया, जहां वह रहने लगा । इधर स्वरूपदे ने राव से कहकर अपने पुत्र चन्द्रसेन को गद्दी का हकदार नियत कराया ।'

ख्यात का उपर्युक्त कथन अधिक विश्वास के योग्य नहीं है । मालदेव का अपनी भाली राणी स्वरूपदे पर विशेष प्रेम था, यह ऊपर के कथन से स्पष्ट है । अपनी उसी राणी के आग्रह करने से उसने उसके पुत्र चन्द्रसेन को, ज्येष्ठ पुत्र राम के रहते हुए भी राज्य देने का निश्चय किया और उसे ही उत्तराधिकारी बनाया । अधिक संभव तो यह है कि इस असंगत बात को ठीक करार देने के लिए ही ख्यातकार ने उपर्युक्त कथा रच डाली हो ।

वि० सं० १६०७ (ई० स० १५५०) में राव ने पोकरण पर अधिकार करने के लिए राज्य की सेना भेजी । उन दिनों वहां राव जेतमाल गोयंद के पुत्र मरा के पौत्र कान्हा का अमल था । उसे निकालकर राजकीय सेना ने पोकरण पर राव का अधिकार स्थापित

पोकरण और फलोधी
पर सेना भेजना

किया'। उन्हीं दिनों राव ने फलोधी पर भी सेना भेजी^१।

अनन्तर मालदेव की आज्ञानुसार जैसा (भैरवदासोत) ने बाड़मेर और कोटड़ा पर आक्रमण किया, जहां का स्वामी रावत भीम भागकर जैसलमेर चला गया। वहां से वह कुंवर हरराज को ससैन्य साथ ले पुनः बाड़मेर में आया, जहां बड़ी लड़ाई हुई^२। इस लड़ाई का परिणाम क्या हुआ इस विषय में ख्यात मौन है।

वि० सं० १६०६ आषाढ सुदि १५ (ई० सं० १५५२ ता० ४ अगस्त) को राव ने फ़ौज के साथ पंचोली नेतसी, पृथ्वीराज (जेतावत) और कृपा उदयसिंहोत आदि को जैसलमेर पर भेजा। जैसलमेर पर सेना भेजना कार्तिक वदि ६ (ता० १२ अक्टोबर) को यह सेना जयसमुद्र के निकट पहुंची, जहां से चढ़कर इसने जैसलमेर का बहुत कुछ नुकसान किया। जैसलमेर का रावल इस सेना का सामना करने में

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ७२।

(२) मुंहणोत नैणसी की ख्यात में (जि० २, पृ० ४१२ और ४१४) लिखा है कि राव मालदेव की फलोधी के भाटियों से लड़ाई हुई वहां पंचायण (जोधावत) का पुत्र केशोदास मारा गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में पोंकरण से रावत जैसा के फलोधी पर जाने के समय कई मारे जानेवाले लोगों के नाम दिये हैं (जि० १, पृ० ७२)। डोंड भी मालदेव का फलोधी पर अधिकार रहना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६५२)। इससे सिद्ध है कि फलोधी के भाटियों के साथ राव मालदेव की सेना की लड़ाई अवश्य हुई थी।

(३) जयपुर से आई हुई राठोड़ों की एक ख्यात; पृ० १३७-८। मुंहणोत नैणसी की ख्यात में एक स्थल पर लिखा है कि जब जैसलमेर की सेना आई उस समय मालदेव की तरफ से (नीवावत) मूला लड़कर मारा गया (जि० २, पृ० ३६५ और ३६७)। संभव है नैणसी का यह कथन ऊपर लिखी हुई घटना से ही सम्बन्ध रखता हो।

(४) राव मालदेव के समकालीन रावल लूणकर्ण और मालदेव थे। वि० सं० १६०६ (ई० सं० १५५२) में रावल मालदेव विद्यमान था, परन्तु उसके समय में जैसलमेर पर चढ़ाई होने का कोई उल्लेख वहां की ख्यातों में नहीं है। जोधपुर राज्य

समर्थ न होने के कारण गढ़ का द्वार बन्द कर भीतर बैठ रहा । तब उससे पेशकशी के रुपये वसूल कर जोधपुर के सरदार लौट गये^१ ।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि बिहारी पठान सिकंदरखां से जालोर का राज्य बलोचों ने छीन लिया था । वि० सं० १६०६ (ई० सं० १५५२) के लगभग पठानों ने एकत्र होकर मलिक-
 जालोर के पठानों और
 राठोड़ों को लड़ाइयां
 खां की अध्यक्षता में बलोचों से जालोर का राज्य पीछा लेने के लिए उनपर चढ़ाई कर दी ।

लासड़ा के मैदान में बलोचों और पठानों का मुकाबला हुआ, जिसमें बहुत से बलोच मारे गये । केवल उनका कामदार गंगादास जीता बचा, जिसने जाकर जालोर के क़िले में शरण ली । सांचोर पर अधिकार कर मलिकखां जालोर पहुंचा और उसने गंगादास को क़िले की चाबियां सौंपने के लिए कहलाया । गंगादास ने इस कार्य के लिए एक सप्ताह का समय मांगा और इसी बीच कुछ विश्वासपात्र सींधलों के द्वारा राव मालदेव से कहलाया कि यदि आप मुझे सद्दी-सलामत पट्टन (गुजरात) पहुंचा दें तो मैं जालोर के क़िले की चाबियां आपको दे दूंगा । राव मालदेव तो यह चाहता ही था । उसने तत्काल यह शर्त स्वीकार कर ली और रात्रो (पन्नावत), लुणा (गंगावत) और तिलोकसी आदि को सेना सहित गंगादास की सहायता के लिए भेज दिया । जालोर से छः कोस दूर हमराल्ली नामक स्थान में उनके पहुंचने पर गंगादास उनसे जा मिला, जिसे उन्होंने हिफ्ता-जत के साथ पट्टन पहुंचा दिया । फिर सींधलों के बताये हुए मार्ग से जालोर के क़िले में प्रवेशकर उन्होंने उसे अपने अधिकार में कर लिया ।

की ख्यात के अतिरिक्त अन्य ख्यातों में भी इस घटना का उल्लेख नहीं मिलता । केवल जयपुर से आई हुई राठोड़ों की ख्यात में इसका उल्लेख है; ऐसी दशा में यह कहना कठिन है कि इस कथन में सत्य का अंश कितना है ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७४ । अन्य ख्यातों में इसका उल्लेख नहीं मिलता ।

इस घटना को हुए अभी देर न हुई थी कि मलिकखां ने उत्तर प्रबल आक्रमण कर दिया। राठोड़ों ने भी वीरता के साथ उसका मुकाबला किया, पर अन्त में उन्हें किला खाली कर देना पड़ा और वि० सं० १६१० (ई० सं० १५५३) में वहां मलिकखां का कब्जा हो गया। मालदेव को इस पराजय से बड़ा दुःख हुआ, अतएव कुछ समय बाद ही वह स्वयं राठोड़ों की बड़ी सेना के साथ जालोर पर जा पहुंचा। मलिकखां का इरादा तो उसका सामना करने का था, पर दूसरे लोगों (अफसरों आदि) ने उसे ऐसा करने की राय न दी। जिससे जालोर का परित्याग कर वह सांचोर चला गया। फलतः मालदेव का जालोर पर अधिकार हो गया। मलिकखां भी चुप न बैठा और अपनी ससुराल शामली में रहकर जालोर पर पुनः अधिकार करने के लिए प्रयत्न करने लगा। लगभग दो वर्ष बाद उसने जालोर पर चढ़ाई कर दी और जालोर के निकट डेरा किया। सात रोज तक राठोड़ों ने उसका सामना किया, पर आठवें रोज भवनकोट नामक द्वार तोड़कर मलिकखां शहर में घुस गया। राठोड़ों ने किले में रहकर कई दिन तक तो उसका सामना किया, पर अन्त में जब बारूद, रसद आदि की कमी हो गई तो उन्होंने किला खाली कर दिया, जहां मलिकखां का फिर अधिकार हो गया^१।

इसी बीच मेड़ते के स्वामी धीरमदेव का देहांत हो गया, जिसका उत्तराधिकारी जयमल हुआ। उससे मालदेव ने कहलाया कि मेरे रहते हुए

(१) सैयद गुलाब मियां; तारीख पालनपुर (उर्दू), पृ० १२४-७। नवाब सर ताले मुहम्मदखां; पालणपुर राज्यनो इतिहास (गुजराती); भाग १, पृ० ३२-८।

उक्त पुस्तकों में आगे चलकर लिखा है—‘जालोर के किले पर सरलता से अधिकार होने का एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि किले में रहनेवाले देशी मिपाहियों एवं राठोड़ों में लड़ाई हो गई और कुछ लोगों ने राठोड़ों से नाराज होकर चांपा और माना नाम के राजपूत किलेदारों से पड़्यन्त्र कर मलिकखां को कहलाया कि अब आप बेधड़क आइये, हम आपकी सहायता करेंगे। इसपर मलिकखां ने आक्रमण कर राठोड़ों को मारा और जब उन्होंने प्राण-रक्षा की प्रार्थना की तो उनका माल-असबाब ज्वन करके उन्हें छोड़ दिया।’

जयमल के साथ की लड़ाई
में मालदेव की पराजय

तू सब भूमि दूसरों को न दे, कुछ खालसे के लिए भी रख । जयमल ने अर्जुन (रायमलोत) को ईडवे की जागीर दी थी, अतएव उस(जयमल) ने यह सब हाल उससे भी कहला दिया । राव मालदेव के तो मेड़ता लेने की दिल में लग रही थी, अतएव दशहरा पूजकर उसने ससैन्य मेड़ते पर चढ़ाई कर दी और गांव गांगरड़ा में डेरे हुए । उसकी सेना चारों ओर घूम-घूमकर निरीह प्रजा को लूटने और मारने लगी^१ । ऐसी दशा में जयमल ने बीकानेर आदमी भेजकर राव कल्याणसिंह से मदद करने के लिए कहलाया, जिसपर उसने मद्दाजन के स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह, शृंगसर के स्वामी शृंग, चाचाबाद के स्वामी वलीर, जैतपुर के स्वामी किशनसिंह, पूगल के भाटी हरा के पुत्र वैरसी और बड़ावत सांगा को सेना सहित उस(जयमल) की सहायता भेजा^२ । बीकानेर से इन सरदारों के आ जाने से जयमल की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने अपनी तथा बीकानेर की सम्मिलित सेना के साथ मालदेव की सेना का सामना करने के लिए प्रस्थान किया^३ । जैतमाल जयमल का प्रधान था । अखैराज भादा और चांदराज (जोधावत) जयमल के प्रतिष्ठित सरदार और मोकल के वंशज थे । जयमल के कहने से वे राव मालदेव के प्रधान से मिले और उसके साथ मालदेव के पास जाकर उन्होंने कहा कि आप हमें मेड़ता दे दें तो हम आपकी चाकरी करें, परन्तु मालदेव ने इसे स्वीकार न किया । इसपर अखैराज बोल उठा— “मेड़ता दे कौन और ले कौन, जिसने आपको जोधपुर दिया उसी ने हम-

(१) मुंहणोल नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६१-२ ।

(२) मुंहणोल नैणसी तथा जोधपुर राज्य की ख्यात में मेड़तेवालों की सहायता के लिए बीकानेर से सरदारों का आना नहीं लिखा है, पर दयालदास स्पष्टरूप से राव कल्याणमल के पास से उसे सहायता मिलना लिखता है । अधिक संभव तो यही है कि बीकानेर से जयमल को सहायता प्राप्त हुई हो, क्योंकि बिना किसी प्रकार की सहायता के अकेले मालदेव की शक्ति का सामना करना जयमल के लिए संभव नहीं था ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २० ।

को 'मेड़ता' दिया है।" इतना कहकर वे वापस लौट गये और जयमल से जाकर उन्होंने सारी हकीकत कही^१। दूसरे दिन विपक्षी दलों की मुठभेड़ हुई^२। मेड़ता की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को मालदेव की सेना संभाल न सकी और पीछे हटने लगी। अखैराज और सुरताण पृथ्वीराज तक पहुंच गये और कुछ ही देर में वह (पृथ्वीराज) अखैराज के हाथ से मारा गया। फिर तो मालदेव की सेना के पैर उखड़ गये। जयमल के सरदारों ने कहा कि मालदेव को दवाने का यह अच्छा अवसर है, पर जयमल ने ऐसा करना उचित न समझा। फिर भी बीकानेर के सरदारों ने मालदेव का पीछा किया। इस अवसर पर नगा भारमलोत, शृंग के हाथ से मारा गया और मालदेव अपनी सेना सहित भाग गया। लगभग एक कोस आगे बढ़ने पर बीकानेर के सरदारों ने उसे फिर जा घेरा। मालदेव के सरदार खांदा ने रुककर कुछ साथियों-सहित उनका सामना किया, परन्तु वह बशीर के हाथ से मारा गया^३। इतनी देर में मालदेव अन्य साथियों सहित बहुत दूर निकल गया था, अतः बीकानेर के सरदार लौट आये और मालदेव के भाग जाने पर जयमल को बधाई दी। जयमल ने कहा—“मालदेव के भागने की क्या बधाई देते हो? मेड़ता रहने की बधाई दो। पहले भी मेड़ता आपकी मदद से रहा था और इस बार भी आपकी सहायता से बचा।” इस लड़ाई में मालदेव का नगरा बीकानेरवालों के हाथ लग गया था, जिसको जयमल ने एक भांभी के हाथ वापस भिजवाया। गांव लांबिया

(१) मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० १६२-३। दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २०-२१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का समय (श्रावणादि) वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० स० १६५४ ता० ४ अश्लेष) दिया है (जि० १, पृ० ७४)।

(३) मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार खांदा मारा नहीं गया, वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारों को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुंचाया था (जि० २, पृ० १६५-६)।

में पहुंचते-पहुंचते उस(भांभी)के मन में नगारे को बजाने की उत्कट इच्छा हुई, जिससे उसने उसे बजा ही दिया। मालदेव ने जब नगारे की आवाज सुनी तो समझा कि मेड़ते की फौज आ रही है, और शीघ्रता से जोधपुर भाग गया। भांभी ने जब वहां जाकर नगारा लौटाया तब उसपर सारा भेद खुला^१। कुछ दिनों बाद जब बीकानेर के सरदार मेड़ता से लौटने लगे तो जयमल ने उनसे कहा—“राव (कल्याणसिंह) से मेरा मुजरा कहना। मैं उन्हीं की रक्षा के भरोसे मेड़ते में बैठा हूं^२।”

शेरशाह सूर का गुलाम हाजीखान एक प्रबल सेनापति था। अकबर के गद्दी बैठने के समय उसका मेवात (अलवर) पर अधिकार था। वहां

(१) मुहम्मद नैएसी की ख्यात में भी मेड़तेवालों के हाथ मालदेव का नगारा लगने और उसके भांभी (बलाई) द्वारा लौटाये जाने का उल्लेख है। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि बलाई जब गांव लांबिया के पास पहुंचा तो उसने सोचा कि नगारा तो बजा लेवें, यह तो मालदेव का है सो कल मेरे हाथ से जाता रहेगा। ऐसा सोचकर उसने नगारा बजा दिया, जिसकी आवाज़ सुनकर मालदेव ने चांदा से कहा कि भाई मुझे जोधपुर पहुंचादे। तब चांदा ने उसे सकुशल जोधपुर पहुंचा दिया (जि० २, पृ० १६२-६)।

(२) दयालदास की ख्यात; जि० २; पत्र २०-२ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणसिंहजी का जीवनचरित्र; पृ० ६६-६ । पाउलेट; गैज़ेटियर ऑव् दि बीकानेर स्टेट; पृ० २१।

जोधपुर राज्य की ख्यात में केवल इतना लिखा है—‘वीरमदेव के मरने पर जयमल मेड़ता का स्वामी हुआ। उसे राव मालदेव चाकरी में बुलाता पर वह आता नहीं। इसपर राव ने सेना सहित जयमल पर चढ़ाई कर दी। (आख्यादि) वि० सं० १६१० (चैत्रादि १६११) वैशाख सुदि २ (ई० सं० १५४४ ता० ४ अप्रैल) को मेड़ते में युद्ध हुआ, जिसमें राव मालदेव के बहुतसे सरदार काम आये और वह हारकर जोधपुर लौट गया (जि० १, पृ० ७४-५)।’ इस विषय की उक्त ख्यात में निम्नलिखित कविता भी दी है—

जैमलजी जपियो जपमालो ।

भागों राव मंडोवर वालो ॥

मालदेव की हाजीख़ां पर
चढ़ाई

से उसे निकालने के लिए बादशाह अकबर ने पीर-मुहम्मद सरवानी (नासिरुलमुल्क) को भेजा । उसके पहुंचने से पहले ही वह भागकर अजमेर चला गया । राव मालदेव ने उसे लूटने के लिए पृथ्वीराज (जैतावत) को भेजा । अकेले हाजीख़ां की उसका सामना करने की सामर्थ्य न थी, अतः एव उसने राणा उदयसिंह के पास अपने दूत भेजकर कहलाया कि मालदेव हमसे लड़ना चाहता है, आप हमारी सहायता करें । ऐसे ही उसने बीकानेर के राव कल्याणमल से भी सहायता मांगी । इसपर महाराणा ५००० फौज लेकर अजमेर गया । इतनी ही सेना बीकानेर से राव कल्याणमल ने महाजन के स्वामी ठाकुर अर्जुनसिंह, जैतपुर के स्वामी राघव किशनदास और सेवारा के स्वामी नारण की अध्यक्षता में हाजीख़ां की सहायता भेजी । इस बड़े सम्मिलित कटक को देखकर जोधपुर के अन्य सरदारों ने पृथ्वीराज से कहा कि राव मालदेव के अच्छे-अच्छे सरदार पहले ही (शेरशाह आदि के साथ की लड़ाइयों में) मारे जा चुके हैं, यदि हम भी काम आये तो राव बहुत निर्बल हो जायगा । इतनी बड़ी सेना का सामना करना कठिन है, इसलिए लौट जाना ही अच्छा है । इसपर मालदेव की सेना बिना लड़े ही लौट गई और राणा तथा कल्याणमल के सरदार आदि भी अपने-अपने स्थानों को चले गये ।

(१) अकबरनामा—इलियट्; हिरटी अॉव् इंडिया; जि० ६, पृ० २१-२ ।

(२) यह घटना वि० सं० १६१३ या उससे कुछ पहले की होगी, क्योंकि हाजीख़ां की राणा उदयसिंह के साथ की लड़ाई, जिसमें मालदेव हाजीख़ां की मदद पर था, वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १५५७ ता० २७ जनवरी) को हुई थी (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२६८) ।

(३) दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३ । मुंशी देवीप्रसाद; राव कल्याणमलजी का जीवनचरित्र; पृ० ६८-६ ।

मेरे “राजपूताने के इतिहास” (जि० २, पृ० ७२०) में मुहम्मद नैणसी, बांकीदास और कविराजा श्यामलदास के आधार पर कल्याणमल का हाजीख़ां की दूसरी

इस सहायता के बदले में महाराणा ने हाजीख़ां से रंगराय पातर (वेश्या) को, जो उसकी प्रेयसी थी, मांगा। हाजीख़ां ने यह कहकर कि यह तो मेरी औरत है, इसे मैं कैसे दूँ, उसे देने से इनकार कर दिया। सरदारों ने भी महाराणा को ऐसी कुत्सित मांग न करने के लिए समझाया,

मालदेव का हाजीख़ां की सहायतार्थ जाना

परन्तु उसने उनकी एक न सुनी और हाजीख़ां के इनकार करने पर भी उसपर चढ़ाई कर दी^१। ऐसी दशा में हाजीख़ां ने राव मालदेव से सहायता मांगी। मालदेव का पहले ही महाराणा से विरोध हो चुका था, इसलिए उसने राठोड़ देवीदास (जैतावत), जैतमल (जैसावत) आदि के साथ अपनी सेना उस (हाजीख़ां) की सहायतार्थ भेज दी। वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदि ६ (१५५७ ता० २४ जनवरी) को हरमाड़ा (अजमेर ज़िला) नामक स्थान में राणा उदयसिंह और हाजीख़ां तथा मालदेव की सम्मिलित सेना में युद्ध हुआ^२। राव तेजसिंह और वालीसा (वालेचा) सूजा ने कहा कि लड़ाई न की जाय, क्योंकि पांच हजार पठानों और डेढ़ हजार राजपूतों को मारना कठिन है, परन्तु राणा ने उनकी बात न सुनी। हाजीख़ां ने एक सेना तो आगे भेज दी और स्वयं एक हजार सवारों को लेकर एक पहाड़ी के पीछे जा

लड़ाई में राणा उदयसिंह के पक्ष में लड़ना लिखा गया है, परन्तु बाद के शोध से यह निश्चित रूप से पता लग गया है कि मालदेव के हाजीख़ां पर चढ़ाई करने के समय उस (कल्याणमल) ने हाजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजी थी। उस समय उदयसिंह भी उसकी सहायता को गया था। कल्याणमल का मालदेव से वैर था और शेरशाह ने उसको राज्य दिलाया था, जिससे वह (कल्याणमल) उसका अनुगृहीत था। ऐसी दशा में उसका मालदेव के विरुद्ध हाजीख़ां की सहायतार्थ सेना भेजना ही ठीक जान पड़ता है। इसलिए इस विषय का दयालदास का ही कथन अधिक विश्वसनीय है।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७१६-२०।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७५-६। बांकीदास ने युद्ध का समय वि० सं० १६१३ फाल्गुन (ई० सं० १५५७) दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १२६८)।

छिपा। जब राणा की सेना शत्रु-सैन्य के बीच पहुंची तब पीछे से हाजीखा ने भी उसपर हमला कर दिया। उसका एक तीर राणा को लगा और उसकी फ़ौज ने पीठ दिखाई। इस लड़ाई में राव तेजसिंह (डूंगरसिंहोत), बालीसा सूजा आदि महाराणा की तरफ़ के प्रतिष्ठित वीर काम आये'।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि उपर्युक्त लड़ाई के समय मेड़ते का स्वामी जयमल भी राणा की मदद पर था। उसके भागते ही, वह भी मेड़ते की तरफ़ भागा। उसके पीछे-पीछे ही जयमल का मेड़ता छोड़ना मालदेव की सेना गई, जिससे जयमल को फाल्गुन वदि १२ (ई० स० १५५७ ता० २७ जनवरी) को मेड़ते का परित्याग कर भागना पड़ा^१। इसके कुछ दिनों बाद वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) में वहां राज्य की तरफ़ से मालकोट बनाया गया^२, जिसके दो वर्ष बाद बनकर सम्पूर्ण होने पर वहां की किलेदारी पीछे से देधीदास जैतावत को सौंपी गई^३।

(१) मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ७२० (उस स्थल पर राव कल्याणमल का उदयसिंह की सहायतार्थ जाना लिख दिया है, जो ठीक नहीं है। जैसा कि उपर लिखा जा चुका है, वह मालदेव की चढ़ाई के समय हाजीखा की सहायतार्थ गया था)। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी कल्याणमल का राणा की सहायतार्थ आना और उसके परास्त होने पर भागना लिखा है (जि० १, पृ० ७६) जो ठीक नहीं है (देखो दयालदास की ख्यात; जि० २, पत्र २३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि हाजीखा और राव दोनों ने मिलकर मेड़ता छुड़ाया (जि० २, पत्र २३)। बांकीदास की पुस्तक (ऐतिहासिक बातें; संख्या १३००) से पाया जाता है कि यह पता लगने पर कि मेड़ते में जयमल का कोई आदमी नहीं है वि० सं० १६१३ श्रावण सुदि १३ (ई० स० १५५६ ता० २० जुलाई) को मालदेव वहां गया, पर यह समय ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १३०३।

हिजरी सन् ९६३ (वि० सं० १६१२ = ई० सं० १५५६) में हुमायूँ का देहांत होने के बाद उसका पुत्र अकबर देहली की बादशाहत का अधिकारी हो गया था। हाजीख़ां के अजमेर पर अधिकार करने और उसकी बढ़ती हुई शक्ति का पता पाकर उसने उसका दमन करने के लिए शाही सेना भेजी।

बादशाही सेना का जैतारण पर अधिकार करना

तीसरे राज्य वर्ष के आरम्भ में हि० सं० ९६५ (वि० सं० १६१५ = ई० सं० १५५८) में जिन दिनों बादशाह लाहोर से लौटता हुआ सतलज पारकर लुधियाना के पास ठहरा हुआ था, उसके पास यह खबर पहुंची कि हाजीख़ां बराबर शाही सेना का सामना कर रहा है। उसी समय यह निश्चय किया गया कि हिसार तक सेना भेजकर इसका ठीक पता लगाया जाय और यदि आवश्यकता हो तो सेना उस (हाजीख़ां) पर और भी भेजी जाय। इसके अनुसार नासिरुलमुल्क की अध्यक्षता में फ़ौज उधर रवाना की गई। फिर बादशाह सरहिन्द गया, जहां से उसने भी हिसार की तरफ़ प्रस्थान किया। ये सब खबरें पाकर हाजीख़ां गुजरात की तरफ़ भाग गया और निशापुर के मुहम्मद कासिमख़ां ने जाकर अजमेर पर कब्जा कर लिया। उन्हीं दिनों शाह कुलीख़ां महरम तथा अन्य कई अफ़सर शाही फ़ौज के साथ जैतारण भेजे गये। थोड़ी लड़ाई के बाद वहां भी बादशाह का अधिकार हो गया^१।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जो शाही सेना जैतारण पर आई उसमें राजा भारमल, जगमाल, पृथ्वीराज, राठोड़ जयमल, ईश्वर वीरमदेवोत आदि भी साथ थे^२। जैतारण के हाकिम ने मालदेव को सहायता भेजने के लिए लिखा था, पर उसने अपने आदमी उधर न भेजे, जिससे राठोड़ रत्नसिंह (खीवावत), राठोड़ किशनसिंह (जैतसिंहोत) आदि वहां

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेबरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १०२-३।
मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ६।

(२) फ़ारसी तवारीख़ों में इनके नाम नहीं मिलते।

के सरदार मारे गये और बादशाह की फौज का वहां अधिकार हो गया^१ ।

छूटे राज्य वर्ष के अंतिम दिनों में शहरयूर तारीख ४ बहमन (वि० सं० १६१८ माघ सुदि द्वितीय ६ = ई० स० १५६२ ता० १४ जनवरी) को

बादशाह अकबर ने अजमेर की ओर प्रस्थान किया ।
 शाही सेना का मेड़ता पर
 अधिकार करना

सांभर^२ पहुंचने पर शरफुद्दीन हुसेन मिर्जा उसकी सेवा में उपस्थित हुआ, जिसे पीछे से बादशाह ने मेड़ता विजय करने की आज्ञा दी । फिर आगरा लौटने से पूर्व उसने तरसू मुहम्मदख़ां, शाह बुदाग और उसके बेटे अब्दुल मतलब आदि कई निकट के जागीरदार मिर्जा की सहायता के लिए नियत कर दिये^३ ।

उन दिनों मेड़ता मालदेव के अधीन था, जो भारत के शक्तिशाली राजाओं में से एक था । उसने वह किला जगमल (जगमाल^४) के सिपुर्द करके उसकी सहायतार्थ राठोड़ देवदास ('देवीदास'^५) को ५०० सैनिकों

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ७६-७ । उक्त ख्यात में इस घटना का समय वि० सं० १६१६ चैत्र वदि ६ (ई० स० १५६० ता० २० मार्च) दिया है, जो विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि फ़ारसी तवारीख़ों के अनुसार यह घटना वि० सं० १६१४ (ई० स० १५५७) की है ।

(२) कविराजा श्यामलदास-कृत वीरविनोद (भाग २, पृ० ८१२) से पाया जाता है कि बादशाह के सांभर रहते समय ही मेड़ते का जयमल उसकी सेवा में उपस्थित हुआ था, जिसको मेड़ता दिलाने के लिए बादशाह ने शरफुद्दीन हुसैन मिर्जा को साथ कर दिया । आगे चलकर 'अकबरनामे' से भी जयमल का शाही सेना के साथ होना पाया जाता है । संभवतः यह मेड़ते का ही जयमल रहा होगा । बांकीदास ने भी जयमल का शाही सेवा में जाना और बादशाह का मेड़ता दिलाने के लिए शरफुद्दीन मिर्जा का उसके साथ करना लिखा है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८३४ और १३०४) ।

(३) अबुल्फजल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २४०-३ ।

(४) मालदेव की तरफ से मेड़ते का किलेदार रहा होगा । निज़ामुद्दीन (तवक़ात-इ अकबरी) में इसे जयमल लिख दिया है, जो ठीक नहीं है । उसे तो मालदेव ने मेड़ते से निकाल दिया था ।

(५) जगमाल का अधीनस्थ अफसर रहा होगा ।

के साथ वहां रख दिया था। बादशाह के राजधानी (आगरा) की तरफ प्रस्थान करने के बाद शरफुद्दीन हुसैन मिर्जा अन्य अफसरों तथा शाही सेना के साथ मेड़ता विजय करने के लिए रवाना हुआ। मुगल सेना के किले तक पहुंचने पर राठोड़ों ने किले में शरण ली। शाही सेना में से चार सवारों ने आगे बढ़कर किले के फाटक पर तीरों की वर्षा की। इसपर राठोड़ किले पर के सुरक्षित स्थानों के पीछे से उनपर ईंट, पत्थर, तीर, गोलियां आदि फेंकने लगे, जिससे सवारों में से दो तो खेत रहे और शेष दो घायल दशा में शाही फौज में लौटे। तब शाही सेना ने अपनी गति धीमी कर पहले मेड़ता नगर में कई स्थाव्यों पर अपने थाने स्थापित किये। फिर किले को चारों ओर से घेरकर उसके कई तरफ सुरंगें खुदवाई गईं। किले के भीतर से राठोड़ भी मुसलमानों के हमले का जवाब देते रहे। कई दिन तक इसी प्रकार भीषण युद्ध होता रहा। मुसलमान सैनिक जब अक्सर पाते आगे बढ़कर आक्रमण करते और फिर पीछे हट आते। इसी बीच एक सुरंग भीतर ही भीतर किले की बुर्ज के नीचे तक खोदी जा चुकी थी। मुसलमानों ने उसमें बारूद भरकर आग लगा दी, जिससे बुर्ज छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी और मुसलमान उधर से भीतर घुस गये। राजपूतों ने जीवन का मोह त्यागकर उनसे युद्ध किया। दिन भर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें दोनों ओर के लोगों ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। रात्रि होने पर जब मुसलमानी सेना सुरक्षित स्थानों में लौट गई तो किले के भीतर के लोगों ने शीघ्रता पूर्वक एक रात के अल्प समय में ही फिर से बुर्ज बना ली। गढ़ के भीतर रहकर राठोड़ों का लड़ना भी जब कठिन हो गया तो उनमें से कुछ ने आकर सन्धि की बात

(१) बांकीदास लिखता है कि मुगल सेना की मेड़ते पर चढ़ाई होने पर मालदेव ने कुंवर चन्द्रसेन को देवीदास के पास यह कहकर मेड़ते भेजा कि यदि युद्ध करने का मौका देखो तो लड़ना नहीं तो लौट आना। बादशाही सेना की प्रवृत्ता देखकर चन्द्रसेन तो लौट गया, पर देवीदास (लड़ने के लिए) किले में जा बैठा (ऐतिहासिक बातें; संस्था १३०५-६)।

की। शरफुद्दीन पहले इसके लिए राज़ी न था, पर पीछे से अपने साथ के अफ़सरो से सलाहकर उसने यह तय किया कि गढ़ के भीतर के लोग तमाम असबाब छोड़कर बाहर चले जावें। दूसरे दिन जगमाल तो उक्त शर्त के अनुसार बाहर चला गया, परन्तु देवीदास ने मृत्यु का आवाहन करना पसन्द किया और अपना सारा सामान जलाकर अपने चार पांच सौ साथियों सहित शत्रु के सामने आया। जयमल आदि ने, जिनका क़िले-वालों से पुराना वैर था, इस घटना की शरफ़ुद्दीन को ख़बर दी। इसपर शरफ़ुद्दीन की आज्ञानुसार मुग़ल सेना ने उस (देवीदास) का पीछा किया। उस समय जयमल तथा अन्य राजपूत आदि मुसलमानी सेना की दाहिनी तरफ़ थे। देवीदास ने रुककर उनका सामना किया। दोनों दलों में बड़ी लड़ाई हुई पर देवीदास बच न सका। उसके घोड़े से गिरते ही शाही सैनिकों के एक गिरोह ने उसका ख़ात्मा कर दिया^१। इस पराजय के बाद दूसरे राजपूत सरदार गढ़ छोड़कर चले गये और मेड़ते पर शाही सेना का अधिकार हो गया^२। इसके बाद राव मालदेव ने मेड़ते पर कोई सेना

(१) बांकीदास के ऐतिहासिक बातों के संग्रह से पाया जाता है कि देवीदास को जाते देखकर जयमल ने शरफ़ुद्दीन से कहा कि यदि यह जीवित जोधपुर पहुँच गया तो मालदेव को चढ़ा लायेगा; अतएव इसको मार देना ही ठीक है। यह सज़ाह ठीक समझकर मिर्ज़ा आदि ने उसका पीछा किया। गांव सांतलियावास पहुँचने पर लड़ाई हुई, जिसमें देवीदास अपने बहुत से साथियों सहित काम आया (संख्या-१३०६)। उक्त पुस्तक में इस घटना का समय वि० सं० १६१८ चैत्र सुदि १२ (ई० स० १५६१ ता० ३१ मार्च) दिया है। “वीरविनोद” में वि० सं० १६१६ ज्येष्ठ शुक्र पक्ष में मिर्ज़ा का जयमल मेड़तिये के साथ मेड़ते पर भेजा जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१२)। वि० सं० १६१६ चैत्र सुदि ६ (ई० स० १५६२ ता० ११ मार्च) को बादशाह का सातवां राज्य वर्ष आरम्भ हुआ था। उसके आसपास ही किसी समय यह लड़ाई हुई होगी।

(२) अबुल्फ़जल; अकबर नामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २४८-२०। वीरविनोद, भाग २, पृ० ८१२-३।

वीरविनोद से पाया जाता है कि मेड़ता विजयकर मिर्ज़ा (शरफ़ुद्दीन) ने जयमल

न भेजी' ।

मालदेव को दूसरे देश जीतकर अपना राज्य विस्तार करने की जैसी इच्छा रहती थी, वैसे ही वह विजित प्रदेशों को सुदृढ़ करने में भी प्रयत्नशील रहता था । उसने पुराने दुर्गों आदि की मालदेव के बनवाये हुए स्थान मरम्मत और विस्तार कराने के साथ ही कितने एक नये दुर्ग भी बनवाये । जोधपुर के गढ़ के कोट के साथ उसने राणीसर का कोट और शहरपनाह बनवाया तथा नागोर में गढ़ का जीर्णोद्धार कराया । सातलमेर का कोट नष्टकर वहां के सामान से उसने वि० सं० १६०८ (ई० सं० १५५१) में पोकरण में पहले की धरी हुई नींव पर नया कोट बनवाया । मेड़ते के मालकोट का उल्लेख ऊपर आ चुका है । इसके अतिरिक्त सोजत, रायपुर, गूंदोच, भाद्राजूण, रीयां, सिवाणा, पीपाड़, नाडोल, कुण्डल (सिवाणा के पास), फलोधी और तुनाड़ा के कोट भी मालदेव के बनवाये हुए माने जाते हैं । अजमेर के गढ़ (तारागढ़) के पास के नूरचश्मे की तरफ के बुर्ज और कोट तथा पानी ऊपर चढ़ाने के रहट (पाघटे अर्थात् पैर से चलाये जानेवाले) भी उसी के समय के हैं^१ ।

वि० सं० १६१६ कार्तिक सुदि १२ (ई० सं० १५६२ ता० ७ नवम्बर)

को जोधपुर में राव मालदेव का स्वर्णवास हो गया^३ ।

को दे दिया । वि० सं० १६१६ (ई० सं० १५६२) आश्विन शुक्ल पक्ष में मिर्जा बागी हो गया, जिसपर बादशाह ने मेड़ता जयमल से छीनकर जगमाल को दे दिया । जयमल इसपर चित्तोढ़ चला गया, जहां महाराणा उदयसिंह ने उसे बदनोर की जागीर दी, जो अब तक उसके वंशजों के अधिकार में है (भाग २, पृ० ८१३) ।

(१) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १५०८-६ ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ७८-६ ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१३ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १५०८ में कार्तिक सुदि १५ दिया है, परन्तु संख्या २३५ में कार्तिक सुदि १२ ही दिया है ।

जोधपुर राज्य की ख्यात में रायमालदेव की २५ राणियों^१ के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके १२ पुत्र^२—राम^३, रायपाल, चन्द्रसेन, उदयसिंह, रायमल^४,

(१) मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में केवल २२ राणियों के नाम दिये हैं । इनमें से एक मारवाड़ में रूठीराणी के नाम से अब तक प्रसिद्ध है । वह जैसलमेर के रावल लूणकर्य की पुत्री उमादे थी, जिससे मालदेव का विवाह वि० सं० १५६३ (चैत्रादि १५६४) वैशाख वदि ४ (ई० स० १५३६ ता० ३० मार्च) को हुआ था । किसी कारण वश स्वामी से मनमुटाव हो जाने पर वह उससे प्रारम्भ से ही विरक्त रही और जब मालदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को निर्वासित किया तो वह भी उसके साथ केलवे चली गई तथा फिर कभी न लौटी । मालदेव की मृत्यु का समाचार पाकर वह वि० सं० १६१६ कार्तिक सुदि १५ (ई० स० १५६२ ता० १० नवंबर) को केलवे में सती हुई ।

मालदेव की एक अन्य राणी आली सरूपदे (सूजा राजावत की पुत्री) का बनवाया हुआ सरूपसागर तालाब मंडोवर के मार्ग के निकट अब तक विद्यमान है । अब उसे बहूजी का तालाब कहते हैं ।

(२) बांकीदास ने केवल ११ पुत्रों के नाम दिये हैं (ऐतिहासिक बातें; संख्या १५४) ।

(३) कछवाही लाखलदे का पुत्र । इसका कुछ वृत्तान्त ऊपर आ चुका है । इसका जन्म वि० सं० १५८८ (ई० स० १५३१) में हुआ था और इसके ७ पुत्र करण, कल्ला, केशवदास (इसकी ओलाद आमभरा [मालवा] में रही), नारायण, भोपत, कालू और पूरनमल हुए (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली) ।

(४) आली राणी हीरादे—माना आला की पुत्री—का पुत्र । इसके वंशज रायमल्लोत जोधा कहलाते हैं । इसके पांच पुत्र—कल्याण, प्रताप, बलभद्र, कान्हा और सावंतसिंह—हुए (बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७६ । मुंशी देवीप्रसाद द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली) ।

राशियां तथा सन्तति

भांण, रतनसी,^१ भोजराज,^२ विक्रमादित, पृथ्वीराज, आसकरण^३ और गोपाल^४ हुए^५ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव मालदेव के कई पुत्रियां^६ भी हुई थीं, जिनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे अनुसार हैं—

१—राजकंवरबाई—इसका विवाह बूंदी के हाड़ा सुरताण से हुआ ।

२—पोहपावती (पुष्पावती) बाई—इसका विवाह डूंगरपुर के रावल आसकरण के साथ हुआ ।

(१) आहादी लाखों (रतनादे) का पुत्र । इसको भाद्राजून की जागीर मिली थी । इसके सात पुत्र सुरताण, जैतसी, सुंदरदास, दलपत, शादूल, नाथा और पंचायण हुए । पंचायण के वंशज भाद्राजून में हैं और रतनोत जोधा कहलाते हैं (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६७८) ।

(२) रतनसी का सगा भाई । इसके चार पुत्र शिवदास, ईश्वरदास, कर्मसिंह और कान्हू हुए (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली) ।

(३) जादव राजबाई का पुत्र । वि० सं० १६०८ कार्तिक वदि १ को इसका जन्म हुआ था पर पांच वर्ष की अवस्था में ही इसका देहांत हो गया । (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली ।

(४) राणी सोनगरी का पुत्र । यह राव (मालदेव) से रूठकर ईंडर चला गया, जहां इसे चावड़ों ने मार डाला (मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली) ।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ ८०-३ । टोंड ने भी मालदेव के बारह पुत्र होना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६२६-६०) ।

बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६८२) के अनुसार मालदेव के एक पुत्र का नाम महेशदास था, जिसके वंशज क्रमशः गोइंददास, सबलसिंह, दुर्जनसिंह, सूरजमल, जालमसिंह, जवानसिंह और भारतसिंह हुए । उनके अधिकार में पाटोदी है ।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया है कि राव मालदेव की टीपू नाम की एक पातर से उत्पन्न रुक्मावतीबाई का विवाह बादशाह अकबर के साथ हुआ था (जि० १, पृ० ८३) । बांकीदास ने भी इसका उल्लेख किया है । उसके अनुसार अकबर के पास इसका डोला गया था । (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८४८ तथा ८२६) ।

(७) जि० १, पृ० ८०-३ ।

३—हांसबाई—अमरसर के कछवाहा लूणकरण के साथ व्याही गई ।

४—सजनांबाई—इसका विवाह जैसलमेर के रावल हरराज के साथ हुआ ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार रावल भीम का जन्म इसी से हुआ था । “तवारीख जैसलमेर” में इसका नाम हरखमदे दिया है और इससे भाखर-सिंह का जन्म होना लिखा है (पृ० ५३) । व्यास गोविन्द मधुवन-रचित “भट्टिवंश-प्रशस्ति” नामक काव्य में राठोड़ मालदेव की पुत्री हर्षमदेवी का विवाह रावल मालदेव के पुत्र रावल हरराज (हरिराज) से होना और उससे एक पुत्र का होना लिखा है, जिसका नाम नहीं दिया है । इसका कारण यही है कि उसमें क्रमशः राजाओं का ही वर्णन है ।

यं योधवप्राधिपमल्लभूपतिः

विश्वो.....धारकः ।

लक्ष्म्यंशपुत्र्या वरमात्मसंमतं

वाञ्छन् स दृष्ट्वा हरिराजमालभत् ॥६३॥

सा मल्लपुत्री नृपमल्लनंदनं

संप्राप्य भर्तारमर्निद्यविक्रमं

पूरणभिक्रामा भवदार्यसंमता

विष्णुं रमेवाथ शिवं नगात्मजा ॥६५॥

लेभे सुतं सा हरिराजभूपते

हर्षमदेवी दिवसाधिपद्युतिं ।

गौरी गिरीशादिव देवसैन्यं

शक्राज्जयंतं च शचीव शोभनं ॥६७॥

उक्त प्रशस्ति के श्लोक ११० से पाया जाता है कि उसकी रचना रावल कल्याण-मल्ल और उसके कुंवर मनोहरसिंह के समय में हुई थी । कल्याणमल्ल के समय के शिलालेख वि० सं० १६७२ से १६८३ (ई० स० १६१५ से १६२६) तक के और उसके पुत्र मनोहरसिंह का पहला शिलालेख वि० सं० १६८५ (ई० स० १६२८) का मिला है; अतएव उक्त प्रशस्ति की रचना वि० सं० १६८५ से कुछ वर्ष पहले ही हुई होगी ।

५—मानमतीबाई— बांधोगढ़ (रीवां) के वघेल वीरभद्र के साथ व्याही गई ।

६—इन्द्रावतीबाई— इसका विवाह कछवाहा राजा आसकरण के साथ हुआ ।

७—दुर्गावतीबाई— इसका विवाह आमेर के कछवाहा राजा भगवानदास के साथ हुआ ।

८—मीरांबाई— इसका विवाह घागड़ में हुआ ।

९—बाल्हबाई— इसका विवाह उमरकोट के सोढ़ा रायसल के साथ हुआ ।

राव मालदेव अपने समय का प्रतापी और शक्तिशाली शासक था ।

अयुल्फज़ल उसके विषय में लिखता है—“वह भारत के शक्तिशाली राजाओं में से एक था” । उसके पूर्व मारवाड़-राज्य

राव मालदेव का व्यक्तित्व

की स्थिति सामान्य थी, जिसको उसने अपने बाहु-बल से अत्यधिक बढ़ाया । वह वीर होने के साथ

ही एक महत्वाकांक्षी पुरुष था । वह आस-पास के स्थानों को दबाकर एक विशाल राज्य की स्थापना करना चाहता था । अतएव केवल मारवाड़ के सरदारों को ही अधीन बनाकर उसे सन्तोष न हुआ, अपितु उसने कुछ दिनों के लिए बीकानेर का बड़ा राज्य भी हस्तगत कर लिया । वह अपनी धुन का पक्का और मिज़ाज का जिद्दी था । यही कारण है कि सिंहासनारुढ़ होने पर उसने मेड़ते के स्वामी को निकालकर अपने पुराने वैर का बदला लिया । जहां ऐसे उसके राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा, वहां इससे हानि भी कम न हुई । बीकानेर और मेड़ते के स्वामियों ने उसकी बढ़ती हुई शक्ति का नाश करने तथा अपने गये हुए राज्य को वापस लेने के लिए शेरशाह सूरी की शरण ली, जो उस समय हुमायूँ को भगाकर दिल्ली का बादशाह बन गया था । इधर हुमायूँ के पतन से लाभ उठाने के लिए, उसे सहायता का बचन देकर मालदेव ने अपने राज्य के भीतर बुलाया, परन्तु चतुर शेरशाह की सावधानी और समधानुकूल कूट चाल के कारण उसका सारा मन्सूबा खाक में मिल गया । इसके कुछ ही दिनों बाद शेरशाह की जोधपुर पर चढ़ाई हुई । बीकानेर और मेड़ते के स्वामियों को साथ लेकर

वह सेना सहित अजमेर के दक्षिण तक आया तो सही, पर मालदेव की शक्ति से भलीभांति परिचित होने के कारण उसकी एकाएक उसपर हमला करने की हिम्मत न हुई। फ़रिश्ता लिखता है कि—“उस समय शेर-शाह को लड़ाई से मुंह मोड़ना ही ठीक जान पड़ता था।” पीछे से भी उसने शत्रु पर आक्रमण करने की हानियां समझकर कूटनीति से काम लिया। उसने जाली पत्रों के द्वारा मालदेव के मन में सरदारों के प्रति सन्देह उत्पन्न करा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि शत्रुकी मालदेव सरदारों के बहुत कुछ विश्वास दिलाने पर भी युद्ध करने को राजामन्द न हुआ और बिना लड़े ही भाग गया। फल वही हुआ जो ऐसी दशा में होना चाहिये था। मालदेव को राज्य से हाथ धोकर पहाड़ों की शरण लेनी पड़ी। यह घटना एक प्रकार से उसकी मानसिक दुर्बलता प्रकट करती है। इसी दुर्बलता के कारण उसे एक बार और भी मेड़ते के जयमल से हारकर भागना पड़ा था। इतना होने पर भी वह हताश होना न जानता था। शेरशाह की जीवितावस्था में अपने गये हुए राज्य पर पीछा अधिकार करना निष्फल ही होता, अतएव वह धैर्य के साथ पहाड़ों में रहकर अवसर की बाट देखता रहा। शेरशाह की जीवितावस्था में अपने राज्य पर पुनः अधिकार करने की उसकी हिम्मत न पड़ी, परन्तु उस(शेरशाह की मृत्यु होते ही तत्जनित अव्यवस्था से लाभ उठाकर उसने अपने राज्य पर फिर अधिकार कर लिया। फिर तो उसने मुसलमानों से छेड़-छाड़ करना ही छोड़ दिया। अकबर के राज्य-समय मालदेव के जीवन-काल में ही दो बार उसकी सेनायें क्रमशः जैतारण और मेड़ते पर आईं, परन्तु एक बार भी मालदेव ने उनका अवरोध न किया। शेरशाह की चढ़ाई के बाद से ही उसे मुसलमानों के उत्कर्ष का आभास हो गया था। अकेले उनका सामना करना उसके सामर्थ्य के बाहर की बात थी। अन्य पड़ोसी राजाओं से, जिनसे उसे ऐसे अवसरों पर सहायता मिल सकती थी, वह पहले ही बिगाड़ कर बैठा था।

राव मालदेव किलों को राज्य-रक्षा का साधन मानता था अतः जहां-जहां वह विजय करता वहां वह मजबूत किले बनवाता और अपने चुने

हुए राजपूत वीरों को वहां रखता था। अजमेर के तारागढ़ दुर्ग पर पानी के अभाव के कारण युद्ध के समय शत्रु सेना का शीघ्रता से अधिकार हो जाता था। अतएव उक्त दुर्ग को उसने सुदृढ़ कर, इस अभाव को मिटाने के लिए पहाड़ के नीचे बहनेवाले नूर चश्मे से झोजों और रहटों के द्वारा जल ऊपर पहुंचाने का बन्दोबस्त किया। उसका यह कार्य किले की रक्षा और आवश्यकता की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण था।

राव मालदेव में जहां इतने गुण थे, वहां दुर्गुणों का भी अभाव न था। उसमें विवेचनात्मक बुद्धि और संघटन-शक्ति की पूर्णतया कमी थी। वह आगा-पीछा सोचे बिना ही कार्य कर बैठता था, जिसका दुःखद परिणाम उसको अनेकों बार भोगना पड़ा। लोकप्रिय न होने के साथही उसमें राजनीति की योग्यता भी यथेष्ट न थी। शेरशाह को परास्त करने का अवसर गिरी में उपस्थित हुआ था, परन्तु अपनी शंकाशीलता के कारण वह उससे लाभ न उठा सका और शेरशाह के जाल में फंस गया। यदि उसमें उपयुक्त दुर्बलतायें न होतीं तो वह भारत में हिन्दू-राज्य की स्थापना कर सकता था। वह मारवाड़ का पहला ही प्रतापी राजा था। उसने अपने बाहुबल से बड़ा राज्य क्रायम किया, परन्तु उसके नाश का बीजारोपण भी वह अपने हाथ से ही कर गया। अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य से निर्वासित कर उसने छोटी राणी के बहकाने में आकर उसके पुत्र चन्द्रसेन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया, जो उस (मालदेव) का तीसरा पुत्र था। इस अन्यायोचित कार्य का फल यह हुआ कि मालदेव का देहान्त होने के कुछ दिनों बाद ही बादशाह अकबर ने जोधपुर भी छीन लिया, जिससे विवश होकर उस (मालदेव) के पुत्रों को बादशाह के आश्रय में रहना पड़ा।

इसके साथ ही अपने पिता को मारकर उसने एक ऐसा कलंक अपने चरित्र में लगाया, जो इतिहास-जगत् में सदा अमिट रहेगा।

चन्द्रसेन

राव चन्द्रसेन का जन्म वि० सं० १५६८ श्रावण सुदि ८ (ई० सं० १५४१ ता० ३० जुलाई) को हुआ था^१। ऊपर लिखा जा चुका है कि ज्येष्ठ पुत्र राम था, पर उससे अप्रसन्न होकर मालदेव ने उसे राज्य से निर्वासित कर दिया, जिसपर वह केलवा (मेवाड़) में जाकर रहने लगा^२। उससे छोटा उदयसिंह था, जिसे मालदेव ने फलोधी की जागीर दी और उससे भी छोटे चन्द्रसेन को उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया था^३। अतएव पिता का देहांत होने पर

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८२। बांकीदास; ऐतिहासिक खातें; संख्या ३६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२३। चंडू के यहां के जन्म-पत्रियों के संग्रह में श्रावण वदि ८ दिया है, परंतु साथ ही उसी लेखक ने शुद्ध कर सुदि ८ लिख दिया है। उसमें दी हुई कुंडली के अनुसार चन्द्रसेन का जन्म अनुराधा नक्षत्र में होने के कारण चन्द्रमा वृश्चिक का है और सूर्य कर्क का है, जो श्रावण वदि ८ को नहीं, किन्तु श्रावण सुदि ८ को आते हैं।

(२) देखो ऊपर पृ० ३१०-११।

(३) इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—“(भटियाणी डमादे के चले जाने पर) जोधपुर में झाली स्वरूपदे का प्रभुत्व बढ़ गया। उसका बड़ा पुत्र उदयसिंह था पर वह स्वभाव का बड़ा उग्र था। वह अपनी माता से मिलता-जुलता न था, जिससे वह उससे अप्रसन्न रहती थी। गढ़ पर इन दोनों के लिए नये महलों का निर्माण हो रहा था। उदयसिंह का महल पहले तैयार हो जाने के कारण, उसकी माता ने वह महल उससे मांगा। इसपर उसने उत्तर दिया कि आप तो जोधपुर के स्वामी की पटराणी हैं, आपका ही हुक्म चलता है; आप मुझसे महल क्या मांगती हैं। इसपर स्वरूपदे उससे नाराज़ हो गई और उसने राव से कहकर अपने दूसरे पुत्र चन्द्रसेन को युवराज नियत कराया। राव मालदेव ने उदयसिंह को फलोधी की जागीर देकर उधर भेज दिया (जि० १, पृ० ११४-५)। ” “वीरविनोद” में केवल इतना लिखा है कि किसी नाराज़गी के कारण झाली राणी (स्वरूपदे) ने उदयसिंह को निकलवाकर चन्द्रसेन को युवराज बनाया (भाग २, पृ० ८१३)।

वि० सं० १६१६ पौष सुदि ६ (ई० सं० १५६२ ता० ३१ दिसंबर) गुरुवार को वह (चन्द्रसेन) सिंहासन पर बैठा^१ ।

राव चन्द्रसेन अपने एक चाकर से अप्रसन्न रहता था, जिससे वह (चाकर) राठोड़ जैतमाल (जैसावत) के डेरे पर चला गया । चन्द्रसेन ने उसे वहां से पकड़वाकर मंगवा लिया । जैतमाल ने अपने प्रधान को भेजकर उससे कहलाया कि चाकर का अपराध क्षमाकर उसे प्राण-दान दिया जाय । राव ने प्रधान से तो कह दिया कि मैं जैतमाल की इच्छानुसार ही करूंगा, परन्तु उसके प्रस्थान करते ही उसने चाकर को मरवा डाला । उसका ऐसा अन्यायपूर्ण कार्य देखकर राठोड़ पृथ्वीराज तथा अन्य सरदार, जो जोधपुर में थे, उससे चिढ़ गये और उन्होंने राम, उदयसिंह तथा राय-मल्ल को लिखा कि तुम वहां बैठे क्या कर रहे हो^२ ।

इसपर राम केलवे से जाकर सोजत में बिगाड़ करने लगा; रायमल दुनाड़े में लड़ा और उदयसिंह ने गांगाणी के पास लांगड़ गांव में लूट-मार मचाई । इसकी खबर लगने पर चन्द्रसेन ने उनके विरुद्ध सेना भेजी । राम और रायमल तो भाग गये पर उदयसिंह से गांव लोहावट में चन्द्रसेन की

राम आदि का राज्य में
बिगाड़ करना

इससे यह स्पष्ट है कि राव मालदेव अपनी भाली राणी के कथन पर चलता था और उसीके अनुरोध पर उसने बड़े लड़कों के रहते हुए भी अपने तीसरे पुत्र चन्द्रसेन को युवराज नियत किया था ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३६४ ।

आगे चलकर जोधपुर राज्य की ख्यात से यह पाया जाता है कि अपने पिता की मृत्यु के समय चन्द्रसेन सिवाणे में था, जहां से आकर वह जोधपुर की गद्दी पर बैठा । उस समय उसकी माता भाली स्वरूपदे सती होना चाहती थी, परन्तु चन्द्रसेन ने यह कहकर उसे सती होने से रोक दिया कि पहले भाइयों को तो समझा दो । इसपर वह भाइयों को समझा बुझाकर टीका चन्द्रसेन को दिलाने के बाद सती हुई (जि० १, पृ० ११५) ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५ ।

लड़ाई हुई। वहां उदयसिंह के हाथ की बरछी चन्द्रसेन के और रावल मेघराज (रावल मल्लीनाथ का वंशज) की बरछी उदयसिंह के लगी, जिससे वह घोड़े पर से नीचे आ गिरा। तब साहाणी ईंदा खीची ने अपने घोड़े पर चढ़ाकर उसे वहां से निकाल दिया। इस लड़ाई में उदयसिंह की तरफ के राठोड़ जोगा सादावत मंडणोत, राठोड़ ईसरदास अमरावत मंडला, राठोड़ हींगोला नेतावत पाता, राठोड़ कल्याणदास मेहशोत कर्मसीहोत, भाटी वैरसल सांक्रोत, भाटी जयमल तिलोकसी परबतोत, मोकल गंगादासोत गागरिया राठोड़, खींधराज आपमलोत गागरिया राठोड़ आदि प्रमुख सरदार मारे गये। राव चन्द्रसेन की तरफ का राठोड़ लक्ष्मण भीमोत, जो अरडकमल चूंडावत का पौत्र था, इसी लड़ाई में काम आया^१।

उदयसिंह ने फलोधी के गढ़ में जाकर युद्ध की तैयारियां कीं। इस पर राव चन्द्रसेन सेना लेकर वहां गया। इस लड़ाई में दोनों तरफ की हानि ही होती, अतएव राठोड़ जन्तू डूंगरसीहोत, राठोड़ रावल मेघराज प्रभृति प्रतिष्ठित सरदारों ने समझा बुझाकर चन्द्रसेन को पीछा लौटा दिया^२।

चन्द्रसेन की उदयसिंह पर चढ़ाई

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

‘सरदारों के कहने से राम, बादशाह अकबर के पास गया और वहां से शाही सेना अपनी सहायतार्थ ले आया, जिसने (आवणादि) वि० सं० १६२० (चैत्रादि १६२१) ज्येष्ठ सुदि १२ (ई० सं० १५६४ ता० २२ मई) को जोधपुर पर घेरा डाला। सत्रह दिन तक घेरा रहने पर सरदारों ने बातचीत कर राम को सोजत का परगना दिला दिया, जिसपर शाही सेना

शाही सेना का जोधपुर पर कब्जा करना

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८५-८६। बांकीदास ने इस घटना का वर्णन तो इसी प्रकार किया है पर इसका संवत् १६१८ दिया है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १२१) जो ठीक नहीं है। यह घटना चन्द्रसेन की गद्दीनशीनी के बाद की है, अतएव वि० सं० १६१६ के पौष मास के बाद हुई होगी।

(२) वही; जि० १, पृ० ८६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ४२६।

वापस चली गई। उसी वर्ष फाल्गुन वदि १ (ई० सं० १५६५ ता० १७ जनवरी) को फिर शाही सेना जोधपुर आई, परन्तु चार लाख पीगोजे (फ्रीगोजे) देने की शर्त कर राव चन्द्रसेन ने शाही सेनाध्यक्ष से संधि कर ली^१। (श्रावणादि) वि० सं० १६२१ (चैत्रादि १६२२=ई० सं० १५६५) में हसनकुली खां की अध्यक्षता में तीसरी बार शाही सेना जोधपुर आई। चैत्र सुदि १२ (ता० १३ मार्च) को किला घिरजाने पर राव चन्द्रसेन, सोनगरा जसवन्त (मानसिंहोत), राठोड़ पृथ्वीराज (कूपावत) आदि कितने ही सरदारों तथा सेना सहित मुगल सेना के मुक्ताबले के लिए गया, परन्तु शत्रु की प्रबलता देखकर वह फिर किले के भीतर चला गया। प्रायः डेढ़ मास के घेरे के बाद ज्येष्ठ सुदि ३ (ता० २ मई) को मुसलमानों ने राणीसर के कोट पर हमलाकर वहां अधिकार कर लिया। उधर गढ़ में अन्न-जल का कष्ट दिन-दिन बढ़ रहा था, इससे वि० सं० १६२२ मार्गशीर्ष सुदि १० (ई० सं० १५६५ ता० २ दिसंबर) को राव चन्द्रसेन गढ़ का परित्याग कर भाद्राजूण चला गया। ऐसी दशा में हसनकुलीखां का आक्रमण होने पर गढ़ में रक्खे हुए राठोड़ धैरसल (पातलोन), राठोड़ राणा (वीरमोत), राठोड़ सूर (गांगावत), भाटी जोगा (आसावत), भाटी गांगा (नर्बावत), भाटी जैमल (आसावत), भाटी आसा (जोधावत), ईंदा रासा (जोगावत) आदि सरदार मारे गये और वहां मुगल सेना का अधिकार हो गया^२।

इसके विपरीत 'अकबर नामे' में बादशाह अकबर के आठवें राज्य वर्ष (हि० सन् १७०=वि० सं० १६२०=ई० सं० १५६३) के हाल में लिखा है—“मिर्जा शरफुद्दीन हुसेन^३ की तरफ से छुट्टी पाकर बादशाह ने जोधपुर

(१) बांकीदास-कृत 'ऐतिहासिक बातें' नामक ग्रन्थ से पाया जाता है कि इस अवसर पर राम ने हसनकुलीखां की सहायता से पाली पर आक्रमण किया, जहां का सोनगरा मानसिंह (अलैराजोत) भागकर उदयपुर चला गया (संख्या ४२७)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ८६-७।

(३) यह तुर्किस्तान के एक बड़े फकीर ख्वाजा शाकिर नासिरुद्दीन अब्दुल्ला के

विजय करने की तरफ ध्यान दिया, जो उन दिनों वहां का सब से मजबूत क़िला था। यह क़िला मालदेव की, जो भारत के बड़े राजाओं में से एक था, राजधानी था। उस (मालदेव) के मरने पर उसका छोटा पुत्र चन्द्रसेन वहां का स्वामी हुआ। अफ़सरों के उसपर चढ़ाई करने पर मालदेव का ज्येष्ठ पुत्र राम उनसे जा मिला, जो पीछे से शाही सेवा में प्रविष्ट हो गया। बादशाह ने मुइनुद्दीन अहमदख़ां फ़रख़ूदी और मुज़फ़्फ़र मोग़ल आदि को हुसेन कुलीख़ां की सहायतार्थ भेज दिया। फल स्वरूप थोड़े समय में ही क़िला फतह हो गया।”

उपर्युक्त दोनों कथनों में फ़ारसी तवारीख़ का ही कथन अधिक विश्वसनीय प्रतीत होता है, क्योंकि यदि हम ख़्यात के कथन को महत्व दें तो यह मानना पड़ेगा कि तीन बार शाही सेना जोधपुर पर गई और तीसरी बार भी लगभग दस मास तक घेरा रहने पर चन्द्रसेन ने क़िले का परित्याग किया। उस समय की परिस्थिति को देखते हुए दस मास तक घेरा रहना असंभव प्रतीत होता है। साथ ही तीन बार शाही सेना का जोधपुर पर जाना भी कपोल कल्पना ही हैं, क्योंकि फ़ारसी तवारीख़ों से इसकी पुष्टि नहीं होती। इससे यही मानना पड़ेगा कि एक बार ही

वंश के इबाज़ा मोईन का पुत्र और हुमायूँ का दामाद था यह अजमेर का हाकिम नियत किया गया था, पर हि० सं० १६६६ (वि० सं० १६१८-१९ = ई० सं० १५६१-६२) में इसने नागोर में विद्रोह किया और अकबर की सेना को परास्त कर दिल्ली की ओर अफ़सर हुआ, पर अन्त में यह शाही सेना द्वारा भगा दिया गया।

(१) यह अकबर का पांच हज़ारी मनसबदार था। मुनीमख़ा की मृत्यु के बाद यह वि० सं० १६३३ (ई० सं० १५७६) के लगभग बंगाल का शासक नियुक्त हुआ। इसके दो वर्ष बाद इसकी ट.डा में मृत्यु हुई। बादशाह ने इसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर इसे ‘खानेजहां’ का ख़िताब दिया था।

(२) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा— बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ३०५। उक्त ग्रन्थ से पाया जाता है कि इसके पूर्व ही हुसेनकुलीख़ां ने मिर्जा शर्फ़ुद्दीन हुसेन को भगा दिया था, और उसके नियत किये हुए मेरुता के हाकिम जयमल को हटकर वहां का अधिकार जगमाल को दे दिया था (जि० २, पृ० ३०५)।

शाही सेना की जोधपुर पर चढ़ाई हुई थी और वहां अकबर के आठवें राज्य-वर्ष में किसी समय बादशाह का अधिकार हुआ होगा।

जोधपुर छूटने पर राव चन्द्रसेन की आर्थिक स्थिति बिगड़ने लगी और वह अपने रत्न आदि बेचकर अपना तथा अपने साथ के राजपूतों का खर्च चलाने लगा। उन्हीं दिनों उसने राव मालदेव का संग्रह किया हुआ एक लाल, जिसका मूल्य साठ हजार रुपये कूँता गया था, मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह को बेचा था^१।

अपने राज्य के पन्द्रहवें वर्ष में हि० सं० १७८ ता० ८ रबीउस्सानी (वि० सं० १६२७ द्वितीय भाद्रपद सुदि १० = ई० सं० १५७० ता० ६ सित-
बर) को अकबर ने ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की
चन्द्रसेन का अकबर की
सेवा में जाना
ज़ियारत के लिए अजमेर की तरफ़ प्रस्थान किया।
बारह दिन फ़तहपुर में रहकर वह अजमेर पहुँचा।
शुक्रवार ता० ४ जमादिउस्सानी (ता० ३ नवंबर) को वहां से चलकर वह
ता० १६ जमादिउस्सानी को नागौर पहुँचा, जहां उसने एक तालाब अपने

(१) वीरविनोद: भाग २, पृ० २३८ टि० १। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीर-नामा; पृ० २००। राजर्स और बेवरिज, तुजुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी अनुवाद); जि० १, पृ० २८५-८६।

यह लाल पीछे से मुग़लों के साथ सन्धि स्थापित होने के समय महाराणा अमरसिंह ने शाहज़ादे खुर्रम को नज़र किया। शाहज़ादे ने उसे बादशाह को नज़र किया तब उसपर “बसुस्तान खुर्रम दर हीने मुलाज़मत राना अमरसिंह पेशकश नमूद” (राणा अमरसिंह ने अधीनता स्वीकार करते समय यह लाल सुल्तान खुर्रम को नज़र किया) लेख खुदवाया गया। यही लाल फिर वि० सं० १६३८ (ई० सं० १८८१) में किसी सौदागर के द्वारा हिन्दुस्तान में बिकने आया, जिसका वृत्तान्त उस समय के अख़बारों में भी प्रकाशित हुआ था।

वि० सं० १६२० के आस-पास चन्द्रसेन से जोधपुर छूटा था और वि० सं० १६२८ (ई० सं० १५७२) में महाराणा उदयसिंह का देहांत हुआ, अतएव यह लाल उक्त दोनों संवत्तों के बीच किसी समय बिका होगा।

सैनिकों से खुदाकर उसका नाम “शुक्र तालाब” रक्खा^१। बादशाह के वहां रहते समय चन्द्रसेन ने उसके पास उपस्थित होकर उसकी सेवा और अधीनता स्वीकार की^२। इस अवसर पर फलोधी से चन्द्रसेन का बड़ा भाई उदयसिंह भी बादशाह की सेवा में चला गया था^३।

उसी वर्ष बादशाह ने उदयसिंह को समावली पर अधिकार करने के लिए भेजा, जहां पहुंचकर उस (उदयसिंह) ने वहां के गूजरो को निकालकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया^४।

बादशाह की आज्ञानुसार
उदयसिंह का समावली पर
अधिकार करना

इसके कुछ समय बाद मुसलमानी सेना भाद्राजूण पर गई। वि० सं० १६२७ फाल्गुन वदि अमावास्या (ई० सं० १५७१ ता० २४ फरवरी) को चन्द्रसेन ने कल्लाखां से बातकर भाद्राजूण का परित्याग कर दिया और नौ लाख फीरोज़े देना ठहराकर मुसलमानी सेना को वापस लौटा दिया^५।

चन्द्रसेन का भाद्राजूण
छोड़ना

(१) अबुलक़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१८।
अल्बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़—ब्लॉकमैन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७।

(२) मुंशी मुहम्मद सैय्यद अहमद; उमराए हनुद; पृ० ४८। अबुलक़ज़ल;
अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० ५१८। बदायूनी; मुन्तख़बुत्तवारीख़;
ब्लॉकमैन-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १३७। मअसिरुल् उमरा (हिन्दी); पृ० ४५२।

(३) चन्द्रसेन अपना गया हुआ राज्य पीछा प्राप्त करने के लिए बादशाह के पास उपस्थित हुआ था और इस अवसर पर उसका पुत्र रायसिंह भी उसके साथ था। वहां से भी जब उसने राज्य मिलने की कोई आशा न देखी तो रायसिंह को बादशाह के पास छोड़कर वह भाद्राजूण लौट गया। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी उसका अपने पुत्र रायसिंह को शाही सेवा में छोड़कर भाद्राजूण जाना लिखा है (जि० १, पृ० ८८)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८८। फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ८९। फ़ारसी तवारीख़ों में इसका उल्लेख नहीं है।

अकबर के सत्रहवें राज्यवर्ष (वि० सं० १६२६ = ई० सं० १५७२) में गुजरात में बड़ी अजयवस्था फैल गई। उधर मेवाड़ के महाराणा कीका (प्रताप) का आतंक भी बढ़ रहा था। विद्रोह की बीकानेर के रायसिंह की जोधपुर में नियुक्ति अग्नि का प्रारम्भ में ही शान्त करना अत्यन्त आवश्यक था, अतएव बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर का शासक बनाकर बादशाह ने गुजरात की तरफ भेजा ताकि राणा गुजरात के मार्ग को रोककर हानि न पहुंचा सके।

(१) तबकात-इ-अकबरी—इलियट् ; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ५, पृ० ३४१। अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ८। अलबदायूनी; मुंतख़-बुत्तवारीस्; जि० २, पृ० १४४। ब्रजरत्नदास; मन्नासिकुल उमरा (हिन्दी); पृ० ३५५। जोधपुर राज्य की ख्यात में एक स्थल पर वि० सं० १६२६ में (जि० १, पृ० ८८) तथा आगे चलकर दूसरे स्थल पर वि० सं० १६३१ में बीकानेर के रायसिंह को जोधपुर मिलना लिखा है (जि० १, पृ० ११८)। इस सम्बन्ध में फ़ारसी तवारीखों में दिया हुआ समय ही अधिक विश्वसनीय है।

जोधपुर पर रायसिंह का अधिकार कब तक रहा, यह फ़ारसी तवारीखों से स्पष्ट नहीं होता। दयालदास की ख्यात में लिखा है कि वहां उसका तीन वर्ष तक अधिकार रहा और वहां रहते समय उसने ब्राह्मणों, चारणों, भाटों आदि को बहुत से गांव दान में दिये (जि० २, पत्र ३०)। ख्यातों में दिये हुए सेवत् ठीक न होने से समय के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा नहीं जा सकता।

उक्त (दयालदास की) ख्यात में यह भी लिखा है—‘उदयसिंह (राव मालदेव का कुंवर) ने महाराजा रायसिंह से मिलकर कहा—“जोधपुर सदा आपके पास नहीं रहेगा। आप भाई हैं और बड़े हैं तथा बादशाह आपका कहना मानता है। अपने पूर्वजों का बांधा हुआ राज्य अभी तो अपना ही है, पर संभव है पीछे से बादशाह के ख़ालसे में रह जाय और अपने हाथ से चला जाय।” महाराजा ने जाना कि बात ठीक है, अतएव उसने बादशाह के पास अर्ज़ी भेजकर वि० सं० १६३६ (ई० सं० १५८२) में जोधपुर का मनसब उदयसिंह के नाम करा उसको “राजा” का ख़िताब दिला दिया,’ (जि० २, पत्र ३०), परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं है। महाराजा रायसिंह के वि० सं० १६४४ माघ वदि ५ (ई० सं० १५८८ ता० ८ जनवरी) के ताम्रपत्र से पाया जाता है कि उसने चारण माला माहू को राठवार नागोर

बादशाह अकबर ने गुजरात के अन्तिम सुलतान मुज़फ़्फ़रशाह (तीसरा) से गुजरात को फ़तह कर उसे मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया

था । इसी बीच मिर्ज़ा बन्धुओं ने, जो बादशाह के मिर्ज़ा बन्धुओं के उपद्रव के दमन में राग का साथ रहना

रिश्तेदार लगते थे^१, बागी होकर दिल्ली पर चढ़ाई की, लेकिन वहां हराये जाने पर वे वहां से मालवे गये और वहां के स्वामी बन बैठे । अनन्तर उन्होंने गुजरात में उपद्रव करना आरम्भ किया । मालवे से जाकर इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा^२ ने बड़ोदा, मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा^३ ने सूरत तथा शाह मिर्ज़ा^४ ने चांपानेर पर अधिकार कर लिया । बादशाह ने उन तीनों पर अलग-अलग सेनाएं भेजीं । जब बादशाह को यह ज्ञात हुआ कि इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा ने भड़ोच के क़िले में रुस्तम-खां रुमी^५ को मार डाला है और वह विद्रोह करने पर कटिबद्ध है, तब उसने आगे गई हुई फ़ौज को वापस बुला लिया और आप सरनाल (तत्कालीन अहमदाबाद की सरकार के अन्तर्गत) की ओर अग्रसर हुआ, जहां उसे इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा के होने का पता लगा था । शाही सेना के आक्रमण से इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा की फ़ौज के पैर उखड़ गये और वह भाग गई । वहां से भागकर वह ईडर में अपने भाइयों के पास पहुंचा, पर

की पट्टी का गांव भदहरा सासण में दिया था (मूल ताम्रपत्र के फ़ोटो से) । इससे स्पष्ट है कि रायसिंह का अधिकार नागौर और उसके आस-पास तो बहुत वर्षों तक रहा था ।

(१) ये भी तैमूर के वंश में थे । इनकी जागीर में संभल और आजमपुर थे ।

(२) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा तैमूर के वंशज मुहम्मद सुलतान मिर्ज़ा का पुत्र और कामरां का दामाद था । अपने भाइयों के साथ जब वह विद्रोही हो गया तो हि० स० १७५ (वि० सं० १६२४ = ई० स० १५६७) में बादशाह अकबर के हुक्म से संभल के क़िले में कैद कर दिया गया, पर कुछ ही दिनों बाद वह वहां से निकल गया । हि० स० १८१ (वि० सं० १६३० = ई० स० १५७३) में वह फिर शाही सेना-द्वारा बन्दी बना लिया गया और मइसूसवां द्वारा मारा गया ।

(३) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का बड़ा भाई ।

(४) इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा का पांचवां भाई ।

(५) शाही अफ़सर, गुजरात में भड़ोच के क़िले का हाकिम ।

उनसे कहा-सुनी हो जाने के कारण वह अपने भाई मसऊद' को साथ लेकर जालोर होता हुआ नागोर पहुंचा। खानेकलां' का पुत्र फर्रुख्खान उन दिनों वहां का शासक था। इब्राहीम हुसेन मिर्जा ने उसे घेर लिया और निकट था कि नागोर पर उसका क़ब्ज़ा हो जाता, परन्तु ठीक समय पर रायसिंह को जोधपुर में इसकी खबर मिल गई, जिससे उरुने फ़ौज के साथ उधर प्रस्थान किया। इस अवसर पर मीरक कोलात्री, मुहम्मद-हुसेन शेख, राय राम (मालदेव का पुत्र, जिसकी जागीर सोजत में थी) आदि भी उसके साथ थे। जब इब्राहीम हुसेन मिर्जा को उनके आने की खबर लगी तो वह वहां से घेरा उठाकर भाग गया। ता० ३ रमज़ान हि० स० ८८१ (वि० स० १६३० पौष सुदि ४ = ई० स० १५७३ ता० २८ दिसम्बर) सोमवार को रायसिंह नागोर पहुंचा, जहां फर्रुख्खान भी उससे आकर मिल गया। अन्य सरदारों का इरादा तो इब्राहीम हुसेन मिर्जा का पीछा करने का न था, परन्तु रायसिंह के ज़ोर देने पर उसका पीछा किया गया और कठौली नामक स्थान में वह शाही सेना-द्वारा घेर लिया गया। वहां की लड़ाई में मुगलसेना की स्थिति डांवाडोल हो रही थी कि रायसिंह, जो पीछे था, पहुंच गया, जिससे मिर्जा भागकर पंजाब की तरफ़ चला गया। इस लड़ाई में राय राम दाहिनी अनी में था और उसने बड़ी वीरता दिखलाई^३।

भिणाय (अजमेर) वालों का मानना है कि चन्द्रसेन ने अजमेर पहुंचकर, भिणाय के आस-पास की भूमि का बिगाड़ करनेवाले भीलों के

(१) मसऊद बाद में ग्वालियर के क़िले में कैद कर दिया गया था, जहां कुछ दिनों बाद उसकी मृत्यु हो गई।

(२) इसका पूरा नाम मीरमुहम्मद था। इसने कामरां और हुमायूं दोनों की सेवा बजाई थी और अकबर के समय में उच्च पद पर पहुंच गया था। हि० स० ६८३ (वि० स० १६३२ = ई० स० १५७५) में इसकी मृत्यु हुई।

(३) अकबरनामा—बेघरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२-२१। तबक़ात-ह-अकबरी—इलियट्; हिन्दी ऑफ़ इंडिया; जि० २, पृ० ३२४। बदायूनी; मुंतख़बुस-सा-रीख़—लो-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १५३-४। अजरलदास; मआसिरुल् उमरा (हिंदी); पृ० ३२५। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ५२।

राव चन्द्रमेन और
मादलिया भील

सरदार मादलिया को अपने पास बुलाया और नशे में शाकिल कर मार डाला तथा उसके साथियों को तितर-बितर कर दिया। इस सेवा के एवज़ में बादशाह अकबर ने भिणाय तथा सात और परगने चन्द्रसेन को जागीर में दिये। इस जागीर में चौरासी गांव शामिल थे, जो चन्द्रसेन की चौथी पीढ़ी में उसके वंश के उदयभाण एवं अखैराज में विभाजित हुए, जिन्होंने क्रमशः भिणाय तथा देवलिया के ठिकाने स्थापित किये।

उपर्युक्त सारा कथन निराधार है। प्रथमतः चन्द्रसेन की शक्ति उस समय बड़ी क्षीण हो रही थी, जिससे उसका अजमेर की तरफ़ जाना असंभव सा प्रतीत होता है। दूसरे, अकबर की उसकी तरफ़ सदैव नाराज़गी ही रही, जिससे उसका चन्द्रसेन को भिणाय तथा सात परगने जागीर में देना कदापि मानने में नहीं आ सकता।

१६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६३१ = ई० सं० १५७४) के आरंभ में जब बादशाह अजमेर में था, उसे चन्द्रसेन के उपद्रव करने का समाचार मिला। चन्द्रसेन ने उन दिनों अपने केंद्र सिवाणा को और भी दृढ़ कर लिया था। बादशाह ने तत्काल रायसिंह (बीकानेरवाला) को शाहकुलीख़ां महारम^२, शिमालख़ां^३, केशोदास (मेड़ते के जयमल का पुत्र), जगताराम

चन्द्रमेन पर शर्ही मेना
की चढ़ाई

(१) दि रुलिंग प्रिंसिज़, चीफ़्स एण्ड लीडिंग पर्सनेजिज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर; पृ० १६५-६ (ई० सं० १९३१ का संस्करण)।

सैयद गुलाब्रमिया-कृत “तारीख़ पालनपुर” (उर्दू) में मादलिया भील को चन्द्रसेन का हिमायती लिखा है। उक्त पुस्तक के अनुसार राव चन्द्रसेन के पौत्र कर्मसेन ने मादलिया को मारकर भिणाय पर कब्ज़ा किया था (पृ० १२८ का टिप्पण)।

(२) अकबर का एक प्रसिद्ध पांचहज़ारी मनसबदार । वि० सं० १६५७ (ई० सं० १६००) में आगरे में इसका देहांत हुआ ।

(३) यह अकबर का गुलाम और शस्त्रवाहक था। बाद में एक हज़ारी मनसबदार बनाया गया ।

(धर्मचन्द्र का पुत्र) आदि सरदारों के साथ चन्द्रसेन को दंड देने के लिए भेजा। बादशाह का आदेश था कि यदि राव चन्द्रसेन समझ जाय और अपने किये पर शर्मिन्दा हो तो उसे शाही मेहरबानियों का विश्वास दिलाया जाय। उस समय सोजत पर कल्ला का अधिकार था, जो शाही सेना के पहुँचते ही सिरियागी को भाग गया। शाही सैनिकों ने उसका पीछा करके जब वह गढ़ भी जला दिया, तब वह वहाँ से भागकर गोग्रम के पहाड़ों में चला गया। शाही सेना के वहाँ भी उसका पीछा करने पर जब उस (कल्ला) ने देखा कि अब बचना कठिन है तो उससे मिलकर उसने अपने भाई केशवदास, महेशदास एवं पृथ्वीराज राठोड़ को उसके साथ कर दिया। इस प्रकार जब चन्द्रसेन की शक्ति घट गई तो शाही सेना ने सिवाणा की तरफ़ प्रस्थान किया, जो उस समय चन्द्रसेन के अनुगामी रावल सुख (मेघ) राज के अधिकार में था। चन्द्रसेन ने सूजा तथा देवीदास आदि को उसकी सहायता के लिए भेजा, परन्तु रायसिंह के राजपूतों ने गोपालदास की अध्यक्षता में आक्रमण कर उन्हें मार लिया। पराजित रावल अपने पुत्र को विजेताओं के पास भेज वहाँ से भाग गया। तब शाही सेना सिवाणे के गढ़ पर पहुँची। चन्द्रसेन ने इस अवसर पर गढ़ के भीतर रहना उचित न समझा और राठोड़ पत्ता के अधिकार में गढ़ छोड़कर वह वहाँ से हट गया। शाही सेना ने गढ़ पर घेरा डाला, परन्तु कई मास तक घेरा रहने पर भी जब वह विजय न हो सका तो रायसिंह ने अजमेर में बादशाह के पास उपस्थित होकर अधिक सैन्य भेजने के लिए निवेदन किया। इसपर बादशाह ने तय्यबख्तां^१, सैयदबेग तोक़राई, सुभानकुली, तुर्क खुर्रम, अज़मतख़ां, शिवदास आदि अफ़सरीयों को चन्द्रसेन पर भेजा, जिससे वह (चन्द्रसेन) रामपुर से भी भागकर पहाड़ों में चला गया। तब शाही सेना पहाड़ों की तरफ़ बढ़ी, जहाँ उसे कुछ सफलता भी हुई। फलतः चन्द्रसेन को इधर-उधर पहाड़ों में भागना पड़ा। उसके भाग जाने को ही अपने कार्य की इति समझ बिना बुलाये ही

शाही अफसर बापस लौट गये, जिससे बादशाह उनसे बड़ा नाराज़ हुआ'।

इसके बाद जलालखाँ को सैयद अहमद^३, सैयद क़ासिम^४, सैयद हाशिम^५ एवं शिमालखाँ^६ आदि अफसरों के साथ सिवाणा-स्थित शाही सेना की सहायतार्थ भेजा। उसके मेड़ते पहुँचने पर रायसिंह के भाइयों—सुलतानसिंह तथा रामसिंह—एवं शाहकुलीखाँ महरम^७ के संबंधी अली-कुली ने कहलाया कि हम बादशाह की आज्ञानुसार चन्द्रसेन का दमन करने का प्रयत्न कर रहे हैं, पर पहाड़ों की अधिकता, सड़कों के कष्ट एवं घुरे मनुष्यों की अपने साथ अधिकता होने के कारण वह हमारा पूरा-पूरा अवरोध कर रहा है, जिससे सहायता के लिए आने का यही उपयुक्त अवसर है। तब जलालखाँ शीघ्रता से उधर बढ़ा। चन्द्रसेन इस अवसर पर धोखे से वार करने का उपाय करने लगा, पर उसकी यह इच्छा शाही अफसरों ने जान ली और उन्होंने तुरन्त उसपर आक्रमण कर दिया। चन्द्रसेन ने काणूजा की पहाड़ियों में शरण लेकर शाही सेना पर आक्रमण किया, पर इसमें उसके बहुतसे आदमी मारे गये और उसे पहाड़ों में

(१) अबुलक़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११३-४, और १२२।

(२) इसका पूरा नाम जलालखाँ कुर्ची था और यह अकबर का प्रीतिपात्र था।

(३) यह बारहा के सैयद महमूद का छोटा भाई था। तबक़ात-इ-अकबरी के अनुसार यह अकबर का तीन हज़ारी मनसबदार था और हि० स० १८२ (वि० सं० १६३४ = ई० स० १५७७) में इसकी मृत्यु हुई।

(४) सैयद महमूद का पुत्र। इसकी मृत्यु हि० स० १००७ (वि० सं० १६२५-२६ = ई० स० १५६८-६९) में हुई।

(५) सैयद महमूद का दूसरा पुत्र। यह अहमदाबाद के निकट सरखेब की लड़ाई में मारा गया।

(६) इसका पूरा नाम शिमालखाँ चेला था। तबक़ात-इ-अकबरी के अनुसार यह अकबर का शम्शवाहक और एकहज़ारी मनसबदार था।

(७) अकबर के दरबार का अमीर और पाँचहज़ारी मनसबदार। इसकी मृत्यु आगरे में हि० स० १००६ (वि० सं० १६२७ = ई० स० १६००) में हुई।

बापस जाना पड़ा^१। तब शाही अफसर रामगढ़ में गये। इसी अवसर पर एक व्यक्ति शाही अफसरों के पास आया, जिसने अपने आपको देवीदास प्रकट किया। शाही अफसरों का ऐसा विश्वास था कि देवीदास मेड़ते की लड़ाई में मारा गया था, पर उसके यह कहने पर कि मैं केवल ज़ख्मी हो गया था तथा एक साधु ने मेरी जीवनरक्षा की, कुछ लोगों ने उसका विश्वास कर लिया। उसने शाही अफसरों से कहा कि चन्द्रसेन इस समय राम (राय) के पुत्र कल्ला की जागीर में है। यह सुनते ही शाही सेना उधर गई, पर कल्ला ने इससे इनकार कर दिया। फलतः शिमालखां ने देवीदास को अपने पास बुलाकर कैद करने का प्रयत्न किया, पर वह वहां से निकल गया और कल्ला के शामिल हो गया। लेकिन इसके कुछ ही दिनों बाद, जब शाही सेना की टुकड़ियां इधर-उधर गई हुई थीं, शाही सेना से बदला लेने के प्रयत्न में उसने शिमालखां के धोखे में जलालखां को मार डाला। अनन्तर जब वह शिमालखां के डेरे की तरफ बढ़ा तो ठीक समय पर जयमल ने पहुँचकर इस उपद्रव को शान्त किया^२।

जलालखां के मारे जाने के बाद विद्रोहियों का उपद्रव और बढ़ गया। उनमें देवकुर (?) के गढ़ में एकत्रित कल्ला तथा अन्य सरदार प्रमुख थे। बादशाह द्वारा भेजे गये सैयद वारहा आदि ने उनका दमन करने की कोशिश की, पर कोई परिणाम न निकला। इस प्रकार सिवाणे का मामला तूल

(१) सिंहायचं दयालदास-कृत बीकानेर की ख्यात में लिखा है कि पीछे से जालोर की तरफ से हांता हुआ जोधपुर का राव चंद्रसेन अपने राजपूतों के साथ मारवाड़ में आया। पिपलाणा के पास उसका महाराजा रायसिंह के भाई रामसिंह से युद्ध हुआ, जिसमें वह (चंद्रसेन) भाग गया तथा उसका नक़ारा रामसिंह के हाथ लगा (जि० २, पत्र ३०)। इस युद्ध का जोधपुर राय की ख्यात में कुछ भी उल्लेख नहीं है परन्तु यह नक़ारा जोड़ी बीकानेर राय में अब तक सुरक्षित है। नक़ारे की जोड़ी तब की कुंडी पर चमड़े से मढ़ी हुई है और उसपर निम्नलिखित लेख है—

एक पर—“राव चन्द्रसेन राठोड़ाऊ नर ।”

दूसरे पर—“राव चन्द्रसेन राठोड़ाऊ.....”

(२) अबुलक़ल्ल; अकबरनामा—देवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ३२४-५।

पकड़ता जा रहा था, अतएव बादशाह ने शहवाज़ख़ां^१ को उधर का प्रबंध करने के लिए भेजा। जब वह वहां पहुंचा तो उसने देखा कि शाही सेना किंकर्तव्यविमूढ़ दशा में किले को घेरे पड़ी है और कई प्रकार की कठिनाइयों के कारण सफलता नहीं हो रही है। उसने अविलम्ब गढ़ विजय करने की ओर ध्यान दिया और प्रबल आक्रमण कर शत्रु को मारा तथा देवकुर के गढ़ पर अधिकार कर लिया। अनन्तर बारहा के सैन्यों को वहां छोड़कर वह सिवाणा की ओर अप्रसर हुआ। उक्त गढ़ से सात कोस इधर दुनाड़ा नाम का पहाड़ी किला था। जब शाही सेना उसके निकट लूणी नदी को पार कर रही थी तो राठोड़ों ने एकत्र होकर उत्पात मचाना चाहा, जिसपर शाही सेना ने उन्हें आत्मसमर्पण करने को कहा। उनके न मानने पर शाही सेना ने उनपर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। इसके बाद शाही सेना सिवाणा पहुंची, जहां से शहवाज़ख़ां ने पहले के अफ़सरों को वापस कर दिया।^२ उसके समुचित प्रबन्ध और प्रबल हथेलों के कारण अन्त में गढ़वालों ने आत्मसमर्पण कर गढ़ शाही अफ़सरों के हवाले कर दिया^३।

ख्यातों से भी पाया जाता है कि कई दिन तक तो पत्ता ने शहवाज़ख़ां का मुकाबला किया, परन्तु विजय की कोई आशा न देख वह गढ़ उसके सुपुर्दकर चन्द्रसेन के पास चला गया^४।

(१) इसका छठा पूर्वज हाजी जमाल मुलतान के शेख़ बहाउद्दीन ज़करिया का शिष्य था। शहवाज़ख़ां का प्रारम्भिक जीवन बड़ी सादगी में बीता था, परन्तु बाद में अकबर इसकी सेवाओं से इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इसे अपना अमीर बना लिया। हि० स० ९९२ (वि० सं० १६४१ = ई० स० १५८४) में बादशाह ने इसे बंगाल का शासक नियुक्त किया था। ७० वर्ष की अवस्था में हि० स० १००८ (वि० सं० १६५६ = ई० स० १६९९) में इसकी मृत्यु हुई।

(२) अबुल फ़ज़ल; अकबरनामा — बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २३७ और २३८।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११८। उसी ख्यात में एक स्थल पर (पृ० ९० में) लिखा है कि चन्द्रसेन ने स्वयं सिवाणे का गढ़ बादशाह के उमराव

उन दिनों राव चन्द्रसेन का परिवार पोकरण में था। वि० सं० १६३२ के कार्तिक (ई० सं० १५७५ के अक्टोबर) में जैसलमेर के रावल हर-
 राज ने ७००० सेना के साथ जाकर पोकरण को घेर
 लिया। उस समय वहाँ राव की तरफ से पंचोला
 आनंद था। चार मास तक घेरा रहने के उपरान्त
 हरराज ने चन्द्रसेन से कहलाया कि लाख फदिये लेकर मुझे पोकरण दे दो;
 जोधपुर का अधिकार जब आपके हाथ में आवे तो लाख फदिये लौटाकर
 पोकरण मुझमें ले लेना। चन्द्रसेन उन दिनों बड़ी संकटापन्न दशा में था
 और उसे धन की बड़ी आवश्यकता रहती थी। उसने सोचा, भूमि तो अपने
 हाथ से जा ही रही है, अतएव धन ले लेना बुरा नहीं है यदि जोधपुर पर
 मेरा कभी अधिकार हुआ तो भाटियों के पास पोकरण न रह सकेगा।
 ऐसा विचारकर उसने मांगत्या भोज को पोकरण भेजकर कहलाया कि
 कोट हरराज को सौंप दो। इसके अनुसार उपर्युक्त ग़रम लेकर फातगुन
 वदि १४ (ई० सं० १५७६ ता० २६ जनवरी) को पोकरण भाटियों को दे
 दिया गया।

सिवाणे का गढ़ हाथ से चला जाने पर राव चन्द्रसेन का अन्तिम
 सुहृद् आश्रय-स्थान भी जाता रहा। वहाँ से वह पहले पीरलोद के पहाड़ों
 शहवाज़ख़ां को सौंपा। बांकीदास कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या ३७३) में चन्द्रसेन
 के राजपूतों का शहवाज़ख़ां को वि० सं० १६३२ (ई० सं० १५७५) में सिवाणे का
 गढ़ सौंपना लिखा है।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात: जि० १, पृ० ८६-८७।

“जैसलमेर के इतिहास” से पाया जाता है कि जैसलमेर के रावल हरराज के
 छोटे पुत्र सुरतानसिंह के बादशाह अकबर की सेवा में उपस्थित होने पर उसने पोकरण
 और फलोधी के प्रदेश, जो चन्द्रसेन ने ले लिये थे, पुनः भाटी राज्य के अधिकार में
 करा दिये (हरिदत्त गोविन्द व्यास-कृत; पृ० ६०)। लक्ष्मीचन्द-लिखित “तवारीख़
 जैसलमेर” में लिखा है कि बादशाह ने फलोधी का परगना कुंवर सुरतानसिंह को दिया।
 चन्द्रसेन ने पोकरण का ठिकाना १०००० सोनइया लेकर गिरवी रक्खा था, जिसपर
 उसकी कौज आई, परन्तु हारकर लौट गई (पृ० ५४)।

चन्द्रसेन का हूंगरपुर, बांस-
वाड़ा तथा कोटड़ा में
जाकर रहना

में गया, जहां कुछ समय तक लूट-मार मचाने के अनन्तर वह काणूजा की पहाड़ियों में चला गया। उन दिनों राठोड़ रत्नसिंह खीवां ऊदावत का पुत्र मुसलमानों से मिलकर आसरलाई में रहता था। उससे चन्द्रसेन ने कहलाया कि गांव छोड़ दो और परिवार को पहाड़ी में रखकर मेरे पास आ जाओ। जब उसने इसपर कोई ध्यान न दिया तो उस चन्द्रसेन ने आसरलाई में भी लूट-मार की, जिससे ऊदावत उसके विरोधी हो गये। उन्हीं दिनों धन की तंगी के कारण चन्द्रसेन ने जोधपुर के महाजनों को पकड़कर उनसे ज़बर्दस्ती धन प्राप्त करने का उद्योग किया। इससे वे लोग उससे अप्रसन्न हो गये और सब मिलकर मुगलसेना को उसपर चढ़ा लाये। ऐसी अवस्था में चन्द्रसेन वहां से भागकर मंडाड़ और फिर वहां से सिंगोही चला गया, जहां वह डेढ़ साल तक रहा। फिर अपना परिवार वहीं छोड़कर वह हूंगरपुर^१ चला गया और वहां कुछ महीने तक रहा। इतने में बादशाही फ़ौज हूंगरपुर राज्य के निकटवर्ती मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश में पहुंच गई, जिससे वह हूंगरपुर का परित्याग कर बांस-वाड़ा चला गया। वहां के रावल प्रतापसिंह ने उसे सम्मानपूर्वक अपने पास रक्खा और निर्वाह के लिए तीन-चार गांव उसे दिये। इसके बाद वह कोटड़ा (मेवाड़) में गया, जहां वह एक या डेढ़ वर्ष पर्यन्त रहा। वहां रहते समय महाराणा प्रताप से भी उसका मिलना हुआ^२।

इस बीच नाडोल में राव कल्ला दशा से मार डाला गया^३ और

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १४४६) लिखता है कि हूंगरपुर के रावल आसकरण को मालदेव की पुत्री व्याही थी, जिससे संकटापन्न दशा में चन्द्रसेन उसके पास जाकर रहा।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११८-२०।

(३) इसके सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि राव कल्ला बादशाह की सेवा में था। उस(कल्ला)से बादशाह का कुछ अपराध हो गया। इसपर बादशाह ने उसको बुलवाया, परन्तु वह आया नहीं। तब शाही सेना उसपर भेजी गई।

बादशाह ने सोजत खालसे कर वहां सैयदों को नियुक्त कर दिया। ऐसी अवस्था देख राठोड़ सादूल (महेसोत, कृपावत), सरदारों का चंद्रसेन को बुलाना आसकरण (देवीदासोत, जैतावत) आदि अनेक सरदारों ने मिलकर विचार किया कि अब चन्द्रसेन को बुलाने से ही भूमि बच सकती है। तदनुसार उन्होंने चन्द्रसेन को लिखा, जिसपर उसने सबराड़ के थाने पर रखे हुए मुसलमान सैनिकों को मारकर वहां अपना अधिकार स्थापित किया। वि० सं० १६३६ श्रावण वदि ११ (ई० सं० १५७६ ता० १६ जुलाई) को उसने सोजत भी ले लिया^१।

अकबर के २५ वें राज्यवर्ष (हि० सं० ९८८=वि० सं० १६३७=ई० सं० १५८०) के प्रारम्भ में बादशाह के पास खबर पहुंची कि चन्द्रसेन पहाड़ों से निकलकर अजमेर के आसपास उपद्रव कर रहा है। चन्द्रसेन का अजमेर के आसपास उपद्रव करना इसपर पाइन्दा मुहम्मदखां मुगल^२, सैयद हाशिम, सैयद क़ासिम आदि उधर के शाही जागीरदारों को सावधान रहने और चन्द्रसेन को दंड देने की आज्ञा भेजी गई। चन्द्रसेन ने उनकी सेना का सामना किया, पर इसमें बहुतसे आदमी काम आये और उसकी पराजय हुई^३।

इसके बाद राव चन्द्रसेन बीजापुर से अपना परिवार ले आया और सारण के पहाड़ों में रहने लगा। कुछ दिनों बाद वह सिचियाई के पहाड़ों में

क़त्ला तो गिरफ्तार न हो सका पर वि० सं० १६३२ माघ सुदि ८ (ई० सं० १५७६ ता० ६ जनवरी) को महेश मारा गया। पीछे वि० सं० १६३४ के फाल्गुन (ई० सं० १५७८ के फ़रवरी) मास में नाडोल के थाने के शेख बुरहान ने विश्वास दिलाकर क़त्ला को नाडोल बुलवाया और धोखे से मरवा दिया (जि० १, पृ० ११६)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६० तथा १२०।

(२) यह हाजी मुहम्मदखां के भाई का पुत्र था। अकबर के बत्तीसवें राज्यवर्ष में इसे जोड़ाघाट की जागीर मिली।

(३) अफ़क़उल्ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ०, ४६६।

चन्द्रसेन की मृत्यु

जा रहा, जहां वि० सं० १६३७ माघ सुदि ७ (ई० सं० १५८१ ता० ११ जनवरी) को उसका देहांत हो गया।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार राव चन्द्रसेन के ग्यारह राणियां थीं। उसके तीन पुत्र—रायसिंह^१ उग्रसेन^२ तथा आसकर्ण^३—हुए।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२१। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ३६४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में यह भी लिखा है—‘राव चन्द्रसेन के सिंचियाई के पहाड़ों में रहते समय दूधोब का राठोब बैरसल (कृपावत) उसकी सेवा में उपस्थित नहीं हुआ। इसपर राव उसपर चढ़कर गया। पीछे से बैरसल ने कहलाया कि रावजी मेरे यहां भोजन करें तो मुझको उनका विश्वास हो। इसके अनुसार चन्द्रसेन उसके यहां दावत खाने गया और वहां से लौटते ही मर गया, जिससे लोग कहते हैं कि भोजन में विष मिला दिया गया था (जि० १, पृ० १२१)।’

(२) कछवाही सुहागदे से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६१४ (ई० सं० १५५७) में हुआ।

(३) चौहान कल्याणदे से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६१६ भाद्रपद वदि १४ (ई० सं० १५५९ ता० २ अगस्त) को हुआ।

चन्द्रसेन के पुत्रों में से केवल उग्रसेन का वंश रहा। उसके तीन पुत्र—कर्मसेन, कल्याणदास तथा कान्ह—हुए। कर्मसेन के पट्टे में सोजत था। जब दक्षिण में पठानों के साथ लड़ाई हुई, तब उसी में वह काम आया। उसके बारह पुत्र हुए, जिनमें से श्यामसिंह के दो पुत्र उदयभाण और अखैराज थे। उदयभाण के तीन पुत्र केसरीसिंह, सुरजमल और नरसिंहदास हुए, जिनके वंश में अजमेर जिले के इस्तमरारदारों के क्रमशः भियाण, बांधनवाडा और टांटोटी के ठिकाने हैं। दूसरे पुत्र अखैराज के पांच पुत्र हुए—ईसरदास, देवीदास, नाहरसिंह, गजसिंह और हरिसिंह। ईसरदास के वंश में देवलिया कलां, देवीदास के वंश में बडली, नाहरसिंह के वंश में देवगांव बचेरा, गजसिंह के वंश में कैरोट और हरिसिंह के वंश में जैतपुरा, जडाना और काचरिया के इस्तमरारदार हैं [जे० डी० लाट्टस, बी० सी० एस०; रिपोर्ट ऑफ् दि सेटलमेंट ऑफ् दि अजमेर एण्ड मेरवार डिविज़न (ई० सं० १८७५); पृ० ५१ के पास का वंशवृक्ष । महाराजकिशान, तवारीख अजमेर (उर्दू); पृ० २४० के पास का वंशवृक्ष तथा बड़वे की ख्यात]।

(४) सीसोदयी चंदाबाई से। ख्यात के अनुसार इसका जन्म वि० सं० १६२७ भाद्रपद वदि १ (ई० सं० १५७० ता० १९ जून) को हुआ। “बीरबिनोद” में भी यही समय दिया है (भाग २, पृ० ८१४)।

(५) “बीरबिनोद” में भी पुत्रों के ये ही नाम विधे हैं (भाग २, पृ० ८१४)।

राणियां तथा संपत्ति

इनके अतिरिक्त उसके छः पुत्रियां भी थीं, जिनमें से करमेतीबाई का विवाह महाराणा उदयसिंह के साथ, आसकुंवरी का राजा मानसिंह के साथ, कमलावतीबाई का कछवाहे आसकरण के साथ, रायकुंवरबाई का राजा मानसिंह के पुत्र सवलसिंह के साथ तथा जामवती (जाम्बुवन्ती) का देवड़ा बीजा (सिरौही का सरदार) के साथ हुआ था^१ ।

राव चन्द्रसेन की मृत्यु के समय उसका ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह तो अकबर के पास और उससे छोटा उग्रसेन वृन्दी में था, अतएव आसकरण, भोयत (देवीदासोत), राम (रत्नछीहोत) आदि सरदारों ने तीसरे पुत्र आसकरण को उस- (चन्द्रसेन) का उत्तराधिकारी माना । इसी बीच अपने पिता की मृत्यु का समाचार पाकर उग्रसेन जाकर मेड़ते के मुसलमानों से मिला । इसकी खबर मिलने पर सरदारों ने सोचा कि उग्रसेन का पक्ष बलवान है, उसके कारण मुसलमान आधेंगे, जिससे भूमि का नुकसान होगा; अतएव उन्होंने आधी भूमि उग्रसेन को देने का वचन देकर उसे सारण में बुलाया । (आचरणदि) वि० सं० १६३८ (चैत्रादि १६३६) चैत्र सुदि २ (ई० सं० १५८२ ता० २५ मार्च) को अवसर पाकर उग्रसेन ने आसकरण को कटार से मार दिया । यह देखकर बहां खड़े हुए आसकरण के एक राजपूत ने वही कटारी उसके हाथ से छीनकर उसका भी वहीं काम तमाम कर दिया^२ । ऐसी अवस्था में सरदारों ने रायसिंह के पास पत्र भेजकर कहलाया कि अब तुम आकर अपनी धरती संभालो । रायसिंह उस समय

(१) जि० १, पृ० ६०-६२ ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में आगे चलकर (जि० १, पृ० ११६-७ में) लिखा है कि उग्रसेन और आसकरण के मरने पर राणा उदयसिंह ने राठोड़ सरदारों को कहलाया कि राम के पुत्र केशव को टीका दो । पर सरदारों ने इसपर ध्यान न दिया और टीका रायसिंह को देकर केशवदास को निकाल दिया जो बादशाह के पास चला गया । बादशाह ने उसे मालवा में चोली-माहेश्वर की जागीर दी । आसकरा के रईस उसी के वंशज थे । गुदर के बाद यह हलाका जन्तु हो गया ।

अकबर की तरफ से काबुल की चढ़ाई में जा रहा था। सरदारों का पत्र पाकर उसने बादशाह से स्वदेश जाने की आज्ञा मांगी। बादशाह ने उसे सोजत का परगना देकर विदा किया। वि० सं० १६३८ (ई० सं० १५८१) में बादशाह के काबुल विजय कर लौटने पर रायसिंह फिर उसकी सेवा में उपस्थित हो गया^१।

इसके कुछ समय बाद ही सिरोंदिया जगमाल^२, जिसे बादशाह ने सिरोंदी का आधा राज्य प्रदान किया था, सिरोंदी के महाराज सुरताण से अनबत हो जाने के कारण पुनः सहायता के लिए बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ^३। इस अवसर पर बादशाह ने उसकी मदद के लिए रायसिंह और दांतीगढ़ के स्वामी कोलीसिंह की अध्यक्षता में अपनी फौज भेजी। इसकी खबर पाकर सुरताण सिरोंदी का परित्याग कर आवू चला गया। तब जगमाल ने सिरोंदी पर अपना अधिकार जमा लिया और वह राज-महलों में रहने लगा। फिर उसने शाही फौज के साथ आवू पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। सुरताण भी उसका सामना करने के लिए आया और उसकी फौज से दो कोस पर उदरा। जगमाल ने एकदम उस-पर आक्रमण करने में हानि देख, पहले उसके सरदारों के ठिकानों पर

(१) फारसी तवारीखों से भी पाया जाता है कि वि० सं० १६३८ (ई० सं० १५८१) में बादशाह काबुल विजय कर लौटा था (देखो अतुलकाल; अकबरनामा— बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ५४७)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२-३।

(३) महाराणा उदयसिंह का छोटा पुत्र जिसे बड़े पुत्र प्रतापसिंह के रहते उसने अपना उत्तराधिकारी नियत किया। महाराणा के मरने पर वह गद्दी पर बैठना चाहता था पर सन्तूर के राज ने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापसिंह को सिंहासन पर बैठाया। इस पर जगमाल अप्रसन्न हो अकबर की सेवा में जा रहा। बीकानेर के स्वामी रायसिंह ने सोरठ जाते समय सुरताण से आधी सिरोंदी बादशाह के नाम कर ली थी। बादशाह ने यह खबर पाकर वह आधा भाग जगमाल के नाम कर दिया और उसे वहां भेजा। सुरताण ने आधा राज्य उसे दे तो दिया पर धीरे-धीरे उनमें वैमनस्य बढ़ता गया, जिससे जगमाल पुनः बादशाह के पास गया। इस बार बादशाह ने उसके साथ चन्द्र-सेन के पुत्र रायसिंह आदि को कर दिया।

आक्रमण करने के लिए उधर सेनाएं इस अभिप्राय से भेजीं कि सरदारों का ध्यान उधर आकर्षित हो जाय और सुरताण की शक्ति कम हो जाय तो वह उसपर आक्रमण करे। ऐसी दशा में देर करना उचित न जान सुरताण ने अपने सरदारों सहित वि० सं० १६४० कार्तिक सुदि ११ (ई० स० १५८३ ता० १७ अक्टोबर) को गांघ दताणी में, जहां जगमाल टहारा हुआ था, उसपर आक्रमण कर दिया। भीषण लड़ाई हुई, जिसमें राठोड़ों और सीसोदियों की पराजय हुई। जगमाल, रायसिंह तथा कोलीसिंह-शाही सेना के तीनों अध्यक्ष-एवं रायसिंह की तरफ के राठोड़ गोपालदास किशनदासोत गांगावत, राठोड़ सादूल मदेशोत कूंपावत, राठोड़ पूरणमल मांडयोत कूंपावत, राठोड़ लूणकरण सुरताणोत गांगावत आदि कितने ही राजपूत मारे गये। इस लड़ाई में रायसिंह का नक़ारा, शस्त्र, घोड़े तथा सामान आदि भी सुरताण के हाथ लगा। प्रसिद्ध चारण कवि आड़ा दुरसा भी रायसिंह के साथ था, जो इसी लड़ाई में घायल हुआ। पीछे से सुरताण उसे अपने साथ ले गया और बहुत सी जागीर आदि देकर उसने उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई।

(१) जोधपुर राज्य की व्यात; जि० १, पृ० १३-४। मुहयोट नैणसी की व्यात; जि० १, पृ० १३७-४१। मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२१-३२।

आठवां अध्याय

राजा उदयसिंह से महाराजा गजसिंह तक

राजा उदयसिंह

उदयसिंह का जन्म वि० सं० १५६४ माघ सुदि १३ (ई० सं० १५८८ ता० १३ जनवरी) रविवार को हुआ था^१। चन्द्रसेन की मृत्यु के बाद तीन वर्ष तक जोधपुर का राज्य खालसे में रखने के अनंतर बादशाह ने वहां का अधिकार उस (चन्द्रसेन) के बड़े भाई उदयसिंह को, जो उस (बादशाह) की सेवा में रहता था, राजा के खिताब-सहित दे दिया। तदनुसार वि० सं० १६४० भाद्रपद वदि १२ (ई० सं० १५८३ ता० ४ अगस्त) को वह जोधपुर आकर सिंहासनारूढ़ हुआ^२। इसके बाद ही समावली से सारा राज-परिवार भी जोधपुर आ गया^३।

उदयसिंह का, सिंहासनारूढ़ होने से पूर्व का, कुछ वृत्तान्त ऊपर चन्द्रसेन के साथ आ गया है और जो शेष रह गया है वह नीचे दिया जाता है—

उदयसिंह का पहले का
वृत्तान्त

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि एक बार सिंध की तरफ से व्यापारियों की एक कतार (क्राफ़ला) आ रही थी, जिसपर उदयसिंह ने कुछ

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६५-६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ४२६। चंडू के यहां का जन्म-पत्रियों का संग्रह।

“वीरविनोद” (भाग २, पृ० ८१५) में माघ सुदि १२ दी है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६७।

(३) वही; जि० १, पृ० ६७।

मनुष्यों के साथ जाकर हमला किया । दूसरी तरफ़ से भाटी भानीदास दुर्जनसालोत १००० व्यक्तियों के साथ आकर उदयसिंह से लड़ा, पर उस- (भानीदास) के मरते ही भाटी भाग गये । तब भाटी डूंगरसी दुर्जनसालोत ने सेना एकत्रकर उदयसिंह पर चढ़ाई की । कुंडल के पास दोनों दलों में लड़ाई होने पर उदयसिंह की तरफ़ के चांपावत वेरा जैसावत, राठोड़ हिंगोला वैरसलोत, रूपावत जोगीदास भांणोत, भाटी हम्मीर आसा- वत, भाटी रतन पीथावत आदि राजपूत मारे गये ।

“अकबरनामे” से ज्ञात होता है कि अकबर के बाईसवें राज्य-वर्ष (हि० स० ९८४=वि० सं० १६३४=ई० स० १५७७) में राजा मधुकर बुंदेले के खिलाफ़ शाही सेना भेजी गई, क्योंकि वह उपद्रव करने लग गया था । इस सेना के साथ सादिकखां, उलगखां हब्शी^२, राजा आसकरण^३ आदि के अतिरिक्त मोटाराजा^४ (उदयसिंह) भी था ।

इसके कुछ ही दिनों बाद गुजरात के बागी मुजफ़्फ़रखां^५ के साथ

(१) जि० १, पृ० ९६-७ ।

(२) पहले यह गुजरात के सुलतान महमूद की सेवा में था, जिसके समय में इसकी प्रतिष्ठा में पर्याप्त वृद्धि हुई । फिर इसने अकबर की सेवा में प्रविष्ट होकर उसकी कई चढ़ाईयों में सहयोग दिया ।

(३) कछवाहा, नरवर का स्वामी ।

(४) इसका “मोटाराजा” नाम प्रसिद्धि में आने के विषय में दो बातें मशहूर हैं । कोई कहते हैं कि यह शरीर का मोटा था, जिससे इसका नाम मोटाराजा पड़ गया । कुछ ऐसा मानते हैं कि इसने चारणों, ब्राह्मणों आदि की भूमि छीन ली थी, जो एक बुरा कृत्य था । लोग ऐसे व्यक्ति का नाम लेना उचित नहीं समझते थे, जिससे उसे “मोटाराजा” कहने लगे और उसका यही नाम बादशाह के यहाँ भी प्रसिद्ध हुआ ।

(५) बेबरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० २९४-५ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबर-नामा; पृ० ९१ । बजरत्नदास-कृत “मन्नासिरुल् उमरा” में अकबर के २३ वें राज्यवर्ष हि० स० ९८६ (वि० सं० १६३५ ई० स० १५७८) में इस घटना का होना लिखा है (पृ० ४५३) ।

(६) मुजफ़्फ़रशाह (तृतीय), गुजरात का अंतिम सुलतान । इसका राज्य वि० सं० १६२९ (ई० स० १५७१) में अकबर ने छीनकर इसे कैद कर लिया था ।

उधर के सिपाही शामिल हो गये और उसने काफी संपत्ति भी एकत्र कर ली, अतएव पट्टन के अफसरों ने उस स्थान

उदयसिंह का शाही सेना के साथ मुजफ्फर पर जाना

का परित्याग कर जालोर जाने का निश्चय किया।

इसी बीच मिर्जाखां (खानखाना) एक बड़ी सेना के साथ आ पहुँचा, जिससे फिर सुव्यवस्था हुई। उक्त सेना पट्टन में वि० सं० १६४० माघ वदि १४ (ई० सं० १५८४ ता० १ जनवरी) को पहुँची थी। शाही अफसरों ने आपस में परामर्श कर अंत में मुजफ्फरखां पर आक्रमण करना निश्चित किया। तदनुसार इतमादखां को पट्टन में छोड़कर शाही सेना युद्ध के लिए अग्रसर हुई। इस अवसर पर मिर्जाखां, सुरताण राठोड़ आदि शाही सेना के मध्य भाग में थे; मुहम्मद हुसेन, फ़ीरुज़ा, मीर हाशिम आदि दाहिनी तरफ़ और मोटाराजा (उदयसिंह), राय दुर्गा (सीसोदिया) आदि बाईं अनी में थे। पीछे के भाग में पायंदखां मुगल, सय्यद क़ासिम आदि थे। इनके अतिरिक्त और भी कितने ही ख्याति-प्राप्त अफसर तथा तेज़ हाथी शाही सेना के साथ थे। इस सेना के आने का समाचार पाकर मुजफ्फरखां एक बड़ी सेना के साथ अहमदाबाद पहुँचा और युद्ध के लिए सन्नद्ध हुआ। उसने शेरखां फ़ौलादी आदि अपने अफसरों के साथ उस्मानपुर में सेना सुसज्जित की। इसी बीच बादशाह का इस आशय का फ़रमान आने पर कि मैं भी उधर आ रहा हूँ अतएव मेरे पहुँचने तक युद्ध न करना, शाही अफसर वहाँ से सरखेच की तरफ़ चले गये। उनका इरादा युद्ध करने का न था, परन्तु जब मुजफ्फरखां ने अपनी सेना के साथ

लगभग ६ वर्ष की कैद के बाद यह निकल भागा और फिर गुजरात का स्वामी बना, पर इसके दो वर्ष बाद ही शाही सेना ने इसपर आक्रमण किया। पराजित होने पर जब इसका पीछा किया गया, तब इसने आत्महत्या कर ली। उसी समय से गुजरात शाही सल्तनत का एक प्रदेश बन गया।

(१) इसका पूरा नाम अब्दुलरहीमखां था। यह बैरामखां का पुत्र था। वि० सं० १६४६ (ई० सं० १५८९) में टोडरमल की मृत्यु होने पर बादशाह ने इसे अपना वज़ीरे अज़म बनाया। वि० सं० १६८४ (ई० सं० १६२७) में जहांगीर के राज्य-समय में इसका देहांत हुआ।

आक्रमण कर दिया तो उन्हें भी उसका सामना करना पड़ा। मुजफ्फर की फ़ौज शाही सेना के आक्रमण को न रोक सकी और उसके पैर उखड़ गये, जिससे वह मामूराबाद(?) होता हुआ माहीन्द्री की तरफ़ भाग गया। इस विजय का समाचार बादशाह के पास ता० २५ बहमन (वि० सं० १६४० फाल्गुन सुदि ३ = ई० सं० १५८४ ता० ४ फ़रवरी) को पहुँचा।

अगले वर्ष ज्येष्ठ मास में उदयसिंह ने जोधपुर के गढ़ पर चढ़ आने-वाले भाद्राजूण के भीखा (मीना) हरराजिया को मीना हरराजिया को मारना उसके सोलह साथियों-सहित मारा^१।

अकबर के २६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६४१ = ई० सं० १५८४) में गुजरात में उपद्रव होने पर सैयद दौलत ने खंभात पर अधिकार कर लिया। इसपर बादशाह ने मोटाराजा, मेदनीराय (चौहान), राजा मुकुटमन, रामशाह (वुन्देला), सैयद दौलत का दमन करने में मोटाराजा का साथ रहना उदयसिंह, रामचन्द्र बाघा राठोड़, तुलसीदास, अबुलफ़तह मुग़ल, दौलतख़ां लोदी^२ आदि को उसे दंड देने के लिए भेजा।

(१) अबुलफ़तह; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६३१-३६। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि यह लड़ाई राजपीपला नामक स्थान में वि० सं० १६४० पौष वदि (ई० सं० १५८३ दिसम्बर) में हुई और इसमें मुजफ्फर की पराजय होकर वह भाग गया (जि० १, पृ० ६७-८)। उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि इस चढ़ाई पर जाते समय उदयसिंह सोजत से चन्द्रसेन के परिवार को लाने के लिए गया और वहाँ खानखाना की आज्ञानुसार उसने अपना अधिकार स्थापित किया (जि० १, पृ० ६८)। बांकीदास लिखता है कि इस लड़ाई के समय उदयसिंह के कई चाकर बारूद से जल मरे (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३५८ और ८६३)। “वीरविनोद” में वि० सं० १६३६ (ई० सं० १५८२) में उदयसिंह का शाही सेना के साथ मुजफ्फर पर जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६४।

(३) शाहूखेल जाति का यह एक लोदी अफ़ग़ान था। पहले यह अज़ीज़ कोका की सेवा में था और पीछे से बादशाह अकबर की सेवा में प्रविष्ट हुआ। अकबर

उनके पट्टुचने से पूर्व ही सैयद दौलत ने पेटलाद को लूटा, जिससे भ्वाजम बर्दी आदि ने उससे लड़ाई कर उसे भगा दिया। इसी समय राजपोपला की पहाड़ियों से निकलकर मीरक यूसुफ, मीरक अफ़ज़ल आदि ने भी उपद्रव करना शुरू किया, जिसपर खानखाना ने कुछ आदमी उनका दमन करने के लिए भेजे। उनके धोलका पट्टुचते-पट्टुचते विद्रोही भाग गये।

वि० सं० १६४३ (ई० सं० १५८६) में उदयसिंह के चार पुत्र— भगवानदास, भो मत, दलपत और जैतसिंह—सिंधलों पर चढ़कर गये। उन्होंने उदयसिंह के पुत्रों का सिंधलों वहाँ पट्टुचकर उनके गांवों को लूटा^१। उसी वर्ष पर जाना तथा चारणों आदि चारणों और ब्राह्मणों के गांव उदयसिंह-द्वारा जप्त का आत्महत्या करना किये जाने के कारण उनमें से बहुतों ने आत्महत्या कर ली^३।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—

उदयसिंह की पुत्रों का
शाहजहाँद सलीम के साथ
विवाह होना

‘वि० सं० १६४३ (ई० सं० १५८७) में उदयसिंह की पुत्री मानीबाई का विवाह शाहजहाँदे सलीम के साथ हुआ^४।’

के ४२वें राज्यवर्ष (हि० सं० १००६ = वि० सं० १६५७ = ई० सं० १६००) में इसकी अहमदनगर में मृत्यु हुई।

(१) अबुल फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६२५-६। “तबक़ात इ अकबरी” में भी सैयद दौलत के विद्रोही होकर खंभात पर अधिकार करने और उसका दमन करने के लिए शाही अहसरों के भेजे जाने का उल्लेख है (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ४, पृ० ४३५-६)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६८।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६६-७।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८००-१।

“उमराए हन्द” से पाया जाता है कि मानमती “जगतगुसाइन” के नाम से प्रसिद्ध थी। उसका विवाह हि० सं० १६४४ ता० १६ रजब (वि० सं० १६४३ आश्विन अदि ६ = ई० सं० १५८६ ता० २७ जून) को राजा के मकान पर हुआ। उक्त पुस्तक

ऊपर लिखा जा चुका है कि जगमाल का आधी सिरौही पर अधिकार करा देने के लिए बादशाह ने चन्द्रसेन के पुत्र रायसिंह को उसके साथ कर दिया था (पृ० ३५२-३), परन्तु वे दोनों सुरताण के साथ की लड़ाई में मारे गये। इसपर बीजा (हरराजोत) बादशाह अकबर की सेवा में गया, जहां उसने बादशाह की कृपा प्राप्तकर सिरौही अपने नाम लिखा ली। बादशाह सुरताण पर अप्रसन्न तो पहले से ही था, इस बार उसने उदयसिंह और जामबेग को सिरौही के राव पर भेजा। बीजा भी उनके साथ गया। शाही सेना ने वहां पहुंचकर वि० सं० १६४४ फाल्गुन सुदि ५ (ई० स० १५८८ ता० २१ फरवरी) को नीतौरा गांव लूटा। सुरताण इसपर सिरौही का परित्याग कर आबू पर चला गया। एक मास तक शाही सेना नीतौरा में रही, पर आबू पर चढ़कर राव से लड़ने में हानि देखकर आपस में सुलह करने के बहाने बगड़ी के ठाकुर राठोड़ वैरसल पृथ्वीराजोत की मारफत देवड़ा सांवतसी सूरगवत, देवड़ा पत्ता सूरगवत, राडबरा हंमीर कुंभावत, राडबरा बीदा सिकरावत, चीबा जेता तथा देवड़ा तोगा सूरगवत को अपने पास बुलाकर राम रत्नसिंहोत के हाथ से मरवा डाला। राठोड़ वैरसल अपना वचन भंग होने के कारण बहुत बिगड़ा और उसने मोटे-राजा के डेरे पर जाकर राम को मार डाला। फिर वह भी अपने हाथ से कटार खाकर मर गया। उसका स्मारक (चबूतरा) नीतौरा गांव में बना है। इस प्रकार यह उद्योग निष्फल होने पर देवड़ा बीजा वास्थानजी की तरफ से आबू पर चढ़ने के इरादे से जामबेग आदि को सेना सहित ले चला, जिसकी खबर मिलते ही राव सुरताण भी वास्थानजी के निकट जा पहुंचा। वहां लड़ाई होने पर बीजा मारा गया, जामबेग का भाई घायल हुआ और शाही सेना भाग निकली। आबू विजय न होने के कारण शाही

के अनुसार इस विवाह के बाद बादशाह ने उदयसिंह को एक हज़ार का मनसब तथा जोधपुर का राज्य दिया (पृ० ४६)। उदयसिंह की यह पुत्री जोधपुर की होने से "जोधबाई" के नाम से भी प्रसिद्ध है।

सेना लौट गई। तदनन्तर देवड़ा कल्ला को सिरोही की गद्दी पर बिठलाकर उदयसिंह शाही फौज के साथ लौट गया, परन्तु उस(उदयसिंह)के लौटते ही सूरताण ने फिर सिरोही जाकर वहां अपना अधिकार कर लिया'।

राव मालदेव के एक पुत्र रायमल को बादशाह ने सिवाणा दिया था। उसके मरने पर वहां का अधिकार उस(रायमल)के पुत्र कल्याणदास

(कल्ला) को मिला। उसने एक बार आपस की

कल्ला का मारा जाना

लड़ाई में बादशाह के एक छोटे मनसबदार को मार डाला^१। इसकी खबर होने पर बादशाह ने उदयसिंह को कहा कि उस(कल्ला)को मारकर सिवाणा खाली करा लिया जाय। तदनुसार उदयसिंह ने कुंवर भोपत और कुंवर जैतसिंह को लिखा, जिसपर वे राठोड़ आसकरण देवीदासोत, राठोड़ किशोरदास रामोत, राठोड़ नरहरदास मानसिंहोत, राठोड़ वैरसल पृथ्वीराजोत, देवड़ा भोजराज जीवावत आदि कितने ही अन्य राजपूतों के साथ इस कार्य के लिए रवाना हुए। उन्होंने जाकर गढ़ को घेर लिया। कल्याणदास ने दिन को आक्रमण करने में लाभ न समझकर रात्रि के समय शत्रु की सेना पर आक्रमण किया, जिसका फल यह हुआ कि जोधपुर के राठोड़ राणा मालावत पातावत, रूपावत केला घरसलोत, चांपावत कला जैसावत आदि बहुत से आदमी मारे गये और उन्हें भागना पड़ा। इसका समाचार प्राप्त होते ही बादशाह ने उदयसिंह को रवाना किया। वह जोधपुर होता हुआ सिवाणे गया और एक नाई से मिलकर वि० सं० १६४५ माघ वदि १० (ई० स० १५८६ ता० २ जनवरी) को उसने गढ़ में प्रवेश किया। कल्ला ने कुछ देर तक तो उसका सामना किया,

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १००। मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० १, पृ० १३४। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८७१। मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २२४-५।

(२) “वीरविनोद” में लिखा है कि उदयसिंह ने सलीम को अपनी पुत्री ग्याही थी, इसलिए कल्ला उस(उदयसिंह)से नाराज़ था और उसने फसाद करना चाहा (भाग २, पृ० ८१५)।

पर अंत में वह मारा गया और उदयसिंह की विजय हुई^१ ।

हि० स० १००० ता० २४ शन्वाल (वि० सं० १६४६ श्रावण वदि ११ = ई० स० १५६२ ता० २४ जुलाई) को काश्मीर जाते समय बादशाह ने चिनाब नदी के किनारे शिकार खेलने के लिए प्रस्थान किया । लाहोर के प्रबंध के लिए रावी नदी पारकर तीन कोस आगे बढ़ने पर बादशाह ने कलीजखां के साथ मोटेराजा को लाहोर का प्रबंध करने के लिए नियत किया^२ ।

हि० स० १००१ ता० १२ तीर (वि० सं० १६५० आषाढ सुदि ६ = ई० स० १५६३ ता० २४ जून) को बादशाह ने मोटेराजा (उदयसिंह) को फिर राव सुरताण पर भेजा, ताकि वह जाकर उसे अधीन बनावे अथवा दंड दे^३ । इस चढ़ाई का क्या परिणाम हुआ यह फारसी तवारीखों से स्पष्ट नहीं होता ।

अकबर के ३६ वें राज्य वर्ष में हि० स० १००३ ता० ८ दे (वि० सं० १६५१ माघ वदि २ = ई० स० १५६४ ता० १६ दिसम्बर) को मोटेराजा जोधपुर से चलकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ^४ । फिर वह लाहोर गया, जहां रहते समय वह बीमार पड़ा और (श्रावणादि) वि० सं० १६५१ (चैत्रादि १६५२) आषाढ सुदि १५ (ई० स० १५६५ ता० ११ जुलाई) को उसका देहावसान हो गया^५ ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ६६-१०० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१२ । बांकीदास उदयसिंह और उसके कुंवरो का साथ ही जाना लिखता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६६-७०) ।

कह्ला के बंराजों के ठिकाने लाहण आदि में हैं ।

(२) तबकात-इ-अकबरी—इलियद्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० २, पृ० ४६२ ।

(३) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ६८५ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २१८ ।

(४) अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०१५ ।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०१ । “वीरविनोद” में भी यही तिथि दी है (भाग २, पृ० ८१५) । अबुलफ़ज़ल के अकबरनामे में हि० स० १००३

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार उदयसिंह के १७ राणियां थीं, जिनसे उसके १६ पुत्र—नरहरदास (जन्म—वि० सं० १६१३ माघ वदि १ = ई० स० १५५६ ता० १७ दिसंबर), भगवानदास^१ (जन्म—वि० सं० १६१४ आश्विन वदि १४ = ई० स० १५५७ ता० २१ सितंबर), भोपतसिंह^२ (जन्म—वि० सं० १६१५ कार्तिक सुदि ६ = ई० स० १५५८ ता० १७ अक्टोबर), अखैराज^३, जैतसिंह^४

ता० ३० तीर (वि० सं० १६५२ आषाढ वदि १ = ई० स० १५९५ ता० १२ जुलाई) को मोटाराजा का हृदय की गति बंद हो जाने से मरना लिखा है (जि० ३, पृ० १०२७) । मुंशी देवीप्रसाद के अकबरनामे में अकबर के ४२ वें राज्यवर्ष में मोटाराजा का देहांत होना लिखा है (पृ० २३७) ४२ वां के स्थान में ४० वां राज्यवर्ष होना चाहिये । बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या ८८५) में वि० सं० १६५१ (ई० स० १५९४) दिया है, जो ठीक नहीं है । इस सम्बन्ध में अबुलक़ल्ल-द्वारा दिया हुआ मोटाराजा की मृत्यु का समय ही ठीक प्रतीत होता है ।

(१) वि० सं० १६५१ कार्तिक वदि १२ (ई० स० १५९४ ता० १ अक्टोबर) को इसका देहांत हो गया । इसका बेटा गोयन्ददास हुआ, जिसके वंश के गोयन्ददासोत जोधा कहलाते हैं । इनकी जागीर खैरवे में है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०५) ।

(२) इसको बादशाह ने जैतारण दिया था । पीछे पंचार शाहूल से लड़ाई होने पर वि० सं० १६६३ मार्गशीर्ष सुदि १५ (ई० स० १६०६ ता० ४ दिसम्बर) को यह मारा गया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६) ।

(३) समावली में रहते समय मारा गया (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०५) ।

(४) इसका पुत्र हरिसिंह और उसका रत्नसिंह हुआ, जिसके वंशज रसोत जोधा कहलाये । इनका ठिकाना दूगोली है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०७) । बांकीदास ने इसकी नीचे लिखे अनुसार पीढ़ियां दी हैं—

(१) उदयसिंह, (२) जैतसिंह, (३) हरिसिंह, (४) रत्नसिंह, (५) किशनसिंह, (६) सावंतसिंह, (७) सरदारसिंह, (८) राघवदास, (९) ज्ञानसिंह, (१०) शिखनाथसिंह, (११) ब्रह्मावरसिंह ।

(ऐतिहासिक बातें; संख्या १८४०) ।

माधोसिंह^१, मोहनदास^२, कीर्तसिंह, दलपत^३ (जन्म—वि० सं० १६२५ श्रावण वदि ६ = ई० स० १५६८ ता० १८ जुलाई), शक्तसिंह^४ (जन्म—वि० सं० १६२४ पौष सुदि १४ = ई० स० १५६७ ता० १५ दिसंबर), जसवन्त-सिंह, सूरसिंह, पूरणमल, किशनसिंह^५, केशोदास और रामसिंह हुए^६। इनके अतिरिक्त उसके १६ पुत्रियां भी हुई^७।

(१) इसके पुत्र और पौत्र क्रमशः केसरीसिंह और सुजानसिंह हुए, जिनके वंशज जूनियां और पीसांगण में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०८)।

अजमेर प्रदेश में जूनियां, कलौज, देवलिया खुर्द, बोगला कालेबा, मंडा, मेहरूं, तसवारिया, निमोधा, सांकरिया, कादेबा, पीसांगण, ग्रान्हेबा, खवास-सरसबी, पारा, सदारा, कोड़ा, मेवदा खुर्द आदि इस्तमरारदारों के ठिकाने माधोसिंह के वंश में हैं (दी रूलिंग प्रिन्सिपल, चीफ्स एण्ड लीडिंग पर्सनेजिज़ इन राजपूताना एण्ड अजमेर; पृ० २०५)।

(२) इसके वंशज मेवता के गांव रामपुरिया में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०८)।

(३) इसका पुत्र महेशदास पहले शाहजादे खुर्रम का सेवक रहा। वि० सं० १६८४ में यह महाबतख़ाना का सेवक हुआ, जिसके मरने पर यह बादशाह की सेवा में रहा। इसे पहले जहाज़पुर और बाद में जालोर का पट्टा मिला था। वि० सं० १७४३ (ई० स० १६८६) में लाहोर में इसका देहांत हुआ। इसके पुत्रों में से रतसिंह को जालोर मिला। इसका बसाया हुआ मालवे में रतलाम शहर है (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६-७)।

(४) इसको उदयसिंह ने अलग कर हुंण गांव दिया था। पीछे से यह बादशाह की सेवा में प्रविष्ट हुआ, जहां इसे ५०० का मनसब प्राप्त हुआ, जो पीछे से बढ़ाकर तीन हज़ारी कर दिया गया। इसकी मृत्यु विष-प्रयोग से हुई। इसके वंशज खरवा (अजमेर प्रांत) में हैं (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०६)।

(५) इसने किशनगढ़ का राज्य कायम किया। इसका जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १६३१ (चैत्रादि १६४०) ज्येष्ठ वदि २ (ई० स० १५८३ ता० २८ अप्रैल) को हुआ था (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १०७)।

(६) वही; जि० १, पृ० १००-४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६।

(७) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १००-४। बांकीदास के अनुसार

महाराजा सूरसिंह

सूरसिंह (सूरजसिंह) का जन्म (श्रावणादि) वि० सं० १६२७ (चैत्रादि १६२८) वैशाख वदि अमावास्या (ई० स० १५७१ ता० २४ अप्रैल)

को हुआ था^२। वैसे तो उसके कई बड़े भाई विद्य-
जन्म तथा गर्हीनशानी मान थे, परन्तु बादशाह ने उसे ही उदयसिंह का उत्तराधिकारी नियत किया^३ और वि० सं० १६५२ श्रावण वदि १२ (ई० स० १५९५ ता० २३ जुलाई) को लाहौर में उसे टीका दिया^४। इस अवसर पर उसे दो हजार ज्ञात और सवा हजार सवार का मनसब प्राप्त हुआ^५।

इसके कुछ दिनों बाद जब मुराद और खानखाना दक्षिण की तरफ चले गये तो गुजरात का सूबा खाली रह गया। यह देखकर बादशाह ने

भी इसके कई पुत्रियां हुईं, जिनमें से कमलावतीबाई का विवाह मद्र के खींची राव गोपालदास के साथ, प्राणवतीबाई का हुंगरपुर के रावल सहसमल के साथ तथा रुक्मावतीबाई का कछवाहा राजा महासिंह के साथ हुआ (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८७७, ८८३ तथा ८८४)।

(१) फ़ारसी तथारीखों में इसे राजा ही लिखा है, परन्तु एक जैन मूर्ति पर के एक लेख में इसे महाराजा लिखा है (पूरणचन्द नाहर; जैन लेख संग्रह, प्रथम खण्ड, पृ० १८७)। इससे स्पष्ट है कि मारवाड़वाले इसे महाराजा ही लिखते थे।

(२) चंडू के यहां का जन्मपत्रियों का संग्रह। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८५६ तथा ८८६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६।

जोधपुर राज्य की ख्यात में तिथि तो यही दी है, पर संवत् १६२७ के स्थान में १६२६ दिया है (जि० १, पृ० १२२), जो ठीक नहीं है। जोधपुर राज्य के संवत् श्रावणादि हैं। इसको दृष्टि में रखते हुए चंडू के यहां की जन्मपत्री में दिया हुआ समय ही ठीक है, क्योंकि उसमें दी हुई जन्मकुंडली के अनुसार ही वि० सं० १६२८ वैशाख वदि अमावास्या को सूर्य मेष तथा चन्द्रमा वृष राशि पर थे।

(३) “वीरविनोद” में लिखा है कि उदयसिंह ने सूरसिंह की माता पर विशेष प्रेम होने के कारण बादशाह से उसे ही उसके बाद राजा बनाने के लिए कह दिया था (भाग २, पृ० ८१७)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२१।

(५) वही; जि० १, पृ० १२१।

राजा सूरजसिंह को गुजरात के प्रबंध के लिए भेजा'।
अहमदाबाद में नियुक्ति
जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि
इस अवसर पर क्राज़ी हसन आदि कई मुसलमान अफसर भी उसके साथ
अहमदाबाद गये^१।

अकबर के ४२ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५४=ई० सं० १५६७) में राज-
पीपला के स्वामी (तिवारी) के यहां शरण पाये हुए मुज़फ्फर गुजराती के
विद्रोही बहादुर को भगाना पुत्र बहादुर ने जब देखा कि बादशाह के प्रमुख
अफसर दक्षिण की तरफ व्यस्त हैं तो उसने उत्पात
करना प्रारम्भ किया और धन्धुका नगर को लूट लिया। सूरसिंह को
इसका पता लगने पर उसने विद्रोही मिर्ज़ा पर आक्रमण किया, जिससे वह
भाग गया^२।

वि० सं० १६५४ कार्तिक वदि १४ (ई० सं० १५६७ ता० २६ अक्टो-
बर) को बीकानेर के कुछ लोगों ने गांव गाव्राणी में पहुंचकर जोधपुर के
राजकीय ऊंट पकड़ लिये। इसपर मांगलिया सूर
बीकानेर वालों-द्वारा राजकीय
ऊंट लिये जाने पर लड़ाई होना तथा राठोड़ हरदास महेशदासोत ने उनसे लड़कर
ऊंट पीछे लिये^३।

(१) अबुलफज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०४३।
मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २३८। “वीरविनोद” में शाहज़ादे मुराद के साथ
सूरसिंह की गुजरात में नियुक्ति होना लिखा है (भाग २, पृ० ८१७)। ब्रजरत्नदास-
कृत “मआसिरुल् उमरा” (पृ० ४५४) तथा “उमराए हनुद” (उर्दू; पृ० २५४) में भी
ऐसा ही लिखा है और वही ठीक है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२३।

(३) अबुलफज़ल; अकबरनामा; बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १०८३।
जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२३-४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ०
२४८। ब्रजरत्नदास; मआसिरुल् उमरा; पृ० ४५४।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३।

इस घटना का उल्लेख बीकानेर राज्य की ख्यात में नहीं है।

इस घटना के कुछ ही समय बाद पौष वदि अमावास्या (ई० स० १५६७ ता० २८ दिसंबर) को जैसलमेर के रावल भीम के डेढ़ हज़ार सैनिक गांव कोढणा से आधा कोस दूरी पर आ पहुंचे ।
 जैसलमेर की सेना का
 मारवाड़ में आना
 ऊहड़ गोपालदास ने उनका सामना किया । इस लड़ाई में पैंतीस राजपूतों के साथ गोपालदास काम आया, पर जैसलमेर की फ़ौज को भी पीछे जाना पड़ा^१ ।

अकबर के ४४ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५६ = ई० स० १५६६) में अहमदनगर को फ़तह करने के लिए जाते हुए मार्ग में मिरगी की बीमारी से शाहज़ादे मुराद का देहांत हो गया । इसकी ख़बर बादशाह को होने पर उसने शाहज़ादे दानियाल की नियुक्ति उसके स्थान पर की^२ । “वीरविनोद” से पाया जाता है कि इस अवसर पर राजा सूरसिंह भी उसके साथ भेजा गया^३ । जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘दक्षिण जाते समय राजा सूरसिंह मार्ग में सोजत में रुक गया और आगे बढ़ने में ढिलाई करने लगा । यह ख़बर बादशाह को लगने पर वह उससे बड़ा नाराज़ हुआ और उसने सोजत का पट्टा उसके भाई शक्तसिंह के नाम कर दिया । इसपर भंडारी मान, जो सोजत में था, वहां का अधिकार शक्तसिंह को सौंप जोधपुर चला गया । एक वर्ष तक सोजत पर शक्तसिंह का अधिकार रहा । इसी बीच बादशाह के बुरहानपुर में रहते समय भाटी गोयंददास (मानावत) तथा राठोड़ राम (रतनसिंहोत)

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३ ।

जैसलमेर का रावल भीम राजा सूरसिंह का समकालीन अवश्य था, पर उसके समय में जैसलमेर के सैनिकों का जोधपुर में आने का कोई उल्लेख जैसलमेर की तबारीख़ में नहीं है ।

(२) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेबरिज-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद; जि० ३, पृ० ११२६ ।

(३) भाग २, पृ० ८१७ । ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा; पृ० ४५४ । उमराण हनुद; पृ० २५४ ।

ने उसके पास उपस्थित हो सोजत का पट्टा पुनः राजा के नाम लिखवा लिया, जिससे शक्तसिंह को वहां का अधिकार छोड़ना पड़ा। इसके पूर्व ही राजा सूरसिंह की सेना ने सोजत पर घेरा डाल दिया था। शक्तसिंह की तरफ के विशनदास (कल्याणदासोत) ने उसका मुक्काबला किया, पर उसकी पराजय हुई^१।

बादशाह अकबर के ४५ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५७ = ई० सं० १६००) में राजू^२ ने उपद्रव करना आरम्भ किया। वह सम्राटतख्तों का

नासिक फनह करना

चाकर था और सम्राटतख्तों के शाही अधीनता स्वीकार कर लेने पर, उसने उसके हाथी आदि लूटे और उसके साथियों को अपनी तरफ मिलाकर वह नासिक के आस पास के प्रदेश का स्वामी बन बैठा था। इसकी खबर मिलने पर शाहजादे ने दौलतख्तों को ५००० फौज के साथ उसे दंड देने के लिए भेजा। इस अवसर पर राजा सूरसिंह, सम्राटत बारहा, शहबाज़ख्तों, वुरहानुलमुल्क आदि कितने ही अफसर भी उसके साथ गये। उन्होंने बड़ी वीरता से बिद्रोही का सामना कर ता० ३ तीर (आषाढ सुदि १३ = ता० १४ जून) को नासिक पर अधिकार कर लिया^३।

बादशाह के ४७ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १६५९ = ई० सं० १६०२) में खुदावन्दख्तों हब्शी ने पातरी और पाटन (? बासीम) की सरकार में बिद्रोह

खुदावन्दख्तों हब्शी का दमन करना

की अग्नि भड़काई। इसपर खानखाना ने सूरसिंह और जालोर के राजनीख्तों की अध्यक्षता में एक सेना उसे दंड देने के लिए भेजी। उन्होंने वहां

(१) जि० १, पृ० १२४-५।

इस घटना का उल्लेख फारसी तवारीखों में नहीं है।

(२) यह भियां राजू दक्षिणी के नाम से प्रसिद्ध था। मलिक अम्बर के साथ-साथ यह भी निज़ामशाही राज्य के एक बड़े भाग का स्वतन्त्र स्वामी बन गया था।

(३) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० ११५४। मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २७०। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७। बजरत्नदास; मन्नासिरुल उमरा; पृ० ४५४। उमराय हुनूद; पृ० २५४।

पहुँचकर शत्रु का दमन किया और शांति की स्थापना की^१ ।

इसके कुछ समय बाद ही यह समाचार आया कि अम्बर^२ (चंपू) तिलंगाना पहुँच गया है। मीर मुरतज़ा, शेर श्वाजा के साथ नान्देर छोड़कर जहरी (सरकार पाठरी) में चला तो गया है पर शत्रुओं का उस ओर प्रभाव अधिक बढ़ने के साथ-साथ उपर्युक्त दोनों शाही अफसर संकट में हैं तो खानखाना ने अपने पुत्र ईरिज को उधर के बखेड़े का अन्त करने के लिए भेजा। ईरिज ने मीर मुरतज़ा और शेर श्वाजा के साथ मिलकर शत्रु पर आक्रमण करने का निश्चय किया। इसका पता लगते ही अम्बर दमतूर (?) होता हुआ कन्दहार की ओर चला। इसी बीच हब्शी फ़रहाद दो-तीन हजार सवारों के साथ अम्बर से जा मिला। शाही सेना बिना कहीं रुके हुए उनपर जा पहुँची। शत्रु सेना के सामना करने के लिए ठहरने पर शाही सेना भी युद्ध के लिए उद्यत हुई। ईरिज अपने पिता के सैनिकों और मनसबदारों के साथ बीच में रहा। इरावल में सूरसिंह, बहादुर-लुमुल्क, पर्वतसेन खत्री, मुकुन्दराय, रायसल दरबारी का पुत्र गिरधरदास आदि थे। दाहिनी तरफ़ मीर मुरतज़ा बहादुर सैनिकों के साथ विद्यमान था और बाईं तरफ़ अली मरदान बहादुर आदि थे। शाही सेना ने धीरता-पूर्वक शत्रु पर आक्रमण किया, परन्तु दाहिनी तथा बाईं ओर के सैनिकों की असावधानता के कारण अम्बर और फ़रहाद भाग गये। फिर भी बीस

(१) अबुल्फ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२११।
मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६१। ब्रजरत्नदास; मन्नासिरुल् उमरा; पृ० ४५४।

(२) इसका पूरा नाम मलिक अम्बर था। यह जाति का हब्शी और अहमद-नगर का प्रधान मन्त्री था। अहमदनगर का राज्य अकबर के अधिकार में जाने पर यह उधर के बहुतसे भाग का स्वतन्त्र शासक बन बैठा और उपद्रव करने लगा। जहाँ-गीर के राज्य समय में इसपर कई बार सेनाएं भेजी गईं, पर कोई परिणाम न निकला। पीछे से इसने मुगलों से लिए हुए प्रदेश शाहज़ादे शाहजहाँ के सुपुर्द कर दिये। वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में अस्सी वर्ष की अवस्था में इसकी मृत्यु हुई।

हाथी और अन्य सामान आदि शाही सेना के हाथ लगे । बादशाह ने इस विजय का समाचार पाकर विजयी अफसरों के मनसब में वृद्धि कर उन्हें घोड़े और सिरोपाव आदि पुरस्कार में दिये^१ ।

४८ वें राज्यवर्ष के प्रारम्भ (वि० सं० १६६०=ई० स० १६०३) में बादशाह ने, दक्षिण की लड़ाइयों में अच्छी कारगुजारी दिखाने के लिए सूरसिंह को एक नगारा दिया^२ । उसी वर्ष बादशाह ने शाह-सूरसिंह का जोधपुर जाना ज़ादे दानियाल को लिखा कि सूरसिंह बहुत दिनों से दक्षिण में रहने के कारण अब दरबार में हाज़िर होने और अपने देश के कार्यों की देखरेख के लिए जाने को उत्सुक है, अतएव गोविन्ददास भाटी और उसके साथ की सेना को अपने पास रखकर वह (दानियाल) उस- (सूरसिंह) को दरबार में आने और स्वदेश जाने के लिए छुट्टी दे दे^३ । इसके

(१) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२१२-३ । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० २६१-२ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७ । कविया करणीदान; सूरजप्रकाश; पृ० ८५-७ (हमारे संग्रह की हस्तलिखित प्रति) ।

जोधपुर राज्य की रयात में भी इस घटना का उल्लेख है । उसमें इस लड़ाई का वि० सं० १६५८ (चैत्रादि १६५६) ज्येष्ठ वदि अमावास्या (ई० स० १६०२ ता० ११ मई) को होना लिखा है (जि० १, पृ० १२४) । “अकबरनामे” के अनुसार यह घटना बादशाह के ४७ वें राज्यवर्ष की है, जो वि० सं० १६५८ चैत्र वदि १३ (ई० स० १६०२ ता० ११ मार्च) को प्रारम्भ हुआ था । रयात के अनुसार इस अवसर पर सूरसिंह को आधा मेहता तथा “सवाई राजा” का खिताब मिला, पर न तो फ़ारसी तवारीखों में इसका उल्लेख है और न उसके समय के मिले हुए वि० सं० १६६५ और १६६६ (पूरणचंद नाहर; जैन लेखसंग्रह; प्रथम खण्ड; संख्या ८७४ तथा ७७३) के लेखों में ।

(२) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२२६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१७ । मुंशी देवीप्रसाद-कृत “अकबरनामा” (पृ० ३०१) में रूढ़ा लिखा है ।

(३) अबुलफ़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२३० । मुंशी देवीप्रसाद; अकबरनामा; पृ० ३०२ ।

कुछ ही समय बाद सूरसिंह मीर सद्र (? हैदर) मुअम्माई को, जो अपनी मूर्खता के कारण उपद्रव कर रहा था, गिरफ्तार कर पाटन ले गया, जहां के हाकिम मर्तजा कुली ने उसे बाहर निकाल दिया^१।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह की आज्ञा प्राप्तकर (श्रावणादि) वि० सं० १६६१ (चैत्रादि १६६२) आषाढ वदि ८ (ई० सं० १६०५ ता० ३० मई) को सूरसिंह जोधपुर पहुंचा। उसके प्रस्थान करते समय बादशाह ने उसे जैतारण और मेड़ते का दूसरा अर्धांश दिया^२।

वि० सं० १६६२ कार्तिक सुदि १४ (ई० सं० १६०५ ता० १५ अक्टोबर) को बादशाह अकबर का देहान्त हो गया^३। तब हि० सं० १०१४

अकबर की मृत्यु और
जहांगीर की गद्दीनशानी

ता० २० जमादिउस्सानी (वि० सं० १६६२ मार्गशीर्ष
वदि ७ = ई० सं० १६०५ ता० २४ अक्टोबर) को

उसका ज्येष्ठ पुत्र सलीम जहांगीर नाम धारणकर
दिल्ली के तख्त पर बैठा^४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि जहांगीर के सिंहासनारुढ़ होने के समय गुजरात में फिर फसाद उठ खड़ा हुआ। तब बादशाह ने

सूरसिंह की गुजरात में
नियुक्ति

सूरसिंह को गुजरात में भेजा। उसने वहां पहुंचकर
विद्रोही लालमियां का दमन कर मांडव को अधीन
किया। लालमियां के साथ की लड़ाई में सूरसिंह

की सेना के राठोड़ सूरजमल जेतमालोत चांपावत, राठोड़ गोपालदास मांडवोत चांपावत, राठोड़ हरीदास चांदावत, राठोड़ गोपालदास ईडरिया आदि कई सरदार मारे गये। इसके बाद वि० सं० १६६३ फाल्गुन सुदि ७ (ई० सं० १६०७ ता० २३ फरवरी) को महाराजा वापस जोधपुर चला

(१) अबुलक़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२४६।

(२) जिल्द १, पृष्ठ १२५।

(३) अबुलक़ज़ल; अकबरनामा—बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० ३, पृ० १२६०।

(४) तुनुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १।

गया' ।

जहांगीर के तीसरे राज्यवर्ष के प्रारम्भ में ता० २५ ज़िलहिज (वि० सं० १६६५ वैशाख वदि ११ = ई० सं० १६०८ ता० १ अप्रैल) को सूरसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। उस समय उसके साथ अमरा का भाई श्याम और एक कवि था, जिसकी एक कविता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे एक हाथी पुरस्कार में दिया^१ ।

ता० १४ शावान (मार्गशीर्ष वदि २ = ता० १३ नवंबर) रविवार को बादशाह ने खानखाना को एक रत्नजटित तलवार और सिरोपाष आदि देकर उसे दक्षिण के कार्य पर जाने की इजाज़त दी। राजा सूरसिंह भी खानखाना के साथ ही दक्षिण में तैनात किया गया। इस अवसर पर उसका मनसब बढ़ाकर २००० ज़ात और २००० सवार कर दिया गया^२ ।

(१) जिल्द १, पृ० १२५-६। फ़ारसी तवारीखों में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) तुजुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १४०-१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १०२-३। “वीरविनोद” में वि० सं० १६६५ चैत्र सुदि १३ (हि० सं० १०१६ ता० १२ ज़िलहिज=ई० सं० १६०८ ता० १ मार्च) को सूरसिंह का जहांगीर की सेवा में जाना लिखा है (भाग २, पृ० ८१७), जो ठीक नहीं है। ता० १२ के स्थान में ता० २५ ज़िलहिज होनी चाहिये, जैसा कि ऊपर लिखा गया है। डॉड सूरसिंह का अपने पुत्र गजसिंह के साथ बादशाह की सेवा में जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० १७०) ।

(३) तुजुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० १५३। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ११३-१४। “वीरविनोद” (भाग २, पृ० २१७) तथा वज़रनदास-कृत ‘मन्नासिरुल उमरा’ (पृ० ४५४) में चार हज़ार ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब मिलना लिखा है। “उमराए हन्द” (पृ० २५५) से भी “वीरविनोद” के कथन की पुष्टि होती है। इनमें से प्रथम पुस्तक में मनसब वृद्धि का समय जहांगीर का चौथा राज्यवर्ष दिया है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है— 'वि० सं० १६६६ (ई० स० १६०६) में राणा अमरसिंह का दमन करने के लिए बादशाह ने महाबतख़ां को नियतकर उसे मोही भेजा। उसने वहाँ जाकर पता लगाया तो मालूम हुआ कि राणा का परिवार सूरसिंह के इलाक़े के सोजत नामक स्थान में है।

महाबतख़ां का सोजत लेना
तथा उसका पीछा मिलना

इससे अप्रसन्न होकर उसने सोजत का परगना कर्मसेन^१ (उग्रसेनोत) को देकर उससे राणा के परिवार का पता लगाने के लिए कहा। (श्रावणादि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६६७) वैशाख वदि २ (ई० स० १६१० ता० ३१ मार्च) को कर्मसेन ने जाकर सोजत पर अधिकार किया। दक्षिण जाते समय मार्ग में इसकी खबर पाकर सूरसिंह ने गोविन्ददास भाटी को भेजा, जिसने महाबतख़ां से इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा सुना, पर कोई परिणाम न निकला। तब वह मेड़ते में कुंवर गजसिंह के पास चला गया। कुछ दिनों पश्चात् महाबतख़ां के स्थान में अच्युतख़ां की नियुक्ति हुई, जिसने कुंवर गजसिंह और गोविन्ददास को बुलाकर नाडोल और सोजत वापस दे दिये। तब गजसिंह ने कर्मसेन को निकालकर सोजत और राजनीख़ां को निकाल कर नाडोल पर अधिकार कर लिया^२।

वि० सं० १६६८ (ई० स० १६११) में सीसोदिया भीम इसाली (?) लूटकर भागा। उस समय राठोड़ लक्ष्मण (नारायणोत) और राठोड़ अमरा

(१) काबुल के शहूरबेग का पुत्र ज़मानाबेग। पीछे से इसे महाबतख़ां का भित्ताय मिलता।

(२) भिणायवालों का पूर्वज।

(३) जिल्द १, पृ० १२६-७। 'मुमुक-इ जहांगीरी' में इस घटना का उल्लेख नहीं है, परन्तु उससे इतना पता चलता है कि जहांगीर के चौथे राज्यवर्ष के आरम्भ में महाबतख़ां हटाया जाकर उसके स्थान में अच्युतख़ां राणा पर नियुक्त किया गया था (रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद: जि० १, पृ० १५५)। उक्त तवारीख़ के अनुसार यह घटना हि० स० १०१७ (वि० सं० १६६५=ई० स० १६०८) की है। यदि ख्यात की घटना ठीक भी मान ली जाय तो यही मानना पड़ेगा कि उसका समय उसमें शल्लत दिया है।

गोविन्ददास की कुंवर
सूरसिंह से लड़ाई

(सांवलदासोत) आकर उससे लड़े, पर मारे गये^१। उसी वर्ष अहमदाबाद से ऊंटों पर शाही खज़ाने के आगरे जाने की खबर पाकर कुंवर कर्णसिंह (मेवाड़वाला) ने कितने ही राजपूतों को साथ लेकर मारवाड़ के दूनाड़े गांव तक उसका पीछा किया, परन्तु खज़ाना पहले ही अजमेर की तरफ निकल गया था, जिससे उसे लौटना पड़ा। लौटते समय मालगढ़ और भाद्राजूरण के पास भाटी गोविन्ददास नाडोल से अपनी सेना सहित उस (कर्णसिंह) पर चढ़ गया। उससे कुछ लड़ाई हुई। जिसमें दोनों तरफ़ के बहुतसे आदमी मारे गये। फिर कुंवर पहाड़ों में लौट गया^२।

वि० सं० १६६८ (ई० सं० १६११) में जब बादशाही फ़ौज दक्षिण की तरफ़ जा रही थी उसमें बहुतसे राजा तथा नवाब आदि थे। एक दिन राजा मानसिंह कछुवाहे के उमरावों के साथ के हाथी ने सूरसिंह के उमराव भाटी जोगशीदास गोयंददासोत (धीजवाड़िया) को अज्ञानक सूड़ से पकड़कर घोड़े से गिरा दिया और अपने बाहरी दांत उसके शरीर के आर-पार कर दिये। जोगशीदास ने इस दशा में रहते हुए भी कटार निकालकर हाथी के कुंभस्थल पर तीन बार मारा, पर वह जीता न बचा। इसपर मानसिंह ने वह हाथी सूरसिंह को दे दिया। सूरसिंह ने पीछे से बड़ी हाथी उदयपुर में शाहज़ादे खुर्रम को नज़र किया^३।

सिरोही के महाराव सुरताण का स्वर्गवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र राव राजसिंह वि० सं० १६६७ (ई० सं १६१०) में उसका उत्तराधिकारी हुआ। वह सरल प्रकृति का भोला राजा था, जिससे अवसर पाकर उसका छोटा भाई सूरसिंह राज्य छीनने का प्रयत्न करने लगा। उसने इस समय

सिरोही के सूरसिंह से
लिखा-पढ़ी

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२८।

(२) वही; जि० १, पृ० १२८-६। वीरविनोद; भाग २, पृ० २२६।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १००७, १००८ तथा १४४३ ?

जोधपुर के स्वामी सूरसिंह से सहायता प्राप्त करने के हेतु उसे अपनी तरफ़ मिलाता चाहा। महाराव सुरताण ने दाताणी की लड़ाई में रायसिंह को मारा था, उस वीर को मिटाने के लिए उसने यह स्थिर किया कि कुंवर गजसिंह का विवाह उसकी पुत्री से कर दिया जाय और २६ राजपूतों के विवाह, जिनके सम्बन्धी दाताणी की लड़ाई में मारे गये थे, सूरसिंह (सिरोही) के पक्ष के राजपूतों की लड़कियों से हो। देवड़ा बीजा का जड़ाऊ कटार कुंवर गजसिंह को दिया जाय और रायसिंह के डेरे, उसका सब सामान और नगारा जो सुरताण ने छीन लिया था पीछा दे दिया जाय। इसके बदले में सूरसिंह देवड़ा सूरसिंह को सिरोही की गद्दी पर बिठलावे और बादशाह के पास ले जाकर उसे शाही सेवा में प्रविष्ट करावे और ऐसा प्रबन्ध कर दे कि उस (देवड़ा सूरसिंह) का पुत्र कभी राज्य से निकाला न जाय। ये सब बातें आपस में तय होकर, इसकी तहरीर वि० सं० १६६८ फाल्गुन वदि ६ (ई० सं० १६१२ ता० १२ फरवरी) को लिखी गई^१। इस खटपट से राजसिंह और उसके भाई सूरसिंह के बीच द्वेषभाव बढ़ता गया और अन्त में दोनों में लड़ाई हुई, जिसमें महाराव की विजय हुई और सिरोही की गद्दी पर बैठने की सूरसिंह की आशा दिल ही में रह गई। इतना ही नहीं उसे सिरोही राज्य छोड़कर भागना पड़ा^२, क्योंकि उपर्युक्त लिखा-पढ़ी का कुछ भी परिणाम न हुआ।

नागौर के गांव भांवड़ा का भाटी सुरताण (मानावत) राणा सगर का चाकर था। राटोड़ गोपालदास (भगवानदासोत) आदि कई राजपूतों ने चढ़ाईकर (आबणादि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० सं० १६१३ ता० १६ मई) को उसे मार डाला। इसकी खबर

भाटी सुरताण के वीर में
गोपालदास का मारा जाना

(१) मुंशी देवीप्रसाद ने स्वलिखित “तवारीख रियासत सिरोही” (उर्दू) में तहरीर की पूरी नक़ल दी है (पृ० ६३)।

(२) मेरा; सिरोही राज्य का इतिहास; पृ० २४५-६। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १३५-६ तथा १३८।

मिलने पर भाटी गोविन्ददास ने सूरसिंह से, जो जोधपुर में ही था, इस विषय में निवेदन किया और गोपालदास पर सेना भेजने को कहा। इसपर कुंवर गजसिंह ने चढ़ाई कर गांव नीलियां के पास गोपालदास को मार डाला^१।

शाहज़ादा परवेज़, महाबतख़ां और अब्दुल्लाख़ां की चढ़ाइयां निष्फल होने के कारण बादशाह ने यह विचार किया कि जब तक मैं स्वयं न जाऊंगा

सूरसिंह का खुर्रम के साथ
महाराणा पर जाना

तब तक राणा अधीन न होगा। इसी विचार से ज्योति-

षियों के बताये हुए मुहूर्त के अनुसार हि० सं०

१०२२ ता० २ शवान (वि० सं० १६७० आश्विन सुदि

३=ई० सं० १६१३ ता० ७ सितम्बर) को वह आगरे से प्रस्थान कर ता०

५ शन्वाल (मार्गशीर्ष सुदि ७=ता० ८ नवम्बर) को अजमेर पहुंचा। इस

सम्बन्ध में बादशाह स्वयं लिखता है—‘मेरी इस चढ़ाई के दो अभिप्राय

थे—एक तो ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की ज़ियारत करना और दूसरे

बारी राणा को, जो हिन्दुस्तान के मुख्य राजाओं में से है और जिसकी

तथा जिसके पूर्वजों की श्रेष्ठता और अध्यक्षता यहां के सब राजा और

रईस स्वीकार करते हैं, अधीन करना।’ बादशाह ने अजमेर पहुंचकर

स्वयं वहां ठहरना निश्चय किया और मेवाड़ में रक्खी हुई पहले की सेना

के अतिरिक्त १२००० सवार साथ देकर शाहज़ादे खुर्रम को खूब इनाम-

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १३५ और १४०। बांकीदास; ऐतिहासिक वार्ते; संख्या ७५६ (तिथि ८ दी है)।

(२) बादशाह जहांगीर ने मेवाड़ पर भेजे हुए अपने भिन्न-भिन्न अफ़सरों की हार का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया, परंतु मौलवी अब्दुलहमीद लाहोरी अपने “बादशाहनामे” में लिखता है—‘राणा पर की चढ़ाइयों में जाकर शाहज़ादा परवेज़, महाबतख़ां और अब्दुल्लाख़ां ने सिवाय परेशानी व सरगर्दानगी के कोई फ़ायदा न उठाया (बादशाहनामा [मूल]; जि० १, पृ० १६५)।’ आगे चलकर उसी पुस्तक में लिखा है कि शाहज़ादा और महाबतख़ां मांडल से आगे नहीं बढ़े थे (वही; जि० १, पृ० १६७। बीरबिनोद; भाग २, पृ० २३०)। इससे अनुमान होता है कि यदि वे आगे बढ़ेंगे तो नुक़सान उठाकर ही वापस लौटेंगे।

इकराम से उत्साहित कर मेवाड़ पर भेजा^१। इस अवसर पर अन्य सरदारों के अतिरिक्त जोधपुर का सूरसिंह भी शाहजादे के साथ भेजा गया^२।

जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस सम्बन्ध में लिखा है—‘अजमेर पहुँचकर बादशाह ने शाहजादे खुर्रम को उदयपुर भेजा और सूरसिंह को दक्षिण से बुलाया। गुजरात से होता हुआ (आवणदि) वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि १२ (ई० सं० १६१३ ता० २१ मई) को वह (सूरसिंह) जोधपुर पहुँचा। पीछे वि० सं० १६७० के मार्गशीर्ष (ई० सं० १६१३ नवंबर) में वह अजमेर में बादशाह के पास पहुँच गया, जहाँ से वह शाहजादे के पास उदयपुर भेजा गया^३।’

फलोधी का परगना बादशाह ने बीकानेर के स्वामी सूरसिंह के नाम कर दिया था। वि० सं० १६७० (ई० सं० १६१३) में वहाँ का अधि-
कार बादशाह ने पुनः जोधपुर के सूरसिंह को दे
सूरसिंह को फलोधी मिलना दिया^४।

शाहजादे खुर्रम ने मेवाड़ में पहुँचकर महाराणा को घेरने के लिए पहाड़ी प्रदेश में जगह-जगह शाही थाने स्थापित कर वहाँ अपने काफ़ी सैनिक रख दिये^५। फिर शाही सेना दिन-दिन लूट-मार करती हुई आगे बढ़ने लगी। इससे क्रमशः

(१) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६-२६। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० १७३-७४ और १७७-६।

(२) वीरविनोद; भाग २, पृ० २२६। मजरूनदास-रचित “मन्नासिरुल उमरा” में जहांगीर के ८ वें राज्यवर्ष में सूरसिंह का खुर्रम के साथ महाराणा अमरसिंह पर जाना लिखा है (पृ० ४५५)।

(३) जि० १, पृ० १२७-८। बांकीदास; ऐतिहासिक घातें; संख्या १६२३ (सूरसिंह का महाराणा अमरसिंह की चढ़ाई में शामिल रहना लिखा है)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४३।

(५) सादकी के थाने पर जोधपुर का राजा सूरसिंह नियत किया गया था। सर्वत्र पूरा प्रबंध किये जाने पर भी कभी कभी राजपूत शाही सेना पर हमला कर ही

महाराणा का कार्यक्षेत्र संकुचित होने लगा। शाही सेना जहां-जहां पहुंचती वहां गांवों को लूटती और जो बाल-बच्चे, स्त्रियां आदि उसके हाथ लगते उनको पकड़ लेती थी। ऐसी स्थिति में महाराणा के सरदारों ने उससे मुसलमानों से संधि करने के लिए निवेदन करने का विचार किया, परंतु वे यह भली भांति जानते थे कि महाराणा उनकी बात न मानेगा; अतएव उन्होंने यह विचार कर कि कुंवर कर्णसिंह के शाही दरबार में जाने की शर्त पर यदि बादशाह राजी हो जाय तो बात रह सकती है, अपना मन्तव्य कुंवर से प्रकट किया^१। उसे भी उनकी सलाह पसंद आई और महाराणा को इसकी सूचना दिये बिना ही उन्होंने गुप्त रूप से राय सुन्दरदास को शाहजादे की इच्छा जानने के लिए उसके पास भेजा। शाहजादा तो इसके लिए पहले ही से इच्छुक था, अतएव उसने यह शर्त स्वीकार कर इसकी सूचना बादशाह को भेज दी। इसपर बादशाह ने खुर्रम को महाराणा का मामला तय करने की इजाजत दे दी और इस विषय का फ़रमान उसके पास भेज दिया^२। फ़रमान पहुंचने पर कर्णसिंह ने सुलह-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त महाराणा से कहा। अब हो ही क्या सकता था? महाराणा को इच्छा न होते हुए भी इसे

देते थे। देलवाड़े के भाला मानसिंह के तीन पुत्र—शत्रुशाल, कल्याण और आसकरण—थे, जिनमें से शत्रुशाल महाराणा प्रतापसिंह का भानजा लगता था और उससे कुछ खटपट हो जाने के कारण वह जोधपुर के स्वामी सूरसिंह के पास चला गया, जिसने उसे भाद्राज्य का पट्टा जागीर में दिया। महाराणा अमरसिंह को संकट में जान और कुंवर गजसिंह के ताना मारने के कारण वह मेवाड़ की ओर चला। मार्ग में उसका भाई कल्याण भी उससे मिल गया, जिससे सलाह कर दोनों ने आवड़-सावड़ के पहाड़ों के बीच की नाल में शाही सेना पर आक्रमण किया। शत्रुशाल इस लड़ाई में घायल होकर पहाड़ों में चला गया और कल्याण कैद हो गया। पीछे से स्वस्थ होने पर शत्रुशाल ने फिर शाही सेना पर हमला किया और रावलगांव में लड़ता हुआ मारा गया (वीरविनोद; भाग २, पृ० २३२। विस्तृत विवरण के लिए देखो मेरा; राजपूताने का इतिहास; जि० २, पृ० ८०३-४)।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३६।

(२) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और वेवरिज-कृत अनुवाद जि० १, पृ० २७४।

स्वीकार करना पड़ा। तदनुसार सन् जलूस ६ ता० २६ घहमन (वि० सं० १६७१ फाल्गुन वदि २ = ई० स० १६१५ ता० ५ फ़रवरी) को शाहज़ादे के पास महाराणा और उसके पुत्रों का उपस्थित होना निश्चित हुआ^१। उपर्युक्त तारीख़ को महाराणा अमरसिंह अपने दो भाइयों—सहसमल तथा कल्याण—एवं तीन कुंवरों—भीमसिंह, सूरजमल और बाघसिंह—तथा कई सरदारों एवं बड़े दरजे के अधिकारियों सहित गोगुन्दे के थाने पर शाहज़ादे से मुलाकात करने को चला। महाराणा के शाही सैन्य के निकट पहुँचने पर सूरसिंह आदि कई राजा तथा अन्य अफसर उसकी पेशवाई के लिए भेजे गये, जो उसे बड़े सम्मान के साथ शाहज़ादे के पास ले गये^२। दस्तूर के मुवाफ़िक़ सलाम-कलाम होने के पश्चात् शाहज़ादे ने कृपापूर्वक उसको अपनी छाती से लगाकर बाईं तरफ़ बिठलाया^३। महाराणा ने शाहज़ादे को एक उत्तम लाल^४, कुछ जड़ाऊ चीज़ें, ७ हाथी और ६ घोड़े नज़र किये। शाहज़ादे ने भी उसे तथा उसके साथ के लोगों को खिलअत आदि दीं और उसे शुक्लसिंह और सुंदरदास के साथ विदा किया^५। इसके बाद इलाही सन् ५६ तारीख़ ११ अस्फन्दारमज़ (वि० सं० १६७१ फाल्गुन सुदि २ = ई० स० १६१५ ता० १६ फ़रवरी) रविवार को शाहज़ादा कर्णसिंह को साथ लेकर बादशाह की सेवा में अजमेर में उपस्थित हो गया। बादशाह ने कर्णसिंह को दाहिनी पंक्ति में सर्वप्रथम खड़ा कर

(१) तुजुक-इ-जहांगीरी (अंग्रेज़ी); जि० १, पृ० २७४।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में सूरसिंह का महाराणा की पेशवाई के लिए जाना तो नहीं लिखा है, पर उससे भी यह पाया जाता है कि वह महाराणा और शाहज़ादे की मुलाकात के समय वहां उपस्थित था (जि० १, पृ० १२८)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार यह घटना वि० सं० १६७२ फाल्गुन सुदि २ (ई० स० १६१६ ता० ६ फ़रवरी) को हुई (जि० १, पृ० १२८), जो ठीक नहीं है।

(४) इस लाल के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो ऊपर पृ० ३३७ का टिप्पण्य।

(५) वीरविनोद; भाग २, पृ० २३७-३८। तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेजरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २७५-६।

उसे खिलअत और एक जड़ाऊ तलवार दी' ।

जहांगीर के दसवें राज्य-वर्ष में ता० ६ फरवरदीन (वि० सं० १६७१ चैत्र वदि ३०=ई० स० १६१५ ता० १६ मार्च) को सूरसिंह की तरफ से आये हुए उपहार बादशाह के समक्ष पेश किये गये, सूरसिंह के मनसब में वृद्धि जिनमें से उसने ४३ हजार रुपये के मूल्य की वस्तुएं रखीं । अनन्तर ता० १३ फरवरदीन (वि० सं० १६७२ चैत्र सुदि ४ = ई० स० १६१५ ता० २३ मार्च) को सूरसिंह ने स्वयं उपस्थित होकर सौ मोहरें बादशाह को नज़र कीं । ता० ६ उर्दूबिहिश्त (वैशाख सुदि २=ता० १६ अप्रैल) को उसने "रण-रावत" नाम का एक बड़ा हाथी भेंट किया, जिसे बादशाह ने निजी फ़ीलखाने में भिजवा दिया । इसके तीन दिन बाद ही उसने सात हाथी और भेंट किये, जो सब बादशाह के निजी फ़ीलखाने में रखे गये । ता० १७ (वैशाख सुदि ६=ता० २७ अप्रैल) को बादशाह ने सूरसिंह का मनसब बढ़ाकर २००० ज़ात तथा २००० सवार कर दिया । इसके कुछ ही दिनों बाद सूरसिंह ने एक दूसरा मूल्यवान हाथी, जिसका नाम "फ़ौज-शृंगार" था, बादशाह को भेंट किया, जिसके बदले में बादशाह ने उसे एक खासा हाथी दिया^१ ।

बादशाह लिखता है—'ता० १५ खुरदाद (वि० सं० १६७२ ज्येष्ठ सुदि ६=ई० स० १६१५ ता० २६ मई) को एक अजीब बात हुई । मैं उस रात दैव संयोग से पोहकर (पुष्कर) में ही था । राजा सूरसिंह का भाई किशनसिंह (किशनगढ़ का संस्थापक), सूरसिंह के वकील गोविन्ददास पर, जिसने कुछ समय पूर्व उस (किशनसिंह) के भतीजे गोपालदास को मारा था^२, अग्रसन्न था । किशनसिंह

सूरसिंह के भाई किशनसिंह का मारा जाना

(१) तुजुक-इ-जहांगीरी; रोजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २७६-७ ।

(२) वही; जि० १, पृ० २८२, २८३, २८८, २८९ तथा २९० ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसके मारे जाने का वृत्तान्त नीचे लिखे अनुसार दिया है—

'वि० सं० १६६६ (चैत्रादि १६७०) ज्येष्ठ सुदि ७ (ई० स० १६१३ ता० १६ मई)

को आशा थी कि सूरसिंह इस अपराध के लिए गोविन्ददास को मरवा देगा, परन्तु उसने गोविन्ददास की योग्यता का विचारकर ऐसा न किया। किशनसिंह ने ऐसी दशा में स्वयं अपने भतीजे का बदला लेने का निश्चय किया। बहुत दिनों तक चुप रहने के अनन्तर ऊपर लिखी हुई तारीख को उसने अपने समस्त अनुगामियों को बुलाकर कहा कि चाहे कुछ भी हो मैं आज रात को गोविन्ददास को ज़रूर मार डालूंगा। राजा को इस गुप्त अभिसंधि की बिल्कुल खबर न थी। सबेरा होने के कुछ पूर्व किशनसिंह अपने साथियों सहित राजा के डेरे के दरवाज़े पर पहुँचा, जहाँ से उसने कुछ आदमियों को पहले गोविन्ददास के डेरे पर भेजा, जो निकट ही था। उन्होंने भीतर प्रवेश कर गोविन्ददास के कई अनुचरों के मारने के अनन्तर उसे भी मार डाला। जब तक ये समाचार किशनसिंह के पास पहुँचे वह उतावला होकर अश्वारूढ़ ही, साथियों के मना करने पर ज़रा भी ध्यान न देकर, भीतर घुस गया। इस कोलाहल में सूरसिंह की नींद खुल गई और वह नंगी तलवार लिये हुए बाहर निकल आया। उसके अनुचर भी जगकर चारों तरफ़ से दौड़ पड़े। किशनसिंह और उसके साथियों के अन्दर पहुँचते ही वे उसपर दूट पड़े। फलस्वरूप किशनसिंह और उसका भतीजा करण मारे गये तथा दोनों तरफ़ के ६६ आदमी (सूरसिंह के ३० और किशनसिंह के ३६) काम आये। दिन निकलने पर इस बात का पता लगा

को भाटी गोविन्ददास के भाई सुरताण पर राठोड़ सुन्दरदास, सूरसिंह (रामसिंहोत), राठोड़ नरसिंहदास (कल्याणदासोत) तथा गोपालदास (भगवानदासोत) ने आक्रमण किया। सुरताण मारा गया और गोपालदास घायल होकर निकल गया। इसपर कुंवर गजसिंह तथा गोविन्ददास ने उसका पीछा किया और मेदते के गाँव खाखड़की में उसे मार डाला (जि० १, पृ० १४०)।

टोंड ने गजसिंह के राज्य-समय में किशनसिंह का मारा जाना लिखा है (राजस्थान; जि० २, पृ० १७४), जो ठीक नहीं है, क्योंकि उस समय तक तो गजसिंह ने राज्य भी नहीं पाया था।

(१) जोधपुर राज्य की रियात में संख्या = १ दी है (जि० १, पृ० १४२)।

और राजा ने अपने भाई, भतीजे एवं कई प्रिय अनुचरों को मरा पाया' ।^१

जोधपुर राज्य की ख्यात में इस घटना का वर्णन भिन्न-प्रकार से दिया है। उसमें लिखा है कि किशनसिंह, कर्मसेन (उग्रसेनोत) और कर्णसिंह आदि ने मिलकर बादशाह के अजमेर में रहते समय उससे अर्ज की कि गोविन्ददास ने गोपालदास को मार डाला है। तब बादशाह ने कहा कि तुम गोविन्ददास को मार डालो। इसपर अर्ज करनेवालों ने कहा कि गोविन्ददास तो सूरसिंह का चाकर है। बादशाह ने उत्तर दिया कि उसके डेरे पर जाकर मारो। तदनुसार (श्रावणादि) वि० सं० १६७१ (वैशाख १६७२) ज्येष्ठ सुदि = (ई० सं० १६१५ ता० २५ मई) को किशनसिंह ने अपने साथियों के साथ गोविन्ददास के डेरे पर जाकर दिन निकलने के पूर्व उसे मार डाला^२। उस समय सूरसिंह सोया हुआ था, वह हल्ला सुनकर उठा। फिर गोविन्ददास के मारे जाने का समाचार सुनकर उसने अपने राजपूतों को गजसिंह को मारनेवालों के पीछे भेजा, जिन्होंने किशनगढ़ जाकर किशनसिंह से झगड़ा किया और उसे मार डाला^३।

ख्यात का उपर्युक्त कथन कल्पित है। बादशाह आगे चलकर स्वयं लिखता है—'यह खबर (किशनसिंह आदि के मारे जाने की) मेरे पास पुष्कर में पहुंची तो मैंने हुक्म दिया कि मृतकों का उनकी रीति के अनुसार अंतिम संस्कार करा दिया जाय और इस घटना की पूरी तहकीकात करके मुझे सूचित किया जाय। बाद में पता चला कि बात वही थी, जो ऊपर लिखी गई' ।^४ इससे स्पष्ट है कि बादशाह को पहले से इस घटना का पता न था। फिर किशनसिंह आदि का उसके पास जाकर गोपालदास के

(१) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६१-३। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०३-४। उमराए हन्द; पृ० २४६।

(२) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या १८२८) ने भी इसी तिथि को गोविन्ददास का मारा जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृष्ठ १४०-१।

(४) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६३।

मारे जाने का हाल कहना और उसका गोविन्ददास को मारने की इजाजत देना आदि कैसे माना जा सकता है। इस सम्बन्ध में बादशाह का लिखना ही माननीय है।

इसके कुछ दिनों बाद बादशाह ने सूरसिंह को दक्षिण के कार्य पर खाना किया। इस अवसर पर बादशाह ने उसे सूरसिंह का दक्षिण भेजा जाना मोतियों की एक जोड़ी और काश्मीरी दुशाला दिया^१।

ता० २५ खुरदाद (आषाढ वदि ४ = ता० ५ जून) को दो मास की छुट्टी प्राप्त कर सूरसिंह जोधपुर गया, जिसकी समाप्ति होने के बाद अपने पुत्र गजसिंह सहित ता० १६ मिहिर (कार्तिक वदि ६ = ता० २ अक्टोबर) को बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर उसने सौ मोहरें और एक हजार रुपये भेंट किये^२।

ता० १६ आबान (मार्गशीर्ष वदि ३ = ता० २६ अक्टोबर) को सूरसिंह ने बादशाह से दक्षिण जाने की आज्ञा प्राप्त की। इस अवसर पर उसका मनसब बढ़ाकर ५००० ज़ात और तीन हजार तीन सौ सवार का कर दिया गया तथा एक घोड़ा एवं खिल-अत उसे खाना होने के पूर्व दी^३।

उसी वर्ष उदयरण के पौत्र मनोहरदास को सूरसिंह ने पीसांगण की जागीर दी, परंतु थोड़े दिनों बाद ही बीकानेर के सूरसिंह ने मनोहरदास को मरवा दिया^४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘वि० सं० १६७३ (ई० सं०

(१) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६३। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०५।

(२) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० २६४, ३००। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २०५, २१०।

(३) तुजुक-इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० १, पृ० ३०१। मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २१०-११।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ६४५-६।

१६१६) में बादशाह ने अजमेर में रहते समय कुंवर गजसिंह के नाम जालोर का परगना लिख दिया और उसे आज्ञा दी कि वह वहां से बिहारियों को निकाल दे। इसके अनुसार गजसिंह ने जाकर जालोर से बिहारियों को निकाल दिया, जो भागकर पाल्हणपुर चले गये।^१

“तारीख पालनपुर” में इस घटना का विस्तृत वर्णन दिया है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

‘जालोर के शासक गजनीखां का देहांत होने पर, वहां की गद्दी के लिए भगड़ा खड़ा हुआ। राजमाता-द्वारा अर्जी पेश होने पर बादशाह जहांगीर ने पहाड़खां को जालोर का हकदार नियत कर उसे एक खासा हाथी दिया। तदनुसार हि० स० १०२६ (वि० सं० १६७४ = ई० स० १६१७) में वह जालोर पहुंचकर वहां की गद्दी पर बैठा। इसके कुछ दिनों बाद वह बादशाह की तरफ से दक्षिण की लड़ाई में गया, जहां से लौटने पर वह बुरहानपुर की धानेदारी पर भेजा गया। कम उम्र होने के कारण वह धीरे-धीरे पेशोआराम में फंस गया और राज-कार्य की तरफ से उदासीन रहने लगा। राजमाता ने उसे समझाने की चेष्टा की तो दुष्ट लोगों के बहकाने में आकर उसने उसे मरवा डाला। इसकी खबर बादशाह को होने पर पहाड़खां कैद कर हि० स० १०२८ (वि० सं० १६७६ = ई० स० १६१९) में हाथी के पैरों में बंधवाकर मरवा डाला गया। उसका पुत्र निज़ामखां विद्यमान था, पर बादशाह ने जालोर की जागीर शाहजादे खुर्रम के नाम कर दी और वहां का प्रबन्ध करने के लिए फ़तहउल्ला बेग भेजा गया। पहाड़खां के हिमायतियों ने उसके खिलाफ़ खिरकीवाव नामक स्थान में सेना एकत्र की। फ़तहउल्ला बेग ने एक बार उन्हें समझाने का प्रयत्न किया, पर जालोरियों ने उसपर ध्यान न देकर आक्रमण कर दिया और थोड़ी लड़ाई के बाद शाही सेना को भगा

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४२। “तुलुक-इ-जहांगीरी” में इसका उल्लेख नहीं है, पर उससे पाया जाता है कि वि० सं० १६७३ (ई० स० १६१६) में बादशाह अजमेर में ही था (जि० १, पृ० २१७)।

दिया। इस पराजय का समाचार मिलने पर बादशाह ने सूरसिंह को जालोर का हाकिम नियत किया। सूरसिंह की आज्ञानुसार गजसिंह ने भंडारी लूणा तथा एक बड़ी सेना के साथ जालोर के गढ़ पर आक्रमण कर दिया। जालोर की दशा ठीक न थी। सरदार मनमानी और लूट-मार करने में लगे थे। ऐसी दशा में नारायणदास काबा ने, जो गढ़ में था, गुप्त प्रवेश-मार्ग की सूचना गजसिंह को दे दी, जिससे राठोड़ सेना ने खांडा बुर्ज की तरफ से गढ़ में प्रवेश कर थोड़ी लड़ाई के बाद वहां अधिकार कर लिया। दूसरे दिन नगर के फाटक पर जालोरी पठानों से राठोड़ों का युद्ध हुआ। जोधपुर का बारहट जादोदान लिखता है कि शहरपनाह पर चढ़ी हुई तोपों की गोलाबारी और जालोरी पठानों की हिम्मत भरी वीरता के कारण निकट था कि राठोड़ों के पैर उखड़ जाते, पर डोडियाळी के ठाकुर पूंजा, कीरतसिंह तथा देवड़े आदि राजपूतों के गजसिंह से मिल जाने के कारण अन्त में जालोरियों की पराजय हुई और राठोड़ों का जालोर पर कब्ज़ा हो गया। भीनमाल उस समय तक जालोर के कामदार मोकलसी के अधिकार में ही था। जालोर पर राठोड़ों का कब्ज़ा होते ही पठानों का दीवान राजसी बचे हुए जालोरियों के साथ वहां चला गया, पर अभी वे लोग वहां जमने भी न पाये थे कि राठोड़ों ने उनपर चढ़ाई कर दी। राजसी, मोकलसी आदि बहुत से व्यक्ति इस लड़ाई में काम आये और शेष भागकर हि० स० १०२६ (वि० स० १६७७ = ई० स० १६२०) में पालनपुर के कुरभा नामक स्थान में बस गये तथा निकटस्थ अर्बली पहाड़ की घाटियों का आश्रय लेकर पालनपुर के इलाक़े में लूट-मार करने लगे। परिणाम यह हुआ कि कितने ही वर्षों तक वह इलाक़ा वीरान पड़ा रहा। हि० स० १०४५ (वि० स० १६६२ = ई० स० १६३५) में पहाड़खां का चाचा फ़ीरोज़खां, जो बालापुर का थानेदार था, उन लोगों से जाकर मिला और फिर कुरभा से पालनपुर जाकर वहीं उसने अपना निवासस्थान बनाया।^१

(१) सैयद गुलाब मियां-कृत; पृ० १५०-१६०। नवाब सर तालेमुहम्मदख़ां; पालनपुर राज्य नो इतिहास (गुजराती); भाग १, पृ० ५४-६२।

दक्षिण में पुनः उपद्रव खड़ा होने पर वि० सं० १६७५ (ई० सं० १६१८) में बादशाह ने अजमेर से सूरसिंह को उधर भेजा। पीसांगण में डेरा होने पर सूरसिंह ने कुंवर गजसिंह, आसोप के रवामी दक्षिणियों के साथ लड़ाई राठोड़ राजसिंह (खीवावत), व्यास नाथू तथा भंडारी लूणा आदि को जोधपुर के प्रबन्ध के लिए रवाना कर दिया और स्वयं बुरहानपुर गया। महकर में रहते समय सूरसिंह, नवाब खानखाना आदि को दक्षिणियों ने चारों तरफ से घेर लिया। कुछ ही दिनों में रसद आदि की कमी होने पर लोगों को बड़ा कष्ट होने लगा। ठाकुरों आदि ने कुंभकर्ण (पृथ्वीराजोत जैतावत) को भेजकर इसकी सूचना महाराजा से कराई, जिसपर उसने सोने का एक थाल और दो रकाबियां उसे दे दीं। इनके व्यय हो जाने पर फिर पहले की सी दशा हो गई। सरदारों ने पुनः कुंभकर्ण को महाराजा के पास भेजा। महाराजा ने खानखाना से सारी बात कही, पर उसने उत्तर दिया कि बादशाह की आज्ञा है, अतएव न तो मैं युद्ध करूंगा और न महकर का परित्याग ही। इसपर महाराजा ने वापस जाकर कुंभकर्ण से कह दिया कि तुम्हें युद्ध करना हो तो जाकर लड़ो। कुंभकर्ण ने पांच सवारों के साथ जाकर बीजापुरवालों पर आक्रमण किया

टॉड लिखता है कि उस समय जालोर गुजरात के स्वामी के अधीन था। उसको विजय कर जब गजसिंह अपने पिता के साथ बादशाह जहांगीर की सेवा में उपस्थित हुआ तो उस (बादशाह) ने उसे एक तलवार दी। कवि के शब्दों में बिहारी पठानों के विरुद्ध जाकर गजसिंह ने तीन मास में ही वह कार्य कर दिखाया, जिसे करने में अलाउद्दीन को कई वर्ष लगे थे तथा सात हजार पठानों को तलवार के घाट उतारकर जीत का बहुतसा सामान बादशाह के पास भिजवाया (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७०)। टॉड का यह कथन कि उस समय गुजरात के शासक के अधीन जालोर था ठीक नहीं है, क्योंकि इसके बहुत पूर्व ही गुजरात की सलतनत का अन्त होकर वहां मुगलों का अधिकार हो गया था, जिनकी तरफ से वहां हाकिम रहते थे। आगे चलकर टॉड लिखता है कि इस घटना के बाद गजसिंह महाराणा अमरसिंह के विरुद्ध गया, पर यह कथन भी ठीक नहीं है, क्योंकि जैसा "तारीख पालनपुर" में दिये हुए वर्णन से स्पष्ट है, जालोर की घटना महाराणा अमरसिंह पर चढ़ाई होने के बाद की है।

और उनके पचास आदमियों को मारकर उनका भंडा छीन लिया। जो कंमा सादावत ने लाकर महाराजा को दिया। तब तो महाराजा और खान-खाना ने भी दक्षिणियों पर चढ़ाई की और उन्हें भगा दिया। अनन्तर एक पालकी भेजी गई, जिसमें बैठकर कुंभकर्ण डेरे पर आया, जहां उसके घावों की मरहम-पट्टी की गई। महाराजा ने जेतावत आसकरण देवीदासोत से बगड़ी जूतकर कुंभकर्ण को दे दी और उसे देश जाने की इजाजत दी। इस घटना के कुछ दिनों बाद कुंभकर्ण पागल हो गया^१।

दक्षिण में महर के थाने पर रहते समय वि० सं० १६७६ भाद्रपद सुदि ६ (ई० स० १६१६ ता० ७ सितंबर) को सूरसिंह का देहावसान हो गया^२। “तुजुक-इ-जहांगीरी” से पाया जाता है

सूरसिंह की मृत्यु

कि सूरसिंह की मृत्यु का समाचार सन् जूल्स १४ ता० ५ मिहिर (वि० सं० १६७६ आश्विन वदि ५ = ई० स० १६१६ ता० १८ सितंबर) शनिवार को बादशाह के पास पहुंचा^३।

जोधपुर राज्य की ख्यात में सूरसिंह की १७ राणियों के नाम मिलते हैं, जिनसे उसके ७ पुत्र हुए, जिनमें से पांच छोटी अवस्था में ही कालकवलित हो गये। शेष दो में से एक का नाम गजसिंह था और दूसरे का सबलसिंह^४। इनके अतिरिक्त उसके

राणिया तथा संतति,

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४४-५। ख्यात से यह भी पता चलता है कि नासिक-त्रयक का गढ़ पिंडारा विजय करने पर खानखाना को वह से एक चतुर्भुज की मूर्ति मिली, जो उसने पीछे से सूरसिंह को दे दी (जि० १, पृ० १४५)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४६। बांकीदास ऐतिहासिक बातें; संख्या ४३२ और ८८६। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१८। “उमराए हर्द” में हि० स० १०२८ (वि० सं० १६७६ = ई० स० १६१६) में सूरसिंह की मृत्यु होना लिखा है (पृ० २५६)। रॉड भी वि० सं० १६७६ में ही उसका दक्षिण में मरना लिखता है (रमजस्थान; जि० २, पृ० ६७१)।

(३) जि० २, पृ० ६६।

(४) इसका जन्म वि० सं० १६६४ (ई० स० १६०७) में हुआ था और

कई पुत्रियां भी हुई, जिनमें से एक मनभावतीबाई, जो दुर्जनसाल कछवाहे की पुत्री सोमागदे से उत्पन्न हुई थी, जहांगीर के पुत्र शाहजादे परखेज़ को प्याही थी^१ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सूरसिंह की दान-पुण्य की ओर विशेष रुचि थी और वह ब्राह्मणों, चारणों आदि का बड़ा सम्मान

करता था । कई अवसरों पर ब्राह्मणों आदि को उसने कई गांव दान में दिये । चार बार चारणों एवं भाटों को लाख पसाव^२ देने के अतिरिक्त उसने दो

बार चांदी का तुलादान किया—एक बार सूरसागर पर वि० सं० १६७० (ई० सं० १६१३) में तथा दूसरी बार महकर में अपनी मृत्यु से कुछ पूर्व वि० सं० १६७६ (ई० सं० १६१९) में । जोधपुर का सूरसागर तालाब तथा उसपर का कोट महल एवं उद्यान उसके ही वनवाये हुए हैं^३ ।

जोधपुर के नरेशों में सूरसिंह का नाम बड़ा महत्व रखता है । वह वीर, दानशील और योग्य शासक था । राव मालदेव के बाद राव चन्द्रसेन

से जोधपुर का राज्य बादशाह ने खालसा कर लिया । उसके उत्तराधिकारी उदयसिंह के समय

जोधपुर राज्य की दशा में कुछ परिवर्तन हुआ, पर उसके पुत्र सूरसिंह के

इसे सूरसिंह ने फलोधी की जागीर दी थी । वहां एक मुलाम ने ज़हर दे दिया, जिससे वि० सं० १७०३ फाल्गुन वदि ३ (ई० सं० १६४७ ता० ११ फरवरी) को इसका देहांत हो गया ।

बांकीदास लिखता है कि यह ३६ वर्ष तक जीवित रहा तथा इसे बादशाह की तरफ से एक हज़ारी मनसब मिला था (ऐतिहासिक बातें; संख्या ३५७ तथा ११००) ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १४६-६ । बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८८८ तथा १०६८ ।

(२) ख्यात से पाया जाता है कि लाख पसाव के नाम से पचीस हज़ार रुपये दिये जाते थे ।

(३) जि० १, पृ० १४३ ।

समय उसकी विशेष उन्नति हुई। अकबर एवं जहांगीर दोनों के समय में उसका सम्मान ऊँचे दर्जे का रहा। यद्यपि अकबर के राज्य-समय में उसका मनसब एक हज़ार से अधिक न बढ़ा, परन्तु जहांगीर के समय में उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते पाँच हज़ारी हो गया था, जो उस समय का काफ़ी बड़ा मनसब गिना जाता था। उपर्युक्त दोनों बादशाहों के समय की बहुतसी बड़ी चढ़ाईयों में शामिल रहकर सूरसिंह ने वीरता का परिचय दिया। वह अपने राज्य की तरफ़ से भी उदासीन नहीं रहता था। उसके सुप्रबंध के कारण राज्य के अन्तर्गत प्रजा में शांति और समृद्धि रही।

महाराजा गजसिंह

गजसिंह का जन्म वि० सं० १६५२ कार्तिक सुदि = (ई० स० १५६५ ता० ३० अक्टोबर) बृहस्पतिवार को हुआ था^१। वह अपने पिता की जीवितावस्था में ही जहांगीर के १० वें राज्य वर्ष (वि० सं० १६७२ = ई० स० १६१५) में पिता के साथ उसकी सेवा में उपस्थित हो गया था। बादशाह ने सूरसिंह की मृत्यु का समाचार पाकर आगरे से गजसिंह के लिए सिरोपाव आदि भेजे। तब खानखाना के पुत्र दाराबख़्त ने उसे वि० सं० १६७६ आश्विन सुदि = (ई० स० १६१६ ता० ५ अक्टोबर) को बुरहानपुर^२ में टीका दिया^३।

इस सम्बन्ध में “तुजुक-इ-जहांगीरी” में लिखा है—“ता० ५ मिहिर (आश्विन वदि ५ = ता० १ = सितंबर) को दक्षिण से राजा सूरसिंह की

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५०। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८८७ तथा ४३५ (लाहौर में जन्म होना लिखा है)। बीरबिनोद; भाग २, पृ० ८१६।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि सूरसिंह की मृत्यु होने पर इसके पास शाही फ़रमान आया, जिसके अनुसार यह दक्षिण को गया (जि० १, पृ० १५०)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १५०। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १६३३। टॉड; राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२।

गजपूताने का इतिहास



महाराजा गजसिंह

मृत्यु होने की खबर पहुँची। सूरसिंह ने जीतेजी ही अपने पुत्र गजसिंह को सारा राज्य-कार्य सौंप दिया था। मैंने भी उसको शिक्षा और कृपा के योग्य जानकर तीन हज़ारी ज़ात और दो हज़ार सवार का मनसब^१, भगडा, राजा की उपाधि और देश (मारवाड़) जागीर में दिया। इस ऋषसर पर मैंने उसके छोटे भाई (सबलसिंह) को भी पाँचसौ ज़ात और दार्दसौ सवार का मनसब और मारवाड़ में जागीर अता की^२।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि बादशाह की तरफ से गजसिंह को जोधपुर, जेतारण, सोजत, सिवाणा, तेखाड़ा, सातलमेर, पोरण और मेरवाड़ा के परगने मिले थे। इनमें से सातलमेर और पोरण पर उसका अधिकार न हो सका, क्योंकि चन्द्रसेन ने उन्हें भाटियों के पास गिरवी रखवा था और वहाँ उनका ही अधिकार था^३।

बुरहानपुर में टीका होने के बाद गजसिंह वहाँ से दाराबख़ां के साथ महकर के थाने पर गया। इसके कुछ दिनों बाद ही निज़ाम के राज्य से आकर अमरचंपू/अबरचंपू ने महकर में बादशाही सेना को घेर लिया^४। तीन मास तक लड़ाई होती रही।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी सर्वप्रथम गजसिंह को यही मनसब मिलना लिखा है (जि० १, पृ० १२०)। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६। उमराए हनुद; पृ० ३०६।

(२) तुलुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० १००।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२०-१।

टॉड के अनुसार इस समय गजसिंह के अधिकार में नौकोट मारवाड़ के अतिरिक्त गुजरात के सात विभाग, डूंडाब का भुलाय परगना तथा अजमेर का मसूदे का ठिकाना भी था। उसे दक्षिण की सूबेदारी भी प्राप्त थी तथा उसके घोड़े शाही दाग से मुक्त थे (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२)। टॉड का उपर्युक्त कथन अतिशयोक्तिपूर्ण होने से विश्वास के योग्य नहीं है, क्योंकि फ़ारसी तबारीखों में इसका उल्लेख नहीं है। शाही दाग तमाम मनसबदारों के, जो बादशाही सेवा करते थे, घोड़ों पर लगते थे।

(४) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६२। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२२।

गजसिंह ने शाही सेना के हरोल में रहकर पांच-सात लड़ाइयां लड़ीं। अंत में दक्षिणियों की फौज को हारकर भागना पड़ा और गजसिंह की विजय हुई। दो वर्ष तक दक्षिण में रहकर वह दक्षिणियों की सेना से लड़ता रहा, जिससे उसकी सेवाओं और वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे “दल-थंभण” का खिताब दिया और उसके मनसब में एक हज़ार ज़ात और एक हज़ार सवार की वृद्धि कर दी^१।

वि० सं० १६७६ (ई० सं० १६२२) में बादशाह ने शाहज़ादे खुर्रम को दक्षिण में भेजा। उसने वहां पहुंचते ही अमरचंपू से सन्धि कर ली^२।

इसपर गजसिंह उससे विदा लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उससे आज्ञा प्राप्तकर उसी वर्ष भाद्रपद के अंतिम दिनों में जोधपुर पहुंचा^३।

(१) बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ५२२) ने भी गजसिंह का खिताब “दलथंभण” होना लिखा है। टॉड लिखता है कि किरमीगढ़, गोलकुंडा, केलणा, परनाला, गजनगढ़, आसेर और सनारा की लड़ाइयों में राठोड़ों ने बड़ी वीरता दिखलाई, जिससे उनके स्वामी गजसिंह को “दलथंभण” का खिताब मिला (राजस्थान; जि० २, पृ० ६७२)।

(२) जोधपुर राज्य की रयात; जि० १, पृ० १५५-६। धीरवीनोद; भाग २, पृ० ८१६। “तुजुक इ-जहांगीरी” में भी जहांगीर के १६ वें राज्यवर्ष में ता० १ मिहिर (वि० सं० १६७८ आश्विन सुदि १० = ई० सं० १६२१) ता० १५ सितम्बर को गजसिंह का मनसब ४००० ज़ात और ३००० सवार का किया जाना लिखा है (रॉजर्स और बेवरिज कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २१५)। मुंशी देवीप्रसाद-कृत “जहांगीरनामा” (पृ० ४७६) तथा “वीरविनोद” (भाग २, पृ० ३०५) में भी इसका उल्लेख है।

(३) बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६३ में भी इसका उल्लेख है, पर उसमें इस घटना का समय वि० सं० १६७८ (ई० सं० १६२१) दिया है।

(४) जोधपुर राज्य की रयात; जि० १, पृ० १५५-६।

“तुजुक इ-जहांगीरी” से पाया जाता है कि १७ वें राज्य-वर्ष में ता० १ खुरदाद (वि० सं० १६७६ ज्येष्ठ सुदि १३ = ई० सं० १६२२) ता० १२ मई के दिन गजसिंह को एक नज़ारा दिया गया (रॉजर्स और बेवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २३३)। “वीरविनोद” (भाग २, पृ० ३०५) में भी इसका उल्लेख है।

सन जलूस १८ ता० २१ उर्दीविहिश्त (वि० सं० १६८० वैशाख सुदि १२ = ई० सं० १६२३ ता० १ मई) को गजसिंह अपने देश से लौटकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ^१। इसके चार दिन बाद ता० २५ उर्दीविहिश्त (ज्येष्ठ वदि १ = ता० ५ मई) को बादशाह ने शाहजादे परवेज़^२ को एक विशाल सेना के साथ विद्रोही खुर्रम^३ पर भेजा । इस अवसर पर अन्य अफ़सर्गों आदि के साथ महाराजा गजसिंह को उसका मनसब ५००० ज़ात और ४००० सवार का कर बादशाह ने उक्त सेना के साथ

(१) तुलुक इ-जहांगीरी; रॉजर्स और देवरिज-कृत अनुवाद; जि० २, पृ० २५६ । मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५१४ ।

(२) बादशाह जहांगीर का दूसरा पुत्र । इसका जन्म हि० सं० ६६८ (वि० सं० १६४७ = ई० सं० १५६०) में तथा मृत्यु हि० सं० १०३६ (वि० सं० १६८३ = ई० सं० १६२६) में हुई ।

(३) शाहजादा खुर्रम जहांगीर का बड़ा ही प्रिय पुत्र था, जिसकी उसने बहुत प्रतिष्ठा बढ़ाई थी । उसको वह अपना उत्ताधिकारी भी बनाना चाहता था । परन्तु बादशाह अपने राज्य के पिछले दिनों में अपनी प्यारी बेगम नूरजहां के हाथ की कठ-पुतलीसा हो गया था, जिससे वह जो चाहती वही उससे करा लेती थी । नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़ग़ान से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहजादे शहरयार से किया था । उसको ही वह जहांगीर के पीछे बादशाह बनाना चाहती थी । इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त करने के लिए वह खुर्रम के विरुद्ध बादशाह के कान भरने लगीं और उसने उसको हिन्दुस्तान से दूर भिजवाना चाहा । उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने अधीन कर लिया था । जिसको पीछा विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को भेजने की सम्मति बादशाह को दी । तदनुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कन्धार जाने की आज्ञा दी । शाहजादा नूरजहां के इस प्रपंच को जान गया था, जिससे उसने वहां जाना न चाहा । वह समझ गया था कि यदि हिन्दुस्तान से बाहर जाना पड़ा और हिन्दुस्तान का कोई भी प्रदेश मेरे हाथ में न रहा तो मेरा प्रभाव इस देश में कुछ भी न रहेगा, जिससे वह बादशाह की अवज्ञाकर वि० सं० १६७६ (ई० सं० १६२२) में उसका विद्रोही बन गया और दक्षिण से मांडू जाकर सैन्य-सहित आगरे की ओर बढ़ा ।

भेजा' ।

इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'शाहज़ादा खुर्रम दक्षिण में था । वह बादशाह से विद्रोही हो गया और सेना एकत्र कर वहां से आगरे की तरफ़ अग्रसर हुआ । उदयपुर पहुँचने पर महाराणा अमरसिंह (? कर्णसिंह होता चाहिये) ने कुंवर भीम को सेना देकर उसके साथ कर दिया । जहांगीर उन दिनों अजमेर में था । उसने शाहज़ादे परवेज़ को खुर्रम पर भेजने का निश्चय कर आगरे की तरफ़ प्रस्थान किया और गजसिंह को भी बुलवाया जो चाड़सू (चाटसू) नामक स्थान में जाकर उससे मिल गया । महावतख़ाँ के परवेज़ का मुसाहिब नियत कर तथा गजसिंह के मनसब में १००० ज़ात और १००० सवार की वृद्धि कर बादशाह ने दोनों को परवेज़ के साथ रवाना किया^१ । इस अवसर पर फलोत्री और मेड़ता के परगने भी गजसिंह के नाम कर दिये गये । वि० सं० १६८१ कार्तिक सुदि १५ (ई० सं० १६२४ ता० १६ अक्टोबर) को हाजीपुर

(१) तुजुक इ जहांगीरी, राजर्स और बेबरिज-कृत अनुवाद, जि० २, पृ० २६० तथा २६१ । उमराए हनूद, पृ० ३१० । मुंशी देवीप्रसाद, जहांगीरनामा, पृ० ५१४-६ । वीरविनोद, भाग २, पृ० ८१६ । बंकीदास ने भी खुर्रम के साथ की लड़ाई में गजसिंह का शाही सेना के साथ रहना लिखा है (ऐतिहासिक बानें, संख्या ८६४) । डा० बेनी-प्रसाद कृत "हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर" (पृ० ३६२) में भी इसका उल्लेख है ।

(२) इसका वास्तविक नाम ज़मानाबेग था और यह काबुल के निवासी गोर-बेग का पुत्र था । अकबर के समय में इसका मनसब केवल पाँचसौ था, पर जहांगीर के समय इसको उच्चतम सम्मान प्राप्त था, जो शाहजहाँ के समय में भी बहाल रहा । हि० सं० १०४४ (वि० सं० १६६१ ई० सं० १६३४) में इसकी मृत्यु हुई ।

(३) टॉडलिखता है कि खुर्रम ने गजसिंह के पास सहायता के लिए लिखवाया, परन्तु बादशाह का कोपभाजन बनना उसे पसंद न था और साथ ही परवेज़ का भी वह पक्षपाती था, जिससे उसने खुर्रम की प्रार्थना पर कोई ध्यान न दिया (राजस्थान, जि० २, पृ० ६७४) ।

डा० बेनीप्रसाद कृत "हिस्ट्री ऑफ़ जहांगीर" में इस लड़ाई का टोंस नदी के किनारे कम्पत नामक स्थान में होना लिखा है (पृ० ३८२) ।

पंटना में गंगाजी के किनारे खुर्रम और परवेज़ की सेनाओं की मुठभेड़ हुई। खुर्रम की फौज में सीसोदिया भीम २५ हज़ार सेना के साथ हरोल में था, गौड़ गोपालदास आदि भी खुर्रम की सेना के साथ थे। परवेज़ की सेना में आंबेर का राजा जयसिंह (मिर्ज़ा राजा), महावतखां आदि हरोल में थे और महाराजा गजसिंह बाईं तरफ़ नदी के किनारे कुछ दूर पर खड़ा था। युद्ध आरम्भ होने पर भीम के घोड़ों की बागें उठीं, जिससे परवेज़ की सेना के पैर उखड़ गये। तब भीम ने खुर्रम से कहा कि हमारी विजय तो हुई, लेकिन गजसिंह, जो सैन्य सहित दूर खड़ा है, यदि आग्रा हो तो उसे लड़ाई के लिए ललकारें। उस समय गजसिंह नदी के किनारे पाजामे का नाड़ा खोल रहा था। उसके साथी कृपावत गोरधन ने आगे बढ़ कड़क कर कहा कि परवेज़ की सेना तो भागी जा रही है और आपको नाड़ा खोलने का यही समय मिला है। गजसिंह ने कहा कि मैं भी यही देखता था कि कोई राजपूत मुझे कहनेवाला है या नहीं। इतना कहकर वह घोड़े पर सवार हुआ और उसने दुश्मनों पर तलवार चलाई। भीम ने उसका मुकाबिला किया और वह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया। उसके युद्धक्षेत्र में गिरते ही खुर्रम ठहर न सका और भाग खड़ा हुआ। शाही सेना की विजय हुई।

(१) टॉड लिखता है कि बादशाह ने गजसिंह की तरफ़ से सन्देश होने के कारण मिर्ज़ा राजा जयसिंह को हरोल में रक्खा था। इससे गजसिंह रुष्ट होकर अलग खड़ा हुआ था (राजस्थान; जि० १, पृ० ४३०)। गजसिंह के अलग रहने का कारण कोई ऐसा भी बतलाते हैं कि खुर्रम जोधपुरवालों का भानजा था, जिससे वह अन्तःकरण से उससे लड़ना नहीं चाहता था [नागरीप्रचारिणी पत्रिका (काशी); भाग १, पृ० १८८]।

(२) जि० १, पृ० १४६-७। ख्यात से पाया जाता है कि इस विजय के उप-लक्ष्य में जहांगीर ने गजसिंह के मनसब में एक हज़ार सवार की वृद्धि कर दी, जिससे उसका मनसब पांच हज़ार ज्ञात तथा पांच हज़ार सवार का हो गया। फ़ारसी तवारीखों से इसकी पुष्टि नहीं होती, किन्तु “उमराए हनुद” से पाया जाता है कि बढ़ते-बढ़ते जहांगीर के राज्य-समय में गजसिंह का मनसब पांच हज़ार ज्ञात और पांच हज़ार सवार तक हो गया था (पृ० ३०८)।

उपर्युक्त वर्णन एकांगी तथा पक्षपातपूर्ण होने के कारण, उसमें भीम की वीरता का विस्तृत वर्णन नहीं दिया है, जिससे इस लड़ाई का वास्तविक रूप ज्ञात नहीं होता। “मुन्तखबुल्लुबाब” का कर्ता मुहम्मद हाशिम खाफ़ीखां लिखता है—‘राजा भीम और शेरखां ने वीरतापूर्वक शाहजादे परवेज़ के सामने जाकर तोपखाने पर इस तेज़ी और उत्साह के साथ आक्रमण किया कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। राजा भीम अपने विश्वासपात्र साथियों सहित शत्रु-सेना की पंक्ति को चीरता हुआ सुलतान परवेज़ के खास गिरोह तक पहुँच गया। उस समय जो कोई उसके सामने आया वह तलवार और भालों से मारा गया। परवेज़ की सेना में पहुँचने तक उसके कई वीर मारे गये, तो भी उसका आक्रमण इतना तीव्र था कि चालीस हज़ार शत्रु-सेना के पाँच उखड़ने को ही थे। इतने में महाबतखां ने भीम के सामने एक मस्त हाथी (जटाजूट नाम का) भेजने की सलाह दी। राजा भीम और शेरखां ने उस हाथी को भी तलवार और बछ्छों के प्रहार से गिरा दिया। प्रत्येक बार जब वह आक्रमण करता तब दोनों पक्षवाले उसकी प्रशंसा किया करते थे। अंत में कई वीर साथियों सहित महाबतखां भीम के सामने आया। राजा भीम बहुत से घाव लगने के बाद घोड़े से गिर गया। उस समय एक शत्रु उसका सिर काटने के लिए आया तो उसने जोश में आकर उसको मार डाला। जब तक उसके प्राण बने रहे तब तक उसने अपने हाथ से तलवार न छोड़ी और शेरखां भी लड़कर मारा गया।’ भीम के इस प्रकार वीरता के साथ काम आने के पश्चात् खुर्रम हारकर पटना होता हुआ दक्षिण को लौट गया।

वि० सं० १६८२ (ई० सं० १६२५) के कार्तिक (अक्टोबर) मास

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० २८८ ।

भीम के विशेष वृत्तान्त के लिए देखो नागरीप्रचारिणी पत्रिका (काशी); भाग १, पृ० १८३-६० ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में खुर्रम का हारकर सर्वप्रथम राजपीपला के पहाड़ों में जाना लिखा है (जि० १, पृ० १५८), जो ठीक नहीं है ।

में बादशाह ने महाबतखां को बुरहानपुर से बुलाकर फ़िदाईखां^१ को उसके स्थान में भेजा और शाहज़ादे परवेज़ तथा अन्य गजसिंह का दक्षिण में रहना उमरावों को कहलाया कि वे वहाँ पर ही रहें । महाबतखां ने इसपर कोई ध्यान न दिया और परवेज़ आदि को साथ लेकर चला, परन्तु गजसिंह ने उसके साथ जाने से इन्कार कर दिया । फ़िदाईखां ने उससे परवेज़ आदि को समझाकर वापस बुलाने के लिए कहा । पहले तो गजसिंह ने, यह कहकर ऐसा करने से इन्कार किया कि मैं साथ नहीं गया इससे महाबतखां मुझ से नाराज़ है और यदि अब जैसा आप कहते हैं वैसा करूंगा तो वह और नाराज़ हो जायगा तथा मुमकिन है दरबार में मेरी बुराई करे, परन्तु बाद में फ़िदाईखां के आश्वासन दिलाने पर उसने शाहज़ादे और अन्य उमरावों को समझा-बुझाकर वापस बुला लिया । इसके कुछ दिनों बाद फ़िदाईखां राठोड़ राजसिंह को साथ लेकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ । उस समय उसने गजसिंह की सेवाओं की प्रशंसा कर ज़ब्त किया हुआ मेड़ते का परगना फिर उसके नाम करा दिया^२ । हि० स० १०३६ ता० ७ सफ़र (वि० सं० १६८३ कार्तिक सुदि ८ = ई० स० १६२६ ता० १८ अक्टोबर) बुधवार को शाहज़ादे परवेज़ की मृत्यु हो गई और उन्हीं दिनों बादशाह ने राज्य विरोधी आचरण करने के कारण महाबतखां को भी राज्य से निकाल दिया^३, जो पीछे से जाकर खुर्रम के शामिल हो गया ।

उसी वर्ष कुंवर अमरसिंह के नाम मनसब और नागौर की जागीर वकील भगवानसाह जसकरण ने बादशाह को कहकर लिखवाली । इसपर गजसिंह के कुंवर अमरसिंह को वह (अमरसिंह) राजसिंह कूपावत और पन्द्रह सौ मनसब और जागीर मिलना सवारों के साथ बादशाह की सेवा में चला गया^४ ।

(१) संभवतः यह जहांगीर के दरबार का मनसबदार हिदायतुल्ला था, जिसे बादशाह ने फ़िदाईखां का खिताब दिया था ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १२६-६० ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० २८२, २८६ तथा २८६ ।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६० ।

हि० स० १०३७ ता० २८ सफ़र (वि० सं० १६८४ कार्तिक वदि ३०
(अमावास्या) = ई० स० १६२७ ता० २८ अक्टोबर^१) को काश्मीर से लाहोर

जहांगीर की मृत्यु और
शाहजहाँ की गर्दीनशीनी

लौटते समय राजोर^२ नामक स्थान में बादशाह
जहांगीर का देहावसान हो गया^३ । इसकी खबर
पाकर नूरजहाँ ने शहरयार^४ को गद्दी पर बैठाने के
लिए लाहोर से बुलाया, परन्तु नूरजहाँ का भाई आसफ़खां अपने दामाद
खुर्रम को बादशाह बनाना चाहता था, अतएव उसने कुछ समय के लिए
खुसरो के पुत्र बुलाकी^५ को, जिसका दूसरा नाम दावरबख्श था, तख्त
पर बैठा दिया और नूरजहाँ को तज़रबन्द कर कई अमीरों और राजा
बासू के बेटे राजा जगतसिंह के साथ स्वयं लाहोर की ओर प्रस्थान किया ।
इस समय उसने बनारसी नामक एक हिन्दू व्यक्ति को दक्षिण की तरफ़
भेजकर खुर्रम से कहलाया कि वह शीघ्र आगरे पहुँचे । आसफ़खां के
लाहोर पहुँचने पर शहरयार उससे आकर लड़ा, पर उसे हारकर किले की
तरफ़ भागना पड़ा । तब आसफ़खां ने शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया और उसे
अन्धा करके कैद कर दिया । उधर बनारसी ने जुन्नर में पहुँचकर खुर्रम
को आसफ़खां की अगुंठी दी और सारा हाल कहा । इसपर उस (खुर्रम) ने
दक्षिण के सूबेदार खानजहाँ लोदी से लिखा पढ़ी की, पर उसने इस ओर

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १६८३ कार्तिक वदि १३ (ई० स०
१६२६ ता० ८ अक्टोबर) दी है (जि० १, पृ० १६०), जो ठीक नहीं है ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में राजोर के स्थान पर भंभोर दिया है (जि० १,
पृ० १६०) ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; जहांगीरनामा; पृ० ५६६ ।

(४) बादशाह जहांगीर का सब से छोटा पुत्र ।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में भी जहांगीर के बाद बुलाकी का गद्दी पर
बैठाया जाना और एक वर्ष पर्यन्त राज्य करना लिखा है (जि० १, पृ० १६१), जो ठीक
नहीं है । जहांगीर की मृत्यु वि० सं० १६८३ (ई० स० १६२६) में लिख देने के कारण
ही ऐसी ग़लती हो गई हो ऐसा प्रतीत होता है ।

कुछ भी ध्यान न दिया और निज़ामुलमुल्क से मिलकर बालाघाट का सारा प्रदेश उसको दे दिया। साथ ही उधर के, अहमदनगर के किलेदार सिपहदारखां के अतिरिक्त अन्य सब बादशाही अमीर और जागीरदार भी उसके लिखने से बुरहानपुर आ गये। इस समय राजा जयसिंह और गजसिंह किसी कारणवश खानजहां के साथ थे, जिनकी सहायता से उसने मांडू के सूबेदार मुज़फ़्फ़रखां को निकालकर वहां क़ब्ज़ा कर लिया^१।

शहरयार की पराजय का समाचार पाकर खुर्रम सिन्ध और गुजरात का प्रबन्ध करने के अनन्तर गोमूदा होता हुआ अजमेर पहुंचा। इसकी खबर पाकर जयसिंह और गजसिंह खानजहां का साथ छोड़कर चल दिये^२। गजसिंह तो अपने देश चला गया, पर जयसिंह अजमेर में खुर्रम की सेवा में उपस्थित हो गया। फिर खुर्रम के हाथ का लिखा आदेशपत्र पहुंचने पर आसफ़खां ने बुलाकी, उसके भाई तथा दानियाल^३ के पुत्रों आदि को मात्र यदि ११ (ई० स० १६२८ ता० २२ जनवरी) को मरवा डाला^४। मात्र यदि १२ (ता० २३ जनवरी) को खुर्रम आगरे पहुंचा और मात्र यदि १० (ता० ४ फ़रवरी) को “अबुल मुज़फ़्फ़र शहाबुद्दीन मुहम्मद किरां सानी शाह-जहां बादशाह गाज़ी” नाम धारण कर तख़्त पर बैठा^५।

उसी वर्ष फाल्गुन यदि ४ (ता० १३ फ़रवरी) को गजसिंह जोधपुर से चलकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ^६। इस अवसर पर बादशाह

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १-३।

(२) डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहां; पृ० ६६।

(३) बादशाह जहांगीर का तीसरा पुत्र।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० ३-४।

(५) वही; पृ० ५। जोधपुर राज्य की ख्यात में (श्रावणादि) वि० सं० १६८४ (चैत्रादि १६८५) आषाढ यदि ४ (ई० स० १६२८ ता० १० जून) को खुर्रम का सिंहासनारूढ़ होना लिखा है (जि० १, पृ० १६१), जो ठीक नहीं है। ख्यातों आदि में इसी प्रकार बहुधा संवत् आदि ग़लत दिये हैं।

(६) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि गजसिंह राज्यभक्त राजा था, अतएव जहांगीर के जीवनकाल में वह उसकी आज्ञा से खुर्रम से लड़ा था। इसका

गजसिंह का शाहजहां की
सेवा में उपस्थित होना

ने उसे खासा खिलअत, जड़ाऊ खंजर, फूल कटार सहित जड़ाऊ तलवार, सुनहरी ज़ीन सहित खासा घोड़ा, खासा हाथी और नक्कारा, निशान आदि दिये और उसका मनसब ५००० ज़ात और ५००० सवार का, जो जहांगीर के समय में था, बहाल रखवा^१। अपने प्रथम राज्यवर्ष में ही शाहजहां ने कुंवर अमरसिंह को एक हाथी दिया^२।

कुछ समय बाद आगरे के आस-पास के भूमियों की लूट-मार बढ़ने पर बादशाह ने उनके विरुद्ध फ़ौज भेजी, जिसमें गजसिंह के सैनिक भी शामिल थे। लुटेरों की गढ़ी फ़तहपुर के निकट के सीस-रोधी गांव में थी। शाही सेना के अध्यक्ष सरदारखां ने उस (गढ़ी) के पास पहुंचकर गजसिंह के आदिमियों से उसपर आक्रमण करने के लिए कहा। राठोड़ों की एक अनी में बगड़ी का राठोड़ भगवानदास (बाबोत, जैतवत) आदि थे और दूसरी में पंचोली बलू आदि। बलू आदि उस समय आक्रमण करने के खिलाफ़ थे, पर सरदारखां ने कहा कि नहीं आज ही भगड़ा होगा। तब राठोड़ों ने घोड़े उठाकर गढ़ी पर आक्रमण किया। इस लड़ाई में भगवानदास,

उसके मन में बड़ा खयाल रहता था। इस भावना को दूर करने के लिए बादशाह ने राव सगतसिंह (उदयसिंहों, खरवेवालों का पूर्वज) की पुत्री लीलावती (जो रिश्ते में गजसिंह के काका की बेटी बहिन होती थी) को महाराजा के पास भेजा, जिसने जोधपुर पहुंचकर चौगान में डेरा किया और महाराजा से मिलकर बादशाह की तरफ़ से सिरपोष और अंगूठी उसे दी। फिर उसने सब बातों का स्पष्टीकरण करके आपस का ग्लानिभाव दूर किया। महाराजा ने आठ दिन तक उसे अपने यहां रखकर विदा किया और फिर अपने सरदारों आदि के सहित वह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ (जि० १, पृ० १६१-२)।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; पृ० १० । उमराए हनुद; पृ० ३०६-१० । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८१६ ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; पृ० १७ ।

राठोड़ कन्हीदास (माधोदासोत) आदि मारे गये, लेकिन गढ़ के भीतर के आदमी भाग गये और वहां शाही सेना का अधिकार हो गया। इस विजय का समाचार पाकर बादशाह ने राठोड़ों की वीरता की बड़ी प्रशंसा की^१।

वि० सं० १६८२ (ई० स० १६२५) में आंबेरे के कछवाहे राजा जयसिंह के पुष्कर में रहते समय, वहां जब वैर का बदला लेने के लिए कुछ लोगों ने राठोड़ों की प्रशंसा की तो जयसिंह को वह बात बुरी लगी और उसने कहा कि मैंने कब अपने किसी बदला लेनेवाले सरदार का आदर नहीं किया।

सामोद के रामसिंह की
सहायता करना

गौड़ों ने कछवाहे बीजल को मारा था, जिसका बदला लेना बाक़ी था। शाहजहां के सिंहासनारूढ़ होने पर गौड़ों का बल बढ़ा। एक दिन गौड़ किशनसिंह ५० सवारों के साथ आगरे जाता हुआ सामोद से दो कोस दूरी पर ठहरा। इसकी सूचना सामोद के रावल रामसिंह को मिलने पर वह अपने सैनिकों सहित उसके समक्ष आया और उसने लड़ाई कर उसे मार डाला। राजा जयसिंह ने जब यह समाचार सुना तो उसने बादशाह के कोप से बचने के लिए रामसिंह को राज्य से निकाल दिया और इसकी सूचना बादशाह को दे दी। गौड़ विठ्ठलदास ने किशनसिंह के मारे जाने की खबर पाकर राजा जयसिंह पर चढ़ाई की तो बादशाह ने यह कहकर कि मैं अपराधी को दंड दूंगा, उसे लौटा दिया। रामसिंह पहले तो मेवाड़ के राणा जगतसिंह के पास जाकर रहा, पर वहां कहा सुनी हो जाने से वह अपने राजपूतों के साथ आगरे गया और गजसिंह के डेरों के निकट ठहरा। उसके वहां रहने का पता जब विठ्ठलदास को लगा तो उसने इसकी सूचना बादशाह को दे दी, जिसने उसे पकड़कर ले आने का हुक्म जारी किया। रामसिंह यह देखकर लड़ मरने के लिए सन्नद्ध हुआ। उसका मित्र आउवा का ठाकुर उदयभाण (चांपावत) भी उसका साथ देने को प्रैस्तुत हो गया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६३-५ । बांकीदास (ऐतिहासिक बातें; संख्या ८६५) ने इस घटना का समय वि० सं० १६८४ आषाढ वदि ८ (ई० स० १६२७ ता० २८ मई) दिया है।

यह देख महाराजा गजसिंह ने भी रणभेरी बजवा दी। बादशाह ने जब देखा कि अवस्था बहुत भीषण हो रही है तो उसने अपनी तरफ से युद्ध का आयोजन बंद करवा दिया और महाराजा से रामसिंह को दरबार में लाने के लिए कहलवाया। बाद में सारी सत्य वार्ता प्रकट होने पर बादशाह ने सामोद की जागीर पीछी रामसिंह को दे दी और गौड़ों तथा कछुवाहों में आपस में मेल करा दिया।

शाहजहां ने सिंहासनारूढ़ होने पर महावतख़ां की नियुक्ति दक्षिण में कर^१ खानजहां लोदी को अपने पास बुला लिया था, पर वह वि० सं० गजसिंह का खानजहां पर १६८६ कार्तिक वदि १२ (ई० सं० १६२६ ता० ३ अक्टो-
भेजा जाना) बर) को आगरे से भाग गया। इसपर बादशाह ने ख्वाजा अबुलहसन^२ को राजा जयसिंह, राव सूर भुगटिया आदि के साथ उसके पीछे खाना किया, जिन्होंने धौलपुर में उसे जा घेरा, पर वह वहां से निकल भागा। उसके बुंदेलखंड, गोंडवाना और वालाघाट होते हुए निज़ामुलमुल्क के पास पहुंचने का समाचार पाकर पौष सुदि १० (ता० १५ दिसंबर) सोमवार को बादशाह स्वयं दक्षिण की तरफ खाना हुआ। इस अवसर पर राठोड़ अमरसिंह का मनसब बढ़ाकर २००० ज़ात और १३०० सवार का कर दिया गया। चैत्र वदि ६ (ई० सं० १६३० ता० २२ फ़रवरी) को बादशाह ने आगरे से बड़े-बड़े सरदारों की अध्यक्षता में तीन विशाल फ़ौजें खानजहां के विरुद्ध खाना कीं। पहली और दूसरी फ़ौजों के अध्यक्ष क्रमशः

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७२-५। फ़ारसी तबारीखों में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पृ० १५।

(३) वही; पृ० २३। जोधपुर राज्य की ख्यात में कार्तिक वदि १३ (ता० १४ अक्टोबर) दिया है (जि० १, पृ० १६५)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में रज़ातुसेन लिखा है, जो खानजहां से लड़ाई होने पर मारा गया (जि० १, पृ० १६५)।

हरावतख़ां और शाहस्ताख़ां थे और तीसरी का संचालन गजसिंह' के हाथ में था। एक दिन राव दूदा, शत्रुसाल, कछवाहा करमसी, बलभद्र शेखावत और राजा गिरधर आदि राजपूत सरदार, जो सेना की खंदावल में थे, दो कोस दूर जा पड़े। वहां खानजहां, दरियाख़ां, बहलोल और मुकर्रबख़ां बारह हजार फ़ौज के साथ घात में खड़े थे। वे शाही सेना की उक्त टुकड़ी को घाफ़िल देख उसपर दूट पड़े। मुग़लों और राजपूतों ने बड़ी धीरता से उनका मुक़ाबिला किया, पर उनमें से अधिकांश मारे गये, जिनमें मालदेव का प्रपौत्र करमसी भी था और कुछ भाग गये^१। इसके कुछ दिन बाद ही बादशाह की आज्ञानुसार गजसिंह उसकी सेवा में उपस्थित हो गया^२। वि० सं० १६८७ आश्विन सुदि ६ (ई० सं० १६३० ता० ४ अक्टोबर) को बादशाह ने गजसिंह को पुरस्कार आदि देकर फ़ौज में भेजा^३। उसी वर्ष माधोसिंह के हाथ से खानजहां मारा गया^४।

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—‘उन्हीं दिनों में विलायत (?) का बादशाह चार लाख फ़ौज के साथ दिल्ली पर चढ़ आया। इस सेना में

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि गजसिंह को बादशाह ने दौलताबाद की तरफ़ भेजा (जि० १, पृ० १६५)। महकर के पास सीरपुर है। वहां शाही सेना के पहुंचने पर गजसिंह हरावल में और शाहस्ताख़ां आदि चन्दोल में थे। दक्षिणियों की फ़ौज दिखाई पड़ते ही महाराजा ने उसपर आक्रमण किया। इधर खानजहां ने पीछे से शाहस्ताख़ां आदि पर आक्रमण कर दिया, जिसमें शाही सेना के बहुतसे आदमी मारे गये। यह ख़बर मिलने पर गजसिंह पीछे लौटा। उसके पहुंचते ही शत्रु-सेना भाग खड़ी हुई (जि० १, पृ० १६७-८)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; पहला भाग; पृ० २३-३३।

(३) वही; पहला भाग; पृ० ३४।

(४) वही; पहला भाग; पृ० ३८।

(५) वही; पहला भाग; पृ० ४६।

सिक्खों आदि की दिल्ली पर
चढ़ाई

बहुत से सिक्ख सैनिक भी थे। उत्पात बढ़ने पर आगरे से शाहजहां भी फौज लेकर आक्रमणकारियों का दमन करने के लिए चला। इस अवसर पर गजसिंह तथा गांव पूजलोतां का मेड़तिया रघुनाथसिंह भी उसके साथ थे। लड़ाई आरम्भ होने के समय गजसिंह बाईं तरफ कुछ सेना के साथ खड़ा था। थोड़ी लड़ाई के अनन्तर ही शाही सेना के पैर उखड़े और बादशाह भी अपना हाथी युद्धक्षेत्र से बाहर ले जाने को उद्यत हुआ। ऐसी दशा देख रघुनाथसिंह ने उसके समक्ष जाकर उसे कटु वचन कहकर ठहरने के लिए कहा, जिससे बादशाह रुक गया। तब रघुनाथसिंह ने गजसिंह से जाकर कहा कि सिसोदिया भीम को मारा था, आज फिर वैसा ही अवसर आ उपस्थित हुआ है। इसपर गजसिंह अपने सैनिकों सहित बाईं तरफ से शत्रु-सेना पर दूट पड़ा। शाही सेना भी जमकर लड़ने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि सिक्खों और विलायत के मीर आदि को रणक्षेत्र छोड़कर भागना पड़ा और शाही सेना की विजय हुई। शाहजहां ने इसके उपलक्ष्य में गजसिंह को महाराजा की उपाधि दी और मनसब भी तीन हज़ार और बढ़ाना चाहा, परन्तु उस (गजसिंह) ने कहा कि इसके सम्बन्ध में मैं आपसे विचार कर अर्ज करूंगा। फिर उस (शाहजहां) ने रघुनाथसिंह को बुलाकर उसे सवा तीन हज़ारी मनसब और ११२ गांवों के साथ मारोठ का परगना दे दिया।^१

ख्यात के उपर्युक्त कथन की तत्कालीन फ़ारसी तवारीखों से पुष्टि नहीं होती। ख्यात में लिखा हुआ विलायत का बादशाह कौन था और विलायत से किस देश का आशय है, यह भी पता नहीं चलता, अतएव उक्त कथन में सत्य का अंश कितना है यह कहना कठिन है और यह कथन काल्पनिक ही प्रतीत होता है।

वि० सं० १६८८ पौष वदि १ (ई० सं० १६३१ ता० ४ दिसंबर) को बाब-
शाह ने बुरहानपुर से बीजापुर के स्वामी आदिलखां (शाह) को दंड देने के लिए

शाही सेना के साथ बीजापुर
पर चढ़ाई

आसफ़ख़ां की अध्यक्षता में एक फ़ौज रवाना की। उसके साथ राजा गजसिंह, मिर्ज़ा राजा जयसिंह, राजा पहाड़सिंह आदि भेजे गये। साथ ही अबदुल्लाख़ां बहादुर को भी तिलंगाने के लश्कर सहित आसफ़ख़ां के शामिल होने के लिए लिखा गया। आसफ़ख़ां गुलबर्ग होकर बीजापुर पहुंचा और गजसिंह आदि को हिरोल में, राजा भारत, राजा अनूपसिंह आदि को दाहिनी एवं राजा जयसिंह तथा राजा जुम्हारसिंह बुंदेले को बाईं अनी में रखकर उसने बीजापुर पर घेरा डाल दिया। बीजापुरवालों ने इसके पूर्व ही अपने इलाक़े को घेरान कर दिया था, जिससे शाही सेना को अनाज मिलने में कष्ट होने लगा। ऐसी दशा में वर्षा ऋतु के आरंभ होते ही आसफ़ख़ां घेरा उठाकर शोलापुर के क़िले के नीचे होता हुआ बादशाही इलाक़े में लौट गया। इस अवसर पर बीजापुर के पन्द्रह हज़ार सवारों ने उसका शोलापुर तक पीछा किया^३।

वि० सं० १६८६ चैत्र वदि ६ (ई० सं० १६३३ ता० २२ फ़रवरी) को महाराजा गजसिंह ने बादशाह की सेवा में उपस्थित होकर एक हाथी और कुछ

छोटे पुत्र जसवंतसिंह को
उत्तराधिकारी नियत करना

जड़ाऊ चीज़ें भेंट कीं^४। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जब बादशाह पंजाब को गया, उस समय गजसिंह भी उसके साथ था।

(१) राजा नरसिंहदेव बुंदेले का पुत्र। शाहजहां के राज्यकाल में इसका मनसब ४००० ज़ात और ३००० सवार तक बढ़ गया था। हि० सं० १०६४ (वि० सं० १७१०-११ = ई० सं० १६५४) में इसका देहांत हुआ।

(२) इबाजा अब्दुल्ला अहरार का वंशधर।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग, पृ० ६५-६। “उमराए हनुद” (पृ० ३१०) में सन् जुलूस ३ (वि० सं० १६८६-८७=ई० सं० १६३०) में गजसिंह का बीजापुर की चढ़ाई में जाना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; पहला भाग, पृ० ८७। “उमराए हनुद” (पृ० ३१०) में सन् जुलूस ६ (वि० सं० १६८६-८७=ई० सं० १६३३) में गजसिंह का बादशाह की सेवा में उपस्थित होना और उसे खिलअत तथा घोड़ा मिलना लिखा है।

अमरसिंह गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र था, परन्तु उसके इटी एवं उहंड होने के कारण महाराजा उसके विरुद्ध रहता था और अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह पर अधिक प्रेम होने से वह उसको ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। अतएव अमरसिंह को कोई दूसरी जागीर दिलाने का निश्चय कर उसने उसे लाहोर बुलाया। अपने पिता के आदेशानुसार (आवणादि) वि० सं० १६६० (चैत्रादि १६६१) वैशाख वदि ११ (ई० सं० १६३४ ता० १३ अप्रैल) को जोधपुर से चलकर बीलाड़ा होता हुआ वैशाख सुदि २ (ता० १६ अप्रैल) को वह मेड़ते पहुंचा, जहां से वि० सं० १६६१ आसोज सुदि १० (ई० सं० १६३४ ता० २२ सितंबर) को रवाना होकर डांगोलाई और बड़ी पचावती होता हुआ वह लाहोर पहुंचा। पौष वदि ६ (ता० ४ दिसंबर) बृहस्पतिवार को वह अपने पिता के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ, जिसने उसे २५०० ज्ञात और १५०० सवार का मनसब और लगभग ४½ लाख रुपये की जागीर दी^१। उसी वर्ष गजसिंह वहां से लौट गया।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि अनारां नाम की किसी नवाब की स्त्री से गजसिंह का गुप्त प्रेम हो गया था। यह खबर जब फैलने लगी तो अनारां के कहने से महाराजा उसे उसके महलों से निकाल लाया। बाद में बादशाह पर यह भेद प्रकट होने पर वह उसे जोधपुर ले गया। एक दिन जब महाराजा अनारां के महलों में था, कुंवर जसवन्तसिंह उसके पास आया। उसको देखते ही महाराजा और अनारां जैसे ही खड़े हुए, वैसे ही जसवन्तसिंह ने उनके जूते उठाकर उनके आगे धर दिये। अनारां ने कहा कि ये क्या करते हो, मैं तो महाराजा की दासी हूं, तो कुंवर ने कहा कि आप तो मेरी माता के समान हैं। इससे अनारां उसपर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने महाराजा से उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाने का वचन ले लिया। अमरसिंह के स्वेच्छाचारी स्वभाव के कारण अनारां उससे सदा अप्रसन्न रहा करती और उसकी महाराजा से बुराई किया करती थी। इन कई कारणों से महाराजा ने अमरसिंह के स्थान में अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। अनारां की बुराई हुई “अनारां बेरी” जोधपुर में विद्यमान है। महाराजा के मरने पर सरदारों ने उस (अनारां) को धोखे से मार डाला (जि० १, पृ० १७१-२)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० १७७-८।

इसी बीच वि० सं० १६६० (ई० सं० १६३४) के फाल्गुन (फ़रवरी) मास में फलोधी पर बलोचों की फ़ौज ने चढ़ाई की। उस समय गजसिंह की सेना वहाँ थी, जिसने उनका मुक़ाबिला किया। इस लड़ाई में भाटी अचलदास (सुरताणोत), भाटी हरदास (कल्लावत) आदि सरदार मारे गये^१।

वि० सं० १६६२ फाल्गुन सुदि १४ (ई० सं० १६३६ ता० १० मार्च) को बादशाह ने गजसिंह को पुनः इनाम-एकराम दिया^२। फिर (आषाढ़ादि) वि० सं० १६६३ (चैत्रादि १६६४) ज्येष्ठ वदि ७ (ई० सं० १६३७ ता० ६ मई) को आपस की कुछ शर्तों आदि तय होकर जसवन्तसिंह का विवाह जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री से हुआ^३।

वि० सं० १६६४ पौष वदि ५ (ई० सं० १६३७ ता० २६ नवंबर) को महाराजा अपने पुत्र जसवन्तसिंह के साथ बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। इसके कुछ समय बाद ही माघ सुदि ११ (ई० सं० १६३८ ता० १६ जनवरी) को बादशाह की वर्षगांठ के अवसर पर उसे एक खिलअत मिली^४।

टॉड लिखता है कि वि० सं० १६६० (ई० सं० १६३३) में गजसिंह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अमरा (अमरसिंह) को राज्याधिकार से वंचित कर देश से निकाल दिया। इस अवसर पर बहुतसे सरदार उसके साथ हो लिये और वह उनके साथ शाहजहाँ के दरबार में उपस्थित हुआ, जिसने उसके राज्य से निकाले जाने की मन्जूरी दे देने पर भी उसे अपनी सेवा में रख लिया। थोड़े दिनों में ही उसकी वीरता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे राव का खिताब, ३००० का मनसब और नागोर की जागीर दी (राजस्थान; जि० २, पृ० १७६)।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७६-७।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; पहला भाग, पृ० १७४।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १७६-८०। लक्ष्मीचंद-लिखित “तवारीख जैसलमेर” में इसका उल्लेख नहीं है।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; दूसरा भाग; पृ० ६ तथा ७।

ईरान (फारस) के शासक शाह अब्बास (प्रथम) का वि० सं० १६८५
माघ वदि ६ (ई० सं० १६२६ ता० ८ जनवरी) गुरुवार को देहान्त होने पर

कंधार की लड़ाई में
गजसिंह का अपने पुत्र
अमरसिंह के साथ शामिल
रहना
उसका पौत्र शाह सफ़ी वहां का स्वामी हुआ।
उसके राज्य-समय में बड़ी अव्यवस्था फैली। शाह
सफ़ी ने कंधार के हाकिम अलीमर्दानखां के आचरण
से असन्तुष्ट होकर सियायूश क्रोल्लर अक्रासी को वहां
का हाकिम नियतकर अलीमर्दानखां को दरबार में वापस रखाना करने के
लिए भेजा। उसके आगमन से घबराकर अलीमर्दानखां ने गज़नी के सेना-
पति एवज़ां क़ाक़शाल एवं काबुल के हाकिम सईदखां के पास आदमी
भेजकर सहायता की याचना की। तदनुसार वि० सं० १६६४ फाल्गुन सुदि ११
(ई० सं० १६३८ ता० १४ फ़रवरी) को रवाना होकर बारह दिन बाद एवज़ां
कंधार पहुंचा। अलीमर्दानखां ने इसके तीसरे दिन क़िला उसके सुपुर्द कर
बादशाह के नाम का खुतबा पढ़ा और उसके पास उपहार के साथ अधी-
नता सूचक एक पत्र भेजा। कंधार के अधीन हो जाने से बादशाह को बड़ी
प्रसन्नता हुई और उसने सईदखां को काबुल से अलीमर्दानखां की सहायता
के लिए जाने की आज्ञा भेजी। अनन्तर उसने कुलीचखां का मनसब ५०००
ज़ात व ५००० सवार का कर कंधार के क़िले की रक्षा का कार्य उसे
सौंपा एवं शाहज़ादे शुजा का मनसब १२००० ज़ात तथा ८००० सवार का
करके उसको यह आज्ञा देकर काबुल भेजा कि यदि शाह सफ़ी कंधार पर
आक्रमण करे तो वह उसपर प्रत्याक्रमण करे अन्यथा वह साथ भेजे हुए
खानदौरां, जयसिंह, गजसिंह, अमरसिंह, माधोसिंह आदि को ही भेजे^१।
मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहानामा” से पाया जाता है कि सियायूश के

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहानामा” में केवल अमरसिंह का नाम
दिया है, पर आगे चलकर उसने लड़ाई के हाल में गजसिंह का भी शामिल रहना लिखा
है (दूसरा भाग; पृ० १२)।

(२) डा० बनारसीप्रसाद सक्सेना; हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहाना; पृ० २१४-८।
मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग; पृ० ६-१०।

साथ की लड़ाई में सईदखां की तरफ गजसिंह और अमरसिंह दोनों ही विद्यमान थे, जिन्होंने अच्छी बहादुरी दिखालाई^१ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि आगरे में रहते समय जब महाराजा बीमार पड़ा, उस समय बादशाह शाहजहाँ उसकी तबियत का

गजसिंह की बीमारी और
मृत्यु

हाल पूछने उसके डेरे पर गया । उसने गजसिंह से कहा कि इस समय जो तुम्हारे मन में हो सो कहो ।

महाराजा ने कहा कि मेरे बाद मेरे पुत्र जसवन्तसिंह को राज्य देने का आप वचन दें । बादशाह ने उसी समय इस बात को स्वीकार कर लिया । इसके बाद गजसिंह ने अपने तमाम उमरावों एवं मुत्सद्दियों को बुलाकर शपथ दिलाई और कहा कि तुम सब जसू (जसवन्तसिंह) की चाकरी में रहना और उसे ही राज्य दिलाना । उन्होंने भी तत्काल महाराजा की इस बात को मंजूर कर लिया । (आवणदि) वि० सं० १६६४ (चैत्रादि १६६५) ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सं० १६३८ ता० ६ मई) रविवार को आगरे में ही महाराजा का देहावसान हो गया^२ और उसका अंतिम संस्कार यमुना नदी के किनारे हुआ । इसकी खबर जोधपुर पहुँचने पर उसकी कई राणियां सती हुई^३ ।

जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार महाराजा गजसिंह की दस राणियां थीं, जिनसे उसके ३ पुत्र—अमरसिंह (जन्म वि० सं० १६७० पौष

(१) दूसरा भाग; पृ० १२-३ ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहाँनामा” (दूसरा भाग; पृ० ३१) तथा “वीरविनोद” (भाग २, पृ० ८२०) में भी वि० सं० १६६५ ज्येष्ठ सुदि ३ (ई० सं० १६३८ ता० ६ मई) रविवार दिया है । बांकीदास वि० सं० १६६४ ही देता है (ऐतिहासिक बातें; संख्या १६३३) । मारवाड़ में संवत् आवण से बदलता है । इस हिसाब से ख्यातों में दिया हुआ समय ही ठीक है । टॉड ई० सं० १६६४ में गजसिंह का गुजरात की लड़ाई में मारा जाना लिखता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ३७५), परन्तु फ़ारसी तवारीख़ों और ख्यातों को देखते हुए टॉड का कथन अमपुर्ण ही है ।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८६-७ ।

राणियां तथा सन्नति

सुदि १०=ई० स० १६१३ ता० ११ दिसंबर), जस-
वन्तसिंह (जन्म वि० सं० १६८३ माघ वदि ४ =
ई० स० १६२६ ता० २६ दिसंबर) और अचलसिंह—हुए^१। बांकीदास-कृत
“ऐतिहासिक बातें” से पाया जाता है कि उसकी एक पुत्री चन्द्रकुंवर-
बाई का विवाह बांधोगढ़ के स्वामी राजा अमरसिंह के साथ हुआ था^२।

महाराजा की भवन-निर्माण की तरफ भी विशेष रुचि थी। उसकी
आज्ञा से कूपावत राजसिंह ने तोरण पोल, सभामंडप, दीवानखाना,
आनंदधनजी का ठाकुर-द्वारा आदि बनवाये थे।
महाराजा तथा उसकी राणियों के बनवाये हुए स्थान आदि इनके अतिरिक्त उसने तलहटी का नया महल भी
बनवाया और अनेकों उद्यान और कुंए इत्यादि भी
बनवाये। महाराजा की राणियों में से चंद्रावत कश्मीरदे ने गांगेलाख तालाब
और बाधेली कुसुमदे ने कागड़ी तालाब बनवाये^३।

महाराजा गजसिंह के राज्य-समय के अबतक ग्यारह शिलालेख
प्रकाश में आये हैं, जो वि० सं० १६७८ (ई० स० १६२१) से लगाकर
वि० सं० १६८६ (ई० स० १६३२) तक के हैं^४। इनमें से अंतिम दो में,
जो वि० सं० १६८६ के हैं, महाराजा के नाम के
साथ उसके युवराज कुंवर अमरसिंह का नाम
भी दिया है^५ तथा वे जैनमन्दिरों के जीर्णोद्धार के

महाराजा के समय के
शिलालेख

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८७-६०। इनमें से अचलसिंह
बाल्यावस्था में ही मर गया।

(२) संख्या २३०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८५।

(४) डा० मंडारकर; ए लिस्ट ऑफ् दि इन्स्टिट्यूट ऑफ् नॉदर्न इन्डिया;
संख्या ६७१, ६७५, ६७७, ६८५, ६८६, ६८९ तथा ६९२। पूरणचंद नाहर; जैनलेख-
संग्रह; प्रथम खंड; संख्या ७८३, ८२५, ८२७, ८२६, ८३०, ८३७, ८०४, ८०५
तथा ६८१।

(५) जर्नल ऑफ् दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ् बंगाल (न्यू सीरीज़);
जि० १२, संख्या ३ (ई० स० १८१६), पृ० ६७-८।

संबंध के हैं। शेष लेख भी जैनधर्म से संबंध रखनेवाले हैं और वे पीतल की मूर्तियों पर खुदे हुए हैं।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है महाराजा गजसिंह का ज्येष्ठ पुत्र अमरसिंह था, परंतु उसपर रुष्ट रहने के कारण महाराजा ने उसको राज्य के हक से वंचित कर अपने छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। वि० सं० १६६१ (ई० स० १६३४) में उसको लाहोर बुलाकर महाराजा ने उसे बादशाह शाहजहां से पृथक् मनसब और बड़ोद, भल्लाय, सांगोद आदि के परगने जमीन में दिला दिये। फिर महाराजा ने अमरसिंह की माता सोनगरी तथा उसके अन्य परिवार को जोधपुर से हटा दिया, जिसपर वे बड़ोद में अमरसिंह के पास जा रहे। बादशाह शाहजहां के राज्यसमय वह उसकी तरफ की कई चढ़ाईयों में शाही फौज के शामिल रहा। सन् जुलूस २ (वि० सं० १६८५-८६ = ई० स० १६२६) में वह खानजहां के साथ जुझारसिंह बुंदेले का दमन करने गया; सन् जुलूस ६ (वि० सं० १६६२-६३ = ई० स० १६३५-३६) में दक्षिण की तरफ चढ़ाई होने पर वह शाही फौज के साथ उधर गया; सन् जुलूस ११ (वि० सं० १६६४-६५ = ई० स० १६३७-३८) में वह शाहज्जादे शुजा के साथ काबुल गया; सन् जुलूस १४ (वि० सं० १६६७-६८ = ई० स० १६४०-४१) में भी वह शाहज्जादे मुराद के साथ वहीं रहा और वहां से राजा बासू (पंजाब) के पुत्र राजा जगतसिंह का दमन करने के लिए भेजा गया। वि० सं० १७०१ (ई० स० १६४४) में बीकानेर के गांव सीलवा और नागोर के गांव जाखणियां के संबंध में कलह होने पर बीकानेरवालों के साथ अमरसिंह की सेना की लड़ाई हुई, परन्तु उसमें उसकी पराजय हुई। यह लड़ाई "मतीरे की राढ़" के नाम से भी प्रसिद्ध है। उसी वर्ष उसने बादशाह के

(१) इस लड़ाई का विस्तृत वृत्तान्त आगे बीकानेर राज्य के इतिहास में दिया जायगा।

एक प्रमुख दरबारी सलाबतख़ां को मार डाला^१, पर उसी समय विठ्ठलदास गौड़ के पुत्र अर्जुन तथा कई व्यक्तियों ने उसपर आक्रमण कर उसका भी खात्मा कर दिया। यह घटना वि० सं० १७०१ श्रावण सुदि २ (ई० सं० १६४४ ता० २५ जुलाई) को हुई। इसकी ख़बर मिलने पर अमरसिंह के राजपूतों ने शाही अफ़सरों पर आक्रमण कर दिया और उनमें से बहुतों को मारकर वे मारे गये। अमरसिंह बड़ा वीर, साहसी और सच्चा राजपूत था। शाहजहाँ के दूसरे राज्यवर्ष में उसे २५०० ज़ात तथा १५०० सवार का मनसब मिला था, जो बढ़ते-बढ़ते ४००० ज़ात और ३००० सवार तक हो गया था। गजसिंह की मृत्यु होने पर बादशाह ने उसे “राव” का खिताब और नागोर की जागीर भी दे दी थी। उसके दो पुत्र रायसिंह तथा ईश्वरीसिंह हुए। रायसिंह का जन्म वि० सं० १६६० आश्विन सुदि १० (ई० सं० १६३३ ता० २ अक्टोबर) को हुआ था। हि० सं० १०५६ ता० १२ ज़ीकाद (वि० सं० १७०६ कार्तिक सुदि १३ = ई० सं० १६४६ ता० ७ नवंबर) को जब वह बादशाह के पास उपस्थित हुआ तो उसे उसकी जागीर के अतिरिक्त १००० ज़ात और ७०० सवार का मनसब प्राप्त हुआ। वह कन्धार, चित्तोड़ तथा खजवा आदि की चढ़ाइयों में शाही फ़ौज के साथ शामिल रहा था। पीछे से महाराजा जसवन्तसिंह के खजवा से देश चले जाने पर रायसिंह ४००० ज़ात एवं ४००० सवार का मनसब तथा “राजा” का खिताब देकर उस(जसवन्तसिंह)के विरुद्ध भेजा गया, जिसका विस्तृत उल्लेख आगे जसवन्तसिंह के इतिहास में किया जायगा। औरंगज़ेब के राज्यसमय में वह दाराशिकोह तथा शिवाजी पर की चढ़ाइयों में शाही फ़ौज के साथ

(१) ख्यातों में लिखा है कि सलाबतख़ां ने उसे “गंवार” कहा था। अमरसिंह जैसे वीर और सत्यप्रिय राठोड़ को यह शब्द अप्रिय लगा, जिससे उसने अक्सर पाते ही उसपर कटार का वार कर मार डाला (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २६४)। “उमराए हनुद” से पाया जाता है कि अमरसिंह के इस आचरण का कारण सिबाय इसके और कुछ न ज्ञात हुआ कि वह शराब के नशे में चूर था (पृ० २६)। ऐसा भी पता चलता है कि नागोर की लड़ाई के कारण सलाबतख़ां बीकानेर-वालों का पक्षपात करने लगा था, जिससे अमरसिंह उसपर नाराज़ था।

रहा। अनन्तर उसने शाहजहाँ मुहम्मद मुअज्जम एवं खानजहाँ बहादुर कोकलाश की अध्यक्षता में रहकर अच्छा कार्य किया। दक्षिण में रहते समय ही (श्रावणादि) वि० सं० १७३२ (चैत्रादि १७३३) आषाढ वदि १२ (ई० सं० १६७६ ता० २६ मई) को उसकी मृत्यु हुई। रायसिंह का पुत्र इन्द्रसिंह हुआ, जिसे जसवन्तसिंह की मृत्यु होने के बाद औरंगजेब ने जोधपुर दे दिया था। वह अजीतसिंह तथा दुर्गादास आदि पर की बादशाह की कई चढ़ाइयों में शामिल रहा था, जिनका इतिहास आगे यथास्थान आयेगा। इन्द्रसिंह के सात पुत्र—मोहकमसिंह, महासिंह, श्यामसिंह, मोहनसिंह, अजबसिंह, फ़तहसिंह और भीमसिंह—हुए।

महाराजा गजसिंह अपने पिता के समान ही वीर, साहसी, नीति-कुशल, गुणग्राही, उदार और दानशील व्यक्ति था। शाही दरबार में उसका सम्मान ऊँचे दर्जे का था और जहांगीर तथा शाहजहाँ दोनों के समय की बड़ी-बड़ी चढ़ाइयों में शाही सेना के साथ रहकर उसने अच्छी बहादुरी

महाराजा गजसिंह का
व्यक्तित्व

दिखलाई थी। उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते पाँच हज़ार ज़ात तथा पाँच हज़ार सवार का हो गया था और समय-समय पर उसे उक्त दोनों बादशाहों की तरफ़ से मूल्यवान् वस्तुएं उपहार में मिलती रहीं। उसने भी कई बार बादशाह एवं दूसरे कई अमीरों को अपनी तरफ़ से हाथी नज़र किये। सिंहासनारूढ़ होने के बाद उसने तीन बार चांदी का तुलादान किया—पहला वि० सं० १६८० (ई० सं० १६२३), दूसरा १६८१ (ई० सं० १६२४) तथा तीसरा (श्रावणादि) १६६० (चैत्रादि १६६१ = ई० सं० १६३४) में^१। वह विद्वानों, चारणों, ब्राह्मणों आदि का अच्छा सम्मान करता था। उसने चारणों, भाटों आदि को सोलह बार लाख पसाव और ६ हाथी दिये थे। ख्यात से पाया जाता है कि एक लाख पसाव के नाम से २५००) दिये जाते थे^२। इसके अतिरिक्त उसने कई अवसरों पर चारणों आदि को

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १८६।

(२) वही; जि० १, पृ० १८०-१। इस स्थल पर संभवतः २५०००) के स्थान

गांव भी दान में दिये थे' । उसकी गुणग्राहकता केवल मारवाड़ राज्य तक ही सीमित न थी, बल्कि बाहर के विद्वानों, कवियों आदि का भी वह पूरा-पूरा सम्मान करता था^१ ।

गजसिंह चरित्र का कुछ हीन था, जिससे अपने पिछले दिनों में वह अपनी प्रीतिपात्री अनारा के कहने में चलने लगा था । उसी के कथन से प्रभावित होकर उसने अपने वास्तविक उत्तराधिकारी अमरसिंह को राज्य के इत्त से वंचित कर छोटे पुत्र जसवन्तसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया ।

में भूल से २५००) लिखे गये हैं । महाराजा सूरसिंह के समय एक लाख पसाव के नाम से २५०००) ही दिये जाते थे (देखो ऊपर पृ० ३८७, टि० २) ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १११ ।

(२) बाहर के सम्मान पानेवाले व्यक्तियों में मेवाड़ के दधवाडिया खींवराज (खेमराज) जैतमालोत तथा सिरोही के आढ़ा दुरसा के नाम उल्लेखनीय हैं । इन्हें लाख पसाव के अतिरिक्त हाथी तथा क्रमशः राजगियावास (परगना सोजत) वि० सं० १६१४ कार्तिक सुदि १ (ई० स० १६३७ ता० १७ अक्टोबर) को और पांचेटिया (परगना सोजत) गांव वि० सं० १६७७ (ई० स० १६२०) में मिले थे (जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० ११२) ।

नवां अध्याय

महाराजा जसवन्तसिंह

जन्म तथा जोधपुर का राज्य मिलना

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जसवन्तसिंह का जन्म वि० सं० १६८३ माघ वदि ४ (ई० स० १६२६ ता० २६ दिसंबर) को बुरहानपुर में हुआ था^१। पिता की मृत्यु के समय वह बूंदी में विवाह करने के लिए गया हुआ था, जहां यह दुःखद समाचार पहुंचने और बादशाह की आज्ञा प्राप्त होने पर वह तत्काल सीधा शाही दरबार में उपस्थित हो गया^२। बादशाह ने उसे अपने हाथ से टीका देकर^३ खिलअत, जड़ाऊ जमधर, चार हज़ार ज़ात और चार हज़ार सयार का मनसब, राजा का खिताब, भंडा, नक़ारा, सुनहरी ज़ीन का घोड़ा और खासा हाथी प्रदान किया^४। जसवन्तसिंह ने भी इस अवसर पर एक हज़ार मोहरें, बारह हाथी और कुछ जड़ाऊ चीज़ें बादशाह को भेंट कीं^५। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर बादशाह ने राठोड़ राजसिंह (खींवावत),

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२१।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४।

(३) वही; जि० १, पृ० १६४ [इसका समय (श्रावणादि) वि० सं० १६६४ (वैशाख १६६५) आषाढ वदि ७ = ई० स० १६३८ ता० २५ मई दिया है]। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या १२३।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग, पृ० ३१-४०। उमराव हनुद; पृ० १२५। वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२२। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी खिरोपाव, हाथी, घोड़ा, आभूषण आदि मिलने का उल्लेख है (जि० १, पृ० १६४)।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग, पृ० ४०। उमराव हनुद; पृ० १२५।

राठोड़ गोरधन (चांदावत), राठोड़ बिट्टलदास (गोपालदासोत), राठोड़ जगतसिंह (रामदासोत) आदि जसवन्तसिंह के उमरावों को भी सिरोंपाष दिये^१ । उसी ख्यात के अनुसार जसवन्तसिंह को टीके में जोधपुर, सोजत, फलोधी, मेड़ता और सिवाणा के परगने मिले^२ ।

राज्यप्राप्ति के समय जसवन्तसिंह की अवस्था केवल बारह वर्ष की थी, अतएव ठीक प्रकार से राज्य-कार्य चलाने के लिए बादशाह ने
 राजसिंह का मंत्री बनाया जाना
 आसोप के ठाकुर राजसिंह (कृपावत) को एक हज़ार ज़ात और चार सौ सवार का मनसब देकर जोधपुर का मंत्री नियुक्त किया^३ ।

वि० सं० १६६५ भाद्रपद वदि ४ (ई० सं० १६३८ ता० १८ अगस्त) को बादशाह ने जसवन्तसिंह आदि के साथ आगरे से दिल्ली के लिए प्रस्थान किया । मार्ग में सामीघाट में डेरा हुआ^४ । भाद्रपद सुदि ६ (ता० ६ सितंबर) को बादशाह के दिल्ली पहुंचने पर मंत्री राजसिंह ने एक हाथी उसको भेंट किया^५ । आश्विन वदि १ (ता० १४ सितंबर) को बादशाह ने दिल्ली से कूच किया । जसवन्तसिंह आदि कई अमीर, जो दिल्ली में रक्खे गये थे, बादशाह का आदेश पाकर पालम में डेरे होने पर उसकी सेवा में उपस्थित हो गये^६ । आश्विन सुदि ६ (ता० ६ अक्टोबर) को परगने अंदरी के अश्रित्यारपुर नामक स्थान में बादशाह ठहरा^७ ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६४-५ ।

(२) वही; जि० १, पृ० १६५ ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; दूसरा भाग, पृ० ४३ । बीरबिनोद; भाग २, पृ० ८२२ ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; दूसरा भाग, पृ० ५२ ।

(५) वही; दूसरा भाग, पृ० ५२ ।

(६) वही; दूसरा भाग, पृ० ५२ ।

(७) वही; दूसरा भाग, पृ० ५२ ।

गजसिंह के समय में महेशदास उसका चाकर था। जसवन्तसिंह के राज्याधिकार प्राप्त करने पर वह उसकी सेवा में रहकर कार्य करने लगा। कार्तिक सुदि १० (ता० ६ नवंबर) महेशदास को मनसब मिलना को व्यास नदी के किनारे रहते समय बादशाह ने उसे ८०० ज़ात और ३०० सवार का मनसब दिया^१।

उसी वर्ष माघ वदि ४ (ई० स० १६३६ ता० १३ जनवरी) को बादशाह की वर्षगांठ बड़ी धूमधाम के साथ मनाई गई। इस अवसर पर जसवन्तसिंह के मनसब में १००० ज़ात और १००० सवार की वृद्धि की गई^२। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि मनसब में वृद्धि होने के साथ इस अवसर पर उसे जेतारण का परगना भी मिला^३।

वि० सं० १६६६ चैत्र सुदि ३ (ई० स० १६३६ ता० २७ मार्च) को बादशाह का मुक्काम रावलपिंडी में हुआ^४। जसवन्तसिंह को साथ ले वहां से नोशहरा होता हुआ बादशाह पेशावर पहुंचा, जहां आसफ़खां और जसवन्तसिंह को छोड़कर वह स्वयं जमुर्द (जमरूद) की ओर अग्रसर हुआ। सारे लश्कर का खैबर के तंग दर्रे से गुज़रना कठिन था, इसीलिए बादशाह ने पेसा प्रबंध किया था^५। उसके अली मस्जिद में पहुंचने पर वैशाख सुदि ५ (ता० २८ अप्रैल) को जसवन्तसिंह आदि भी उसके पास पहुंच गये^६। अनन्तर चिनाब नदी के किनारे से फाल्गुन सुदि ११ (ई० स० १६४० ता० २३

- (१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ५३ ।
- (२) वही; दूसरा भाग, पृ० ५६ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ८२२ । जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६५ ।
- (३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १६५ ।
- (४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ५८-६ ।
- (५) वही; दूसरा भाग, पृ० ५६-६० ।
- (६) वही; दूसरा भाग, पृ० ६१ ।

फरवरी) को जसवंतसिंह को खिलअत और घोड़ा देकर बादशाह ने देश जाने की आज्ञा दी^१।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि जोधपुर पहुंचकर (भाषणादि) वि० सं० १६६६ (वैशाख १६६७) जोधपुर में सिंहासनारूढ़ होना ज्येष्ठ वदि ५ (ई० सं० १६४० ता० ३० अप्रैल) को जसवंतसिंह वहां की गद्दी पर बैठा^२।

वि० सं० १६६८ वैशाख वदि २ (ई० सं० १६४१ ता० १८ मार्च) को जसवंतसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ^३। इसके कुछ समय पूर्व राजसिंह की मृत्यु पर महेश-दास का मंत्री बनाया जाना ही मंत्री राजसिंह का देहान्त हो गया था, जिससे बादशाह ने महेशदास को खिलअत आदि देकर उसके स्थान में मंत्री बनाया^४।

यह ऊपर लिखा जा चुका है कि जसवंतसिंह का मनसब बढ़कर ५००० ज्ञात और ५००० सवार का हो गया था। वैशाख सुदि १३ (ता० १३ अप्रैल) को उसके मनसब में से एक हजार सवार दो-अस्पा और से-अस्पा मुक्त कर दिए^५। उसी वर्ष कार्तिक वदि ४ (ता० १२ अक्टोबर) को अरब से ७१ घोड़े एक लाख रुपयों में खरीद कर आये। उनमें से भी एक घोड़ा बादशाह ने जसवंतसिंह को दिया^६।

वि० सं० १६६६ (ई० सं० १६४२) में ईरान के शाह सफ़ी ने, जो रुम के सुलतान मुरादखां से सन्धि करके कंधार पर चढ़ाई करने का

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग, पृ० ६८।

(२) जिल्द १, पृ० १६६।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग, पृ० ७२-६।

(४) वही; दूसरा भाग, पृ० ७७।

(५) वही; दूसरा भाग, पृ० ७७। उमराए हनुद; पृ० १२५।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; दूसरा भाग, पृ० ८२-६।

ईरान के शाह पर बादशाही
सेना के साथ जाना

आयोजन कर रहा था, अपने सिपहसालार कस्तम गुर्जों को कंधार पर खाना किया। इसपर बादशाह ने स्वयं उसका सामना करने के लिए जाने का विचार किया, लेकिन शाहजादे दाराशिकोह के यह अर्ज करने पर कि आप लाहोर में ही ठहरें और मुझे चढ़ाई करने की आज्ञा दें, बादशाह ने उसका मनसब बीस हजार ज्ञात और बीस हजार सवार का कर तथा खिलअत आदि दे उसे ही कंधार की तरफ खाना किया। इस अवसर पर उसके साथ राजा जसवन्तसिंह^१, राव अमरसिंह (नागौर), राव शत्रुसाल (बूंदी), राजा जयसिंह (कछवाहा), राजा रायसिंह (टोड़ा) आदि राजपूत राजा भी भेजे गये। उनके गज़नी पहुंचने से पूर्व ही, काशान में वैशाख सुदि १३ (ता० २ मई) को अधिक शराब पीने के कारण शाह सफ़ी का देहांत हो गया। गज़नी पहुंचकर इसकी सूचना दाराशिकोह ने बादशाह के पास भेजी और स्वयं हिरात तथा सीस्तां विजय करने का विचार करने लगा। इस बात का पता चलने पर बादशाह ने उसे लौट आने का हुक्म भेजा^२।

हि० स० १०५३ ता० १२ रबीउस्सानी (वि० सं० १७०० आषाढ जसवन्तसिंह को स्वदेश जाने की छुट्टी मिलना) सुदि १३ = ई० स० १६४३ ता० १६ जून) को जसवन्तसिंह छुट्टी लेकर जोधपुर गया^३।

(१) इस अवसर पर जसवन्तसिंह को बादशाह ने ख़ासा खिलअत, जबाज अमर फूलकटार सहित, सुनहरी साज़ का घोड़ा और ख़ासा हाथी दिया (मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ११४)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० ११२-७। उमराए हनुद; पृ० १२४। वीरविनोद; भाग २, पृ० ३३८ तथा ८२२।

(३) उमराए हनुद; पृ० १२४। मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहांनामा” (दूसरा भाग, पृ० १२४) में भाद्रपद सुदि १४ (ता० १८ अगस्त) को जसवन्तसिंह को जोधपुर जाने की छुट्टी मिलना लिखा है। “वीरविनोद” के अनुसार आश्विन मास में उसे स्वदेश जाने की छुट्टी मिली (भाग २, पृ० ८२२)। उसी पुस्तक में एक दूसरे

उसी वर्ष जालोर के हाकिम के राइदड़ा गांव लूटने पर जब महेचा महेशदास भूमि का बिगाड़ करने लगा तो उसपर मुंहणोत नैणसी सेना लेकर गया । उसने वहां पहुंचकर राइदड़ा को लूटा और वहां के कोट को नष्ट कर दिया । तत्पश्चात् उसने वहां का अधिकार रावल जगमाल को दे दिया^२ ।

वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ६ (ई० स० १६४३ ता० १० नवंबर) को बादशाह ने अजमेर पहुंचकर क्वाजा शरीफ की ज़िंभारत की । उसी दिन जसवन्तसिंह जोधपुर से जाकर उस (बादशाह) की सेवा में उपस्थित हो गया^३ । पौष वदि १ (ता० १६ नवंबर) को अजमेर से आगरे के लिए प्रस्थान करते समय बादशाह ने उसको पुनः देश जाने की आज्ञा प्रदान की^४ ।

वि० सं० १७०१ माघ वदि १२ (ई० स० १६४५ ता० १४ जनवरी) को बादशाह ने आगरे से लाहौर की तरफ प्रस्थान किया । माघ सुदि २

स्थल पर लिखा है कि यह छुट्टी बादशाह ने अजमेर से आगरे लौटते समय मार्ग में दी थी (भाग २, पृ० ३३६) ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसे भारमल का पुत्र लिखा है, परन्तु मालानी प्रान्त के नगर ग्राम के रणछोड़जी के मंदिर में खुदे हुए वि० सं० १६८६ (ई० स० १६२९) के रावल जगमाल के लेख से पाया जाता है कि भारमल उसका पिता नहीं बल्कि पुत्र था । उसका पिता तो तेजसी था ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५० ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १२७-८ । उमराए हन्द (पृ० १५५) में हि० स० १०५३ ता० ८ रमजान (वि० सं० १७०० मार्गशीर्ष सुदि ११ = ई० स० १६४३ ता० ११ नवम्बर) दिया है ।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, जि० २, पृ० १२८-९ ।

(ता० १६ जनवरी) को रूपवास में रहते समय जसवन्तसिंह को आगरे की सूबेदारी मिलना उसने जसवन्तसिंह को, जो फिर उसके पास पहुंच गया था, खासा खिलअत प्रदान कर नये सूबेदार शेख फरीद के पहुंचने तक आगरे के प्रबन्ध के लिए नियुक्त किया^१ ।

कुछ दिनों तक लाहोर में रहने के उपरान्त वि० सं० १७०२ चैत्र सुदि ८ (ई० सं० १६४५ ता० २५ मार्च) को बादशाह ने काश्मीर के लिए प्रस्थान किया, जहां पहुंचकर आषाढ सुदि ६ (ता० २२ जून) को उसने अपने लाहोर लौटने तक जसवन्तसिंह को भी वहां (लाहोर) आने को लिखा^२ । इसके अनुसार मार्गशीर्ष वदि १ (ता० २५ अक्टोबर) को बादशाह के काश्मीर से लाहोर वापस लौटने पर महाराजा उसके पास उपस्थित हो गया^३ । वि० सं० १७०३ ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० सं० १६४६ ता० १३ मई) को पेशावर में बादशाह की वर्ष गांठ के उत्सव के समय महाराजा के मनसब के १००० सवार और दो-अस्पा तथा से-अस्पा^४ कर दिये गये^५ । इसके बाद बादशाह के आदेशानुसार महाराजा आंबेर के कुंवर रामसिंह के साथ एक मंज़िल आगे चलने लगा^६ । इस प्रकार आषाढ वदि १० (ता० २६ मई) को बादशाह काबुल पहुंचा, जहां पहले पहुंचे हुए जसवन्तसिंह तथा अन्य व्यक्ति उसकी पेशवाई के लिए गये^७ । हि० सं० १०५६ ता० ४ जिल्हिज

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १६०। उमराए हनुद; पृ० १५५ ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १६२, १६६ ।

(३) वही; दूसरा भाग, पृ० १७८ ।

(४) मनसब के जिन सवारों की तनवाह दूनी मिलती थी वे “दो-अस्पा” और जिनकी तिगुनी मिलती थी वे ‘से-अस्पा’ कहलाते थे ।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १८६-६० । उमराए हनुद; पृ० १५५ ।

(६) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; दूसरा भाग, पृ० १६० ।

(७) वही; दूसरा भाग, पृ० १६४ ।

(वि० सं० १७०३ पौष सुदि ५ = ई० सं० १६४७ ता० १ जनवरी) को उसके मनसब में से ५०० सवार और दो-अस्पा से-अस्पा किये गये^१। इसके बाद दो बार वृद्धि होकर महाराजा के मनसब के ५००० सवार ही दो-अस्पा से-अस्पा हो गये^२।

उन दिनों सोजत के पहाड़ों में से चढ़कर रावत नराण (नारायण) आस-पास की भूमि का बहुत उक्तसान करता था, अतएव मुंहणोत नैणसी तथा उसका भाई सुन्दरदास उसपर भेजे गये।
 मुंहणोत नैणसी का रावत नारायण पर भेजा जाना उन्होंने उधर जाकर कूकड़ा, कोट, कराणा, मांकड़ आदि गांवों को नष्ट कर दिया^३।

वि० सं० १७०५ (ई० सं० १६४८) में बादशाह के लाहोर में रहते समय कंधार के किलेदार के पास से खबर आई कि शाह अब्बास ने ५०००० सेना तथा तोपों आदि के साथ पहुंचकर किले को घेर लिया है, अतएव तुरंत सहायता पहुंचाना आवश्यक है। यह समाचार मिलते ही बादशाह ने शाहज़ादे औरंगज़ेब को लिखा कि वह मुलतान से सीधा कंधार की तरफ़ प्रस्थान करे। इस चढ़ाई पर उसके साथ जाने के लिए राजा जसवन्तसिंह, सादुल्लाखां, बहादुरखां, कुलीचखां, राजा विट्ठलदास गौड़ आदि १३२ शाही अफ़सर ५०००० सवारों के साथ भेजे गये। वि० सं० १७०६ चैत्र सुदि २ (ई० सं० १६४९ ता० ५ मार्च) को बादशाह ने स्वयं लाहोर से काबुल की तरफ़ प्रस्थान किया। इसी बीच ख्वासखां ने कंधार का किला ईरान के शाह को समर्पण कर दिया। यद्यपि बादशाह की आज्ञा यह थी कि शाहज़ादा (औरंगज़ेब) शीघ्रातिशीघ्र कंधार पहुंचकर किले पर घेरा डाले, पर लश्कर के लिए आवश्यक सामान आदि का प्रबंध करने में उसे मुलतान में देर हो गई। फिर भी बादशाह के आदेशा-

(१) उमराण हनुद; पृ० १५५।

(२) बजरबदास; मन्नासिरुल् उमरा; पृ० १७०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५०।

नुसार बह और सादुल्लाखां मार्ग से बर्फ तथा भाड़ियां आदि साफ़ करते हुए प्रथम आषाढ़ वदि २ (ता० १७ मई) को कंधार के पास जा पहुंचे । सारी बादशाही सेना वहां सात टुकड़ियों में पहुंची थी । बड़ी कठिनता एवं बहुतसी जानें गंवाकर शाही सेना ने क़िले पर घेरा डाला । कई बार क़िले के भीतर प्रवेश करने का प्रयत्न किया गया, पर शत्रु की सावधानी के कारण सफलता न मिली । इसी बीच मुर्तज़ा कुलीखां आदि ३१ अमीरों की अध्यक्षता में ३०००० क़ज़लबाशों के चढ़ आने का समाचार मिला । शाहज़ादे ने श्रावण सुदि १४ (ता० ११ अगस्त) को रुस्तमखां और कुलीचखां वगैरह को उनपर भेजा, जिन्होंने बड़ी लड़ाई के बाद उन्हें परास्त कर भगा दिया, परन्तु क़िले पर अधिकार करने का शाही सेना का प्रत्येक प्रयत्न विफल होता रहा । कंधार से लगातार असफलता के समाचार पाने पर काबुल से लौटते समय बादशाह ने शाहज़ादे को घेरा उठाकर चले आने को लिख दिया । इसके अनुसार चार महीने घेरा रहने के उपरन्त दो-तीन हज़ार आदमियों और चार-पांच हज़ार जानवरों की जानें व्यर्थ गंवाकर शाहज़ादे ने अवशिष्ट सेना के साथ बादशाह की सेवा में प्रस्थान किया^१ ।

जैसलमेर के रावल मनोहरदास के निःसन्तान मरने पर राजलोक (राणियों) को मिलाकर रामचन्द्र^२ गद्दी पर बैठा और उसने भाटियों को भी अपने पक्ष में कर लिया । यह कार्य सीहड़ रघुनाथ भाणोत की अनुपस्थिति में हुआ था, अतएव उसके मन में इसकी आँट पड़ गई । उन दिनों भाटी

जसवन्तसिंह का भेना भेजकर
पोकरण पर अधिकार करना

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाननामा; तीसरा भाग, पृ० २६-५१ । “उमराए हुन्द” में भी सन् जुलूस २२ (वि० सं० १७०५-६ = ई० स० १६४८-९) में जसवन्त-सिंह का शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ कंधार पर जाना लिखा है (पृ० १५५) ।

(२) रावल मालदेव (लूणकर्णोत) के दूसरे पुत्र भवानीदास का पौत्र (सुहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३३५-६) । ज्येष्ठ होने के कारण वास्तविक उत्तराधिकारी भी यही था ।

सबलसिंह (दयालदासोत) राव रूपसिंह भारमलोत (कछुवाहा) के यहां नौ-दस हजार साल के पट्टे पर चाकरी करता था और बादशाह शाहजहां की रूपसिंह पर बड़ी कृपा थी। उसने सबलसिंह के वास्ते बादशाह से अर्ज़ की, जिसने उसे जैसलमेर का राज्य दिलाना स्वीकार किया^१। इसी अवसर पर महाराजा जसवन्तसिंह ने बादशाह से निवेदन कर पोकरण पर अधिकार करने का फ़रमान लिखा लिया^२। महाराजा (श्रावणादि) वि० सं० १७०६ (चैत्रादि १७०७) वैशाख सुदि ३ (ई० सं० १६५० ता० २३ अप्रैल) को जहानाबाद से मारवाड़ में गया और ज्येष्ठ मास^३ में जोधपुर पहुंचते ही उसने राव सादूल गोपालदासोत और पंचोली हरीदास को फ़रमान देकर जैसलमेर भेजा। रावल रामचन्द्र ने पांच भाटी सरदारों की सलाह से यह उत्तर दिया कि पोकरण पांच भाटियों के सिर कटने पर मिलेगा^४। इसपर जोधपुर में सेना एकत्र होने लगी। बादशाह के पास भी इस घटना की खबर पहुंची, जिससे वह रामचन्द्र से अप्रसन्न हो गया और उसने कुछ दिनों बाद ही सबलसिंह के शाही सेना स्वीकार करने पर जैसलमेर का फ़रमान उसके नाम कर दिया। भाटी रघुनाथ तथा कितने ही अन्य भाटी सरदार भी रामचन्द्र से बदल गये और उन्होंने सबलसिंह को शीघ्र आने को लिखा।

(१) रावल मालदेव के आठवें पुत्र खेतसी का पौत्र (मुंहणोत नैणसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३३५-७)। जोधपुर राज्य की ख्यात में इसे वास्तविक उत्तराधिकारी लिखा है (जि० १, पृ० २०१), जो ठीक नहीं है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में सबलसिंह का स्वयं बादशाह के पास जाना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)। लक्ष्मीचंद-लिखित "तवारीख जैसलमेर" में भी ऐसा ही लिखा है (पृ० ५६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि बादशाह ने जैसलमेर पर सबलसिंह का अधिकार कराने के एवज़ में पोकरण उसे दी (जि० १, पृ० २०१)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में आपाद बदि ३ (ता० ६ जून) दिया है (जि० १, पृ० २०१)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं है।

तब सबलसिंह अपने आदमियों सहित फलोधी के निकट भोलासर पर पहुँचा, जिसके निकट जैसलमेरवालों के साथ लड़ाई होने पर उसकी विजय हुई^१। तत्पश्चात् महाराजा जसवन्तसिंह की सेना शीघ्र ही पोकरण गई^२। सबलसिंह भी खाररेड़ा के ७०० आदमियों सहित महाराजा से जा मिला। वि० सं० १७०७ (ई० सं० १६५०) के कार्तिक (अक्टोबर) मास^३ में गढ़ से आध कोस के अंतर पर डूंगरसर तालाब पर उक्त सेना का डेरा हुआ। तीन दिन तक गढ़ पर घावे होने से भाटी भयभीत हो गये। इसी बीच सबलसिंह ने गढ़ के भीतर के भाटियों से बातचीत कर उन्हें बाहर निकलवा दिया^४। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि कुछ भाटियों ने गढ़ के बाहर आकर राठोड़ सेना का सामना किया, पर वे मारे गये। इस प्रकार पोकरण के गढ़ पर महाराजा की सेना का अधिकार हो गया^५।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में इसका उल्लेख नहीं है।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में रीयां के स्वामी राठोड़ गोपालदास (सुंदर-दासोत मेड़तिया), पाली के स्वामी राठोड़ विठ्ठलदास (गोपालदासोत चांपावत) तथा आसोप के स्वामी नाहरखां (राजसिंहोत कृपावत) की अध्यक्षता में जोधपुर से तीन सेनाओं का पोकरण पर जाना और साथ में सबलसिंह का भी होना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में आश्विन सुदि १३ (ता० २७ सितंबर) को जोधपुर की सेना का डूंगरसर पर डेरा होना लिखा है (जि० १, पृ० २०१)।

(४) मुंहणोत नैखसी की ख्यात; जि० २, पृ० ३४७-५०।

(५) जि० १, पृ० २०१-३। लक्ष्मीचंद-लिखित “तवारीख जैसलमेर” में लिखा है कि सबलसिंह के दिल्ली से फरमान और सेना लेकर जैसलमेर पहुँचने पर सब सरदारों ने उसे ही योग्य जानकर राज्य देने का वचन दिया और इस सम्बन्ध में उसके पास पत्र लिखा, जो भूल से महाराजा जसवन्तसिंह के हाथ में पड़ गया। तब महाराजा ने सबलसिंह से कहलाया कि अब पोकरण हमें दे दो। सबलसिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही जोधपुर की फौज पोकरण गई। देश में दुराज होने के कारण मदद न पहुँची, जिससे ८४ गांवों सहित पोकरण पर जोधपुर का अमल हो गया (पृ० ५६)।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि पोंकरण पर अधिकार करने के बाद राठोड़ सेना जैसलमेर गई। उसका आगमन सुनते ही भाटी रामचन्द्र भाग गया। तब सबलसिंह को वहाँ के सिंहासन पर बैठाकर उक्त सेना जोधपुर लौट गई^१।

शाहजहाँ के २६ वें राज्यवर्ष (वि० सं० १७०६ = ई० सं० १६५२) में जसवन्तसिंह का मनसब बढ़कर छः हजार ज़ात और पाँच हजार सवार (दो-अस्पा और से-अस्पा) हो गया^२। इसके बाद सन् जुलूस २६ (वि० सं० १७१२ = ई० सं० १६५५) में उसका मनसब छः हजार ज़ात और छः हजार सवार का हो गया। इस अवसर पर उसे महाराजा का खिताब मिला और साथ ही स्वदेश जाने की छुट्टी भी मिली^३।

(आवणादि) वि० सं० १७१३ (चैत्रादि १७१४) वैशाख वदि २ (ई० सं० १६५७ ता० २१ मार्च) को महाराजा की आज्ञानुसार मुंहणोत सुंदरदास (जैमलोत) ने सेना सहित जाकर गांव पांचेठा सिंधलों पर सेना भेजना तथा कवलों के उपद्रवी सिंधलों से लड़ाई कर उनको हराया^४।

वि० सं० १७१४ (ई० सं० १६५७) में बादशाह (शाहजहाँ) रोगग्रस्त हुआ^५।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २०३। “तवारीख जैसलमेर” में इसका उल्लेख नहीं है।

(२) उमराए हनुद; पृ० १५६। “वीरचिनोद” में इसी अवसर पर उसे महाराजा का खिताब मिलना लिखा है (भाग २, पृ० ३४२)।

(३) उमराए हनुद; पृ० १५५। मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहाँनामे” में इस सन् जुलूस में राजा जसवन्तसिंह को केवल इनाम-एकराम मिलना ही लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १०६)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४७-८।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; तीसरा भाग, पृ० १६६। “मुंतख़ुब-

मनुकी' लिखता है—'उसकी बीमारी यहां तक बढ़ी कि सारे दिल्ली नगर में खलबली मच गई। ऐसी अवस्था देखकर बाद-
 बादशाह की बीमारी
 शाह ने क़िले के द्वार बंद करा दिये। मुसलमान अफ़सरीयों पर विश्वास न होने के कारण उसने एक फाटक पर राजा जसवन्तसिंह को और दूसरे पर राजा ग़मसिंह रोटला^२ को रक्खा, जो एक हजार राजपूतों के साथ क़िले की रक्षा करने लगे। उन्हें आज्ञा दी गई कि दारा के अतिरिक्त और किसी को भीतर न आने दें और उसे भी वहां रात को रहने की मनाही थी। बादशाह की पुत्री उसके भोजन की देख-रेख के लिए भीतर रही। इतना प्रबन्ध करने पर भी बादशाह ने क़िले के भीतर रहनेवाले व्यक्तियों से क़सम खिलाती थी कि वे उसके साथ दगा न करेंगे, क्योंकि उसे ज़हर दिये जाने की आशंका बनी रहती थी^३।'

खुबाब" में हि० स० १०६७ ता० ७ जिल्हिज (वि० स० १७१४ भाद्रपद सुदि ६ = ई० स० १६५७ ता० ६ सितम्बर) को शाहजहां का बीमार पड़ना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१३)।

(१) इसका पूरा नाम निकोलाओ मनुकी (Niccolao Manucci) था। संसारभ्रमण की लालसा से यह बहुत छोटी अवस्था में अपनी जन्मभूमि इटली का परित्याग कर भारतवर्ष में आया और बहुत दिनों तक मुग़ल दरबार में रहा, जहां का हाल उसने अपने बृहत् ग्रन्थ "स्टोरिया डो मोगोर" (Storia Do Mogor) में लिखा है।

(२) यह राव मालदेव के पुत्र चन्द्रसेन के पौत्र कर्मसेन का पुत्र था, जो शाहजहां के राज्यकाल में शाही सेवा में प्रविष्ट हुआ और उसकी तरफ़ की कितनी ही चढ़ाईयों में शामिल रहा था। इसका मनसब शुरू में १००० ज़ात और ६०० सवार था, जो क्रमशः बढ़कर ३५०० ज़ात और १००० सवार हो गया। समूगढ़ (समूनगर) की लड़ाई में यह दारा की फ़ौज के साथ था और वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मुराद के तीर से मारा गया, जिसका उल्लेख आगे यथास्थान आयेगा। यह वीर होने के साथ ही दानी भी था। ऐसी प्रसिद्धि है कि यह अकाल के समय लोगों में रोटियां बांटा करता था, जिससे इसका नाम "रोटला" प्रख्यात हो गया (वीरविनोद; भाग २, पृ० ३५५ का टिप्पण्य)।

(३) स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४०-१।

बादशाह की बीमारी का समाचार उसके अन्य पुत्रों के पास पहुँचने पर वे राज्य-प्राप्ति के लिए अलग-अलग सैन्य एकत्र करने लगे। कुछ लोगों ने तो यहां तक अफ़वाह फैला दी थी कि बादशाह का देहान्त हो गया। शाह शुजा ने यह ख़बर पाकर बंगाल से एक विशाल सेना के साथ तुरंत पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। उसने गंगा के मार्ग में नावों का बेड़ा भी डाल दिया, जिसका संचालन पोर्चुगीज़ लोगों के हाथ में था। उसने आगरे होकर चलने का निश्चय किया और यह प्रकट किया कि दारा ने बादशाह को विष देकर मार डाला है, जिसे वह सज़ा देने के लिए जा रहा है। शाह शुजा की बग़ावत का समाचार जब शाहजहाँ को मिला उस समय वह पहले से स्वस्थ हो चला था। उसने अपने अच्छे होने का समाचार शाह शुजा के पास भेजकर उसे वापस जाने का आदेश किया, पर इसी बीच यह ख़बर पाकर कि बादशाह की बीमारी सांघातिक है, शाह शुजा ने वह चिट्ठी दबा ली और आगे बढ़ने लगा। यह ख़बर पाकर शाहजहाँ को, यह प्रकाशित करने के लिए कि वह जीवित है, बाध्य होकर आगरे जाना पड़ा, पर जब इससे आशानुरूप लाभ न हुआ तो उसने दारा के ज्येष्ठ पुत्र सुलतान सुलेमान शिकोह को शाह शुजा के विरुद्ध भेजा। उसके साथ राजा जयसिंह तथा दिलेरखाँ आदि सरदार भेजे गये^१। शाह शुजा इस बीच बनारस तक पहुँच गया था, जहाँ^२ शाही सेना ने पहुँचकर उसे

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहाँनामा” में उसका हवा बदलने के लिए आगरे जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १६५)।

(२) मन्की; स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४१-३। मुंशी देवीप्रसाद-कृत “शाहजहाँनामा” में भी उपर्युक्त व्यक्तियों का शाह शुजा के विरुद्ध भेजा जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १७०-१)।

(३) “आलमगीरनामा” के अनुसार यह लड़ाई गंगा के किनारे के बहानुरपुर नामक गाँव में हुई (इलियट्: हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१२, टि० १)।

हराकर भगा दिया^१। उसका बहुतसा खज़ाना और बहुतसे आदमी शाही सेना के हाथ लगे, जो आगरे लाये गये, जहाँ दारा ने उनमें से कई को मरवा डाला^२। बाद में उसके क्षमाप्रार्थी होने पर बादशाह ने उसकी बंगाल की जागीर उसके नाम बहाल कर दी और सुलेमान शिकोह को लौट आने को लिख दिया^३।

इस बीच बादशाह पूर्ण स्वस्थ हो गया, जिससे उसने दिल्ली लौट जाने की इच्छा प्रकट की, परन्तु दारा ने इसमें ढील डालकर उसका ध्यान मुरादवरुश की बगावत की तरफ़ आकर्षित किया^४। इसके साथ ही उसने उस (बादशाह) को यह भी सुझाया कि औरंगज़ेब कुतुबुलमुल्क से

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा, तीसरा भाग, पृ० १७१। मनुकी लिखता है कि बादशाह के आदेशानुसार पहले राजा जयसिंह ने शाह शुजा को पत्र भेजकर समझाने की चेष्टा की, पर इसका कोई परिणाम न हुआ। शाह शुजा ने शाही सेना पर धोखे से वार करने के लिए यह प्रकट किया कि राजा के लौटने पर मैं भी लौट पाऊंगा। जयसिंह उसकी मंशा समझ गया। उसने प्रकट रूप से तो सेना को लौटने का आदेश दिया पर भीतर ही भीतर उसे युद्ध के लिए तैयार रहने को चेतावनी दे दी, जिससे शाह शुजा के पीछे से हमला करते ही उसने उसे परास्त कर दिया (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४३-७)। “मुंतख़बुल्लुबाब” से पाया जाता है कि जयसिंह ने शुजा पर उस समय आक्रमण किया जब वह शराव के नशे में चूर पड़ा था, जिससे भागने के अतिरिक्त उसके पास दूसरा उपाय न रह गया (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१५)।

(२) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१५। मनुकी-कृत “स्टोरिया डो मोगोर” में भी ऐसा ही उल्लेख है (जि० २, पृ० २४५)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; तीसरा भाग, पृ० १७१।

(४) “मुंतख़बुल्लुबाब” से पाया जाता है कि उसने अपने नाम का खुर्बा पदवाकर अपने सिक्के तक जारी कर दिये थे। इसके साथ ही उसने सूरत के गढ़ पर क़ब्ज़ा करके वहाँ के ध्यौपारियों से रुपये भी वसूल किये थे (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१५-७)।

प्राप्त पेशकशी के रुपये लेकर युद्ध की तैयारी में खर्च कर रहा है और स्वास्थ्य का समाचार लेने के बहाने सैन्य-सहित इधर आया चाहता है, अतएव उचित तो यह है कि उसके पास से खज़ाना और सेना वापिस मंगवाली जाय^१ । अनिच्छा होते हुए भी बादशाह को दारा की बात माननी पड़ी । सैन्य वापिस करने का हुक्म औरंगज़ेब के पास उस समय पहुँचा, जब वह बीजापुर विजय करने के लिए प्रस्थान करनेवाला था । औरंगज़ेब ने इस अवसर पर लौटनेवाले कई सरदारों को पकड़कर दौलताबाद के क़िल्ले में कैद कर दिया । यह ख़बर लगने पर बादशाह ने उसे तथा विद्रोही मुराद दोनों को चेतावनी के पत्र लिखे, पर उन्होंने उनपर ध्यान न दिया । इसपर शाह बुलन्द इक़्बाल (शाहज़ादे) ने कह-सुनकर महाराजा जसवन्तसिंह को उसका मनसब ७००० ज़ात और ७००० सवार का करा तथा एक लाख रुपये और मालवे की सूबेदारी दिलाकर बड़ी सेना के साथ फाल्गुन वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १५ फ़रवरी) को औरंगज़ेब के विरुद्ध रवाना किया^२ । इसके एक सप्ताह बाद ही एक लाख रुपये और अहमदाबाद की सूबेदारी देकर क़ासिमख़ां गुजरात की तरफ़ भेजा गया तथा उसे यह आज्ञा दी गई कि वह उज्जैन में जसवन्तसिंह के शामिल हो जाय^३ ।

दोनों शाही सेनाओं के उज्जैन पहुँचने पर मुरादबख़्श उनसे लड़ने

(१) मनुकी लिखता है कि औरंगज़ेब को बादशाह की बीमारी का समाचार औरंगाबाद में प्राप्त हुआ, जहाँ वह गुप्त रूप से अपनी तैयारियाँ करने लगा । फिर उसने शिवाजी को दक्षिण के कुछ भाग में चौथ लेने का अधिकार देकर उससे अपने विरुद्ध आचरण न करने का वचन ले लिया और अपने पिता का खुल्लमखुल्ला विरोधी बन गया । बादशाह को उसकी बगावत का समाचार उस समय मिला, जब वह दिल्ली को लौटनेवाला था, पर इस नई बात के पैदा हो जाने से उसे वहीं ठहर जाना पड़ा (जि० १, पृ० २४६-७) ।

(२) डा० बेणीप्रसाद-कृत “हिस्ट्री ऑफ़ शाहजहाँ” में भी जसवन्तसिंह के औरंगज़ेब के विरुद्ध भेजे जाने का उल्लेख है (पृ० ३२८) ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहाँनामा; तीसरा भाग, पृ० १७२-४ । उमराए हनुद; पृ० १५५ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४४ ।

के लिए आया, पर अकेले उस बड़ी सेना का सामना करना आसान कार्य न था^१। इसी बीच उसके पास औरंगजेब के जसवन्तसिंह की पराजय चिकने-चुपड़े पत्र पहुंचे, जिनमें उसने अपनी साधुता दिखलाते हुए मुरादबख्श को पूरी-पूरी सहायता पहुंचाने का पक्का वादा किया था^२। उनको पाकर उस (मुरादबख्श) का विश्वास अपने भाई पर जम गया और वह अपनी सेना सहित औरंगजेब से जा मिला^३, जो अपनी फौज के साथ बादशाह की मिर्जाजपुरी के वहाने से जा रहा था^४।

(१) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; तीसरा भाग, पृ० १७५।

(२) मुंतख़वुल्लुबाब—इलियट्: हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१७-८।
मनूकी; स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २४७-८।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों में दिये हुए पत्रों में कुछ अन्तर है, पर आशय दोनों का एकसा ही है। “मुंतख़वुल्लुबाब” में केवल एक पत्र दिया है पर “स्टोरिया डो मोगोर” से प्रकट होता है कि मुराद के शामिल होने तक औरंगजेब ने कई पत्र उसके पास भेजे थे (जि० १, पृ० २४२-३)।

(३) मनूकी के “स्टोरिया डो मोगोर” से पाया जाता है कि शहबाज़ नाम के मुराद के सेवक ने औरंगजेब की कुटिलचाल से उसे सावधान रहने और उसके शामिल न होने के लिए बहुत समझाया, पर मुराद राज्य-लोभ में अंधा हो रहा था; अतएव उसने उस (शहबाज़) की बातों पर ज़रा भी ध्यान न दिया और मांडू में औरंगजेब की सेना के शामिल हो गया। इसके बाद एक बार तो शहबाज़ औरंगजेब को मारने के लिए भी कटिबद्ध हो गया था, पर अपने मालिक की मरज़ी न देख उसे अपने मन्सूबे से विरत होना पड़ा (जि० १, पृ० २५३ तथा २६१)।

“वीरविनोद” से पाया जाता है कि औरंगजेब ने धोखा देने के लिए मुरादबख्श को बहकाया कि मुझे बादशाहत की ज़रूरत नहीं है। दारा जो काफ़िर है वह मज़हब ख़राब कर देगा और शुजा भी राफ़िज़ी (शिथी) है, इसलिए तुमको बादशाही के लायक जानकर तत्पक्ष पर बिठाने के बाद मैं खुदा की इबादत में रहूंगा। इस क्रूरब से वह कम अज़ा (मुराद) बिल्कुल अपने को बादशाह समझने लगा। औरंगजेब भी उसको हज़रत (बादशाह) कहकर अब्दब से पुकारने लगा (भाग १, पृ० ३४५)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहानामा; तीसरा भाग, पृ० १७५।

“मुंतख़बुल्लुबाब” में लिखा है—‘हि० सं० १०६८ ता० २५ जमादि-उल्-अव्वल (वि० सं० १७१४ फाल्गुन वदि १२ = ई० सं० १६५८ ता० १६ फ़रवरी) को औरंगज़ेब बुरहानपुर पहुंचा और वहां एक मास तक प्रबन्ध करने और ठीक-ठीक ख़बरें जानने में लगा रहा । ता० २५ जमादिउस्सानी (चैत्र वदि १३ = ता० २१ मार्च) को वह राजधानी की ओर अग्रसर हुआ । जसवन्तसिंह को दोनों भाइयों की सेना के आगमन का उस समय पता लगा जब वह उज्जैन से सात कोस की दूरी पर आ पहुंची और मांडू के राजा शिवराज ने अकबरपुर के क़िले से उनके गुज़रने की ख़बर महाराजा के पास भेजी । क़ासिमख़ां शाहज़ादे मुराद के अहमदाबाद छोड़ने की ख़बर पाकर उधर गया था, पर जब उसके औरंगज़ेब से मिल जाने का समाचार उसे मिला तो वह निराश होकर लौट आया । इसी बीच धार में रक्खे हुए दाराशिकोह के आदमी भी दोनों शाहज़ादों को रोकने में अपने को असमर्थ पाकर भाग आये और महाराजा की सेना के शामिल हो गये । तदनन्तर क़ासिमख़ां के साथ जसवन्तसिंह ने आगे बढ़कर शाहज़ादे औरंगज़ेब की सेना से डेढ़ कोस की दूरी पर डेरा किया । दोनों विपक्षी सेनाओं के डेरे धर्मात नामक स्थान में हुए थे । औरंगज़ेब ने अपना मनुष्य भेजकर महाराजा से मार्ग छोड़ देने के लिए कहलाया^१, परन्तु जब उसने इसपर कुछ ध्यान न दिया तो ता० २२ रजब (वि० सं० १७१५ वैशाख वदि ६ = ई० सं० १६५८ ता० १६ अप्रैल) को दोनों दलों में युद्ध हुआ^२ ।’

इस अवसर पर शाहज़ादे औरंगज़ेब की सेना के हरावल में उसका बेटा शुजाअख़ां, सैयद मुज़फ़्फ़रख़ां, लोदीख़ां बाग़हा, सैयद नसीरुद्दीन

(१) मनुकी-कृत “स्टोरिया डो मोगोर” से पाया जाता है कि बादशाह की आज्ञानुसार प्रस्थान करने के बाद महाराजा ने कई पत्र औरंगज़ेब को लिखे थे, पर उसने एक का भी उत्तर न दिया (जि० १, पृ० २५८) ।

(२) इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१८-१ । उमराए हनुद; पृ० १५६ । “आलमगीरनामे” में यह युद्ध धर्मातपुर के पास होना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २१६, टि० १) ।

दक्षिणी, मीर अबुलफ़ज़ल आदि थे और सहायक सेना में जुलिकारखां कुछ तोपखाना तथा मुहम्मद सुलतान था, जिसके साथ निजाबतखां, बहादुरखां आदि थे। प्रधान तोपखाने का अफ़सर मुर्शिदकुलीखां था, जिसके अधीन कई फ़रांसीसी भी काम करते थे। दाहिनी तरफ़ शाहज़ादा मुराद अपनी सेना सहित तैयार था। बाईं तरफ़ की फ़ौज का अफ़सर शाहज़ादा मुहम्मद आज़म था, जिसके साथ कई मुसलमान अफ़सरों के अतिरिक्त राजा इन्द्रमणि धन्धेरा, कर्णसिंह कच्छी, राजा सारंगधर आदि भी थे। स्वयं औरंगज़ेब के पास दाहिनी तरफ़ शेख़ मीर आदि मुसलमान अफ़सरों के अतिरिक्त बीकानेर के राव कर्णसिंह के दो पुत्र केशरीसिंह एवं पद्मसिंह, रघुनाथसिंह राठोड़ आदि तथा बाईं तरफ़ सफ़शिकनखां, जादवराय, बाबाजी घोंसला (भोंसला), वीतूजी, जसवन्तराव आदि थे। बीच में स्वयं औरंगज़ेब था, जिसके पास बूंदी के राव शत्रुशाल हाड़ा का पुत्र भगवन्तसिंह तथा शुभकर्ण बुन्देला आदि थे^१।

महाराजा जसवन्तसिंह के साथ की शाही सेना में हरावल की फ़ौज का अफ़सर क़ासिमखां था, जिसके साथ मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजा सुजानसिंह बुन्देला, अमरसिंह चन्द्रावत (रामपुरा), राजा रत्नसिंह राठोड़ (रतलाम), अर्जुन गौड़, दयालदास भाला, मोहनसिंह हाड़ा आदि थे। इनके आगे बहादुर बेग़ फ़ौजबख़्शी और तोपखाने के दारोगा रखे गये, जिनके साथ जानीबेग़ वगैरह थे। गिर्दावरी पर मुख़लिसखां आदि और सहायक सेना में महशेदास गौड़, गोवर्द्धन राठोड़ आदि थे। स्वयं महाराजा जसवन्तसिंह चुने हुए दो हज़ार राजपूतों सहित बीचमें था, जिनमें भीमसिंह गौड़ (राजा बिठ्ठलदास का पुत्र) आदि थे। दाहिनी तरफ़ राजा रायसिंह (टोड़ा, जयपुर राज्य) तथा सुजानसिंह सीसोदिया (शाहपुरा) अपने भाइयों एवं अन्य वीर राजपूतों सहित थे; बाईं तरफ़ की सेना में इम्तिख़ारखां एवं शेरखां बारहा आदि थे और डेरों की देख-रेख़ का कार्य मालूजी, पर्सूजी

तथा राजा देवीसिंह बुंदेला के सुपुर्द था^१ ।

युद्ध प्रारम्भ होने पर औरंगज़ेब ने अपना तोपखाना नदी के किनारे रखकर दूसरी फ़ौज को तोपखाने की सहायता से नदी उतरने की आज्ञा दी। ऐसा ही किया गया, परन्तु बादशाही फ़ौज के तोपखाने ने इस फ़ौज का आगे बढ़ना रोक दिया। इस लड़ाई में कासिमखां की फ़ौज के मुकुन्दसिंह हाड़ा, राजा रत्नसिंह राठोड़, दयालदास भाला, अर्जुन गौड़ आदि वीर राजपूतों ने बढ़कर औरंगज़ेब के तोपखाने पर आक्रमण किया और उसके कितने ही अफ़सरों को ज़ख्मी कर दिया। जसवन्तसिंह की शाही फ़ौज के राजपूत सरदारों ने आगे बढ़कर औरंगज़ेब के हरावल पर हमला किया। पीछे से दूसरे राजपूत भी उसकी सहायता को पहुंच गये। यह लड़ाई बड़ी भयंकर हुई। औरंगज़ेब के पुत्रों आदि ने अपनी-अपनी सेना के साथ दाहिनी और बाईं तरफ़ के राजपूतों पर आक्रमण किया। स्वयं औरंगज़ेब ने भी अपने सैनिकों के साथ प्रबल वेग से हमला किया। इसका फल यह हुआ कि जसवन्तसिंह की फ़ौज के मुकुन्दसिंह हाड़ा, सुजानसिंह सीसोदिया, राजसिंह राठोड़, अर्जुन गौड़, दयालदास भाला, मोहनसिंह हाड़ा आदि अपने हज़ारों राजपूतों सहित औरंगज़ेब की सेना के बहुत से आदमियों को मारकर मारे गये^२। शत्रुदल की शक्ति बढ़ती हुई देखकर राजा रायसिंह (सीसोदिया, टोड़े का), राजा सुजानसिंह (बुन्देला) और अमरसिंह चन्द्रावत (रामपुरा) अपने साथियों सहित भाग निकले। शाहज़ादा मुराद लड़ता हुआ जसवन्तसिंह के डेरों के पीछे जा पहुंचा^३।

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४६-७ ।

(२) मुंशी देवीप्रसाद-लिखित “शाहजहानामा” नामक पुस्तक में भी मुकुन्दसिंह हाड़ा और अर्जुन गौड़ का फ़ौज को चीरते हुए शाहज़ादे तक पहुंचना, पर शत्रुसंख्या अधिक होने के कारण वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारा जाना लिखा है (तीसरा भाग, पृ० १७६) ।

(३) “स्टोरिया डो मोगोर” से पाया जाता है कि मुरादबख़्श ने नदी में फंसकर महाराजा पर आक्रमण किया था (मनकी-क़त; जि० १, पृ० २५६) ।

वहाँ पर नियुक्त मालू व परखू आदि रक्षकों ने कुछ समय तक तो उसका सामना किया, पर अंत में उन्हें भी जान बचाकर भागना पड़ा। मुराद के सम्मुख पहुँचने पर जसवन्तसिंह की फौज के इम्तेखारखां आदि लड़कर मारे गये। तदनन्तर औरंगज़ेब और मुराद की सेना ने चारों तरफ़ से घेरकर शाही सेना पर हमला किया। शाही सेना के बहुतेसे प्रमुख सरदार तो पहले ही मारे जा चुके थे, अब अधिकांश भाग निकले, जिससे जसवन्तसिंह के राजपूतों को ही शत्रु-सेना का मुकाबला करना पड़ा।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि क़ासिमखां पहले ही औरंगज़ेब से मिलकर भाग गया था। बचे हुए राजपूतों के साथ जसवन्तसिंह वीरतापूर्वक लड़ता हुआ औरंगज़ेब के पास तक पहुँच गया, पर इसी

(१) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४७-८।

(२) मुंशी देवीप्रसाद के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंह तथा क़ासिमखां दोनों दो तरफ़ के दबाव से घबराकर भाग निकले (शाहजहाँनामा; तीसरा भाग, पृ० १७६)। अन्य फ़ारसी तवारीख़ों में भी प्रायः ऐसा ही लिखा मिलता है। “रटोरिया डो मोगोर” से पाया जाता है कि क़ासिमखां की इच्छा औरंगज़ेब के खिलाफ़ जाने की न थी, पर शाहजहाँ को प्रसन्न करने के लिए उसे ऐसा करना ही पड़ा। फिर औरंगज़ेब की सेना से युद्ध होने पर उसने अपनी सेना का बारूद आदि सामान छिपाकर रख दिया और कुछ गोलियाँ हवा में छोड़कर वह रणक्षेत्र से चला गया (मनूकी-कृत; जि० १, पृ० २५८ और २५९)। जोधपुर राज्य की ख्यात (जि० १, पृ० २०६) और वीरविनोद (भाग २, पृ० ८२४) में भी उसका औरंगज़ेब से मिल जाना लिखा है।

बर्नियर, जो एक फ़्रांसीसी यात्री था और ई० स० १६२९ के लगभग भारत-वर्ष में आया था, अपनी पुस्तक में लिखता है कि मैं इस लड़ाई के समय स्वयं उपस्थित न था, पर हरएक दर्शक तथा प्रधानतया औरंगज़ेब के तोपखाने के फ़्रांसीसी अफ़सरों का यही मत था कि क़ासिमखां एवं जसवन्तसिंह आसानी से औरंगज़ेब पर विजय पा सकते थे। जसवन्तसिंह ने इस लड़ाई में अद्भुत वीरता का परिचय दिया, पर क़ासिमखां ने, यद्यपि वह अपनी ख्याति के अनुरूप ही वीर था, इस अवसर पर किसी प्रकार के रणकौशल का परिचय न दिया। उसपर विश्वासघात का भी सन्देह किया गया। लोगों का कहना था कि युद्ध के पूर्व की रात्रि को वह अपना लड़ाई का सामान (बारूद आदि) रेत में छिपाकर चला गया [देवेन्द्र हन दि हज़ल एम्पायर - ए० कान्टेबल-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद (ई० स० १९१६ की द्वितीय आवृत्ति); पृ० ३८-९]।

धींच वह स्वयं घायल हो गया और उसका घोड़ा भी आहत होकर गिर पड़ा। तब वह दूसरे घोड़े पर सवार होकर लड़ने लगा, पर शाहज़ादों की शक्ति अधिक होने से शाही सेना के पैर उखड़ गये। ऐसी परिस्थिति देखकर जसवन्तसिंह के साथ के राजपूत बलपूर्वक उसके घोड़े की बाग पकड़कर उसे युद्धक्षेत्र से बाहर निकाल ले गये^१। इस लड़ाई में शाही सेना के हज़ारों वीर राजपूत काम आये^२। इस विजय की स्मृति में धर्मातपुर का नाम “फ़तहआबाद” (फ़तियाबाद) रक्खा गया। विजयप्राप्ति के बाद औरंगज़ेब और मुराद उज्जैन गये^३, जहां से ता० २७ रज्जब (वैशाख वदि ३० = ता० २२ अप्रैल) को वे ग्वालियर गये। वहां पहुंचकर उन्होंने युद्ध की तैयारी आरंभ की^४।

युद्धक्षेत्र का परित्याग कर महाराजा अपने अवशिष्ट साथियों के साथ (आवणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) वैशाख सुदि १

(१) जि० १, पृ० २०७। मनुकी लिखता है—‘औरंगज़ेब की सेना के नदी के दूसरी ओर पहुंचते ही महाराजा के साथ के लोगों ने उसे युद्धक्षेत्र छोड़कर हट जाने के लिए कहा, क्योंकि वह जीवित रहकर फिर भी लड़ाई में भाग ले सकता था। इस सलाह के अनुसार अनिच्छा होने हुए भी उसे ५०० सवारों के साथ रणक्षेत्र छोड़ना पड़ा (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २५६-६०)।’

जदुनाथ सरकार ने भी शाहज़ादे औरंगज़ेब के साथ की महाराजा जसवन्तसिंह की लड़ाई का सारा वर्णन ऊपर जैसा ही दिया है (शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; पृ० ६०-६३)।

(२) बर्नियर आठ हज़ार राजपूतों में से केवल छः सौ का बचना लिखता है (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ३६)। फ़ारसी तबारीख़ों में छः हज़ार राजपूतों का मारा जाना लिखा है। सरकार ने भी यही संख्या दी है (शॉर्ट हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; पृ० ६३)।

(३) मुंशी देवीप्रसाद के “शाहजहानामे” में लिखा है कि शाही सेना के भागने पर औरंगज़ेब की सेना ने चार-पांच कोस तक उसका पीछा किया। फिर उज्जैन होते हुए उसने अपनी सेना और मुराद के साथ आगरे की ओर प्रस्थान किया (तीसरा भाग, पृ० १७६)।

(४) वीरविनोद; भाग २, पृ० ३४८-६।

(ई० स० १६५६ ता० १२ अप्रेल) को सोजत पहुंचा ।
जसवन्तसिंह का जोधपुर जाना
यहां चार-पांच दिन ठहरकर वह जोधपुर गया ।

(१) “वीरविनोद” से पाया जाता है कि महाराजा के जोधपुर पहुंचने पर उसकी राणी बूंदी के राव शत्रुसाल की पुत्री ने किले के द्वार बन्द करा महाराजा को अन्दर न आने दिया। उसने कहा कि मेरा पति लड़ाई से भागकर कभी नहीं आता। यह कोई और व्यक्ति है; अतएव चिन्ता तैयार कराओ और मेरे सती होने का प्रबन्ध करो। बाद में बहुत समझाने बुझाने पर कि महाराजा नई सेना एकत्र कर फिर औरंगजेब से लड़ेगा, राणी ने गढ़ के द्वार खोले (भाग २, पृ० ८२४)। बर्नियर (ट्रैवेल्स इन दि मुगल एम्पायर; पृ० ४०-१) और मन्की (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० २६०-६१) ने बूंदी की राणी के स्थान में उदैपुरी राणी लिखा है। “उमराण हनुद” (पृ० १५७) में भी यही लिखा मिलता है, जो ठीक नहीं है।

जोधपुर राज्य की ख्यात में न तो इस घटना का उल्लेख है और न उसमें उसकी किसी उदयपुर की राणी का नाम ही मिलता है। जसवन्तसिंह की एक राणी बूंदी की थी। बूंदी की नाहर भोंस की बावड़ी के वि० सं० १७२१ वैशाख वदि १ (ई० स० १६६४ ता० १ अप्रेल) के लेख से पाया जाता है कि बूंदी के दीवान (स्वामी) राव शत्रुसाल की सीमोदणी राणी राजकुंवरी ने, जो देवलिया के रावन बिहा की पुत्री थी, यह बावड़ी और बाग बनवाया। उक्त राणी (राजकुंवरी) की पुत्री कामेतीवाई हुई, जिसका विवाह जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह के साथ हुआ था (मूल लेख की छाप से)।

जोधपुर राज्य की ख्यात में जसवन्तसिंह की बूंदी की राणी का पिता के घर का नाम रामकंवर दिया है, जो ठीक नहीं माना जा सकता।

कविराजा श्यामलदास कृत “वीरविनोद” के अनुसार ऊपर आई हुई घटना बूंदी की राणी से संबंध रखती है। जसवन्तसिंह की एक राणी बूंदी की अवश्य थी, जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, पर उसने महाराजा का ऊपर लिखे अनुसार स्वागत किया हो, इसमें संदेह है। ऐसी कई दंत कथाएं पुस्तकों में लिखी मिलती हैं। आगे चलकर स्वयं मन्की लिखता है—“कई साल बाद बादशाह औरंगजेब के बीच में पड़ने से महाराजा जसवन्तसिंह और उसकी राणी में मेल हो गया, पर राणी के मन की भावना में परिवर्तन न हुआ। एक बार जब महाराजा खरबूजा खाने के लिए बैठा तो दासी ने एक चाकू भी साथ में लाकर रख दिया। यह देखकर राणी ने दासी को पीटते हुए कहा—“क्या तुझे पता नहीं कि मेरा पति इतना साहसी है कि लोहा देखते ही बेहोश हो जाता है।” उसका ऐसा आचरण अपने जीवन के अन्त तक बना रहा (स्टोरिया डो मोगोर;

युद्ध के मध्य से चले आने का ध्यान उसके दिल में बहुत समय तक बना रहा' ।

इस बीच बादशाह ने स्वास्थ्य में विशेष अन्तर पड़ने के कारण दिल्ली की ओर प्रस्थान कर दिया था । मार्ग में महाराजा की पराजय का समाचार उसके पास पहुँचा । दाराशिकोह ने जब औरंगजेब का दारा को इराना इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा-सुना तो बादशाह को फिर आगरे लौटना पड़ा^१, जहाँ से उसने बहुत कुछ इनाम-इकराम देकर शाहज्जादे (दारा) को एक बड़ी सेना^२ के साथ औरंगजेब के विरुद्ध भेजा । उसी समय बेगम ने भी एक पत्र औरंगजेब के पास भिजवाकर उसे समझाने की चेष्टा की, पर उसने उसपर विशेष ध्यान न दिया और उत्तर भिजवाकर वह लड़ने के वास्ते आगे बढ़ता ही गया^३ । कहते हैं कि बादशाह स्वयं अपने विद्रोही पुत्रों के खिलाफ जाना चाहता था, परन्तु दारा और खानजहाँ शाहस्ताखा^४ के कटने के कारण उसको रुकना पड़ा । हि० स० १०६८ ता० १६ शवान (वि० सं० १७१५ ज्येष्ठ वदि ४ = ई० स० १६५८

जि० १, पृ० २६१-२) ।^१ “वी।विनोद” में यह कथा दूसरे प्रकार से दी है (भाग २, पृ० ८२५), पर आशय उसका भी यही है ।

उक्त इतिहास-लेखकों ने सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपने ग्रन्थों में इन बातों को स्थान दे दिया है, जिनपर विश्वास नहीं किया जा सकता ।

(१) जोधपुर राज्य की रणायत, जि० १, पृ० २२५ ।

(२) मुंतावुल्लुबाब—इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २१३ ।

(३) जोधपुर राज्य की रणायत में ८०००० सेना के साथ दारा का भेजा जाना लिखा है (जि० १, पृ० २२५), जो विश्वास के योग्य नहीं है ।

(४) संशी देवीरसाद; शाहजहाँनामा; तीसरा भाग, पृ० १७६-८० ।

(५) “मुंतावुल्लुबाब” में लिखा है कि शाहस्ताखा औरंगजेब का मामा लगता था, और उसका ही पत्नपाती था, इसलिए वह बादशाह को स्वयं उसके खिलाफ जाने न देना चाहता था । एकबार बादशाह ने इसकी खोदी बन्द करवा दी थी, पर पीछे से दयालु-हृदय होने के कारण उसने इसे माफ़ कर दिया (इलियट; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २२०) ।

ता० १० मई) को दारा ने खलीलुल्लाख़ां' आदि को थोड़ी सेना के साथ धौलपुर भेजा। वह स्वयं अपने ज्येष्ठ पुत्र सुलेमान शिकोह के आगमन की प्रतीक्षा में आगरे में ही ठहर गया, पर जब उसके आने में उसने विलम्ब देखा तो उसे लाचार होकर प्रस्थान करना ही पड़ा। ता० ६ रमज़ान (ज्येष्ठ सुदि ७ = ता० २६ मई) को समूगढ़ के निकट आधकोस के अन्तर पर विरोधी सेनाओं के डेरे हुए। पहले भेजी हुई सेना से कुछ भी प्रबन्ध न हो सका था, अतएव समूगढ़ पहुंचने के दूसरे दिन ही दारा ने अपनी सेना को युद्ध के लिए सुसज्जित किया। औरंगज़ेब भी सम्मुख आया, पर स्वयं युद्ध आरंभ करने में लाभ की संभावना न देखकर वह विरोधी दल के आक्रमण की राह देखने लगा। दूसरे दिन युद्ध आरंभ हुआ। दारा की सेना ने इतना भीषण आक्रमण किया कि औरंगज़ेब की सेना में खलबली मच गई, पर ठीक समय पर सहायता पहुंच जाने से स्थिति फिर बदल गई। शाही सेना के राजा रूपसिंह राठोड़, शत्रुसाल दाड़ा, रामसिंह^३ आदि राजपूतों ने बड़ी वीरता बतलाई और युद्ध में प्राण

(१) इसका विताव उमदतुलमुल्क था और यह असालतख़ां मीरबख़शी का भाई था। औरंगज़ेब के प्रथम राज्यवर्ष (वि० सं० १७१५-६ = ई० स० १६५८-९) में यह छः हज़ारी मनसबदार बना दिया गया। हि० स० १०७२ ता० २ रजब वि० सं० १७१८ फाल्गुन सुदि ४ = ई० स० १६६२ ता० १२ फ़रवरी) को इसकी मृत्यु हुई।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात में दारा का धौलपुर जाना और वहां से औरंगज़ेब के सीधे आगरे जाने की खबर पाकर, उसके पीछे जाकर (श्रावणादि) वि० सं० १७१४ (चैत्रदि १७१५) ज्येष्ठ सुदि ६ (ई० स० १६५८ ता० ३० मई) को आगरे के निकट उससे युद्ध करना लिखा है (जि० १, पृ० २२५)।

(३) रामसिंह की वीरता के विषय में बर्नियर लिखता है—'उसने मुराद-बख़्श के साथ लड़कर अच्छी वीरता दिखलाई। उसने शाहज़ादे को अपने हमले से धायल कर दिया और निकट पहुंचकर वह हाथी के बंधी हुई रस्सियां काटकर शाहज़ादे को गिरानेवाला ही था कि उसने एक तीर ऐसा मारा, जिससे वहीं रामसिंह की मृत्यु हो गई (ट्रेवैल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ५१-२)।'

गंवाये। यह सब देखकर दारा विचलित हो उठा। इसी समय उसके हाथी के दौड़े पर एक गोला आकर गिरा, जिससे वह फौरन हाथी से नीचे उतर बिना हथियार लिये घोड़े पर सवार हो गया। उसे न देखकर उसके साथी भाग निकले, जिससे बाध्य होकर दारा को भी भागना पड़ा। वहां से वह आगरे गया, जहां एक पहर ठहरकर वह दिल्ली के मार्ग से लाहोर की तरफ चला गया^१।

इसके तीसरे दिन औरंगज़ेब आगरे पहुंचा^२ और नूर महल बाग में ठहरा। उस समय पदवृद्धि के लालायित सरदार बादशाह का साथ

छोड़कर उसकी सेवा में उपस्थित हो गये। बादशाह

पिता को नज़र कैद कर
औरंगज़ेब का गद्दी बैठना

ने पहले तो उसके पास चिट्ठियां भेजीं, पर जब उनका कोई परिणाम न निकला और उसे विश्वास

हो गया कि औरंगज़ेब की नियत साफ़ नहीं है तो उसने क़िले के फाटक बन्द करवाकर वहां अपने आदमी नियुक्त कर दिये। औरंगज़ेब ने यह देखकर रात को क़िले को घेर लिया और उसपर तोपों का हमला किया। फलस्वरूप एक ही रात के घेरे से क़िले के भीतरवाले घबरा गये और प्रायः सभी औरंगज़ेब से मिल गये। फिर तो औरंगज़ेब ने फरब से पिता से क़िले की कुंजिया हस्तगत कर लीं^३ और उसे नज़र कैद कर क़िले के प्रत्येक स्थान में अपने आदमी रख दिये^४। उसी समय से राज्य में

(१) मुंतवुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२०-२५। मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १८०-८१।

(२) “मुंतवुल्लुबाब” में दारा पर विजय प्राप्त करने के बाद ही औरंगज़ेब का शाहजहां के पास एक ख़त भेजना लिखा है, जिसमें उसने युद्ध आदि का ईश्वर की मज़ी से होना लिखा था (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २२५)।

(३) औरंगज़ेब ने अपने पिता से यह कहलाया कि यदि आप मुझे क़िले की कुंजियां सौंप दें तो मैं आपकी सेवा में उपस्थित होकर अपने गुनाहों की माफ़ी मांग लूं (मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग; पृ० १८५-६)।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहांनामा; तीसरा भाग, पृ० १८१-६। जदुनाथ सरकार; शॉर्ट हिस्ट्री ऑव् औरंगज़ेब; पृ० ७३।

औरंगज़ेब की आज्ञा प्रचारित हो गई। फिर बादशाह ने दाराशिकोह के पीछे प्रस्थान किया, जो उन दिनों लाहौर में धन और सेना एकत्र करने में लगा था। मार्ग में हि० सं० १०६८ ता० १ ज़िल्काद (वि० सं० १७१५ श्रावण सुदि २ = ई० सं० १६५८ ता० २२ जुलाई) को तफ़्तनशीनी का उत्सव कर उसने साथ के अमीरों को इनाम-इकराम दिये^१।

उसी वर्ष महाराजा जसवन्तसिंह औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुआ^२। “मुंतख़बुल्लुबाब” में लिखा है कि पहले उसने एक पत्र अपने वकीलों के द्वारा भिजवाकर बादशाह की माफ़ी चाही, जिसके मंज़ूर होने पर वह दरबार में गया, जहाँ उसका मनसब बढ़ाकर उसे बहुतसी वस्तुएं भेंट में दी गई^३।

जसवन्तसिंह का औरंगज़ेब की सेवा में जाना

इस सम्बन्ध में जोधपुर राज्य की ख्यात में कुछ भिन्न वर्णन मिलता है, जिसका सारांश नीचे लिखे अनुसार है—

‘आगरे पहुँचकर औरंगज़ेब ने महाराजा जसवन्तसिंह के पास उसे अपने सैनिकों सहित आने के लिए फ़रमान भेजा, जिसके साथ उसने सांभर के खज़ाने से उस (जसवन्तसिंह) को पाँच लाख रुपये दिलाये। इसके अतिरिक्त उसने पाँच हज़ार की हुंडिया भी उसके पास भेजी। तब अपने आदमियों को एकत्र कर (श्रावणादि) वि० सं० १७१४ (चैत्रादि

(१) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३४-५। मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २२९।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३५। “उमराए हन्द” से पाया जाता है कि महाराजा जसवन्तसिंह मिर्ज़ा राजा जयसिंह की मारक़त औरंगज़ेब की सेवा में गया (पृ० १५८)।

(३) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २३१।

“वीरविनोद” से भी पाया जाता है कि दारा का पीड़ा करना छोड़कर लाहौर से लौटने पर औरंगज़ेब ने जोधपुर के राजा जसवन्तसिंह को आभूषण हयादि तथा दो-लाख पचास हज़ार की जागीर दी (भाग २, पृ० ६८५)।

१७१५) ज्येष्ठ वदि ८ (ई० स० १६५८ ता० १४ मई) को उसने जोधपुर से प्रस्थान किया। ज्येष्ठ सुदि ११ (ता० १ जून) को वह पुष्कर पहुंचा, जहां से चलकर तीसरे दिन वह अजमेर पहुंचा। वहां वह चालीस दिन तक ठहरा रहा और वहीं रहते समय उसने फ़रासत के हाथ से राज्य-कार्य लेकर मुंहणोत नैणसी' के सिपुर्द किया। फिर वहां से प्रस्थानकर वह

(१) मुंहणोत नैणसी का जन्म वि० सं० १६६७ मार्गशीर्ष सुदि ४ (ई० स० १६१० ता० ६ नवंबर) शुक्रवार को हुआ था। उसका पिता जयमल जसवन्तसिंह के पिता गजसिंह के समय में राज्य का विश्वासपात्र सेवक था। वह राज्य का दीवान और पीछे से क्रमशः जालोर एवं नागौर का शासक रहा था। मुंहणोत नैणसी भी प्रारम्भ से ही राज्य की सेवा में प्रविष्ट हुआ और उसने समय-समय पर राज्य के विद्रोही सरदारों का दमन करने में अच्छी बहादुरी दिखलाई, जिसका उल्लेख उपर यथास्थान आ गया है। वह जैसा वीर-प्रकृति का पुरुष था, वैसा ही विद्यानुरागी, इतिहास-प्रेमी और वीर-कथाओं से अनुराग रखनेवाला नीतिनिपुण व्यक्ति था। राज्य-कार्य में भाग लेना आरम्भ करने के साथ ही उसने इतिहास-सामग्री एकत्रित करना शुरू कर दिया था। उसका लिखा हुआ बृहत् ऐतिहासिक ग्रंथ 'रयात' के नाम से प्रसिद्ध है, जो अब काशी की नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा दो खण्डों में हिन्दी भाषा में प्रकाशित हो गया है। यह ग्रन्थ राजपूताना, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, बघेलखंड, बुंदेलखंड और मध्यभारत के इतिहास के लिए विशेषरूप से उपयोगी है। राजपूताने के विभिन्न राज्यों की प्राप्त ख्यातों आदि से अधिक प्राचीन होने के कारण मुंहणोत नैणसी का यह ग्रन्थ इतिहास के लिए बड़ा महत्व रखता है। वि० सं० १३०० के बाद से नैणसी के समय तक के राजपूतों के इतिहास के लिए तो मुसलमानों की लिखी हुई फ़ारसी तबारीखों से भी नैणसी की रयात का मूल्य अधिक है। राजपूताने के इतिहास में कई जगह जहां प्राचीन शोध से प्राप्त सामग्री इतिहास की पूर्ति नहीं कर सकती, वहां नैणसी की रयात ही कुछ सहारा देती है। यह इतिहास का अर्ध्व संग्रह है। नैणसी का दूसरा ग्रन्थ जोधपुर राज्य का सर्वसंग्रह (गैज़ेटियर) है जिसमें जोधपुर राज्य के उन परगनों का वृत्तान्त है, जो उस समय उक्त राज्य में थे। नैणसी ने पहले तो एक-एक परगने का इतिहास लिखकर यह दिखलाया है कि उसका वैसा नाम क्यों पड़ा, उसमें कौन-कौन राजा हुए, उन्होंने क्या-क्या काम किये और वह कब और कैसे जोधपुर राज्य के अधीकार में आया। इसके बाद उसने प्रत्येक गांव का थोड़ा-थोड़ा हाल दिया है कि वह कैसा है, फ़सल एक होती है या दो, कौन-कौन से अन्न किस फ़सल में होते हैं, खेती करनेवाले किस-किस जाति के लोग हैं, जागीरदार कौन हैं, गांव कितनी जमा का है, पांच वर्षों में कितना रूपया

गांव रीपड़ पहुंचा, जहां बादशाह औरंगज़ेब के हृदय की बात जानने के बाद भाद्रपद वदि १३ (ता० १६ अगस्त) को वह उसके पास हाज़िर हो गया । बादशाह ने उसे जहानाबाद का सूबा दिया, जहां वह आश्विन सुदि १ (ता० १८ सितंबर) को पहुंचा^१ ।

इसके कुछ ही दिनों बाद बादशाह को खबर मिली कि शाह शुजा बंगाल से सैन्य-सहित चल पड़ा है । ऐसी दशा में उसे दारा का पीछा छोड़कर इस ओर ध्यान देना पड़ा। हि० स० १०६६
 शाहशुजा के साथ की लड़ाई से जसवन्तसिंह का स्वदेश लौटना
 ता० १२ मोहर्रम (वि० सं० १७१५ आश्विन सुदि १४ = ई० स० १६५८ ता० ३० सितम्बर)

को वह दिल्ली वापस लौटा, जहां वह ता० ४ रबीउलअव्वल (मार्गशीर्ष सुदि ६ = ता० २० नवंबर) को पहुंचा । वहां पर उसे सूचना मिली कि शाह शुजा दलबल सहित बनारस तक पहुंच गया है और बनारस, चीतापुर, इलाहाबाद तथा जौनपुर के किलेदारों ने वहां के किले उसके सुपुर्द कर दिये हैं^२ । तब बादशाह ने शाहज़ादे मुहम्मद सुलतान को आगरे से शाह शुजा पर जाने की आज्ञा दी, लेकिन फिर जब उसने शाह शुजा के और आगे बढ़ने का समाचार सुना तो उसने स्वयं सोरों की शिकारगाह चलने का इरादा किया^३ । दिल्ली से प्रस्थान करते

बड़ा है, तालाब, नाले और नालियां कितनी हैं, उनके हर्द-गिर्द किस प्रकार के बूच हैं आदि । यह कोई चार-पांच सौ पत्रों का ग्रन्थ है। इसमें जोधपुर के राजाओं का राज सीद्दा से महाराजा जसवन्तसिंह तक का कुछ-कुछ परिचय भी दिया है। यह ग्रन्थ प्रादेशिक होने पर भी जोधपुर राज्य के लिए कम महत्व का नहीं है । स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसाद ने तो नैयासी को “राजपूताने का अबुलफ़ज़ल” कहा है, जो अयुक्त नहीं है ।

नैयासी के दो भाई और थे, जिनमें से सुन्दरदास राजकीय सेवा में था और राज्य की तरफ से कई बार विद्रोही सरदारों पर भेजा गया था ।

(१) जि० १, पृ० २२८ ।

(२) मुंतज़बुल्लाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया; जि० ७, पृ० २३२ ।

(३) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३६-७ ।

समय उसने महाराजा जसवन्तसिंह को भी अपने साथ ले लिया^१। वहां पहुंचकर प्रथम उसने उस (शाह शुजा) के पास नसीहत का एक पत्र भेजा, जिसका कोई परिणाम न निकलने पर शाहज़ादे सुलतान को यह लिख कर कि वह उसके पहुंचने तक इन्तज़ार करे, उसने सोरों की शिकारगाह से चढ़ाई की। ता० १७ रबीउलअख़िर (वि० सं० १७१५ माघ वदि ४ = ई० स० १६५६ ता० २ जनवरी) को बादशाह क्रसवे कोड़ा के पास पहुंचा, जहां शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान ठहरा हुआ था। शाह शुजा उस समय अपनी फ़ौज के साथ वहां से चार कोस की दूरी पर था। उसी दिन खानदेश से जाकर मोअज़मख़ां भी बादशाही सेना के शामिल हो गया। शाह शुजा ने युद्ध करने के इरादे से तोपखाना आगे खड़ा रक्खा था। कोड़े में पहुंचने के तीसरे दिन बादशाह ने अपनी सेना और तोपखाने को आगे बढ़ाकर शत्रु पर आक्रमण करने की आज्ञा दी^२। उधर शाह शुजा भी आगे बढ़ा। थोड़े समय में ही दोनों सेनाएं एक दूसरे से आध कोस के अंतर पर एकत्रित हो गईं। उसी रात जब औरंगज़ेब अपने डेरे में था, उसकी सेना में गड़बड़ मच गई। महाराजा जसवन्तसिंह ने रात्रि के प्रारम्भ में शुजा से लिखा-पढ़ी करके यह तथ किया था कि प्रातःकाल होने के कुछ पूर्व वह बादशाह की सेना पर आक्रमण कर उसका भरसक नुक़सान कर युद्ध-क्षेत्र से हट जायगा। ऐसी दशा में यह निश्चित है कि औरंगज़ेब उसका पीछा करेगा। उस समय शुजा को शाही सेना पर पूर्ण वेग से आक्रमण कर देना चाहिये। इसी के अनुसार महाराजा ने सुबह होते-होते अपने साथियों

(१) उमराए हनूद; पृ० १५८। जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २२६। उक्त ग्रंथ में वि० सं० १७१५ के पौष (ई० स० १६५८ के दिसंबर) मास में औरंगज़ेब का महाराजा जसवन्तसिंह को साथ लेकर पटने की तरफ़ प्रस्थान करना लिखा है। बादशाह ने महाराजा को अपनी सेना के चन्दावल में रक्खा था। “वीरविनोद” से पाया जाता है कि वह अन्य राजपूतों के साथ बादशाही सेना की दाहिनी तरफ़ था (भाग २, पृ० ८२६)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३७-८।

सहित मार्ग में पड़नेवाले व्यक्तियों को काटते हुए युद्धक्षेत्र से हटना आरम्भ किया। उसके आक्रमण से शाहजादे मुहम्मद सुलतान की सेना का बहुत नुकसान हुआ। उसके साथ के तमाम डेरे, तम्बू और खजाना आदि लूट लिये गये। फिर विद्रोहियों ने, जिधर बादशाह था, उधर प्रस्थान किया। वहाँ के डेरे भी निरापद न रहे। कुछ समय तक तो इस गड़बड़ी के कारण का पता न चला। सारी बादशाही सेना में भय का साम्राज्य आविर्भूत हो गया और अनेकों सैनिक लुटेरों से मिल गये। बादशाह को जब ये खबरें मिलीं तो वह ज़रा भी विचलित न हुआ, यद्यपि उसका आधे से अधिक लश्कर बिखर गया था। इसी बीच उसे खबर मिली कि महाराजा लूट-मार करता हुआ अपने देश की ओर चला गया।

(१) सरकार-कृत “हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब” (जि० २, पृ० १४५), “उमराए हनुद” (पृ० १५८-९) तथा “वीरविनोद” (भाग २, पृ० ८२६) में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है; परन्तु जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि महाराजा कुछ बीमार होने के कारण वि० सं० १७१५ भाग्य यदि ५ (ई० सं० १६५९ ता० ३ जनवरी) को पिछली रात समय के राठोड़ ईश्वरीसिंह (अमरसिंहोत), हाड़ा भावसिंह (शत्रुसालोत), सीसोदिया रामसिंह (भीमोत) तथा अन्य कितने ही सरदारों के साथ अपने देश को रवाना हो गये (यह कथन विश्वास के योग्य नहीं है)। मार्ग में जयपुर के महाराजा जयसिंह से उसकी मुलाकात हुई, जिसने उसको समझाने की कोशिश की, पर उसने कोई ध्यान न दिया। ईश्वरीसिंह आदि उसके साथ ज़रूर हो गये, जिनको बादशाह की सेवा में पहुंचाकर उसने माफ़ी दिला दी। महाराजा अपने पूर्व-निश्चय के अनुसार जोधपुर चला गया (जि० १, पृ० २२६)।

मनूकी के वर्णन से पाया जाता है कि बादशाह ने जसवन्तसिंह को शाही सेना के पिछले भाग में नियुक्त किया था। कुछ समय तक तो उसने शाह शुजा की सेना से लड़ाई की, पर बाद में वह लूट का माल लेकर आगरे की तरफ़ चल दिया, जहाँ शाह शुजा की पराजय का समाचार पाकर वह जोधपुर चला गया (स्टोरिया को मोगोर; जि० १, पृ० ३२८-३२)। मनूकी यह भी लिखता है कि औरंगज़ेब के हारने का समाचार आगरे में फैलने के कारण, वहाँ के हाकिम भयातुर हो रहे थे। यदि उस समय साहस कर जसवन्तसिंह आगे बढ़ता तो आगरे के ज़िले पर उसका अधिकार हो जाता और वह आसानी से शाहजहाँ को मुक्त कर सिंहासनारूढ़ करा सकता था (वही;

फिर तो बादशाह जमकर आक्रमण करने लगा, जिसका परिणाम यह हुआ कि शाहशुजा की फौज भाग निकली। तब शाहज़ादे मुहम्मद सुलतान को शुजा के पीछे भेजकर बादशाह ने वहां से वापस कूच किया^१।

माघ सुदि १० (ता० २३ जनवरी) को महाराजा जोधपुर पहुंचा। कोड़ा से चलकर उसने मार्ग में खेलू और मालू नाम के दो बादशाही शहर लूटे। फिर वह सिवाणा गया, पर वहां का गढ़ उसके हाथ न आया। जोधपुर पहुंचकर उसने सेना एकत्र की,^२ तथा पट्टेवालों को पट्टे देकर सरदारों की मासिक वृत्तियां नियत की। उधर महाराजा के इस प्रकार साथ छोड़ने के कारण बादशाह उससे बड़ा अप्रसन्न हुआ। शाहशुजा का प्रबन्ध कर उसने उसके साथ की लड़ाई में धीरता दिखलानेवाले अमरसिंह के पुत्र रायसिंह को “फतहजंग” का खिताब और हाथी-घोड़े आदि उपहार में दिये तथा मुहम्मद अमीरां आदि के साथ जोधपुर पर विदा किया। यह खबर पाकर महाराजा ने आसोप के स्वामी कृपावत नाहरखां (राजसिंहोत) और मुंहणोत नैणसी को सेना देकर मेड़ते भेजा। रायसिंह का डेरा बांदर-सीन्दरी में हुआ^३।

जि० १, पृ० ३३२)। बर्नियर का भी यही मत है (ट्रैवेल्स इन दि मुगल एम्पायर; पृ० ७८)।

(१) “अम्लेसालीह” में शाहज़ादे मुअज़्ज़म का भी साथ भेजा जाना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३६, टि० १)।

(२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ३८-३९।

(३) बर्नियर भी लिखता है कि असबन्तसिंह ने अपने देश में पहुंचकर खजवा के कुछ क्षेत्र से लूटे हुए खजाने से एक बड़ी और मज़बूत सेना एकत्र की (ट्रैवेल्स इन दि मुगल एम्पायर; पृ० ८५)।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २२६-२७।

“मुंखबुल्लुबाब” (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इण्डिया; जि० ७, पृ० २३७) में अमीरां तथा रायसिंह का जोधपुर भेजा जाना लिखा है। उक्त पुस्तक से यह भी पाया जाता है कि रायसिंह को जोधपुर दिये जाने की आशा भी दिलाई गई थी।

उन्हीं दिनों औरंगज़ेब को बात हुआ कि दारा शिकोह कच्छ होता हुआ अहमदाबाद की सीमा पर जा पहुँचा है, जहाँ के सूबेदार शाहनवाज़ख़ाँ ने मुरादबख्श का खज़ाना और दूसरा बहुतसा महाराजा का जोधपुर लौटना सामान उसे दे दिया है। इस घटना के एक महीने के भीतर ही दारा ने बीस हज़ार सवार एकत्र कर लिये और वह दक्षिण जाने तथा महाराजा जसवन्तसिंह से मिलने की तरकीब सोचने लगा, जो उसके पास कई चिट्ठियाँ भेज चुका था^१। ये सब ख़बरें पाकर औरंगज़ेब ने अजमेर की ओर प्रस्थान किया। मिर्ज़ा राजा जयसिंह के बीच में पड़ने से उस (औरंगज़ेब) ने महाराजा जसवन्तसिंह के अपराध क्षमा कर उसका खिताब और जागीर बहाल कर दिये। इसके साथ ही उसने महाराजा को उधर के समाचार आदि लिखने के लिए कहलाया और मुहम्मद अमीरख़ाँ को वापस बुला लिया^२। महाराजा, जो दारा शिकोह

(१) इसकी एक पुत्री औरंगज़ेब को ब्याही थी।

(२) इसकी पुष्टि दारा शिकोह के एक निशान से भी होती है, जो उसने सिरौही पहुँचने पर वहाँ से हि० स० १०६८ ता० १ जमादिउज्जवल (वि० सं० १७१५ माघ सुदि ३ = ई० स० १६४६ ता० १५ जनवरी) को महाराणा राजसिंह के नाम भेजा था। उसमें उसने अपने सिरौही आने का उल्लेख करते हुए लिखा था— 'हमने अपनी लाज राजपूतों पर छोड़ी है और वस्तुतः हम सब राजपूतों के मेहमान होकर आये हैं। महाराजा जसवन्तसिंह भी उपस्थित होने के लिए तैयार हो गया है।' [वीरबिनोद; भाग २, पृ० ४३२-३३]

जुनुनाथ सरकार-लिखित "हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब" से भी पाया जाता है कि जसवन्तसिंह ने दारा के मेबता पहुँचते-पहुँचते उसके पास कई पत्र भेजे थे, जिनमें उसे अपनी सहायता का आश्वासन दिलाया था (जि० २, पृ० १६७-८)। बर्नियर भी लिखता है कि जसवन्तसिंह ने दारा को ख़बर कराई कि मैं अपनी सेना के साथ आगरे के मार्ग में तुम्हारे शामिल हो जाऊंगा (टैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ८५)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में इस विषय में लिखा है कि दाराशिकोह के पुत्र सिकिरिशिकोह के बीलावे पहुँचने पर महाराजा जसवन्तसिंह उसके साथ राबड़ियास तक गया, जहाँ से उसने उसे यह कहकर विदा किया कि आप अजमेर जायें, मैं भी

से मिलने के लिए बीस कोस आगे खला गया था, बादशाह का पत्र पाते ही दारा से बिना मिले, अपने देश लौट गया। दारा ने इसपर कई बार उसके पास लिखा-पढ़ी की, पर कोई परिणाम न निकला। जोधपुर से बीस कोस के अन्तर पर पहुंचकर उसने महाराजा के पास देवचन्द^१ नामक एक व्यक्ति को भेजा। महाराजा ने उसको यही उत्तर दिया कि दारा पहले अजमेर आकर राजपूतों से बातचीत करे; यदि दो-तीन बड़े राजपूत (राजा) उसकी मदद के लिए तैयार हो जायेंगे तो मैं भी उससे आ मिलूंगा। अजमेर पहुंचकर दारा शिकोह ने फिर देवचन्द को और कुछ दिनों बाद अपने पुत्र सिफ़्रि शिकोह को महाराजा के पास भेजा और उसे बहुत-कुछ लालच दिलाया, परन्तु कोई परिणाम न निकला तथा दोनों को निराश होकर लौटना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में जब दारा शिकोह किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था उसे

सेना एकत्र कर वहां आता हूं। औरंगजेब ने, जो अजमेर की तरफ चल चुका था, मार्ग में मिर्जा राजा जयसिंह से कहा कि जसवन्तसिंह मेरे हाथ में आया हुआ राज्य नष्ट करना चाहता है। उसे समझा दो, यदि वह मेरे शामिल नहीं रहना चाहता तो दारा के भी शामिल न हो; अपने ठिकाने को लौट जाय और पोछे जो तख्त का स्वामी हो उसकी चाकरी करे। जयसिंह ने ये बातें महाराजा से कहलवा दीं। फिर क्रौल-क्रार का फ़रमान पाकर महाराजा ने वि० सं० १७१५ चैत्र वदि ११ (ई० सं० १६५६ ता० ६ मार्च) को जोधपुर की तरफ़ प्रस्थान किया। (भावणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) चैत्र सुदि १ (ता० १३ मार्च) को औरंगजेब की दारा शिकोह से लड़ाई हुई, जिसमें हारकर दारा शिकोह गुजरात भाग गया (जि० १, पृ० २३०-१)।

मनुकी लिखता है कि जब औरंगजेब को यह आशंका हुई कि जसवन्तसिंह दारा की मदद पर तत्पर हो जायगा, तो उसने जयसिंह को कहकर उससे जसवन्तसिंह को इस कार्य से वर्जित करने के लिए पत्र लिखवाये। यही नहीं उसने शाह शुजा के साथ की लड़ाई में लूटा हुआ सामान भी जसवन्तसिंह को अपने पास रखने के लिए कहलाया तथा उसे गुजरात का सूबा देने का भी वादा किया (स्टोरिया डो मोगोर; जि० १, पृ० ३३६)।

बर्नियर का भी ऐसा ही कथन है (ट्रैवेल्स इन दि मुग़ल एम्पायर पृ० ८६)।

(१) जदुनाथ सरकार ने इसका नाम दुबिनचंद दिया है (हिस्ट्री ऑफ़ औरंगजेब; जि० २, पृ० १६६)।

औरंगज़ेब के बहुत निकट पहुंच जाने का समाचार मिला। खुस्रुमखुज़ा लड़ाई करने में अपने को असमर्थ पाकर उसने देवराई (दौराई) के निकट की पहाड़ियों का आश्रय लिया, जहां से कई दिनों तक उसने बड़ी दृढ़ता के साथ औरंगज़ेब की सेना का मुकाबिला किया, परन्तु जम्मू के राजा राजरूप, शेखमीर और दिलेरखां अफ़ग़ान के प्रबल आक्रमण के सामने उस(दारा)की सेना ठहर न सकी और उसे सिफ़्रि शिकोह, फ़ीरोज़ मेवाती तथा हरम के कुछ अन्य व्यक्तियों सहित प्राण बचाकर भागना पड़ा। राजा जयसिंह और बहादुर सेना के साथ उसके पीछे रवाना किये गये^१।

टैवर्नियर^२ लिखता है कि औरंगज़ेब से मिल जाने के कारण जसवन्त-सिंह नियत तिथि के बहुत पीछे अजमेर पहुंचा और युद्ध आरम्भ होने पर औरंगज़ेब के शामिल हो गया। उसका उद्देश्य दारा शिकोह को येन मौक़े पर धोखा देना था। दारा के सैनिकों ने जब यह हालत देखी तो वे भाग खड़े हुए^३।

टैवर्नियर का उपरोक्त कथन ठीक नहीं है। जसवन्तसिंह इस लड़ाई के समय युद्धक्षेत्र में उपस्थित ही नहीं था, फिर उसका दारा से विश्वास-घात कर औरंगज़ेब की फ़ौज के साथ मिल जाना कैसे माना जा सकता

(१) मुंतख़बुदलुबाब—इज़ियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० २३८-४१। मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ४१-३। जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑफ़ औरंगज़ेब; जि० २, पृ० १६२-८४।

(२) इसका पूरा नाम जीन-बैप्टिस्ट टैवर्नियर (Jean-Baptiste Tavernier) था। इसका जन्म पेरिस में ई० स० १६०२ में हुआ था। इसे बचपन से ही यात्रा का शौक था। अपने जीवन में इसने सात बार समुद्र-यात्रा की। अपनी इन यात्राओं में यह कई बार भारतवर्ष में भी आया, जहां का वर्णन इसने स्वरचित पुस्तकों में किया है। ई० स० १६८६ तक इसका विद्यमान रहना पाया जाता है। इसकी क्रम मॉस्को (Moscow) में मिली है।

(३) टैवेल्स इन इंडिया—वी० बाब-कृत अंग्रेज़ी अनुवाद (दूसरी आवृत्ति); जि० १, पृ० २७८।

है। बर्नियर के अनुसार भी जसवन्तसिंह इस लड़ाई के समय उपस्थित नहीं था।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि दारा के साथ की लड़ाई के अनन्तर बादशाह ने गुजरात का सूबा महाराजा जसवन्तसिंह के नाम कर दिया, जहां शीघ्रता के साथ पहुंचने के लिए उसके पास (आवणादि) वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) चैत्र सुदि ६ (ता० ११ मार्च) को बालसमन्द में शाही फ़रमान पहुंचा। वहां से वह जोधपुर गया और फिर वैशाख वदि २ (ता० ३० मार्च) को सिरोही के राव अखैराज की पुत्री से विवाह कर वैशाख सुदि ४ (ता० १५ अप्रैल) को अहमदाबाद में दाखिल हुआ^२।

(१) टैबेक्स इन दि मुग़ल एम्पायर; पृ० ८७-८।

(२) जि० १, पृ० २३१। “अग्ले साकीह” में भी इस अवसर पर जसवन्तसिंह को गुजरात की सूबेदारी मिलना लिखा है (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया; जि० ७, पृ० १३१)।

“मिरात-इ-अहमदी” से इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश पड़ता है। उसमें लिखा है—

‘महाराजा जसवन्तसिंह कई कारणों से बहुत शर्मिन्दा हो गया था, लेकिन मिर्ज़ा राजा जयसिंह की सिकारिश से उसे बादशाह की तरफ़ से माफ़ी मिल गई और हि० स० १०६६ के रजब (वि० सं० १७१६ चैत्र-वैशाख = ई० स० १६५६ मार्च) मास में वह गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त किया गया तथा उसे यह आज्ञा हुई कि वह गुजरात का काम संभाले और अपने कुंवर पृथ्वीसिंह को शाही सेवा में भेज देवे [मिर्ज़ा मुहम्मद हसन-कृत मूल फ़ारसी (कलकत्ता संस्करण); जि० १, पृ० २४४। वही—पठान निज़ामख़ां नूरख़ां वकील-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २५३]। उक्त पुस्तक से यह भी पाया जाता है कि जसवन्तसिंह का “महाराजा” का ख़िताब, जो उसके पहले के अपराधों के कारण छीन लिया गया था, पीछा हि० स० १०७० (वि० सं० १७१६-१७ = ई० स० १६५६-६०) में बहाल कर दिया गया (मूल; जि० १, पृ० २५२। गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६०)।

उन्हीं दिनों जैसलमेर के रावल सबलसिंह ने फलोधी तथा पोकरण^१ के इस गांव लूटे। इसपर महाराजा ने सिराही में रहते समय मुंहणोत नैणसी को जैसलमेर पर जाने की आज्ञा दी। वह जोध-
जैसलमेर के रावल पर सेना भेजना पुर से सेना एकत्र कर पोकरण पहुंचा। सबलसिंह का पुत्र अमरसिंह उस समय वहां पर ही था। वह मुंहणोत नैणसी के आने का पता पाकर जैसलमेर चला गया। तब नैणसी ने उसका पीछा कर जैसलमेर के पच्चीस गांव जला दिये और जैसलमेर से तीन कोस इधर वासणी गांव में डेरा किया। जब कई रोज तक रावल उसका सामना करने के लिए गढ़ से न निकला, तो वह आसणी नामक गढ़ में लूट-मार कर वापस चला गया^२।

दारा ने अजमेर से भागकर कड़ी तथा कच्छ आदि में सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया, पर इसमें असफल होने पर उसने दशाबाज मलिक जीवन की बातों में आकर उसके साथ ईरान
दारा शिकोह और उसके पुत्र का पवड़ा जाना की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में मलिक जीवन तो बहाना बनाकर लौट गया और उसके साथियों ने दारा तथा उसके पुत्र सिफ़िर शिकोह को बन्दी बना लिया। फिर वे बहा-
दुरखां के सुपुर्द किये गये, जिसने जिलद्विज (आश्विन) मास के मध्य में उन दोनों को बादशाह के रूबरू पेश किया। उसी महोत्सव के अंत में^३ दारा-
शिकोह का भाग्य निर्णय कर उसे मौत की सज़ा दी गई तथा सिफ़िर

(१) पोकरण पर इससे बहुत पूर्व ही जोधपुर का अधिकार स्थापित हो गया था (देखो ऊपर पृ० ४२१-२३)।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४६-५० । लक्ष्मीचंद-लिखित “तवारीख जैसलमेर”, टैंड-कृत “राजस्थान”, मुंहणोत नैणसी की ख्यात आदि में इस घटना का उल्लेख नहीं है।

(३) “अमले सालीह” में ता० २६ दी है (इलिषद्; हिस्ती खौव् इंडिया; जि० ७, पृ० २४६, टि० १)।

शिकोह खालियर के किले में कैद कर दिया गया' ।

वि० सं० १७१६ (ई० सं० १६५६) में महाराजा ने उन भूमियों के ऊपर, जो विद्रोही हो रहे थे, चढ़ाई की । चार मास में उनका पूर्ण रूप से दमन कर पौष सुदि १४ (ता० १७ दिसंबर) को वह जसवंतसिंह की भूमियों पर चढ़ाई होना अहमदाबाद लौट गया' । इसके दूसरे साल गुजरात में रहते समय उसने बादशाह के पास धन, आभूषण, घोड़े आदि भेजे^३ । वि० सं० १७१८ (ई० सं० १६६१) में नवेडा के भूमिया दूदा कोली के विद्रोही हो जाने पर महाराजा ने उसपर चढ़ाई की । इसपर दूदा उसकी सेवा में उपस्थित हो गया' ।

हि० सं० १०७३ (वि० सं० १७१६-२० = ई० सं० १६६२-६३) में जसवंतसिंह का गुजरात से बादशाह ने गुजरात से महाराजा जसवंतसिंह को हटाकर वहां महाबतख़ां की नियुक्ति की' ।

(१) मुंताज़बुल्लुबाब — इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ७, पृ० २४२-६ । जदुनाथ सरकार; हिस्ट्री ऑफ् औरंगज़ेब; जि० २, पृ० ११४-६ तथा २०६-२० (मज़क़ जीवन का स्वयं द्वारा को गिरफ़्तार करना लिखा है) ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३१ ।

(३) वही; जि० १, पृ० २३१-२ ।

(४) वही; जि० १, पृ० २३१ ।

(५) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ५६ । जोधपुर राज्य की ख्यात में काकरिया तालाब के निकट डेरे होने पर वि० सं० १७१८ मार्गशीर्ष वदि ८ (ई० सं० १६६१ ता० ४ नवम्बर) को बादशाह का फ़रमान जाना लिखा है, जिसके अनुसार गुजरात का सूबा उससे हटाकर महाबतख़ां को दे दिया गया और महाराजा को उसके पवज़ में हांसी, हिसार के परगने मिले (जि० १, पृ० २३१) । हांसी, हिसार के परगने उसे मिलने का किसी फ़ारसी तवारीख़ में उल्लेख नहीं है । मनुकी लिखता है कि महाराजा के गुजरात में रहते समय औरंगज़ेब बहुत सख़्त बीमार पड़ा । उस समय यह अरूबाह फैली कि महाराजा गुजरात से जाकर शाहजहाँ को छुड़ाने का उद्योग करेगा, पर बादशाह के निरोग हो जाने के कारण यह केवल अरूबाह ही रही (स्टोरिया डो मोगोर; जि० २, पृ० ५५ और ५८) ।

औरंगजेब के राज्यारम्भ के पूर्व से ही दक्षिण में मरहटों का ज़ोर बढ़ने लगा था। उसके सिंहासनारूढ़ होने के बाद उनका आतंक और बढ़ा।

शाहस्तारखां के साथ की
शिवाजी की लड़ाई और
जसवंतसिंह

शाहजी के पुत्र शिवाजी ने सैनिकों का संगठन कर क्रमशः तोरणा, कोंदाना, जावली, माहुली आदि के किलों पर अधिकार कर लिया था। फिर उसने पन्हाला तथा रतनागिरि आदि अनेक स्थान अपने कब्जे में कर लिये। पन्हाला पर उसका अधिकार अधिक दिनों तक न रहा, क्योंकि बीजापुर की सेना ने वहाँ चढ़ाई कर दी। मुसलमान सेनापति जौहर^१ को शिवाजी ने अपनी तरफ़ मिलाया तो सही, पर बाद में अफ़ज़लखां^२ के पुत्र फ़ज़लखां तथा सीदी इलाल के पवनगढ़ के किले पर आक्रमण करने के कारण उसे पन्हाला का परित्याग करना पड़ा। पीछे से जौहर के गुप्त मन्तव्य का पता लगने पर जब अली आदिलशाह (द्वितीय^३) ने स्वयं चढ़ाई की, तो उस (जौहर) ने घेरा हटाकर पन्हाले का गढ़ आदिलशाह के आदमियों को सौंप दिया। शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति का रोकना अत्यन्त आवश्यक हो गया था, अतएव वि० सं० १७१६ के भाद्रपद

“मिरात-इ-अहमदी” में लिखा है कि हि० सं० १०७२ (वि० सं० १७१८-१९=ई० सं० १६६१-६२) में गुजरात की सूबेदारी पर नियुक्त रहते समय महाराजा के पास इस आशय का शाही फ़रमान पहुँचा कि वह अपनी सब सेना सहित अमीरुल-उमरा (शाहस्तारखां) की, जो दक्षिण में शिवाजी से लड़ रहा है, मदद को जावे (मूल फ़ारसी; जि० १, पृ० २५३। पठान निज़ामखां नूरखां-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६१)।

(१) अबीसीनिया का एक गुलाम। इसने करनौल पर स्वतंत्र अधिकार कर लिया था। मुलतान आदिलशाह (द्वितीय) ने इसके अनुरोध करने पर इसे सलाबतखां का खिताब देकर शिवाजी पर भेजा था।

(२) इसका वास्तविक नाम अब्दुल्ला भतारी था और यह बीजापुर का प्रमुख सरदार था।

(३) बीजापुर का शासक।

(ई० स० १६५६ जुलाई) मास में बादशाह (औरंगज़ेब) ने शाहज़ादे मुअज़्ज़म के स्थान में शाहस्ताखां^१ की नियुक्ति दक्षिण में कर उसे शिवाजी का दमन करने के लिए भेजा^२। उसने थोड़े समय में ही चाकन (Chakan) से मरहटों को निकालकर वहां अधिकार कर लिया। फिर उसने उत्तरी कोंकण की ओर ध्यान दिया, जहां के लिए कारतलबखां सेनापति नियुक्त किया गया, पर शिवाजी भी चुप न बैठा था। उसने शीघ्रता से जाकर कारतलबखां की सेना को हरा दिया, पर इसके बाद ही वि० सं० १७१८ के ज्येष्ठ (ई० स० १६६१ मई) मास में मुगल सेना ने मरहटों से कल्याण छीन लिया। शिवाजी ऐसी दशा में वर्द्धनगढ़ में चला गया। ई० स० १६६२ और १६६३ (वि० सं० १७१६ और १७२०) के प्रारम्भिक दिनों में मरहटों पर मुगलों के आक्रमण निरन्तर जारी रहे^३।

चाकन पर अधिकार करके शाहस्ताखां पृना चला गया और वहीं रहने लगा। महाराजा जसवन्तसिंह दस हजार सैनिकों सहित सिंहगढ़ के मार्ग में ठहरा हुआ था। शिवाजी प्रति दिन की लड़ाई से ऊब गया था। उसने शाहस्ताखां को पराजित करने का एक उपाय सोचा। दो हजारवीर सैनिकों को मुगल छावनी से एक मील की दूरी पर दोनों ओर रखकर तथा चारसौ चुने हुए आदमियों को लेकर वह मुगल छावनी में रात के समय घुस गया। शाही पहरेदारों के पूछने पर यह कहा गया कि हम दक्षिणी सिपाही हैं और अपने-अपने स्थान पर नियुक्त होने के लिए आये हैं^४। किसी छिपे हुए स्थान

(१) इसका वास्तविक नाम अबू तालिब अथवा मिर्जा मुराद था और यह शाहज़ाहां के राज्यकाल में वज़ीर के पद पर था।

(२) “मुंताज़ुल्लुबाब” (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ७, पृ० २६१) में भी इसका उल्लेख है।

(३) जदुनाथ सरकार; शिवाजी (तृतीय संस्करण); पृ० २२-८७।

(४) “मुंताज़ुल्लुबाब” में लिखा है कि शिवाजी के सैनिकों का एक दल मूठी बरात बनाकर और दूसरे क़ैदियों को ले जाने के बहाने से मुगल छावनी में घुसा (इलियट्; हिस्ट्री ऑफ् इंडिया; जि० ७, पृ० २६१)।

में कुछ समय तक विश्राम कर शिवाजी अपने सैनिकों सहित शाहस्ताखां के निवास स्थान के निकट गया। वहां के सब सैनिक आदि सो रहे थे। थोड़े-बहुत जो जाग रहे थे उन्हें मौत के घाट उतारकर, उन्होंने दीवार में छार फोड़कर मार्ग बनाया और डेरे तम्बुओं को तोड़ता हुआ दो सौ आदमियों सहित शिवाजी खान के ऊपर जा पहुंचा। हरम की भयभीत रमणियों ने खान को जगाया, पर इसके पूर्व कि वह शस्त्र संभाल सके शिवाजी ने तलवार के वार से उसके हाथ की उंगलियां काट दीं। बाहर के दो सौ व्यक्तियों ने भी मुगल सैनिकों को बुरी तरह काट डाला। शाहस्ताखां का एक पुत्र इसी भगड़े में काम आया और स्वयं उसे सुरक्षित स्थान में भागना पड़ा। इस लड़ाई में शिवाजी की तरफ के केवल छः आदमी मारे गये और चालीस जख्मी हुए। यह लड़ाई ई० स० १६६३ ता० ५ अप्रैल (वि० सं० १७२० द्वितीय चैत्र सुदि ८) को हुई। प्रातःकाल होने पर जसवन्तसिंह शाहस्ताखां का हाल-चाल पूछने के लिए गया। उस समय शाहस्ताखां ने कहा—‘जब

(१) फारसी तबारीखों से पाया जाता है कि जसवन्तसिंह शिवाजी से मिल गया था, इसलिए उसके आक्रमण के समय उसने कोई भी भाग नहीं लिया। “टोरिया डो मोगोर” में लिखा है कि उसके कहने से ही शिवाजी ने शाहस्ताखां को मारने का निश्चय किया था (मन्की-कृत; जि० २, पृ० १०४)। बर्नियर लिखता है कि अचानक आक्रमण कर शाहस्ताखां को घायल करने के बाद शिवाजी ने सूरत पर आक्रमण किया और वहां से लूट का बहुतसा सामान लेकर वह निर्विरोध वापस लौट गया। इस सम्बन्ध में लोगों को ऐसा सन्देह था कि जसवन्तसिंह और शिवाजी के बीच किसी प्रकार का समझौता हो गया था, जिससे उपर्युक्त दोनों घटनाएं हुईं। फलतः जसवन्तसिंह पीछे से दक्षिण से वापस बुला लिया गया, पर वह दिल्ली जाने के बजाय अपने देश चला गया (ट्रेवेल्स इन दि मुगल एम्पायर; पृ० १८७-८), पर ये सब कथन निर्मूल हैं, क्योंकि गिफफर्ड (Giffard) ने राजपुर से ई० स० १६६३ ता० १२ अप्रैल (वि० सं० १७२० द्वितीय चैत्र सुदि १५) को सूरत चिट्ठी लिखी थी। उसमें शिवाजी के रावजी (पंडित) के नाम के एक पत्र का उल्लेख है, जिसमें शिवाजी ने लिखा था कि लोग कहते हैं कि मैंने जसवन्तसिंह के कहने से यह काम किया; परन्तु यह ग़लत है,

शत्रु ने मुझपर आक्रमण किया, उस समय मैंने विचार किया कि तुम उससे लड़कर काम आये^१।' जब बादशाह के पास इस दुर्घटना की सूचना पहुंची तो उसने शाहस्ताख़ां को हटाकर बंगाल में भेज दिया और उसके स्थान में मुअज़्ज़म की नियुक्ति की। ई० स० १६६४ (वि० सं० १७२०) के प्रारम्भ में शाहस्ताख़ां के प्रस्थान करने पर मुअज़्ज़म औरंगाबाद में आ रहा और जसवन्तसिंह की नियुक्ति पूना में की गई^२।

इसके बाद शिवाजी का उपद्रव दिन-दिन बढ़ता ही गया। उसने सूरत के पास के जीवल (बल) आदि कई किलों पर अधिकार कर लिया।

यही नहीं उसने समुद्र के किनारे कई नये किले भी निर्माण किये^३। जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है—'शिवाजी का उत्कर्ष रोकने के लिए वि० सं०

१७२० कार्तिक वदि ११ (ई० स० १६६३ ता० १६ अक्टोबर) को पूना से महाराजा जसवन्तसिंह ने उसपर चढ़ाई की। मार्गशीर्ष सुदि ७ (ता० २७ नवम्बर) को कुंडाणा पहुंचकर उसने गढ़ के पास मोर्चा लगाया। प्रायः

क्योंकि मैंने अपने परमेश्वर के आदेश से यह कार्य किया था (सरकार; शिवाजी; पृ० ११ का टिप्पण)।

(१) "मुंतख़बुल्लुबाब" के अनुसार शाहस्ताख़ां ने यह कहा कि मैं तो समझता था कि महाराजा शाही सेवा में है (इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७ पृ० २७१)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० ८८-१३ और १०३। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है (जि० १, पृ० २३२) और इसके बाद उसका दक्षिण में नियुक्त किया जाना लिखा है। मनुकी-कृत "स्टोरिया डो मोगोर" (जि० २, पृ० १०६) से पाया जाता है कि शाहस्ताख़ां को हटाकर बादशाह ने जसवन्तसिंह को भी दरबार में हाज़िर होने का हुक्म दिया, पर वह इस आज्ञा की अवहेलना कर अपने देश चला गया। "बीरबिनोद" (भाग २, पृ० ८२७) में भी इस घटना के बाद बादशाह-द्वारा उसका वापस बुलाया जाना लिखा है।

(३) मुंतख़बुल्लुबाब—इलियट्; हिस्ट्री ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २७१।

छः मास तक वहां पड़े रहने पर भी जब कोई फल न निकला तो गढ़ तक सुरंग लगाने का निश्चय किया गया । (भावणादि) वि० सं० १७२० (चैत्रादि १७२१) वैशाख वदि १२ (ई० स० १६६४ ता० १३ अप्रैल) को सुरंग लगाई गई । फिर ज्येष्ठ वदि ६ (ता० ६ मई) को पत्नीता लगाकर गढ़ उड़ाने का प्रयत्न किया गया, जिसमें सफलता नहीं मिली । दिन निकलने पर दोनों दलों में लड़ाई हुई, जिसमें महाराजा की तरफ के राठोड़ भीम (गोकलदासोत मेड़तिया), राठोड़ भावसिंह (भीमोत जैताघत) आदि अनेक व्यक्ति तथा शाही सेना के कई व्यक्ति मारे गये । पीछे से वर्षा ऋतु आरम्भ हो जाने और बादशाह के पास से फ़रमान पहुंचने पर, महाराजा घेरा उठाकर पूना लौट गया ।^१ उक्त ख्यात में यह भी लिखा है कि उन्हीं दिनों रसद के लिए जाते हुए शिवाजी के आदमियों से महाराजा के सैनिकों की मुठभेड़ हो गई । महाराजा के सैनिकों में से कई इस भगड़े में काम आये, पर उन्होंने अंत में बैल आदि छीन ही लिये^२ ।

वि० सं० १७२१ (ई० स० १६६५) में बादशाह ने महाराजा जसवन्तसिंह को दक्षिण से हटाकर दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा भेजी । उसके

(१) “मुंतख़ुबुलुबाब” में भी लिखा है कि महाराजा ने शिवाजी का दमन करने के लिए प्रयत्न किया, पर उसे सफलता न मिली (इलियट् ; हिरटी ऑव् इंडिया; जि० ७, पृ० २७१) । सरकार-कृत “शिवाजी” से पाया जाता है कि जब छः महीने घेरा रहने पर भी जसवन्तसिंह को सफलता नहीं मिली तो उसने शत्रु के गढ़ पर प्रबल आक्रमण किया । इस हमले में इसके कई सौ आदमी काम आये । इसके बाद ही उसका अपने बहनोई भावसिंह हाबा से सफलता की जिम्मेवारी के सम्बन्ध में मतभेद हो गया, जिससे दोनों अपनी-अपनी सेनाएं लेकर औरंगाबाद चले गये (पृ० १०३) ।

(२) जैसा कि ऊपर टिप्पण १ में लिखा है, कहीं-कहीं महाराजा का औरंगाबाद जाना ही लिखा मिलता है ।

(३) जि० १, पृ० २३२-४ ।

(४) जि० १, पृ० २३४ ।

जसवंतसिंह का दक्षिण से
हटाया जाना

स्थान में वहां मवाब दिलेरखां और मिर्ज़ा राजा जयसिंह की नियुक्ति की गई^१। चैत्र वदि १२^२ (ई० स० १६६५ ता० ३ मार्च) को पूना पहुंचकर रामपुरा और करौली^३ होता हुआ महाराजा (जसवंतसिंह) शाहजहानाबाद में बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया^४। बादशाह ने उसे सिरापाव आदि बहुतसी चीज़ें इनाम में दीं^५।

जयसिंह ने दक्षिण में पहुंचकर शिवाजी का दमन करने के लिए समुचित प्रबन्ध किया। रुद्रमाल आदि कई किले विजयकर पुरंधर पर घेरा डाला गया। शिवाजी ने उस घेरे को हटाने का भर-
शिवाजी का बादशाह की
बैद से निकलना
सक प्रयत्न किया, पर उसमें उसे सफलता न मिली। गढ़ का नष्ट होना निश्चित था। उसके भीतर की स्त्रियों का सम्मान संकट में था। ऐसी दशा में लाचार होकर उसे जयसिंह को सन्धि के लिए लिखना पड़ा। जयसिंह ने इसकी सूचना बादशाह के पास भिजवाकर तेईस किले समर्पण करने की शर्त पर सन्धि कर ली। कुछ दिनों बाद जयसिंह के कहने पर शिवाजी बादशाह के समक्ष उपस्थित

(१) मुंशी देवीप्रसाद-कृत “औरंगजेबनामा” में भी इसका उल्लेख है (भा० १, पृ० ६१), परन्तु उसमें वि० सं० १७२१ (हि० स० १०७५ = ई० स० १६६४) में राजा जयसिंह आदि का दक्षिण में भेजा जाना लिखा है।

(२) जदुनाथ सरकार-कृत “शिवाजी” नामक पुस्तक में जसवंतसिंह का ता० ३ मार्च (वि० सं० १७२१ चैत्र वदि १२) को पूना में होना और वहां से ता० ७ मार्च (वि० सं० १७२२ चैत्र सुदि १) को प्रस्थान करना लिखा है (पृ० १०५-१०६)।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात के अनुसार इन दोनों स्थानों में उसका एक-एक विवाह हुआ था।

(४) मुंशी देवीप्रसाद-कृत “औरंगजेबनामा” में ता० = ज़ीकाद (वि० सं० १७२२ चैत्र सुदि १० = ई० स० १६६५ ता० १४ मई) को जसवंतसिंह का बादशाह की सेवा में उपस्थित होना लिखा है (भाग २, पृ० ६३)।

(५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि १, पृ० २३५-६।

हुआ^१ परन्तु वहाँ उसका उचित सम्मान नहीं हुआ और वह पाँच हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा कर दिया गया। शिवाजी ने कड़े शब्दों में इसका विरोध किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि बाद में वह पहरों में रख दिया गया। कई मास बाद वह पड़्यन्त्र करके बादशाह की कैद से निकल भागा^२।

(आवणादि) वि० सं० १७२१ (चैत्रादि १७२२) आषाढ वदि ४ (ई० सं० १६६५ ता० २३ मई) मंगलवार को महाराजा ने बादशाह के निकट रहते समय अपने कुँवर पृथ्वीसिंह को बुलाया। इस कुँवर पृथ्वीसिंह का बादशाह की सेवा में जाना आदेश के अनुसार प्रस्थान कर प्रथम आवण (जुलाई) मास में पृथ्वीसिंह बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया, जिसने उसे चार हज़ारी मनसबदारों की पंक्ति में खड़ा किया^३।

उसी वर्ष औरंगज़ेब के पास आगरे से समाचार आया कि उसके पिता की तबियत बहुत खराब है और पेशाब बन्द हो जाने के कारण हकीमों ने नाउम्मेद होकर इलाज बन्द कर दिया है। औरंगज़ेब ने उस समय स्वयं न जाकर शाहजादे मुअज़्ज़म को भेज दिया। हि० सं० १०७६ तारीख २६ रजब (वि० सं० १७२२ माघ वदि १३ = ई० सं० १६६६ ता० २२ जनवरी^४) को

(१) “सभासद” ने लिखा है कि शिवाजी महाराजा जसवन्तसिंह के पीछे खड़ा किया गया, जिसका पता लगने पर उस (शिवाजी) ने कहा—“वही जसवन्त, जिसकी पीठ मेरे सैनिकों की तलवारों ने देखी थी। मैं उसके पीछे ? इसका आशय क्या है ?” (सरकार; शिवाजी; पृ० १४४)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० १०५-१२०।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० १३६-७।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात में माघ वदि १२ (ता० २१ जनवरी) दिया है। उक्त ख्यात के अनुसार सब फाल्गुन वदि ७ (ता० १५ फरवरी) गुरुवार को आगरे में दाखिल हुए (जि० १, पृ० २३७)।

शाहजहां की बीमारी बढ़ गई और उसी रात को उसका देहांत हो गया। औरंगज़ेब ने यह खबर पाकर मातमी कपड़े पहने और ता० ६ शाबान (माघ सुदि १० = ता० ४ फरवरी) को आगरे के लिए प्रस्थान किया। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर महाराजा जसवंतसिंह और कुंवर पृथ्वीसिंह भी उसके साथ थे^१।

(श्रावणादि) वि० सं० १७२२ (चैत्रादि १७२३) वैशाख वदि ८ (ई० सं० १६६६ ता० १६ अप्रैल) को आग्रा प्रातःकर कुंवर पृथ्वीसिंह ने गौड़ों के यहां विवाह करने के लिए प्रस्थान किया। इस अवसर पर बादशाह ने उसे सिरोपाव तथा घोड़ा आदि देकर विदा किया। गौड़ों के यहां विवाह कर वैशाख सुदि ११ (ता० ४ मई) को कुंवर जोधपुर पहुंचा^२।

उसी वर्ष ईरान से तरबीयतख़ां के पास से खबर आई कि यहां का शाह अब्बास चढ़ाई करने के इरादे से खुरासान आना चाहता है। दरबार में उपस्थित होने पर भी तरबीयतख़ां ने यही बात बादशाह से अर्ज की। इसपर शाह को दंड देने के लिए ता० १४ रबीउलअव्वल (आश्विन वदि १ = ता० ४ सितम्बर) को बादशाह ने शाहज़ादे मोहम्मद मुअज़्ज़म और महाराजा जसवन्तसिंह को आगरे से रवाना किया^३।

कार्तिक सुदि १५ (ता० १ नवंबर) को लाहोर पहुंचकर महाराजा

(१) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ६५।

(२) जि० १, पृ० २३७।

(३) वही; जि० १, पृ० २३७।

(४) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जिल्द १, पृ० ६७-८। जोधपुर राज्य की ख्यात में भी इस घटना का उल्लेख है, पर उसमें शाह का नाम सलीम दिया है, जो ठीक नहीं है। उक्त ख्यात के अनुसार इस अवसर पर बादशाह ने जसवन्तसिंह को हाथी, घोड़ा, सिरोपाव आदि भी दिये (जि० १, पृ० २३७-८)।

ने सलीम बाग में डेरा किया' । इसके पूर्व ही शाह ईरान की मृत्यु हो गई, जिसकी खबर मिलने पर बादशाह ने शाहज़ादे मुअज़्ज़म और महाराजा जसवंतसिंह को लाहोर में ही ठहरने और वहां से आगे न बढ़ने के लिए लिखा^१ ।

जसवंतसिंह आदि के पास
लाहोर में ठहरने का बादशाह
का आदेश पहुंचना

जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि वि० सं० १७२३ फाल्गुन सुदि ६ (ई० सं० १६६७ ता० २२ फरवरी) को शाहज़ादे मुअज़्ज़म और महाराजा जसवंतसिंह के पास बादशाह का इस आशय का फ़रमान पहुंचा कि वे शीघ्र लौटें । इसके अनुसार चैत्र वदि ११ (ता० १० मार्च) रविवार को वे बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गये । बादशाह ने कुंवर पृथ्वीसिंह को, मनसब बढ़ाकर तथा उपहार आदि देकर अपने पास रहने की आज्ञा दी एवं महाराजा की शाहज़ादे मुअज़्ज़म के साथ दक्षिण में नियुक्ति कर^२ (आवणादि) वि० सं० १७२३ (चैत्रादि १७२४) चैत्र सुदि ६ (ता० २४ मार्च) को उन्हें उधर खाना किया^३ ।

(आवणादि) वि० सं० १७२३ (चैत्रादि १७२४) ज्येष्ठ वदि ८ (ई० सं० १६६७ ता० ५ मई) को दिल्ली में रहते समय कुंवर पृथ्वीसिंह को चेचक की बीमारी हो गई, जिससे तीन दिन बाद उसका देहांत हो गया । यह शोक समाचार धुरहानपुर के पास महाराजा को ज्ञात हुआ^४ ।

-
- (१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३६ ।
 (२) मुंशी देवीप्रसाद; औरंगज़ेबनामा; जि० १, पृ० ६६ ।
 (३) वही; जि० १, पृ० ७१ ।
 (४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २३६-४० । मुंशी देवीप्रसाद-कृत "औरंगज़ेबनामा" में चैत्र सुदि ८ (ता० २३ मार्च) को महाराजा और शाहज़ादे का दक्षिण में जाना लिखा है (जि० १, पृ० ७१) ।
 (५) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४० ।

उसी वर्ष के आषाढ (ई० स० १६६७ मई) मास^१ में शाहजादा महाराजा के साथ औरंगाबाद पहुंचा । उनके पहुंचने पर मिर्जा राजा जय-जसवन्तसिंह के उद्योग से सिंह ने वहां से प्रस्थान किया, पर मार्ग में बुरहानपुर में उसका देहांत हो गया^२ । मुअज्जम और जसवन्त-सिंह के दक्षिण में जाने से शिवाजी को कुछ शान्ति ही मिली । वह उन दिनों लड़ाई के लिए बिल्कुल तैयार न था । इसके विपरीत वह अपनी बिखरी हुई सेना का संगठन करना और अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता था । इसके लिए वह सुलह का इच्छुक था । इसी भावना से प्रेरित होकर उसने वैशाख (अप्रैल) मास में बादशाह के पास इस आशय का पत्र भेजा था कि मैं अपने ऊपर भेजी जानेवाली सेना से भयभीत हूं और अधीनता स्वीकार करके अपने पुत्र को ४०० सैनिकों के साथ शाही भण्डे के नीचे रहकर लड़ने के लिए भेजने को तैयार हूं, परन्तु उस

टॉड लिखता है कि मारु की ख्यातों से पाया जाता है कि औरंगजेब द्वारा बुलाये जाने पर जसवन्तसिंह का पुत्र (पृथ्वीसिंह) उसकी सेवा में उपस्थित हुआ, जहां उसका समुचित आदर-मान हुआ । एक दिन बादशाह ने उसे अपने पास बुलाकर उसके दोनों हाथ अपने हाथ में पकड़कर कहा—“राठोड़ ! मैंने सुना है कि पिता की भांति ही तुम भी चंचल (गतिवान) हाथ रखते हो । बोलो, अब तुम क्या कर सकते हो ?” राजकुमार ने तुरन्त उत्तर दिया—“जहांपनाह ! नीच से नीच व्यक्ति को जय मनुष्यों का स्वामी (बादशाह) अपने आश्रय में ले लेता है तो उसकी सारी आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं; फिर आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये हैं । मुझ को ऐसा भान होता है कि मैं सारे संसार को विजय कर सकता हूं ।” बादशाह ने कहा—“यह तो दूसरा खूनन (अर्थात् जसवन्तसिंह) ही है ।” ऊपर से राजकुमार के साहस से प्रसन्नता दिखलाते हुए उसने उसे सिरोपाव दिया, जिसे पहनकर उसने वहां से प्रस्थान किया, पर वह दिन उस (पृथ्वीसिंह) के जीवन का अंतिम दिन था । अपने डेरे पर पहुंचते ही वह बीमार पड़ गया और बड़े कष्ट से उसने प्राणत्याग किया । अब तक उसकी मृत्यु उसी विष-भरी पोशाक के द्वारा होना माना जाता है (राजस्थान; जि० २, पृ० ६८५) ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में आषाढ वदि १४ (ता० १० जून) दिया है (जि० १, पृ० २४०) ।

(२) वही; जि० १, पृ० २४० ।

समय औरंगज़ेब ने इस पत्र पर कोई ध्यान न दिया। जसवन्तसिंह के दक्षिण में पहुंचते ही शिवाजी ने उसके पास इस आशय का पत्र लिखा—

‘बादशाह ने मेरा परित्याग कर दिया है, अन्यथा मैं अकेले कन्दहार विजय करने के लिए उससे प्रार्थना करता। मैं (आगरे से) प्राणों के भय से भाग आया था। इधर मेरे संरक्षक मिर्जा राजा का भी देहांत हो गया। यदि आपके बीच में पड़ने से मुझे क्षमा मिल जाय तो मैं शम्भा की शाहज़ादे के पास मनसबदार की भांति अपने सैनिकों के सहित उस (शाह-ज़ादे) की सेवा बजा लाने को भेज दूँ।’

जसवन्तसिंह और शाहज़ादा दोनों इस पत्र को पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने शिवाजी की बादशाह के पास सिफ़ारिश कर दी, जिसने उनकी बात मानकर उस (शिवाजी) को राजा का खिताब दिया। इस प्रकार मरहटों और मुग़लों में कुछ दिनों के लिए फिर संधि स्थापित हो गई।

सन्धि की शर्त के अनुसार शम्भाजी औरंगाबाद भेजा गया, जहां वि० सं० १७२४ मार्गशीर्ष वदि १४ (ई० स० १६६७ ता० ४ नवम्बर) को वह शाह-ज़ादे से मिला। इसके दूसरे दिन उसे लौटने की इजाज़त मिली^३। पीछे से उसको पांच हज़ारी मनसब, एक हाथी और एक रत्नजटित तलवार दी गई^४।

जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि उसी वर्ष बादशाह ने महाराजा को गुजरात के धिराद और राधणपुर परगने दिये। वहां पर

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात में लिखा है कि बादशाह ने शाहज़ादे और महा-राजा को दक्षिण भेजते समय उनसे कहा था कि जैसे भी हो वे शिवाजी को शाही सेवा में प्रविष्ट करावें। इसके अनुसार औरंगाबाद पहुंचते ही दोनों ने अपनी तरफ़ से आदमी भेजकर शिवाजी को समझाया, जिसपर उसने अपने पुत्र शम्भाजी को ३०० सैनिकों के साथ महाराजा के पास भेजा, जो उसे लेकर शाहज़ादे के पास गया (जि० १, पृ० २४०-१)।

(२) सरकार; शिवाजी; पृ० १६४।

(३) जोधपुर राज्य की ख्यात में शम्भाजी का आठ दिन तक वहां रहना लिखा है (जि० १, पृ० २४१)।

(४) सरकार; शिवाजी, पृ० १६२-६५।

गुजरात के परगने मिलना अधिकार करने के लिए जालोर से मियां फ़रासत गया, परन्तु कोली ऊदा ने वहाँ उसका अमल न होने दिया' ।

वि० सं० १७२४ (ई० सं० १६६७) में महाराजा जसवन्तसिंह के औरंगाबाद में रहते समय मुंहणोत नैणसी तथा उसका भाई सुन्दरदास दोनों उसके साथ थे । किसी कारण से वह उन दोनों से अप्रसन्न रहने लगा था, जिससे माघ वदि ६ (ता० २६ दिसंबर) को उसने उन दोनों को कैद कर दिया' ।

वि० सं० १७२५ (ई० सं० १६६८) में महाराजा ने एक लाख रुपया वंड का लगाकर मुंहणोत नैणसी तथा उसके भाई सुन्दरदास को छोड़ दिया, परन्तु उन्होंने एक पैसा तक देना स्वीकार न किया' । अतएव वि० सं० १७२६ माघ वदि १ (ई० सं० १६६९ ता० २८ दिसंबर) को वे फिर कैद कर लिये गये और उनपर रुपयों के लिए सख्तियां होने लगीं' ।

(१) जि० १, पृ० २४२ ।

(२) वही; जि० १, पृ० २५१ ।

महाराजा के अप्रसन्न होने का ठीक कारण ज्ञात नहीं हुआ, परन्तु जनश्रुति से पाया जाता है कि नैणसी ने अपने रिश्तेदारों को बड़े-बड़े पदों पर नियत कर दिया था और वे लोग अपने स्वार्थ के लिए प्रजा पर अत्याचार किया करते थे । इसी बात के जानने पर महाराजा उससे अप्रसन्न रहता था ।

(३) इस सम्बन्ध में नीचे लिखे दोहे राजपूताने में अब तक प्रसिद्ध हैं —

लाख लखारां नीपजे, बड़ पीपल री साख ।

नटियो मूंतो नैणसी, तांबो देण तलाक ॥१॥

लेसो पीपल लाख, लाख लखारां लावसो ।

तांबो देण तलाक, नटिया सुन्दर नैणसी ॥२॥

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात, जि० १, पृ० २५१ ।

पहले मथुरा के पास गिरिराज पर्वत पर श्रीनाथजी का मन्दिर था । जब औरंगजेब ने मन्दिरों के तुड़वाने की आज्ञा प्रचारित की और गुस्ताखों से कोई करामात दिखलाने को कहा तो वि० सं० १७२६ आश्विन सुदि १४ (ई० स० १६६६ ता० २८ सितंबर) को वे श्रीनाथजी की मूर्ति को एक रथ में बैठाकर भाग निकले और आगरे पहुँचे । वहाँ

श्रीनाथजी की मूर्ति लेकर
गुमाई का जोधपुर और
फिर मेवाड़ में जाना

से कोटा, बूंदी, कृष्णगढ़ और पुष्कर होते हुए वे जोधपुर पहुँचे तथा चांपासणी गांव में ठहरे । जब अन्य स्थानों के समान ही वहाँ भी कार्यकर्ता बादशाह की नाराज़गी के भय से उन्हें आश्रय देने के लिए तैयार न हुए तो गुसाई गोविन्दजी महाराणा राजसिंह के पास गया । उसकी इच्छा जानने पर महाराणा ने प्रसन्नता के साथ अपनी अनुमति दे दी और कहा कि जब मेरे एक लाख राजपूतों के सिर कट जावेंगे, उसके बाद आलमगीर इस मूर्ति के हाथ लगा सकेगा । इसपर वि० सं० १७२८ (ई० स० १६७१) में चांपासणी से श्रीनाथजी की मूर्ति ले जाकर उदयपुर से बारह कोस उत्तर की तरफ बनास नदी के किनारे सीहाड़ गांव में मन्दिर बनवाकर उसमें स्थापित की गई ।

वि० सं० १७२७ (ई० स० १६७०) में मुंहणोत नैणसी तथा सुन्दरदास दोनों भाई क्रैद की हालत में ही औरंगाबाद से मारवाड़ को भेजे गये ।

वीर प्रकृति के पुरुष होने के कारण महाराजा के छोटे आदमियों की सक्षितियां सहन करने की अपेक्षा वीरता से मरना उचित समझ भाद्रपद वदि १३ (ता० ३ अगस्त) को उन्होंने मार्ग में अपने-अपने पेट में कटार मारकर शरीरांत कर दिया ।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५०-१ । वीरविनोद; भाग २, पृ० ४१२-३ ।

(२) वही; जि० १, पृ० २५१ ।

उक्त ख्यात से यह भी पाया जाता है कि महाराजा को इसकी खबर मिलने पर उसने नैणसी के पुत्र करमसी तथा अन्य कुटुम्बियों को, जो भी क्रैद में थे, छोड़ दिया ।

हि० स० १०६१ (वि० सं० १७२७ = ई० स० १६७०) में महाराजा जसवन्तसिंह बादशाह की आज्ञा के अनुसार दूसरी बार गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया गया। तदनुसार रबीउस्सानी नसवन्तसिंह को दूसरी बार गुजरात की सूबेदारी मिलना (भाद्रपद-आश्विन = अगस्त) मास में वह अहम-दाबाद पहुंचकर उधर कार्य चलाने लगा ।

हि० स० १०७३ (वि० सं० १७१६-२० = ई० स० १६६२-६३) में जब कि गुजरात का सूबेदार महाबतख़ां था, नवानगर (जामनगर) का राजा रणमल, जो बादशाह का बड़ा हितैषी और सदैव समय पर खिराज अदा किया करता था, मर गया।

तब बादशाह की आज्ञा से उसका पुत्र शत्रुसाल उसका उत्तराधिकारी नियत किया गया। रणमल का भाई रायसिंह बड़ा ही अभिमानी और दुष्ट प्रकृति का व्यक्ति था। वह अपने भतीजे शत्रुसाल की नियुक्ति से बड़ा अप्रसन्न था। वह उससे द्वेषभाव रखने के साथ ही उसे हटाने का उद्योग करने लगा। लोगों को उससे विमुख कर उसने

तब करमसी नागोर के रायसिंह के पास जा रहा। इसपर महाराजा ने नैणसी के वंश-वालों को सेवक न रखने की प्रतिज्ञा की, पर इसका पीछे से पालन न हुआ। शोलापुर में रायसिंह के अचानक मर जाने पर उसके मुत्सहियों ने गुजराती वंश से पूछा कि यह कैसे हुआ। उसके इस वाक्य से कि “करमां नो दोष छै” (भाग्य का दोष है) मुत्सहियों ने उस (रायसिंह) का करमसी द्वारा विष देकर मारा जाना समझ लिया, जिससे उन्होंने उसको जीवित दीवार में चुनवा दिया और नागोर स्थित उसके परिवार को कोल्हू में कुचलवा देने की आज्ञा भेजी। करमसी का पुत्र प्रतापसी तो मारा गया, पर उस (करमसी) की दो बियां अपने पुत्रों के साथ भागकर किशनगढ़ चली गईं (वही; जि० १, पृ० २५१)। पीछे से वे श्रीकानेर चली गईं।

(१) मिरात-इ-अहमदी (मूल फ़ारसी); पहली जि०; पृ० २७६। वही; पठान निज़ामख़ां नूरख़ां वकील-कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २८१-६। जोधपुर राज्य की ख्यात में वि० सं० १७२८ आबण वदि ८ (ई० स० १६७१ ता० १६ जुलाई) को महाराजा को दूसरी बार गुजरात की सूबेदारी और उस अवसर पर उसे पट्टण, धीरमगांव, पेटलाद आदि के २८ परगने हिसार के बदले में मिलना लिखा है (जि० १, पृ० २४२-३)।

अपने पास पांच-छः हजार सेना एकत्र कर ली और राज्य के मंत्री गोवर्द्धन को, जो शत्रुसाल का भाई था, मार डाला। अनन्तर शत्रुसाल, उसकी माता, उसके सेवकों तथा अन्य अधिकारियों को कैद कर कच्छवालों की सहायता से यह नवानगर के राज्य का स्वामी बन बैठा। सोरठ (काठियावाड़) के फौजदार कुतुबुद्दीनखां को जब यह खबर मिली कि रायसिंह के पुत्र तमाची और उसके भाई जस्सा ने तीन-चार हजार फौज के साथ हालार परगने में भी उपद्रव खड़ा किया है, तो उसने अपने पुत्र मुहम्मदखां को दो हजार सवारों के साथ उन दोनों को गिरफ्तार करने के लिए भेजा। इसकी सूचना मिलते ही दोनों अपने साथियों सहित कच्छ की तरफ भाग चले। इसपर मुहम्मदखां ने उनका पीछा कर उन्हें जा घेरा। बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें दोनों तरफ के बहुतसे आदमी मारे गये और राज्य पर शाही सेना का अधिकार हो गया। यह खबर पाकर बादशाह ने नवानगर का नाम इसलामनगर रखवाया। कुछ समय बीतने पर जब महाराजा जसवन्तसिंह दूसरी बार गुजरात का सूबेदार नियत हुआ तो हि० स० १०८२ (वि० सं० १७२८ = ई० स० १६७१) में उसने बीच में पड़कर असदखां की मारफ्त बादशाह से निवेदन कराया कि जाम तमाची अपने साम्राज्य-विरोधी आचरण के लिए पश्चात्ताप प्रकट करता है। उसका कहना है कि मैं भविष्य में नमकइलाल बना रहूंगा, अतएव मुझे इसलामनगर का राज्य बख्शा जाय। बादशाह ने यह अर्ज़ी मंजूर कर तमाची के सारे अपराध क्षमा कर दिये और उसे १००० ज़ात तथा ७०० सवार का मनसब देकर उसका राज्य उसे दे दिया। इस अवसर पर उसके पुत्रों तथा अन्य रिश्तेदारों को भी छोटे-छोटे मनसब मिले।

(१) भिरात इ-अहमदी (मूल फ़ारसी); जि० १, पृ० २५४-५ तथा २८४।
 वहीं; फ़ारसी निज़ामख़ां मुरखां वकील कृत गुजराती अनुवाद; जि० १, पृ० २६२-३ तथा २६२-३।

“गुजरात राजस्थान” (गुजराती) में इस सम्बन्ध में भिन्न वर्णन मिलता है, जो नीचे लिखे अनुसार है—

इसके कुछ समय बाद बादशाह ने अहमदाबाद में मुहम्मद अमीखां की नियुक्ति कर दी। तब बादशाह की आज्ञानुसार आठ मास तक महाराजा महीकांठे में रहा। वि० सं० १७३० के आश्विन (ई० सं० १६७३ सितम्बर-अक्टोबर) मास में बादशाह का इस आशय का फ़रमान महाराजा के पास पहुंचा कि वह शीघ्र काबुल की ओर प्रस्थान करे^१।

ई० सं० १६९१ (वि० सं० १७१८) में जाम रणमल की मृत्यु हुई। उसका कुछ भी हाल मालुम नहीं हुआ। ऐसा कहते हैं कि जोधपुर के महाराजा की कुंवरी से उसका विवाह हुआ था। उसके कोई पुत्र न होने से उसका देहांत होने पर उसका भाई रायसिंह गद्दी पर बैठा, परन्तु उससे और रणमल की विधवा राणी से अनबन रहने के कारण वह अपने भाई को लेकर गुजरात के मुग़लों के सूबेदार कुतुबुद्दीन के पास गई और उसको नवानगर पर चढ़ा लाई। ई० सं० १६६४ (वि० सं० १७२१) में रायसिंह और सूबेदार के बीच बड़ी लड़ाई हुई, जिसमें रायसिंह मारा गया और राज्य सूबेदार ने ले लिया। रायसिंह का पुत्र तमाची उस समय छोटी उम्र का था, जिससे वह कच्छ के राव की शरण में चला गया। वय प्राप्त होने पर वह ओस्वामंडल में आया और नवानगर के मुल्क में लूटमार करने लगा। अन्त में ई० सं० १६७३ (वि० सं० १७३०) में गुजरात के सूबेदार जसवन्तसिंह ने बादशाह औरंगज़ेब से सिफ़ारिश कर नवानगर का राज्य पीछा जाम तमाची को दिला दिया, लेकिन खास नवानगर में मुग़लों का ही अक्रसर रहता था और जाम खंभाळिये में (कालीदास देवशंकर पंडव्या-कृत, पृ० ३३३)।^१

उपर्युक्त कथन में दिये दूये समय और घटनाओं के रूप गलत हैं। “गुजरात राजस्थान” के कर्ता ने रणमल के पुत्र शत्रुसाल के राजा होने और उसके चाचा रायसिंह का उसे कैद कर नवानगर का राज्य लेने का हाल नहीं दिया है। “मिरात-ह-अहमदी” समकालीन लेखक की रचना होने से इस संबंध का उसका वयोन ही अधिक माननीय है। जसवन्तसिंह की सिफ़ारिश से जाम तमाची को नवानगर का राज्य पीछा मिलना तो दोनों ही मानते हैं।

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४३। बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या २५४४) में भी वि० सं० १७३० में महाराजा का काबुल भेजा जाना लिखा है। मुंशी देवीप्रसाद इसके दो वर्ष पूर्व वि० सं० १७२८ (ई० सं० १६७१) में ही उसका जमुर्द के थाने पर नियुक्त किया जाना लिखता है (औरंगज़ेबनामा; भाग २, पृ० ३१)। “बीरविनोद” में भी ऐसा ही लिखा है (भाग २, पृ० ८२७)।

उक्त आज्ञा के अनुसार महाराजा ने गुजरात से मारवाड़ होते हुए काबुल की ओर प्रस्थान किया, पर मार्ग में जोधपुर में न ठहरकर वह वहां से चार कोस दूर गांव गुड़े में ठहरा, जहां कुंवर महाराजा का काबुल जाना जगतसिंह और राज्य परिवार उससे जाकर मिला। तदनंतर वहां से प्रस्थान कर महाराजा पेशावर पहुंचा। उधर पठानों का उपद्रव बढ़ रहा था। उन्होंने चढ़ाई कर वहां के शाही अफसर शुजा-अतखां को मार डाला था। इसपर महाराजा ने कई बार पठानों पर आक्रमण कर उनका नियंत्रण किया। इन लड़ाइयों में उसकी तरफ के कितने ही वीर राजपूत मारे गये।

वि० सं० १७३१ (ई० सं० १६७४) में महाराजा जमुरंद की थानेदारी से रावलपिंडी में जाकर बादशाह से मिला और उसके बाद पुनः अपने कार्य पर लौट गया^२। कई बरसों तक योग्यतापूर्वक वहां का प्रबन्ध करने के अनन्तर वि० सं० १७३५ पौष वदि १० (ई० सं० १६७८ ता० २८ नवंबर)^३ को वहीं उसका देहान्त हो गया^४। जोधपुर राज्य की ख्यात से पाया जाता है कि इस अवसर पर उसकी दो राणियां—यादववंशी, राजा छत्रमल की पुत्री और नरुकी, फ़तहसिंह की पुत्री—साथ थीं। उन्होंने सती होने का बड़ा हठ

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २४३-४। बांकीदास-कृत “ऐतिहासिक बातें” (संख्या २५४५) में भी महाराजा की पठानों के साथ काबुल में लड़ाइयां होने का उल्लेख है।

(२) बीरविनोद; भाग २, पृ० ८२७।

(३) मुंशी देवीप्रसाद लिखित “औरंगज़ेबनामा” में महाराजा की मृत्यु की तिथि पौष सुदि ८ (ता० ११ दिसम्बर) दी है (भाग २, पृ० ७६)।

(४) बीरविनोद; भाग २, पृ० ८२७। जोधपुर राज्य की ख्यात में महाराजा की मृत्यु की तिथि तो यही दी है, पर उसका देहांत पेशावर में होना लिखा है (जि० १, पृ० २५६), जो ठीक नहीं है। बांकीदास ने भी यही तिथि दी है (ऐतिहासिक बातें; संख्या २५४७)।

किया, परन्तु वे दोनों ही गर्भवती थीं, जिससे राठोड़ रणछोड़दास (गोविन्द-दासोत), राठोड़ संग्रामसिंह (जुभारसिंहोत), सूरजमल (चांपावत), नाहर-खान (कूपावत) आदि सरदारों ने उन्हें समझा-बुझाकर इस निश्चय से विरत किया' ।

ख्यातों आदि के अनुसार महाराजा जसवंतसिंह के बारह राणियां थीं, जिनसे उसके चार पुत्र तथा चार पुत्रियां हुईं ।

(१) भटियाणी जसरूपदे, जैसलमेर के रावल मनोहरदास की पुत्री । (२) हाड़ी जसवंतदे, बूंदी के हाड़ा शत्रुशाल की पुत्री^३ ।

राणियां तथा सन्तति
(३) कछुवाही अतिरंगदे, बूंदी के हाड़ा रावराजा रत्नसिंह की दोहिती—इससे एक पुत्र पृथ्वी-

सिंह^४ और एक पुत्री रत्नावतीबाई का जन्म हुआ । (४) चौहान राणी जगरूपदे, दयालदास सिखरावत की पुत्री । (५) जादम जैवन्तदे, पृथ्वी-राज (रायसिंहोत) की पुत्री—इससे एक पुत्री महाकुंवरी का जन्म हुआ । (६) गौड़ राणी जसरंगदे, मनोहरदास (गोगलदासोत) की पुत्री । (७) देवड़ी राणी अतिसुखदे, सिरोही के राव अखैराज की पुत्री । (८) सीसोदणी राणी, वीरमदेव (सूरजमलोत) की पुत्री । (९) चन्द्रावत राणी जैसुखदे, रामपुरे के राव अमरसिंह चन्द्रावत की पुत्री—इससे एक पुत्र

(१) जि० १, पृ० २५६ । बांकीदास-लिखित 'ऐतिहासिक बातें' में इस अवसर पर महाराजा की राणी रामपुरे के राव अमरसिंह की पुत्री चन्द्रावत का मंदोहर जाकर सती होना लिखा है (संख्या २५४७) ।

(२) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५६-६ । मुंशी देवीप्रसाद-द्वारा संगृहीत राठोड़ों की वंशावली में ग्यारह राणियों के नाम मिलते हैं ।

(३) इसका बनवाया हुआ कल्याण सागर है, जिसे रातानाबा भी कहते हैं ।

(४) इसका जन्म वि० सं० १७०६ आषाढ सुदि ५ (ई० सं० १६५२ ता० १ जुलाई) बृहस्पतिवार को हुआ था । इसकी मृत्यु का उल्लेख ऊपर आ गया है (पृ० ४५६) ।

जगतसिंह' और एक पुत्री उदैकुंवरी का जन्म हुआ। (१०) जादव राणी जसकुंवरी, करौली के राजा छत्रसिंह की पुत्री—इससे कुंवर अजीतसिंह' का जन्म हुआ। (११) कछवाही जसमादे, राजा द्वारकादास (गिरधरोत) की पुत्री—इससे एक पुत्री प्रतापकुंवरी का जन्म हुआ और (१२) नरुकी राणी, कंकोड़ गांव के फ़तहसिंह की पुत्री—इससे कुंवर दलथंभण का जन्म हुआ^३।

स्वयं महाराजा जसवन्तसिंह का तो कोई शिलालेख अबतक नहीं मिला है, पर उसके राज्यकाल से संबंध रखनेवाले दो शिलालेख फलोधी से मिले हैं। इनमें से प्रथम वि० सं० १६६६ आषाढ सुदि २ (ई० सं० १६३६ ता० २२ जून) शनिवार का उक्त स्थान के कल्याणराय के मन्दिर के सामने एक पत्थर पर खुदा है। उसमें जैमल के पुत्र मुंहणोत नयणसिंह (नैणसी) तथा नगर के अन्य महाजनों एवं ब्राह्मणों के द्वारा रंगमंडप बनवाये जाने का उल्लेख है^४। दूसरा शिलालेख वि० सं० १७१५ वैशाख सुदि ५ (ई० सं० १६५८ ता० २७ अप्रैल) मंगलवार का फलोधी के गढ़ के बाहर की दीवार पर खुदा है, जिसमें महाराजा जसवन्तसिंह के साथ महाराजकुमार पृथ्वीसिंह का नाम भी है। उससे पाया जाता है कि जैमल के पुत्र मुंहणोत सामकरण आदि ने उस दीवार का निर्माण कराया था^५।

(१) इसका जन्म वि० सं० १७२३ माघ वदि ४ (ई० सं० १६६७ ता० ४ जनवरी) को हुआ था और मृत्यु वि० सं० १७३२ चैत्र वदि ३० (ई० सं० १६७६ ता० ४ मार्च) को हुई।

(२) इसका जन्म पिता की मृत्यु के बाद वि० सं० १७३५ चैत्र वदि ४ (ई० सं० १६७६ ता० १६ फ़रवरी) को लाहौर में हुआ और यही पीढ़े से जसवन्तसिंह का उत्तराधिकारी हुआ। इसका इतिहास आगे दूसरे भाग में आयेगा।

(३) इसका जन्म भी उसी दिन हुआ, जिस दिन अजीतसिंह का, पर यह छोटी अवस्था में ही मर गया।

(४) जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल, जि० १२, पृ० ६६।

(५) वही, जि० १२, पृ० १००।

महाराजा जसवन्तसिंह के समय कई उद्यानों तथा तालाबों आदि का निर्माण हुआ। उसकी राणी अतिरंगदे ने “जान सागर” बनवाया, जो “सेखावत जी का तालाब” भी कहलाता है। दूसरी

महाराजा के समय के बने हुए स्थान

राणी जसवन्तदे ने वि० सं० १७२० (ई० सं० १६६३)

में “राई का बाग”, उसका कोट तथा “कल्याण सागर”

नाम का तालाब बनवाया था, जिसे “राता नाड़ा” भी कहते हैं^१। स्वयं जसवन्तसिंह ने औरंगाबाद (दक्षिण) के बाहर अपने नाम पर “जसवन्तपुरा” आबाद किया था, जो अबतक मौजूद है। उसमें उसने एक आलीशान बाग और संगबस्त की एक इमारत बनवाई थी। इनमें से तालाब तो अबतक विद्यमान है, परन्तु इमारत के सिर्फ निशान रह गये हैं। उसकी स्मृति में आगरे में यमुना के किनारे मौजा घटवासन के पास उसकी कचहरी का भवन अबतक मौजूद है, जो आगरे के दर्शनीय स्थानों में गिना जाता है^२।

ख्यातों आदि में महाराजा की दानशीलता का बहुत कुछ उल्लेख मिलता है। कई अवसरों पर ब्राह्मणों, कवियों, चारणों आदि को

महाराजा की दानशीलता और विद्यानुराग

गांव, सिरोपाव, अश्व इत्यादि देने के साथ

ही उसने आड़ा किशना दुरसावत तथा लालस

खेतसी को लाखपसाव^३ दिये^४। वह जैसा दानशील

था वैसा ही विद्वान्, विद्यानुरागी तथा विद्वानों एवं कवियों का आदर

(१) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २५७। बांकीदास; ऐतिहासिक बातें; संख्या ७१८।

(२) उमराप हनुद; पृ० १६१-२।

(३) ख्यात से पाया जाता है कि महाराजा जसवन्तसिंह के समय लाख पसाव के नाम से केवल १५०० ही मिलते थे। ऊपर (पृ० ४११ डि० २ में) यह माना है कि गजसिंह के समय लाख पसाव का मूल्य २५०० के स्थान में २५००० होना चाहिये, पर इस रकम का घटता हुआ क्रम देखकर तो यही मानना पड़ता है कि उस स्थल पर दिये हुए २५०० ही ठीक हैं।

(४) जोधपुर राज्य की ख्यात; जि० १, पृ० २०४-५।

करनेवाला था। उसके समय में साहित्य की बड़ी वृद्धि हुई तथा उसके आश्रय में कितने ही अमूल्य ग्रन्थों का निर्माण हुआ। महाराजा स्वयं भी ऊँचे दर्जे का कवि था। भाषा के उसके कई ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से “भाषा-भूषण” नाम का ग्रन्थ सर्वोत्तम माना जाता है। यह रीति और अलंकार का अनुपम ग्रन्थ है। इसमें प्रारंभ में भाव भेद और फिर अर्थालंकारों का सुंदर वर्णन है। मिश्रबन्धुओं के शब्दों में—“जिस प्रकार इन्होंने अर्थालंकार कहे हैं उसी रीति से वे अब भी कहे जाते हैं। इस ग्रन्थ के कारण ये महाराज भाषालंकारों के आचार्य समझे जाते हैं। यह ग्रन्थ अद्यावधि अलंकार के ग्रन्थों में बहुत पूज्य दृष्टि से देखा जाता है।” महाराजा के रचे हुए दूसरे ग्रन्थ—अपरोक्ष सिद्धांत, अनुभव-प्रकाश, आनंद विलास, सिद्धांत बोध, सिद्धांत सार और प्रबोध चंद्रोदय नाटक हैं^१। ये सभी छोटे-छोटे और वेदांत के हैं। महाराजा का काव्यगुरु सूरत मिश्र^२ था तथा

(१) मिश्रबन्धु विनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४६३। उसी पुस्तक से पाया जाता है कि दलपतिराय बंसीधर ने वि० सं० १७६२ (ई० सं० १७३५) में इस ग्रन्थ की टीका “अलंकार-रत्नाकर” नाम से की थी। इसके अतिरिक्त इसकी दो और टीकाएं क्रमशः प्रसिद्ध कवि परताप साहि तथा गुलाब ने बनाईं, जिनमें से पिछली प्राप्त हो गई है। उसका नाम “भूषण-चन्द्रिका” है (पृ० ४६४)

डॉ० प्रियर्सन ने “भाषा भूषण” के लेखक को तिरवा का बघेला राजा जस-वन्तसिंह मान लिया है (दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान; पृ० ६६-१००, संख्या ३७७), पर उसका यह कथन अमपूर्ण ही है।

(२) मिश्रबन्धु विनोद; द्वितीय भाग, पृ० ४६३। हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण (रायनहादुर बा० श्यामसुंदरदास बी. ए.-द्वारा संपादित एवं काशी की नागरी प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित); पहला भाग, पृ० ५२-३।

(३) यह आगरा निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण था। इसके लिखे हुए रस ग्राहक चंद्रिका, अमर चंद्रिका, रस रत्नमाला, रसिक प्रिया टीका, अलंकार माध्या तथा सरस रस नामक उक्त काव्य ग्रन्थ विद्यमान हैं।

उस समय के प्रसिद्ध कवि नरहरिदास^१ तथा नवीन कवि^२ उसी के आश्रय में रहते थे^३। बांकीदास लिखता है कि महाराजा ने बनारसीदास नाम के एक जैन व्यक्ति को एक आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखने की आज्ञा दी थी^४।

महाराजा जसवन्तसिंह अपने समय का बड़ा धीर, साहसी, शक्तिशाली, नीतिज्ञ, उदार एवं न्यायप्रिय नरेश था। उसके राज्यकाल में जोधपुर के

महाराजा का व्यक्तित्व

राज्य का प्रताप बहुत बढ़ा। बादशाह शाहजहां के समय शाही दरबार में उसकी प्रतिष्ठा बड़े ऊंचे दर्जे की थी। उसके समय उसका मनसब बढ़ते-बढ़ते सात हजार ज़ात और सात हजार सवार तक पहुँच गया था और समय-समय पर उसे बादशाह की तरफ़ से हाथी, घोड़े, सिरोपाव आदि मूल्यवान् वस्तुएं उपहार में मिलती रहीं। उस (शाहजहां) के समय की अधिकांश चढ़ाइयों में शामिल रहकर उसने राठोड़ों के अनुरूप ही धीरता का परिचय देकर अपने पूर्वजों का नाम उज्ज्वल किया। बादशाह उसपर विश्वास भी बहुत करता था। यही कारण था कि अपनी बीमारी के समय अपने विद्रोही पुत्रों—शाह शुजा, औरंगज़ेब एवं मुराद—की तरफ़ से खतरे की आशंका होते ही उसने आगरे के क़िले की रक्षा के लिए अबिलम्ब महाराजा जसवन्तसिंह को नियुक्त कर दिया। इस अवसर पर स्वयं उसके बड़े पुत्र दारा को भी रात्रि के समय क़िले में प्रवेश करने की पूरी मनाही थी। अनन्तर उसने जसवन्तसिंह को ही, आगरे की ओर दुरी नियत से बढ़ने-वाले औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित सेनाओं को परास्त करने के

(१) यह जोधपुर के गांव पणना (मेड़ता) का निवासी बारहट जाति का चारण था। इसके लिखे हुए अवतार चरित्र, अवतार गीता, दशम स्कंध भाष्य, भरसिंह अवतार कथा, अहिल्या पूर्व प्रसंग, राम चरित्र कथा तथा क्यकमुमुक्षु गदह संवाद नामक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

(२) इसका लिखा हुआ “नेह निधान” नामक ग्रन्थ विद्यमान है।

(३) हस्तलिखित हिंदी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण; पहला भाग, पृ० ५१।

(४) ऐतिहासिक बातें; संख्या ५२०।

लिए भेजा। दोनों शाहजादों की संयुक्त सेना की शक्ति बहुत बड़ी थी, पर न्याय के पक्ष में होने के कारण वह ज़रा भी विचलित नहीं हुआ। उसने ऐसी वीरता के साथ विद्रोही शाहजादों का सामना किया कि कुछ समय के लिए उनके हृदय पराजय की आशंका से विचलित हो गये, परन्तु दूसरे शाही अफसर क़ासिमख़ां के विश्वासघात करने तथा अन्धानक युद्धक्षेत्र छोड़कर चले जाने से युद्ध का रूप बिल्कुल बदल गया। शाही सेना की बुरी तरह पराजय हुई। जसवन्तसिंह उस समय भी लड़ने के लिए कटिबद्ध था, पर उसके स्वामिभक्त सरदारों ने इसकी निष्फलता जतलाकर उसे युद्धक्षेत्र का परित्याग करने के लिए मजबूर किया। ऐसी दशा में भी औरंगज़ेब की उसका पीछा करने की हिम्मत न पड़ी, क्योंकि उसे उसकी वीरता का भलीभाँति ज्ञान था। अपनी इस पराजय की महाराजा के मन में बहुत समय तक ग्लानि बनी रही। इसके थोड़े समय बाद ही वास्तविक उत्तराधिकारी दारा को हरा और शाहजहाँ को नज़र-क़ैद कर औरंगज़ेब ने सारा मुग़ल-राज्य अपने अधिकार में कर लिया, परन्तु दारा और शुजा के जीवित रहते हुए उसका मार्ग निष्कण्टक न था। इन कांटों के रहते हुए उसने जसवन्तसिंह जैसे शक्तिशाली शासक से धैर्य मोल लेना ठीक न समझा और उसे बुलाकर उसका मनसब आदि बहाल कर उसे अपने पक्ष में कर लिया, पर इससे जसवन्तसिंह की मनस्तुष्टि न हुई। ऊपर से किसी प्रकार का विरोध प्रकट न करने पर भी, उसका मन औरंगज़ेब की तरफ़ से साफ़ न हुआ। पिता की जीवितावस्था में ही उसका सारा राज्य हड़प लेना न्यायप्रिय जसवन्तसिंह को पसन्द न था। देश की दशा तथा औरंगज़ेब की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए प्रकट रूप से उसका विरोध करना हानिप्रद ही सिद्ध होता। फिर भी खजवा की लड़ाई में एकाएक औरंगज़ेब की सेना में लूट-मार मचाकर उसने अपनी विरोध-भावना का परिचय दिया। उस समय औरंगज़ेब के लिए बड़ी विकट स्थिति उत्पन्न हो गई थी, पर शाह शुजा के ठीक समय पर आक्रमण न करने के कारण इससे कुछ भी लाभ न हुआ और जसवन्तसिंह को शीघ्र जोधपुर जाना पड़ा। औरंगज़ेब

इस बात से उसपर बड़ा नाराज़ हुआ और उसने रायसिंह को एक बड़ी सेना के साथ उसके विरुद्ध भेजा, लेकिन पीछे से उसने उससे मेल कर लेने में ही भलाई समझी। भविष्य में वह उसकी तरफ़ से सावधान रहने लगा, जिससे उसने अन्त में उसकी नियुक्ति दूर देश में ही की, ताकि वह निकट रहकर कोई बखेड़ा न खड़ा कर सके। उसको खुश रखने के लिए उसने समय-समय पर उसे इनाम-इकराम भी दिये।

महाराजा कट्टर हिन्दू था, इसी से बादशाह-द्वारा प्रसिद्ध मरहटा वीर शिवाजी के विरुद्ध भेजे जाने पर भी उसने उन चढ़ाइयों में विशेष उत्साह न दिखाया। अपने पड़ोसी राजाओं के साथ उसका सदैव मैत्रीभाव ही बना रहा। महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र की प्रतिष्ठा के अवसर पर अन्य मित्र राजाओं के समान उसके पास भी एक हाथी, दो घोड़े तथा सिरोपाय भेजा था। कछुवाहा राजा जयसिंह के साथ भी उस (जसवंतसिंह) की ऊँचे दर्जे की मैत्री बनी रही।

बहुधा शाही सेवा में संलग्न रहने पर भी वह अपने राज्य के प्रबंध की तरफ़ से कभी उदासीन न रहा। सरदारों आदि के बखेड़े होने पर उसने योग्य व्यक्तियों को भेजकर उनका सदा ठीक समय पर दमन करवा दिया। उसके समय में राज्य में शांति तथा समृद्धि का निवास रहा।

वह जैसा वीर था, वैसा ही दानी, विद्वान् और विद्याप्रेमी नरेश भी था। उसने स्वयं भाषा में कई अपूर्व ग्रन्थ बनाये थे, जिनका उल्लेख ऊपर आ गया है। उसके मंत्रियों में से मुंहणोत नैणसी बड़ा योग्य, विद्वान् तथा वीर व्यक्ति था। उसका लिखा हुआ इतिहास ग्रन्थ, जो “मुंहणोत नैणसी की ख्यात” के नाम से प्रसिद्ध है, ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्व रखता है। महाराजा की सफ़ती से तंग आकर मुंहणोत नैणसी ने पीछे से कटार खाकर आत्महत्या कर ली। यदि वह जीवित रहता, तो ऐसे कई अमूल्य ग्रन्थ लिख सकता था।

महाराजा ने काबुल में रहते समय वहां से बढ़िया अनार के पेड़ माली चतरा गढ़लोत के साथ भेजकर जोधपुर में कागा के बाग़ में

लगवाये । अब भी मिठास और गुण के लिए यहां के अनार दूर-दूर तक मंगाये जाते हैं और बहुत प्रसिद्ध हैं ।

महाराजा की मृत्यु के साथ ही जोधपुर राज्य का सितारा अस्त हो गया । उसकी मृत्यु के समय उसके कोई पुत्र जीवित न होने से बादशाह को अपनी नाराज़गी निकालने का अच्छा अवसर मिल गया । उसने अखिल-सेना भेजकर जोधपुर राज्य खालसा कर लिया और वहां कितने एक वर्षों तक मुगलों का अधिकार बना रहा । इस संबंध में जसवन्तसिंह के दुर्गादास आदि स्वामिभक्त सरदार प्रशंसा के पात्र हैं, क्योंकि उनकी वीरता एवं अनवरत उद्योग के फलस्वरूप ही जसवन्तसिंह की मृत्यु से कुछ समय बाद उत्पन्न उसके पुत्र अजीतसिंह को औरंगज़ेब के मरने पर पुनः जोधपुर का राज्य प्राप्त हो सका ।

शुद्धि-पत्र

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|---------------|-------------------|------------------------------|
| २४ | १५ | जसवंतसिंह | जसवंतसिंह (द्वितीय) |
| ३३ | २३ | राठोडों | राठोडों |
| ७२ | ८ | सुगवंशी | सुगवंशी |
| ७६ | ८ | बुचकुला | बुचकला |
| ७८ | १७ | मीनमाल | भीनमाल |
| ८२ | १८ | दक्षिणी | दक्षिण |
| ८३ | ८ | राष्ट्रौदवंश... | राष्ट्रौदवंश... |
| ८८ | ८ | अकार | अधिकार |
| १११ | २१ | खोट्टिगदेव | खोट्टिगदेव |
| १३० | ६ | विद्यामान | विद्यमान |
| १४४ | टिप्पण ३ | पृ० ३०० | हिस्ट्री ऑफ् कन्नौज, पृ० ३०० |
| १४७ | पं० ५ | सोलंकनी | सोलंकिनी |
| १५१ | २ | द्वयाश्रयमहाकाव्य | द्वयाश्रयमहाकाव्य |
| १५१ | टि० १, पं० ५ | द्वयाश्रय | द्वयाश्रय |
| ३०० | पं० ६ | शेरशाह | शेरशाह |
| ३२५ | ७ | जीर्णोद्धार | जीर्णोद्धार |
| ३२८ | टि० १, पं० १७ | हर्षम्मदेवी | हर्षम्मदेवी |
| ३३१ | पं० ८ | संघटन | संगठन |
| ३३१ | १४ | उपयुक्त | उपर्युक्त |
| ३४७ | ४ | पंचोला | पंचोली |

(२)

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|-------|--------------|-----------------------------------|-----------------------------------|
| ३६५ | टि० ४, पं० २ | बीकानेर राज्य | दयालदास |
| ३७४ | पं० २ | रायसिंह | रायसिंह (चंद्रसेनोत) |
| ३८१ | १२ | राजपूतों को | राजपूतों तथा |
| ३८५ | ४ | (खीवावत) | (कुंपावत) |
| ४२४ | टि० ३, पं० ३ | उमराए हनद | उमराए हनूद |
| ४३२ | टि० ३, पं० ३ | मनकी | मनूकी |
| ४३४ | पं० १२ | वि० सं० १७१५ (चैत्रादि १७१६) | वि० सं० १७१४ (चैत्रादि १७१५) |
| ४३५ | पं० १ | ई० सं० १६५६ ता० १२ अप्रैल | ई० सं० १६५८ ता० २३ अप्रैल |
| ४३६ | टि० ३, पं० ३ | जसबन्तसिंह | जसवन्तसिंह |
| ४७० | पं० १४ | ब्राह्मणों | ब्राह्मणों |

चित्र सूची

चित्र संख्या ६

पृ० २५

पृ० २६

राजपूताना के इतिहास की प्रकाशित और यन्त्रस्थ जिल्दें

राजपूताना का इतिहास, पहली जिल्द (दूसरा संस्करण)—

इसमें चार अध्याय हैं, जिनमें से पहले में भूगोल-सम्बन्धी वर्णन, दूसरे में राजपूत जाति-सम्बन्धी विवेचन, तीसरे में प्राचीन राजवंशों का इतिहास और चौथे में मुसलमानों, मरहटों तथा अंग्रेजों के राजपूताना से सम्बन्ध का इतिहास है । ... ६० ७)

दूसरी जिल्द—

उदयपुर राज्य का इतिहास—पहला भाग (द्वितीय संस्करण) ...

उदयपुर राज्य का इतिहास—दूसरा भाग (प्रथम संस्करण) ६० ११)

तीसरी जिल्द—

पहला भाग—इंगरपुर राज्य का इतिहास ... ६० ४)

दूसरा भाग—बांसवाड़ा राज्य का इतिहास ... ६० ४॥)

तीसरा भाग—भतापगढ़ राज्य का इतिहास ... यन्त्रस्थ

चौथी जिल्द—

जोधपुर राज्य का इतिहास—प्रथम खंड ... ६० ८॥

जोधपुर राज्य का इतिहास—द्वितीय खंड ... यन्त्रस्थ

पांचवीं जिल्द—

बीकानेर राज्य का इतिहास—प्रथम खंड ... यन्त्रस्थ

बीकानेर राज्य का इतिहास—द्वितीय खंड ... यन्त्रस्थ

